भारत में अंगरेज़ी राज

पहली जिल्द

भारत में अंगरेज़ी राज

पहली जिल्द

सुन्दरलाल

प्रकाशक
त्रिवेणी नाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, इलाहाबाद
१९३८
दूसरा संस्करण १०,०००]   [पूरी पुस्तक का मूल्य ७) रु०

पहला संस्करण सन् १९२९—२,०००
दूसरा संस्करण सन् १९३८—१०,०००

मुद्रक
विश्वम्भर नाथ वाजपेयी
ओंकार प्रेस, इलाहाबाद

कबीर साहब

[श्री बहादुर सिंह जी सिंघी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

श्रद्धाञ्जलि

सच्चे हिन्दू-मुसलिम एकता के
आदि-प्रवर्तक

कबीर साहब

की पुण्य-स्मृति में

सादर समर्पित

हिन्दू कहैं राम मोहि प्यारा,

तुरुक कहैं रहिमाना।

आपस में दोउ लरि लरि मए,

मर्म न काहू जाना॥

कबीर

दूसरा संस्करण

इस किताब का पहला संस्करण २००० प्रतियों का १८ मार्च सन् १९२९ को प्रकाशित हुआ था। २२ मार्च सन् १९२९ को युक्त प्रान्त की सरकार ने किताब की ज़ब्ती की आज्ञा दे दी। किसी तरह १७०० किताबें एक बार ग्राहकों के पास पहुँच गईं, और बाक़ी तीन सौ के क़रीब सरकार ने रेल या डाकख़ाने ही में ज़ब्त करलीं। इन १७०० के लिए ग्राहकों के पते लगा लगा कर हिन्दोस्तान भर में सैकड़ों तलाशियां हुईं, जिनमें और अनेक पुस्तकें पुलीस के हाथ लग गईं। इस ज़ब्ती और तलाशियों के ख़िलाफ़ देश भर के समाचार पत्रों और प्रमुख सज्जनों ने अपनी आवाज़ उठाई। महात्मा गांधी ने "यंग इंडिया" में इस ज़ब्ती को "दिन दहाड़े डाका" (Day light robbery) बताया, और लोगों को सलाह दी कि वह तलाशी के अपमान को सह लें किन्तु अपने पास की पुस्तक अपने हाथों से पुलीस को उठाकर न दें। सेठ जमनालाल बजाज़ ने और अनेक प्रान्तों के अन्दर अनेक देशभक्तों ने ऐसा ही किया। महात्मा गांधी

ने पुस्तक के लेखक से उस समय अपना विश्वास प्रकट किया था कि यह ज़ब्ती ठहर नहीं सकती।

जुलाई सन् १९३७ में कांग्रेस ने मंत्री पद स्वीकार किया। १० अगस्त को लेखक ने युक्त प्रान्त की सरकार को ज़ब्ती की आज्ञा उठा देने के लिए लिखा। १५ नवम्बर सन् १९३७ को युक्त प्रान्त की सरकार ने २२ मार्च सन् १९२९ वाली ज़ब्ती की आज्ञा को मनसूख किया। ८ फ़रवरी सन् १९३८ को लेखक के लिखने पर मध्य प्रान्त की सरकार ने अपनी २८ मार्च सन् १९२९ की इसी तरह की आज्ञा को मनसूख किया। २८ जनवरी सन् १९३८ को बम्बई की सरकार ने लेखक के पत्र के उत्तर में सूचना दी कि चूंकि असली पुस्तक युक्त प्रान्त से प्रकाशित हुई थी और एक प्रान्त की ज़ब्ती की आज्ञा सारे ब्रिटिश भारत में आयद हो जाती है, इसलिए अब युक्त प्रान्त से उस आज्ञा के मनसूख हो जाने पर बम्बई प्रान्त में पुस्तक के ख़िलाफ़ कोई रोक टोक नहीं है।

युक्त प्रान्त की सरकार की ओर से ज़ब्ती की आज्ञा मनसूख हो जाने पर १०,००० प्रतियों का दूसरा संस्करण निकलवाने का प्रबन्ध किया गया। लेखक इस दूसरे संस्करण के प्रकाशक पं० त्रिवेणीनाथ वाजपेयी का आभारी है कि उन्होंने, बावजूद इस बात के कि इस बार छपाई इत्यादि का ख़र्च और ख़ास कर ब्लाक और चित्रों का ख़र्च पहले से बहुत बढ़ गया है, पुस्तक का मूल्य पहले संस्करण के १६) के मुक़ाबले में केवल ७) रखा, यानी जितनी सस्ती से सस्ती पुस्तक वे बेच सकते थे, बेचने का

प्रयत्न किया है। किन्तु पुस्तक छपकर तय्यार होने से पहले ही १०,००० के स्थान पर १४,००० से ऊपर गाहकों के आर्डर आ चुके हैं। इसलिए इस दूसरे संस्करण के निकलते ही शीघ्र से शीघ्र तीसरे संस्करण का प्रबन्ध किया जा रहा है।

पहले संस्करण और दूसरे संस्करण में अन्तर केवल इतना ही है जितना किसी भी पुस्तक के पुराने और नए संस्करणों में होता है। केवल भाषा की दृष्टि से कोई कोई शब्द या वाक्य इधर उधर बदल दिया गया है। 'प्रस्तावना' को इस बार 'पुस्तक प्रवेश' कहा गया है। उसमें छोटी मोटी तब्दीलियों के कारण १२ पृष्ठ बढ़ गए हैं। 'अनुक्रमणिका' को इस बार 'क्या कहाँ' कहा गया है। पहले संस्करण में 'अनुक्रमणिका' की एक अलग छोटी सी जिल्द थी। इस बार 'क्या कहाँ' को तीसरी जिल्द के अन्त में जोड़ दिया गया है। पहले संस्करण में कुल चित्रों और नक़शों की संख्या ६१ थी। इस बार ८५ से ऊपर है। नए चित्रों में अधिकांश तिरंगे और चौरंगे हैं। कुछ पुराने चित्र बदल भी दिए गए हैं।

'क्या कहाँ' पं० विश्वम्भर नाथ जी की तय्यार की हुई है। लेखक को विश्वास है कि वह पाठकों को उपयोगी साबित होगी। कुछ प्रूफ़ दुरुस्त करने में श्री विजय वर्मा जी से और शेष प्रूफ़ दुरुस्त करने, पुस्तक को दोहराने, पुस्तक के लिए चित्र इकट्ठा करने और 'क्या कहाँ' तय्यार करने में प० विश्वम्भर नाथ जी से लेखक को बहुत सहायता मिली है। नए चित्रों में से अधिकांश के लिए लेखक श्री वासुदेवराव जी सूबेदार, सागर, श्री बहादुर सिंह जी

सिंधी, कलकत्ता, और विक्टोरिया मेमोरियल, कलकत्ता के ट्रस्टियों और उसके सेक्रेटरी और क्यूरेटर मिस्टर परसी ब्राउन का अनुग्रहीत है।

इस दूसरे हिन्दी संस्करण के साथ साथ पुस्तक का गुजराती अनुवाद श्री चतुर्भुज वि० जसाणी गोंदिया (सी० पी०) की ओर से श्री दक्षिणा मूर्ति प्रकाशन मन्दिर, भावनगर, काठियावाड़ से प्रकाशित हो रहा है। उर्दू तरजुमा लेखक के मित्र डाक्टर सय्यद मोहम्मद नज़ीर अली साहब ज़ैदी, इलाहाबाद, ने अत्यन्त परिश्रम और लगन के साथ पूरा कर लिया है, जो छपने को दे दिया गया है।

३०-६-३८ सुन्दरलाल

स्वीकृति

सन् १९२९ के शुरू में मैंने कई कारणों से यह निश्चय किया था कि मैं कुछ दिनों तटस्थ बैठ कर देश की प्रधान समस्या, हिन्दू-मुसलिम प्रश्न, पर एकान्त में मनन करूँ। उसी समय अकस्मात् मुझे मेजर बामनदास बसु की निम्नलिखित पुस्तकों के पढ़ने का अवसर मिला—

(१) राइज़ ऑफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया—५ जिल्द,

(२) कॉन्सालिडेशन ऑफ़ दी क्रिश्चियन पावर इन इण्डिया

(३) रुइन ऑफ़ इण्डियन ट्रेड एण्ड इण्डस्ट्रीज़, और

(४) एजूकेशन इन इण्डिया अण्डर दी ईस्ट इण्डिया कम्पनी

मैंने सोचा है कि अपने देश के सच्चे इतिहास से अपरिचित होना भी हमारी भ्रान्तियों के कारणों में से एक कारण है। पूर्वोक्त पुस्तकों में मुझे बहुत सी सामग्री ऐसी दिखाई दी जो इतिहास की अन्य पुस्तकों में नहीं मिलती और जिसका ज्ञान अपनी अनेक भूलों के दूर करने में हमारे लिए हितकर हो सकता है। मैंने अपने मुख्य कार्य के साथ साथ इन पुस्तकों का सङ्कलन हिन्दी पढ़ने वालों की

सेवा में उपस्थित करने का निश्चय किया। मैं मेजर बसु का अनुगृहीत हूँ कि उन्होंने न केवल सहर्ष इसकी इजाज़त ही दे दी, वरन् मेरी इस पुस्तक के मसविदे को वे बराबर सुनते रहे और स्थान स्थान पर अपनी अमूल्य सलाहों से मुझे सहायता देते रहे।

पुस्तक के लिखने में स्वभावतः मुझे आशा से अधिक समय लग गया। अन्य अनेक प्रामाणिक ऐतिहासिक पुस्तकों को भी मुझे पढ़ना पड़ा और उनसे सहायता लेनी पड़ी। परिणाम रूप मीर क़ासिम, वारन् हेस्टिंग्स, हैदरअली, टीपू सुलतान, सिन्ध पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा और सन् १८५७ के विप्लव के सातों अध्याय, इन बारह अध्यायों की अधिकांश सामग्री मेजर बसु की पुस्तकों से बाहर की है। शेष अध्यायों में भी स्थान स्थान पर अन्य पुस्तकों से सहायता ली गई है।

पुस्तक की प्रस्तावना में मैंने यह आवश्यक समझा कि भारत पर अंगरेज़ों से पहले के अन्य आक्रमणों और विशेषकर अंगरेज़ों के आने के समय की भारत की स्थिति को पाठकों के सामने रख दिया जाय जिससे उन्हें अपने देश के ऊपर अंगरेज़ी राज के हितकर अथवा अहितकर प्रभाव को ठीक ठीक समझने में सुगमता हो। इस प्रस्तावना के भाग ४, ५, ७ और ८ की लगभग सम्पूर्ण सामग्री श्रीयुत् ताराचन्द एम० ए०, डी० फ़िल के निबन्ध 'दी इन्फ्लुएन्स ऑफ़ इसलाम ऑन इण्डियन कलचर' से ली गई है। मैं श्रीयुत् ताराचन्द का ऋणी हूँ कि उन्होंने मुझे अपने अमूल्य और अत्यन्त शिक्षाप्रद निबन्ध के इस प्रकार उपयोग की इजाज़त दी।

हैदरअली और टीपू सुलतान के सम्बन्ध की जो अलभ्य और अधिकतर नई सामग्री मुझे मैसूर विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार श्रीयुत् बी० एम० श्रीकण्ठय एम० ए० बी० एल० के और मैसूर के पुरातत्व विभाग के विद्वान डाइरेक्टर डॉक्टर आर० शामाशास्त्री से प्राप्त हुई है उसके लिए मैं पूर्वोक्त दोनों सज्जनों का कृतज्ञ हूँ।

इस पुस्तक के अन्दर नगरों इत्यादि के जितने नाम दिए गए हैं उन्हें मैंने यथासम्भव स्थानीय उच्चारण के अनुसार देने का प्रयत्न किया है। मैं डॉक्टर मेघनाथ बन्दोपाध्याय का मशकूर हूँ कि उन्हों ने अपने विस्तीर्ण भौगोलिक ज्ञान से इस काम में मुझे सहायता दी। इस विषय में अधिकतर वे ही मेरे प्रमाण हैं।

चित्रों आदिक के संग्रह में श्रीयुत् वासुदेवराव सूबेदार सागर, श्रीयुत् वी० जी० जोशी चित्रशाला प्रेस पूना, डॉक्टर सर ए० सुहरा-वर्दी कलकत्ता, टीपू सुलतान के पर-प्रपौत्र शहज़ादे हलीमुज्ज़माँ, श्रीयुत् बहादुरसिंह सिंघी कलकत्ता, ज्ञानी होरासिंह जी सम्पादक 'फुलवाड़ो' अमृतसर, श्रीयुत् नरेंद्रदेव आचार्य काशीविद्यापीठ, पण्डित गोकुल चन्द दीक्षित सम्पादक 'स्टेट गज़ट' भरतपुर, श्रीयुत् रामानन्द चट्टोपाध्याय सम्पादक 'मॉडर्न रिव्यू'', डाक्टर सीताराम क्यूरेटर सेन्ट्रल म्यूज़ियम लाहौर, मिस्टर एफ़० हैरिङ्गटन एफ़० आर० ए० एस० क्यूरेटर विक्टोरिया मेमोरियल कलकत्ता, और श्रीयुत् अमूल्यचरण विद्या भूषण मन्त्री बङ्गला साहित्य परिषद् कलकत्ता ने जो मेरी सहायता की है उसके लिये मैं इन सब सज्जनों का अत्यन्त आभारी हूँ। इनमें विशेषकर जिस

प्रेम और परिश्रम के साथ बाबू अमूल्यचरण विद्याभूषण ने मेरी सहायता की उसके लिये कृतज्ञता प्रकट कर सकना मेरे लिये असम्भव है। वयोवृद्ध मिस्टर एफ़ हैरिङ्गटन एफ़० आर० ए० एस० का भी मैं विशेष कृतज्ञ हूँ कि उन्होंने विक्टोरिया मेमोरियल के चित्रों के फ़ोटो लेने में मुझे हर तरह की सुविधा प्रदान की।

आशा है कि यह नम्र प्रयत्न कुछ देशवासियों को अपने देश की शोचनीय स्थिति तथा उसके वास्तविक उपायों पर गम्भीरता के साथ विचार करने में सहायक होगा।

इलाहाबाद
फ़रवरी १९२९

सुन्दरलाल

विषय सूची

पुस्तक प्रवेश

लेखक की कठिनाइयां

वे और हम

पुराने हमले

इसलाम और भारत

जिज्ञासु अरब

मुसलमानों का यहां बस जाना

मानव धर्म

भारतीय कला और मुसलमान

मुग़लों का समय

अंगरेज़ों का आना

हमारा कर्तव्य

भारत में अंगरेज़ी राज

पहला अध्याय

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश

दूसरा अध्याय

सिराजुद्दौला

तीसरा अध्याय

मीर जाफ़र

राम पर हमला—मीर जाफ़र से धन की वसूली—राजा रामनारायन से समझौता—दिल्ली के शहज़ादे अलीगौहर की बिहार यात्रा—क्लाइव को इनाम में जागीर—भारत में अंगरेज़ी राज क़ायम करने की क्लाइव की योजना—मीरजाफ़र के पुत्र मीरन की दूरदर्शिता—सम्राट शाहआलम—सम्राट के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों की बग़ावत—शाहआलम की अनिश्चितता—मीरन की हत्या—बंगाल की दर्दनाक हालत—कम्पनी की व्यापार सम्बन्धी ज़्यादती—बंगाल में दूसरी बग़ावत की योजना—मीरजाफ़र से नई मांगें—मीर क़ासिम के साथ गुप्त सन्धि—मीरजाफ़र का मसनद से हटाया जाना—मीरजाफ़र पर इलज़ाम—कम्पनी को लाभ—कम्पनी की टकसाल।

चौथा अध्याय

मीर क़ासिम

बंगाल की हालत—कम्पनी के खोटे सिक्के—कम्पनी के अत्याचार—महसूल की माफ़ी और उसका दुरुपयोग—व्यापार सम्बन्धी अत्याचार—तिजारत के बहाने लूट—मीर क़ासिम की शिकायतें—नन्दकुमार का देश प्रेम—मुग़लसाम्राज्य की निर्बलता—पानीपत की तीसरी लड़ाई और भारत की स्वाधीनता—शाहआलम की बिहार पर चढ़ाई—राजा रामनारायन से अंगरेज़ों का विश्वासघात—मीर क़ासिम का चरित्र और शासन प्रबन्ध—मीर क़ासिम के सुधार—मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों की साज़िश—मीर क़ासिम पर झूठे इलज़ाम—अंगरेज़ों की लूट

पाचवाँ अध्याय

फिर मीर जाफ़र

छठा अध्याय

मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद

सातवाँ अध्याय

वारन हेस्टिंग्स

आठवाँ अध्याय

पहला मराठा युद्ध

नवाँ अध्याय

हैदरअली

दसवाँ अध्याय
सर जॉन मैक्फ़रसन

ग्यारहवाँ अध्याय
लॉर्ड कार्नवालिस

बारवाँ अध्याय

सर जॉन शोर

तेरवाँ अध्याय

अंगरेज़ों की साम्राज्य पिपासा

चौदवाँ अध्याय

वेल्सली और निज़ाम

चित्र सूची

पहली जिल्द

पुस्तक प्रवेश

मूल पुस्तक

पुस्तक प्रवेश

अंगरेज़ी राज से पहले

लेखक की कठिनाइयां

इतिहास कला

इस समय की इतिहास कला बहुत दर्जे तक आजकल की यूरोपीय सभ्यता की पैदा की हुई है। प्राचीन चीन, भारत, ईरान, मिश्र इत्यादि में भी यह कला थोड़ी बहुत मौजूद थी। इनमें से हर देश में उस देश की पुरानी सभ्यता का थोड़ा बहुत लिखा हुआ इतिहास मिलता है। प्राचीन यूनान और रोम में इस कला ने और उन्नति की। अनेक यूनानी और रोमन विद्वानों के उस समय के लिखे हुए इतिहास आज तक प्रमाण माने जाते हैं। इसके बाद अरबों का समय आया और, जहाँ तक इस कला को वैज्ञानिक ढंग से उन्नति देने और इतिहास की सचाई को क़ायम रखने का प्रश्न है,

शायद किसी भी प्राचीन क़ौम ने इस विषय में इतना अधिक परिश्रम नहीं किया जितना अरबों ने। ईसा की ११ वीं सदी में प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास लेखक अलबेरूनी ने इतिहास कला पर बड़ी सुन्दर वैज्ञानिक विवेचना की है और इतिहास के विद्यार्थियों को सावधान किया है कि हर इतिहास लेखक की स्वाभाविक प्रवृत्तियों से कितनी तरह की भ्रान्तियाँ पैदा हो सकती हैं जिनसे बच सकना उसके लिए अत्यन्त कठिन है। और भी अनेक प्रामाणिक इतिहास लेखकों और इतिहास कला विशारदों के नाम उस समय के अरबों में मिलते हैं। किन्तु फिर भी हमें यह स्वीकार करना होगा कि विस्तृत इतिहास लिखने का जो रिवाज आजकल के समय में प्रचलित है वह प्राचीन देशों में कहीं न था। प्राचीन संसार में, और ख़ास कर प्राचीन भारत में, आजकल के अर्थों मे अपने अपने देशों या जातियों के इतिहास लिखने का काम न इतना ज़रूरी समझा जाता था और न उसे इतना महत्त्व दिया जाता था। यही वजह है कि प्राचीन भारत का कोई सिलसिले-वार इतिहास नहीं मिलता, और अधिकांश पुरानी सभ्यताओं के इतिहास का पता लगाने के लिए हमें पौराणिक कथाओं, तरह तरह के साहित्य, परम्परागत गाथाओं और उस समय के शिला लेखों, खुदे हुए अवशेषों, सिक्कों इत्यादि की ही मदद लेनी पड़ती है।

वास्तव में इतिहास लिखने की कला को जो इतना ज़्यादा महत्त्व आजकल दिया जाता है उसकी ख़ास वजह आजकल की मुख़्तलिफ़ क़ौमों की मानसिक स्थिति है, और शायद मानव जाति की वास्तविक उन्नति की दृष्टि से यह कला इतने अधिक महत्त्व की नहीं है जितनी समझी जाती है। आजकल किसी समय के इतिहास का अधिकतर सम्बन्ध उस समय की राजनैतिक अवस्था

से होता है। शायद कोई भी मनुष्य अपने समय की राजनैतिक अवस्था की ओर से पूरी तरह निष्पक्ष नहीं हो सकता। जाने या अनजाने हर लेखक के विचार किसी न किसी ओर अधिक झुकते ही हैं। कोई दो लेखक ऐसे भी नहीं मिल सकते जो अपने समय की किसी एक घटना को या किसी ख़ास तरह की घटनाओं को एकसा महत्व देते हों। व्यक्तिगत पक्षपात या व्यक्तिगत प्रवृत्तियों के अलावा हर मनुष्य के चित्त में सामाजिक, जातीय या साम्प्रदायिक प्रवृत्तियाँ भी अपनी जगह रखती ही हैं, और उस मनुष्य की लेखनी पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकतीं। इसलिए आम तौर पर पूरी तरह निष्पक्ष इतिहास का मिल सकना यदि बिल्कुल असम्भव नहीं तो क़रीब क़रीब असम्भव ज़रूर है। इस तरह के पक्षपात से रँगे हुए इतिहास पाठकों में भी उसी तरह के पक्षपात को बनाए रखने का एक अनन्त ज़रिया होते हैं। इस सब के अलावा मनुष्य की परिमित मानसिक शक्तियों पर अनन्त तिथियों और व्यक्तियों के हालात या चरित्रों का भार डालने की भी ख़ास ज़रूरत नहीं है। अपने या दूसरों के दोषों को याद रखने की निस्बत मनुष्य जाति के संचित पुण्य विचारों पर दृष्टि रखना ही मनुष्य के लिए अधिक श्रेयस्कर है। ख़ास कर राजनीति में जहाँ कि मानव प्रेम और आत्मोत्सर्ग की जगह द्वेष और स्वार्थ ही हमारे कृत्यों को अधिक प्रभावित करते हों। यही वजह है कि पुराने ज़माने के विद्वान अपनी अपनी क़ौमों के विस्तृत और पूरे पूरे इतिहास लिखने के बजाय कल्पित या अर्ध-ऐतिहासिक कथाओं के ज़रिये अपने समय के उच्च से उच्च नैतिक, सामाजिक और धार्मिक आदर्शों को चित्रित कर देना ज़्यादा अच्छा समझते थे। यही वजह है कि अनेक उच्च से उच्च कोटि के प्राचीन ग्रन्थों में लेखक का

नाम तक नहीं मिलता। यही वजह है कि भारत के प्राचीन साहित्य से तिथियों का ठीक ठीक पता नहीं चलता। इसी बात में मामूली इतिहास के ऊपर रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों की श्रेष्ठता और कहीं बढ़ कर उपयोगिता है।

इतिहास लेखक की कठिनाइयाँ

जो कठिनाइयाँ मनुष्य को अपने समय का इतिहास लिखने में होती हैं उससे ज़्यादा कठिनाइयाँ पुराने समय के इतिहास के लिखने में होती हैं। पिछले समय का इतिहास लिखने वाले को भी इन्हीं पक्षपात से रँगे हुए उल्लेखों के आधार पर अपनी रचना करनी पड़ती है। काल और वस्तुस्थिति की दूरी के कारण उसे और भी अधिक अँधेरे में टटोलना पड़ता है। भारत का और ख़ास कर अंगरेज़ी काल के भारत का इतिहास लिखने वाले के लिए ये कठिनाइयाँ कई गुनी अधिक बढ़ जाती हैं। ब्रिटिश भारत का इतिहास लिखने वाले को अधिकतर अंगरेज़ों के लिखे ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। भारतवासियों के हाथ का लिखा कोई सिलसिलेवार इतिहास इस समय का नहीं मिलता। जो अधूरे वृत्तान्त किसी किसी भारतवासी के हाथ के लिखे मिलते हैं, उनमें से भी अनेक के लेखक अंगरेज़ों के धनक्रीत थे, यह बात उन्हीं के लेखों से साबित है।

संसार के इतिहास में जब जब और जहाँ जहाँ एक क़ौम दूसरी क़ौम के शासन मे आई है, वहाँ वहाँ क़ुदरती तौर पर शासक क़ौम के लेखकों की ग़रज़ अपनी रचनाओं द्वारा यही रही है कि अपनी क़ौम के लोगों में देश-भक्ति, आत्मविश्वास, स्वाभिमान और साहस को जाग्रत किया जावे और शासित क़ौम वालों मे इन्हीं गुणों को कम किया जावे या पैदा न होने

दिया जावे । अंगरेज़ों के लिखे हुए भारतीय इतिहास क़रीब क़रीब शुरू से आख़ीर तक इसी दोष से रंगे होते हैं । वास्तव में शायद संसार के किसी भी देश का इतिहास इस क़ुदरती दोष द्वारा इतना अधिक विकृत नहीं किया गया जितना हिन्दोस्तान का । हिन्दोस्तान और इङ्गलिस्तान का सम्बन्ध ही इस तरह का है कि इस सम्बन्ध के एक बार शुरू हो जाने के बाद निष्पक्ष भारतीय इतिहास का लिखा जाना क़रीब क़रीब नामुमकिन हो गया । एक ओर अंगरेज़ लेखकों की साम्राज्य प्रिय दृष्टि और दूसरी ओर अंगरेज़ी काल के ज़्यादातर भारतीय लेखकों की विदेशी शिक्षा, मानसिक दासता और आजीविका की विकट परिस्थिति । नतीजा यह है कि भारतीय इतिहास की जो पुस्तकें आजकल हमें मिलती हैं, उनमें से अधिकांश में निरर्थक तुच्छ बातों पर ज़ोर दिया जाता है और इतिहास के महत्वपूर्ण पहलुओं की अवहेलना की जाती है, उन्हें दबाया जाता है, ऐतिहासिक घटनाओं के सिलसिले के सिलसिले ग़लत बयान किए जाते हैं और अनेक व्यक्तियों के चरित्र को सफ़ेद की जगह काला और काले की जगह सफ़ेद रँग कर हमारे सामने पेश किया जाता है, अनेक सच्ची घटनाओं का इतिहास में पता तक नहीं चलता और अनेक कल्पित घटनाएँ सच्ची कह कर बयान की जाती हैं । इसी लिए इक्का दुक्का बिरले अपवादों को छोड़कर हिन्दोस्तानियों और ख़ास कर सरकारी विश्वविद्यालयों के हिन्दोस्तानी प्रोफ़ेसरों के लिखे इतिहास इस विषय में और भी अधिक दूषित और लज्जास्पद दिखाई देते हैं । यह सब हिन्दोस्तान की इस समय की ख़िलाफ़ क़ुदरत परिस्थिति का क़ुदरती नतीजा है ।

इन सब विचारों के समर्थन में हम केवल थोड़े से यूरोपीय विद्वानों की सम्मति नक़ल करते हैं ।

प्रसिद्ध फ्रान्सीसी विद्वान हरवे लिखता है—

"सब तरह के साहित्य में अभी तक इतिहास ही मनुष्य को सब से अधिक दुराचार की ओर ले जाने वाला और उसके चरित्र को सब से अधिक भ्रष्ट करने वाला साहित्य रहा है। जब कभी क़ौमों के नाम पर धन लोलुपता और रक्त पिपासा को शान्त किया जाता है, इतिहास इस तरह की लोलुपता और सार्वजनिक हत्या को सराहनीय ठहराता है। इतिहास के पृष्ठों मे छल और कपट को चतुर राजनैतिकता का सबूत माना जाता है। जो चीज़ मामूली मनुष्यों में पाप समझी जाती है वह राज दरबारों में और सिंहासनों पर प्रशंसनीय मानी जाती है।"*

प्रसिद्ध इतिहास लेखक लैकी लिखता है—

"राजनीतिज्ञों की ग़रज़ सदा अपना काम निकालना रहती है। × × × सत्य से निस्वार्थ प्रेम और ज़ोरों की राजनैतिक भावना ये दोनों साथ साथ नहीं चल सकतीं। उन तमाम देशों में, जहाँ कि लोगों के विचार और उनके सोचने के तरीक़े अधिकतर राजनैतिक जीवन के आधार पर बने हों, हमें यह दिखाई देता है कि लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि को ही सत्य की कसौटी बना बैठते हैं।"†

---

* "History, so far, has been the most immoral and perverting branch of literature It exalts greed and wholesale murder when greedy and murderous lusts are satisfied in the names of nations Fraud is taken as evidence of clever diplomacy. What is counted immoral down low is held admirable in Courts and on Thrones"—M Herve

† "The object of the politician is expediency a disinterested

प्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि फ्रान्स का एक बादशाह जब इतिहास की कोई पुस्तक पढ़ना चाहता था तो अपने लाइब्रेरियन से कहता था,—"मेरे झूठ बोलने वाले को ले आओ।" स्पेन्सर लिखता है कि फ्रान्सीसी बादशाह का यह कहना बेजा न था। इसके बाद आजकल के इतिहासों का ज़िक्र करते हुए स्पेन्सर लिखता है—

> "राजाओं के शासन कालों, लड़ाइयों और इस तरह की मामूली घटनाओं के अलावा जो आजकल की तमाम क़ौमों के इतिहास में मिलती हैं, हमें सिवाय उन सन्धियों के जो तोड़ने ही की ग़रज़ से की जाती हैं, उन सरकारी पत्रों के जो बेईमान और झूठे अफ़सरों के हाथ के लिखे होते हैं, उन गप्पों से भरे हुए ख़तों के जो दरबारियों द्वारा भेजे जाते हैं, और इसी तरह की और चीज़ों के, कोई ऐसी बात नहीं मिलती जिस पर हम विश्वास कर सकें। इस तरह की सामग्री से कोई भी सत्य का खोजी सत्य का पता कैसे लगा सकता है? × × ×"*

सरकारी काग़ज़ों में झूठ

भारत में अंगरेज़ी राज का इतिहास ज़्यादातर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की

---

love of truth can hardly co-exist with a strong political spirit In all countries where the habits of thought have been mainly formed by political life, we may discover a disposition to make expediency the test of truth."—Lecky in his *Rationalism in Europe*

* "Beyond accounts of kings' reigns, of battles, and of incidents named in the chronicles of all the nations concerned, we have nothing to depend on but treaties made to be broken, despatches of corrupt and lying officials, gossiping letters of courtiers and so forth How from these materials shall we distil the truth? . "—Herbert Spencer's *Facts and Comments*.

रिपोर्टों और काग़ज़ों से ही संग्रह करना पड़ता है, किन्तु कम्पनी के तमाम प्रकाशित पत्रों के विषय में अंगरेज़ इतिहास लेखक जेम्स मिल, जो इङ्गलिस्तान में कम्पनी के 'पत्र-व्यवहार विभाग' का प्रमुख रह चुका था और जिसका ब्रिटिश भारत का इतिहास सब से अधिक प्रमाण माना जाता है, लिखता है—

"कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इस तरह की बातों और ख़बरों को दबा देने में, जिन्हें वे प्रकाशित करना न चाहते थे, शुरू से आख़ीर तक बड़ी चतुरता दिखाई है।"*

कप्तान कनिङ्घम की मशहूर किताब "सिखों के इतिहास" की सन् १८५३ की एडीसन के विज्ञापन में पीटर कनिङ्घम लिखता है—

"हाल के ज़माने की हिन्दोस्तान की तारीख़ के लिए जो छपी हुई सामग्री मिलती है वह इस तरह की नहीं है जिस पर कोई इतिहास लेखक विश्वास कर सके। पार्लिमेण्ट के दोनों हिस्सों, हाउस ऑफ़ कॉमन्स और हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स से जो सरकारी काग़ज़ात जनता के सामने पेश किए जाते हैं, उनमें भी उस समय की राजनैतिक दलबन्दी के हितों की दृष्टि से तब्दीलियाँ कर दी गई हैं, या इस ग़लत ख़याल से कि सच्ची बात के खुल जाने से लोगों के भावों को आघात न पहुँचे, काँट छाँट कर दी गई है।"†

* "Under the skill which the Court of Directors have all along displayed in suppressing such information as they wished not to appear."—James Mill

† "The printed materials for the recent History of India are not of

इतिहास लेखक सर जॉन के, जो इङ्गलिस्तान के इण्डिया ऑफ़िस के 'राजनैतिक और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, अफ़ग़ान युद्ध का ज़िक्र करते हुए एक जगह लिखता है—

"पार्लिमेण्ट के सरकारी काग़ज़ों के संग्रह में अलेक्ज़ेण्डर बर्न्स के चरित्र और उसकी ज़िन्दगी दोनों को ग़लत बयान किया गया है। लोग समझते हैं कि ये पार्लिमेण्ट के काग़ज़ इतिहास के लिए सबसे अच्छी सामग्री हैं। किन्तु सच यह है कि आम तौर पर ये सरकारी काग़ज़ केवल काट छाँट की हुई दस्तावेज़ों और जाली कागज़ों का एक ऐसा यकतर्फ़ा संग्रह होते हैं जिसे राज मन्त्रियों की मोहर सच्चा कह कर चलता कर देती है, जिससे मौजूदा नसल के लोग धोखे में आ जाते हैं, और आइन्दा नसलों को ख़तरनाक झूठों का एक सिलसिला वसीयत में मिलता है।"*

पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों की इस ख़ास जालसाज़ी का अधिक हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर अफ़ग़ान युद्ध के बयान में पढ़ने को मिलेगा।

that character on which historians can rely State Papers, presented to the people by both Houses of Parliament have been altered to suit the temporary views of political warfare or abridged out of mistaken regard to the tender feelings of survivors —P Cunningham in the advertisement to the 2nd edition of *History of the Sikhs* by Captain J D Cunningham 1853

* The character and career of Alexander Burnes have both been mis-represented in those collections of State Papers which are supposed to furnish the best materials of history but which are often only one-sided compilations of garbled documents —counterfeits, which the ministerial stamp forces into currency, defrauding a present generation, and handing down to prosterity a chain of dangerous lies —*History of the Afghan War*, by Kaye, vol ii, p 13

जब कि स्वयं ब्रिटिश पार्लिमेण्ट के काग़ज़ों की यह हालत है तो अंगरेज़ों के लिखे हुए मामूली ऐतिहासिक उल्लेखों पर कहाँ तक विश्वास किया जा सकता है ।

इतिहास लेखक फ्रीमैन स्वीकार करता है कि सरकारी एलानों, पत्रों और राजनैतिक दस्तावेज़ों का सारा क्षेत्र "झूठ का मनोवाञ्छित क्षेत्र है ।" वह लिखता है—

"फिर भी ये झूठ शिक्षाप्रद झूठ हैं,—ये उन लोगों के कहे हुए झूठ हैं, जो सच्चाई से वाक़िफ़ थे । कई तरह के उपायों से झूठ के अन्दर से भी सच्चाई का पता लगाया जा सकता है, किन्तु किसी झूठ पर विश्वास कर लेना उससे सच्चाई का पता लगाने का तरीक़ा नहीं है । वास्तव मे वह मनुष्य बालक की तरह भोला है, जो हर शाही एलान पर या पार्लिमेण्ट के हर एक्ट की भूमिका पर विश्वास करले, और उनसे यह अन्दाज़ा लगावे कि अमुक अमुक बड़े लोगों ने क्या क्या किया और उसके करने में उनकी क्या ग़रज़ थी ।"*

इतिहास से झूठ की कुछ मिसालें

इस पुस्तक के लेखक को आज १९२८ ई० से चार साल पहले तक

* " Here we are in the very chosen region of lies . yet they are instructive lies, they are lies told by people who know the truth, truth may even, by various processes, be got out of the lies, but it will not be got out of them by the process of believing them He is of childlike simplicity indeed who believes every royal proclamation or the preamble of every Act of Parliament, as telling us, not only what certain august persons did, but the motives which led them to do it "—Freeman

इस बात का अनुमान न हो सकता था कि अंगरेज़ विद्वानों के लिखे हुए भारत के अधिकांश इतिहासों में झूठ की मात्रा कितनी अधिक और कितनी भयङ्कर है।

सिन्ध के अंगरेज़ विजेता सर चार्ल्स नेपियर के भाई मेजर जनरल विलियम नेपियर की पुस्तक "दी कॉंकेस्ट ऑफ़ सिन्ध" की शुमार सिन्ध के ऊपर सबसे अधिक प्रामाणिक अंगरेज़ी पुस्तकों में की जाती है। अंगरेज़ों की सिन्ध विजय को मनुष्य जाति के ऊपर एक बहुत बड़ा उपकार साबित करने के लिये विलियम नेपियर ने सिन्ध निवासियों और उनके मुसलमान शासकों के चरित्र पर जो अनेक कलङ्क लगाए हैं उनमें से एक कलङ्क शिशु हत्या भी है। नेपियर लिखता है—

"और ये राक्षस खुद अपने बच्चों की किस तरह हत्या करते थे? पहले तो वे भ्रूणहत्या के लिए दवाइयाँ पिलाते थे; यदि इससे काम न चलता था तो कभी कभी वे बच्चों के पैदा होते ही अपने हाथों से काट कर उनके टुकड़े टुकड़े कर डालते थे; किन्तु अधिकतर वे यह करते थे कि इन बच्चों को गद्दों के नीचे डाल कर उन पर खुद बैठ जाते थे, और जब कि उनके बच्चों का उनके नीचे घुट कर दम निकलता था, वे उनके ऊपर बैठे हुए तम्बाकू पीते रहते थे, शराब पीते रहते थे और अपने इस नारकीय कृत्य पर एक दूसरे से मज़ाक़ करते रहते थे।"*

* "And how did these monsters destroy their own children? First they gave potions, called *Odalisques*, to procure abortion; if these failed, they sometimes chopped the children to pieces with their own hands immediately

कप्तान ईस्टविक, जिसे ठीक उन्हीं दिनों कई साल सिन्ध में रहने और सिन्ध के देशी शासकों और वहाँ की प्रजा दोनों से मिलने जुलने का अवसर मिला और जो सिन्ध की भाषाओं और वहाँ के रस्मोरिवाज से अच्छी तरह परिचित था, इस लज्जाजनक झूठ की आलोचना करते हुए एक दूसरे यूरोपियन विद्वान ग्रैटन का नीचे लिखा वाक्य नक़ल करता है—

"इतिहास में अनेक बातें ऐसी लिखी मिलती हैं, जिनको सच साबित करने या जिनका खण्डन करने का कोई ख़ास मूल्य नहीं है। सदाचार की इस तरह की ऊँची (किन्तु असत्य) मिसालें इतिहास में मिलती हैं, जिन्हें यदि एक बार लोगों ने सच्चा मान लिया है तो उनसे दुनियां का भला ही हुआ है। किन्तु जब किसी व्यक्ति या जाति के चरित्र पर कलङ्क लगाए जाते हैं और जब हम यह देखते हैं कि कितनी आसानी से उन झूठे कलङ्कों का प्रचार किया जाता है, कितने शौक़ के साथ लोग उन्हें पढ़ते और सुनते हैं, और जिन बातों को गढ़ लेने या फैलाने में कुछ भी ख़र्च नहीं होता, किन्तु जिनका पूरी तरह खण्डन करने में ज़िन्दगी भर मेहनत और इस तरह की परिस्थिति की ज़रूरत होती है, जिसका मिलना क़रीब क़रीब नामुमकिन हो जाता है, उन बातों पर लोग सहज ही में और बेपरवाही के साथ विश्वास कर लेते हैं,

---

after birth, but more frequently placed them under cushions and sat down, smoking and drinking and jesting with each other about their hellish work, while their children were being suffocated beneath them"—*The Conquest of Sindh*, part ii, p 348

जब हम यह सब देखते हैं तो हर ईमानदार लेखक या पाठक का इस तरह के 'इतिहास की सचाई पर सन्देह' करना क़ुदरती है।"*

यह दोहराने की ज़रूरत नहीं है कि स्वयं अंगरेज़ गवाहों ही के अनुसार विलियम नेपियर का ऊपर लिखा बयान बिल्कुल कल्पित, झूठा और निराधार है। आज से केवल ८४ साल पहले जिस समय सिन्ध पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का क़ब्ज़ा हुआ, उस समय सिन्ध के अमीरों और सिन्ध की प्रजा दोनों का सार्वजनिक और व्यक्तिगत चरित्र नेपियर और उसके देशवासियों के चरित्र की निस्बत कहीं अधिक पवित्र और ऊँचा था। नेपियर ने अपनी पुस्तक में जिस तरह सिन्ध निवासियों के चरित्र पर निराधार झूठे कलङ्क लगाए हैं, उसी तरह सिन्ध के अमीरों को भी बदनाम करने की भरसक कोशिश की है। जिन अमीरों ने कभी जीवन भर किसी मादक द्रव्य को अपने पास नहीं आने दिया, जो तम्बाकू के धुएँ तक से बचते थे, और जो स्त्री जाति के सतीत्व की रक्षा का ग़ैर मामूली ध्यान रखते थे, उनको नेपियर ने शराबी और कुचरित्र चित्रित किया है। हम ये सब बातें सर्वथा विश्वस्त अंगरेज़ लेखकों ही के आधार पर लिख रहे हैं। इन बातों का विस्तृत हाल पाठकों को इस पुस्तक के अन्दर सिन्ध के अध्याय में पढ़ने को मिलेगा।

---

* "There are many statements of history which it is immaterial to substantiate or disprove Splendid pictures of public virtue have often produced their good if once received as fact But, when private character is at stake, every conscientious writer or reader will cherish his 'historic doubts,' when he reflects on the facility with which calumny is sent abroad, the avidity with which it is received, and the careless ease with which men credit what it costs little to invent and propogate, but requires an age of trouble, and an almost impossible conjunction of opportunities, effectually to refute "—Frattan's *History of the Netherlands*, vol ii, p 242

भारतीय नरेशों पर झूठे कलङ्क

ठीक इसी तरह जिस सिराजुद्दौला ने अपने नाना अलीवर्दी ख़ाँ की अन्तिम आज्ञा के अनुसार तख़्त पर बैठने के दिन से मरने की घड़ी तक कभी मदिरा को हाथ तक न लगाया था, * और जिसके व्यक्तिगत चरित्र में कोई ऐसा दोष न था, जो उस समय के ९९ प्रतिशत भारतीय नरेशों या अंगरेज़ शासकों में न पाया जाता हो, उसे अंगरेज़ी पुस्तकों में परले दरजे का दुराचारी बयान किया जाता है। यही अन्याय मीर क़ासिम, हैदरअली, टीपू सुलतान, नन्दकुमार, लक्ष्मीबाई इत्यादि अन्य भारतीय वीरों और वीरांगनाओं के चरित्र के साथ किया गया है। इन सब बातों का अधिक हाल इस पुस्तक के अन्दर जगह जगह दिया गया है। इतिहास लेखक सर जॉन के साफ़ लिखता है—

> "× × × हम लोगों में यह एक रिवाज है कि पहले किसी देशी नरेश का राज उससे छीन लेते हैं और फिर पदच्युत नरेश पर या उस मनुष्य पर, जो उसका उत्तराधिकारी बनने वाला था, झूठे कलंक लगाकर उन्हें बदनाम करते हैं।"†

फ़रज़ी चित्र

जिस तरह व्यक्तियों के चरित्र के साथ किया जाता है उसी तरह घटनाओं के साथ, यहाँ तक कि अनेक पुस्तकों में भारतीय नरेशों के चित्र

---

* Scrafton's *Reflections*, as quoted in "बाङ्गलार इतिहास, नवाबी आमल," लेखक कालीप्रसन्न बन्द्योपाध्याय।

† ". . It is a custom among us . . to take a native ruler's kingdom and then to revile the deposed ruler or his would be successor"—Sir John Kaye's *History of the Sepoy War*, vol. iii, pp 361, 362

तक बिल्कुल ग़लत मिलते हैं । जिस हैदरअली ने होश सँभालने के बाद से कभी डाढ़ी या मूँछ नहीं रक्खी उसका डाढ़ी और मूँछों वाला चित्र अनेक अंगरेज़ी इतिहासों में मिलता है ! कैसल की 'हिस्ट्री ऑफ़ इण्डिया' में जो अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, हमने सम्राट बहादुरशाह का एक चित्र देखा, जिसके पैरों में राजपूती जूता, डाढ़ी चढ़ी हुई और धोती मारवाड़ के तर्ज़ पर बँधी हुई है ! सच यह है कि जो पुस्तकें भारत के इतिहास पर स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाई जाती हैं, उनमें तारीख़ों, राजाओं के नामों या अत्यन्त मोटी मोटी घटनाओं को छोड़ कर बाक़ी बातों में से कम से कम ६० फ़ी सदी का मूल्य एक साधारण उपन्यास से अधिक नहीं है, और वह भी निहायत ख़तरनाक उपन्यास, जिसका असर क़ौम के बढ़ते हुए दिमाग़ों पर अत्यन्त ज़हरीला पड़ता है ।

किराये के लेखक

निस्सन्देह कुछ भारतीय विद्वानों के लिखे हुए इसी समय के ऐतिहासिक वृत्तान्त एक दरजे तक ज़्यादा सच्चे और विश्वसनीय हैं । किन्तु एक तो इस तरह के वृत्तान्त हैं ही बहुत कम और फुटकर, और दूसरे इनके सम्बन्ध में हमें एक और गहरी कठिनाई का सामना करना पड़ता है ।

फ़ारसी का ग्रन्थ 'सीअरुल मुताख़रीन' भारतीय मुग़ल साम्राज्य के अन्तिम दिनों का ख़ासा विश्वस्त इतिहास माना जाता है और है भी । फिर भी इस ग्रन्थ का विद्वान रचयिता सय्यद ग़ुलाम हुसेन अपने ग्रन्थ में स्वीकार करता है कि सम्राट शाहआलम और अंगरेज़ों के संग्रामों के दिनों में उसे लोभ देकर अंगरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया था । निस्संदेह

उस ज़माने का उसका सारा वृत्तान्त अंगरेज़ों के एक धनक्रीत लेखक का लिखा वृत्तान्त है।

और भी अनेक भारतीय और अन्य लेखकों को फ़ारसी और दूसरी भाषाओं में झूठे ऐतिहासिक वृत्तान्त लिखने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से समय समय पर धन मिलता रहा है। मिसाल के तौर पर लॉर्ड विलियम बेण्टिङ्क ने ऐबे दुबॉय का प्रसिद्ध फ़ान्सीसी ग्रन्थ, जिसमें हिन्दुओं के उस समय के रहन सहन इत्यादि का ज़िक्र है, आठ हज़ार रुपये देकर दुबॉय से ख़रीदा, कम्पनी की ओर से उसे अंगरेज़ी में प्रकाशित कराया और अन्त में कम्पनी ने उसके लिए दुबॉय को आजीवन पेनशन दी। हैदरअली की एक फ़ारसी जीवनी लिखने के लिए मिरज़ा इक़बाल को कम्पनी की ओर से रुपए दिए गए। हैदरअली की यह जीवनी शुरू से आख़ीर तक झूठे कलङ्कों और पक्षपात से भरी हुई है। करनल माइल्स ने हैदरअली की एक जीवनी अंगरेज़ी में लिखी है, जिसके विषय में करनल माइल्स का बयान है कि वह पुस्तक मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी की फ़ारसी पुस्तक 'निशाने हैदरी' का अनुवाद है और 'निशाने हैदरी' का मूल फ़ारसी मसविदा मलका विक्टोरिया के निजी पुस्तकालय में मौजूद था। हमने करनल माइल्स की पुस्तक को पढ़ा। हम यह देख कर चकित रह गए, कि उस पुस्तक के अन्दर पृष्ठ के पृष्ठ ऐसे हैं, जिनका एक एक शब्द एक फ़्रॉन्सीसी लेखक एम० एम० डी० एल० टी० के ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ़ हैदरशाह' के एक अंगरेज़ी संस्करण के कुछ पृष्ठों से मिलता है। यह फ़ान्सीसी किताब हैदरअली के जीवनकाल में लिखी गई थी। मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी की किताब ज़ाहिर है उसके बाद की लिखी हुई है। यदि फ़ारसी लेखक ने

फ्रान्सीसी किताब से या उसके अंगरेज़ी अनुवाद से ये पृष्ठ लिए होते तो यह नामुमकिन था कि फ़ारसी से अङ्गरेज़ी तर्जुमा करने में ठीक वही शब्द ज्यूँ के त्यूँ लिखे जा सकते। ज़ाहिर है कि मीर हुसेनअली ख़ाँ का फ़ारसी मसविदा या तो कहीं है ही नहीं, या कम से कम जिसे करनल माइल्स ने उस मसविदे का अनुवाद कह कर प्रकाशित किया है, वह उस मसविदे का अनुवाद नहीं है।

इसी तरह की और भी अनेक मिसालें अंगरेज़ों के ज़माने के हिन्दोस्तान के लिखे हुए इतिहास से दी जा सकती हैं। सच यह है कि आजकल की यूरोपीय सभ्यता में और ख़ासकर यूरोपीय राजनीति में ईमानदारी या सच के लिए कोई जगह नहीं, और यूरोपीय इतिहास कला बहुत दरजे तक यूरोपीय राजनीति का केवल एक अङ्ग है। प्रोफ़ेसर सीली, प्रोफ़ेसर गोल्ड-विन स्मिथ और इतिहास लेखक फ़्रीमैन जैसे यूरोपियन विद्वानों ने इतिहास को केवल राजनीति का एक अङ्ग स्वीकार किया है। और 'Politics has no conscience,' यानी 'राजनीति में पाप पुण्य के विवेक का कोई स्थान नहीं', अंगरेज़ी की एक मशहूर कहावत है।*

इस तरह के झूठे और कल्पित इतिहास का नतीजा हमारी क़ौमी

* पिछले साल एच॰ डी॰ लैसवेल की लिखी 'प्रापेगैण्डा टैकनीक इन वर्ल्ड वार' नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में साफ़ लिखा है कि आगामी महायुद्ध के लिये युद्धविद्या, शस्त्राभ्यास इत्यादि के साथ साथ समस्त राजनीतिज्ञों, शासकों और सेनापतियों को झूठ बोलने की विद्या का भी बाज़ाप्ता वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहिये। लेखक के अनुसार पिछले महायुद्ध के दिनों में झूठ बोलने की कला में सब से अधिक सफलता

ज़िन्दगी के लिये और ख़ास कर हमारे शिक्षित देशवासियों की मानसिक अवस्था पर इतना गहरा पडा है कि आज हमारी क़ौमी तरक्की के मार्ग में यही सबसे बडी बाधा दिखाई दे रही है। इसके अलावा अनेक भयङ्कर ऐतिहासिक भ्रान्तियों और झूठों का स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों और अन्य उपायों द्वारा इतना ज्यादा प्रचार किया गया है कि आज हमारे असंख्य विचारवान देशवासी इन ऐतिहासिक भ्रान्तियों की भूलभुलइयों में पड कर अपनी सलामती के उपायों को सोच सकने के बिलकुल नाक़ाबिल हो रहे हैं।

हमारे इतिहास के भ्रम

कहा जाता है, अनादिकाल से भारत पर पश्चिमोत्तर सीमा की ओर से विदेशियों या विदेशी जातियों के हमले होते रहे हैं, भारत कभी भी इन

आरम्भ में इगलिस्तान ने दिखाई, उसके बाद अमरीका इस कला में इगलिस्तान से भी बढ़ गया। वह लिखता है—

"राष्ट्रपति विलसन ने इस कला में जो दक्षता दिखलाई वह ससार के इतिहास मे अद्वितीय है।" लेखक ने पिछले महायुद्ध के समय के अगरेज़ो के कई प्रसिद्ध झूठो की मिसाले दी है! मसलन ससार के अख़बारो में छपा था कि जरमन सिपाहियो ने बेल्जियम वालो के अनेक बच्चो के हाथ काट डाले। यह बात शुरू से आख़ीर तक झूठी थी। इस ख़बर के सम्बन्ध में युद्ध के समाप्त होने पर इतालियों के प्रधान-मन्त्री सीन्योर निती ने लिखा था—

"युद्ध के बाद एक धनाढ्य अमरीकन ने अपना एक दूत इस उद्देश से बेल्जियम भेजा कि जिन गरीब बालको के नन्हें नन्हें हाथ काट डाले

हमलों से अपनी रक्षा नहीं कर सका और एक दूसरे के बाद लगातार मुख़तलिफ़ विदेशी शासनों का शिकार होता रहा है। कहा जाता है कि इस तरह के विदेशी हमलों में भारत के ऊपर सबसे अधिक भयङ्कर हमला मुसलमानों का था। भारत के मुसलमान आक्रमक असभ्य, धर्मान्ध और अन्यायी थे, जिन्होंने अंगरेज़ों के आने से पहले क़रीब एक हज़ार साल तक भारतवर्ष को अपने अत्याचारों से कुचले रक्खा; प्राचीन हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति का सत्यानाश कर डाला और हमारे करोड़ों देशवासियों को तलवार के ज़ोर से धर्मभ्रष्ट कर मुसलमान बना लिया। हमसे कहा जाता

गये हैं, उनकी जीविका का प्रबन्ध कर दिया जाय। इस दूत को एक भी इस तरह का बालक नहीं मिल सका। जिन दिनों मैं इतालिया सरकार का प्रधान मन्त्री था, मैंने और मिस्टर लायड जार्ज ने मिल कर इन भीषण इलज़ामों की सत्यता का पता लगाने के लिए विस्तृत छान बीन की। इनमें से कम से कम कई इलज़ामों के साथ मनुष्यों और स्थानों के नाम तक हमें बताये गये थे। किन्तु हमारे छान बीन करने पर ये तमाम क़िस्से झूठे निकले।"—"विशाल भारत" अगस्त १६२८।

एक दूसरी बात यह भी कही गई थी कि जरमनी में एक कारख़ाना खुला है, जिसमें सिपाहियों की लाशों को उबाल कर उनसे साबुन और ग्लिसरीन बनाया जाता है। इस कारखाने के फोटो तक अंगरेज़ी अख़बारों में छपे थे। "सन् १६२५ में जाकर इस असत्य समाचार की पोल खुली। जरमन सरकार ने एलान किया कि यह एक बिलकुल झूठा क़िस्सा है और इसमें सच का नामनिशान तक नहीं। आख़िर इंगलिस्तान के वैदेशिक विभाग के मन्त्री सर आस्टिन चैम्बरलेन को जरमनी का यह कथन स्वीकार

है कि भारत के इन मुसलमान शासकों में सिवाय अय्याशी, लूट मार और धर्मान्धता के और कोई विशेषता न थी। यहाँ तक कि बड़े से बड़े या अच्छे से अच्छे मुग़ल बादशाहों को हिन्दुओं और हिन्दोस्तान के लिए अधिक से अधिक 'मीठी छुरी' कह कर बयान किया जाता है। हमें विश्वास दिलाया जाता है कि मुसलमानों ने कोई भी उपकार भारत पर नहीं किया, उनके शासन में कोई बात तारीफ़ की न थी, उन्होंने भारत के राष्ट्रीय जीवन को हर तरह से नुक़सान पहुँचाया और आज तक हिन्दुओं और मुसलमानों में कभी भी वास्तविक मेल न हुआ और न हो सकता है। जो इतिहास स्कूलों में पढ़ाए जाते हैं उनमें दिखाया जाता है कि अंगरेज़ों के

कर लेना पड़ा और उसने कहा भी—'I trust that this false report will not again be revived.' यानी 'मैं विश्वास करता हूं कि इस झूठी अफ़वाह को अब कोई न दोहराएगा।'

इसी तरह के और भी बेशुमार झूठ उन दिनों जरमनों के विरुद्ध अंगरेजो और मित्र राष्ट्रों की ओर से प्रकाशित होते रहते थे।

ऐसी ही एक दूसरी पुस्तक "फ़ाल्सहुड इन वार टाइम" इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मेम्बर आर्थर पॉन्सन्बी ने हाल में प्रकाशित की है। पॉन्सन्बी इगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल में वैदेशिक विभाग का उपमन्त्री रह चुका है। इस पुस्तक की आलोचना करते हुए पार्लिमेण्ट के एक दूसरे प्रसिद्ध सदस्य विलफ़्रेड वेलॉक ने अगस्त सन् १९२८ के "विशाल-भारत" मे लिखा है—

"इस पुस्तक में यह बात अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध की गई है कि पिछले महायुद्ध का सञ्चालन झूठ और फ़रेब के ज़रिये किया गया था

आने से पहले भारत में चारों ओर कुशासन और अराजकता फैली हुई थी, और आए दिन आपसी लड़ाइयाँ होती रहती थीं, अंगरेज़ों ने, जो उस समय भारतवासियों से कहीं अधिक सभ्य थे, भारत में आकर शान्ति और सुशासन क़ायम किया और देश को सभ्यता की ओर ले जाना शुरू किया। इन्हीं सब बातों के आधार पर और वर्तमान अंगरेज़ी सत्ता के सच्चे रूप को हमसे छिपा कर हमें यह यक़ीन दिलाया जाता है कि अंगरेज़ों का भारतीय शासन भारतवासियों के लिए एक बहुत बड़े सौभाग्य की चीज़ है और हमारी सारी भावी उन्नति तथा देश की शान्ति अंगरेज़ी शासन के इस देश में बने रहने पर निर्भर है। यदि आज दुर्भाग्यवश अंगरेज़ी शासन भारत से मिट जाय तो सम्भव है कि या तो पश्चिमोत्तर की ओर से कोई दूसरी शक्ति आकर भारत पर क़ब्ज़ा कर ले या हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से लड़ लड़ कर देश को फिर बरबादी की ओर ले जायें!

इन सब बातों के जवाब में हम यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि और आरम्भ से लेकर अन्त तक युद्ध के उद्देश्यो के विषय में संसार की जनता को धोखे में रक्खा गया।"

"यदि संसार में कोई युद्ध ऐसा हुआ है, जो ऊपर से देखने मे धर्म के भावों से प्रेरित मालूम होता था, तो वह पिछला महायुद्ध था। कम से कम मित्र दल वाले यही कहते थे कि हम धार्मिक युद्ध कर रहे हैं। मित्रों की ओर से यह एलान किया गया था कि हम लोग छोटी छोटी जातियों की स्वाधीनता के लिए और सन्धियों की पवित्रता की रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं। हमारा उद्देश सैनिक शासन (Militarism) को दूर करना है!

"कैसी धोखेबाज़ी थी! कैसा पाखण्ड था! कैसा झूठ था!"

अंगरेज़ों के आने से पहले भारत के ऊपर अन्य विदेशियों के हमले कितने, कब कब और किस ढङ्ग के हुए और भारत ने उनका कहाँ तक सफलता के साथ मुक़ाबला किया। हम यह भी दिखलाएँगे कि बाहर से इस तरह के हमलों का होना भारत ही की एक विशेषता है या संसार के अन्य देशों के इतिहास मे भी यह एक सामान्य घटना है। हम यह भी दिखाएँगे कि यूरोप के विविध देशों और स्वयं इङ्गलिस्तान के ऊपर इस तरह के हमले कभी हुए है या नही, यदि हुए हैं तो कितने और यूरोप के देशों ने उन हमलों का भारत की निस्बत अधिक सफलता के साथ मुक़ाबला किया है या नहीं। हम यह भी बयान करेंगे कि भारत पर मुसलमानों के हमले से पहले यूरोप के विविध देशों पर भी मुसलमानों के हमले हुए थे या नहीं, और यदि हुए थे तो यूरोपियन देशों ने भारत की तुलना में उनका किस तरह मुक़ाबला किया। हम इस बात की भी पूरी जाँच करना चाहेंगे कि भारत के ऊपर मुसलमानों के हमले किस ढङ्ग के थे, भारत के लिए उन हमलों के नतीजे क्या हुए, भारत के अन्दर इसलाम मत का प्रचार वास्तव मे किस ढङ्ग से और किन उपायों द्वारा किया गया, हिन्दुओं के साथ भारत के मुसलमान शासकों का व्यवहार आद्योपान्त किस ढङ्ग का रहा, दोनों धर्मों के क़रीब क़रीब एक हज़ार साल के सम्पर्क मे भारत भर के अन्दर हिन्दुओं और मुसलमानों में किस तरह का सम्बन्ध रहा। शिल्प, विज्ञान, शिक्षा, चित्रकला, कृषि, व्यापार, उद्योग धन्धों, सुशासन और समृद्धि की दृष्टि मे भारत ने मुसलमानों के शासन मे कहाँ तक उन्नति या अवनति की, अंगरेज़ों के सम्पर्क के समय सभ्यता के विविध अङ्गों में भारत की क्या अवस्था थी, इङ्गलिस्तान की उस समय क्या हालत थी, किन कारणों से

और किन उपायों द्वारा अंगरेज़ों का राज भारत में क़ायम हुआ, भारत के लिए उसके क्या नतीजे हुए और भविष्य में उससे छुटकारा पाने की किस तरह आशा की जा सकती है ।

वे और हम

१७ वीं सदी का इंगलिस्तान

वास्तव में भारत और इङ्गलिस्तान का सम्पर्क दो अलग अलग सभ्यताओं और अलग अलग आदर्शों का एक दूसरे से टकराना था । इसलिए और बातों से पहले हम उस समय के इङ्गलिस्तान की हालत का, जब कि हिन्दोस्तान और इङ्गलिस्तान का पहली बार सम्पर्क हुआ, संक्षिप्त बयान दे देना चाहते हैं ।

१६ वीं और १७ वीं सदी के इंगलिस्तान की हालत को बयान करते हुए प्रसिद्ध इतिहासज्ञ ड्रेपर लिखता है—

> "किसानों की झोपड़ियाँ नरसलों और छड़ियों की बनी हुई होती थीं जिनके ऊपर गारा फेर दिया जाता था । घर में आग घास जला कर तैयार की जाती थी और धुएँ के निकलने के लिए कोई जगह न होती थी । जिस तरह का सामान उस समय के एक अंगरेज़ किसान के घर मे होता था, और जिस तरह से वह ज़िन्दग़ी बसर करता था, उससे मालूम होता था कि गाँव के पास नदी के किनारे जो ऊदबिलाव मेहनत से माँद बना कर

रहता था, उस ऊदबिलाव की हालत में और उस किसान की हालत में ज़्यादा फ़रक़ न था। सड़कों पर डाकू फिरते रहते थे, नदियों पर समुद्री लुटेरे और लोगों के कपड़ों और बिस्तरों में जुएँ। आम तौर पर लोगों की ख़ूराक होती थी—मटर, उड़द, जड़े और दरख़्तों की छालें। कोई ऐसा धन्धा न था, न कोई तिजारत थी जिससे बारिश न होने की सूरत में किसान दुष्काल से बच सके। मौसम की सख़्ती से बचने का मनुष्यों के पास बिल्कुल कोई उपाय न था। आबादी बहुत कम थी, और महा-मारी और अन्न के अभाव से और घटती रहती थी। शहर के लोगों की हालत भी गाँव के लोगों से कुछ अच्छी न थी। शहर वालों का बिछौना भुस का एक थैला होता था और तकिये की जगह लकड़ी का एक गोल टुकड़ा। जो शहर वाले ख़ुशहाल होते थे वे चमड़े के कपड़े पहनते थे, जो ग़रीब होते थे वे अपने हाथ और पैरों पर पवाल की पूलियाँ लपेट कर अपने को सरदी से बचाते थे। × × × जिन शहरों मे शीशे की या तैल पत्र की कोई खिड़की तक न होती थी, वहाँ किसी तरह के कारीगर के लिए कहाँ गुञ्जाइश थी। कहीं कोई कारख़ाना न था, जिसमें कोई कारीगर आराम से बैठ सके। ग़रीबों के लिए कोई वैद्य न था। × × × सफ़ाई का कहीं कोई इन्तज़ाम था ही नहीं।"

आगे चल कर उस समय के यूरोप के सदाचार को बयान करते हुए ड्रेपर लिखता है—

"जिस तेज़ी के साथ गरमी की बीमारी उन दिनों तमाम

यूरोप में फैली, उससे इस बात का साफ़ पता चलता है कि लोगों में दुराचार कितने भयंकर रूप में फैला हुआ था। यदि हम उस समय के लेखकों पर विश्वास करें तो विवाहित या अविवाहित, ईसाई पादरी या मामूली गृहस्थ, पोप लियो दसवें से लेकर गली के भिखमंगे तक—कोई वर्ग ऐसा न था जो इस रोग से बचा रहा हो। × × × इंगलिस्तान की आबादी पचास लाख से भी कम थी। × × × किसान अपनी ज़मीन का मालिक न होता था। ज़मीन ज़मींदार की होती थी और किसान केवल उसका मज़दूर और चौकीदार होता था। ऐसी हालत में दूसरे देशों की तिजारत ने समाज में हलचल मचानी शुरू की। आबादी इधर से उधर आने जाने लगी। दूसरे देशों से तिजारत करने के लिए कम्पनियाँ बनाई गईं। ये अफ़वाहें या ख़बरें सुन कर कि दूसरे देशों में जाकर जल्दी से ख़ूब धन कमाया जा सकता है, लोगों के दिमाग़ फिरने लगे × × × सारी अंगरेज़ क़ौम इतनी बेपढ़ी थी कि पार्लिमेण्ट के बहुत से हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स के मेम्बर तक न लिख सकते थे और न पढ़ सकते थे × × × ईसाई पादरियों में भयंकर दुराचार फैला हुआ था। खुले तौर पर कहा जाता था कि इंगलिस्तान में एक लाख औरतें ऐसी हैं, जिन्हें पादरियों ने ख़राब कर रक्खा है। × × × कोई पादरी यदि बुरे से बुरा भी जुर्म करता था तो उसे केवल थोड़ा सा जुरमाना देना पड़ता था। मनुष्य हत्या के लिए पादरियों को केवल छै शिलिंग आठ पेन्स (क़रीब पाँच रुपए) जुरमाना देना पड़ता था। × × × सोलहवीं

सदी के अन्त मे लन्दन का शहर गन्दा था, मकान भद्दे बने हुए थे और सफ़ाई का कोई इन्तज़ाम न था। × × × जंगली जानवर हर जगह फिरते थे। × × × बरसात में सड़कें इतनी ख़राब हो जाती थी कि उन पर से चलना मुशकिल था। × × × देहात में अकसर जब लोग रास्ता भूल जाते थे तो उन्हे रात रात भर बाहर ठण्ढी हवा में रहना पड़ता था। ख़ास ख़ास नगरों के बीच मे भी कही कहीं सड़कों का पता न होता था, जिसकी वजह से पहिये-दार गाड़ियों का चल सकना इतना कठिन था कि लोग ज़्यादातर लद्दू टट्टुओं के पालानों मे दाऍ और बाऍ असबाब के साथ साथ और असबाब की तरह लद कर एक जगह से दूसरी जगह आते जाते थे। × × × सत्रहवी सदी के अन्त मे जाकर तेज़ से तेज़ गाडी दिन भर मे तीस मील से पचास मील तक चल सकती थी और वह "उड़ने वाली गाडी" कहलाती थी। × × × टाइन नदी के स्रोत पर जो लोग रहते थे वे अमरीका के आदिमवासियों से कम जंगली न थे। उनकी स्त्रियाँ आधी नंगी जंगली गाने गाती फिरती थी, और पुरुष अपनी कटार घुमाते हुए लड़ाइयों के नाच नाचते थे। × × × जब कि पुरुषों ही की यह हालत थी कि उनमे से बहुत थोड़े ठीक ठीक लिखना जानते थे तो यह सोचा जा सकता है कि स्त्रियाँ कितनी अनपढ़ रही होंगी। × × × समाज की व्यवस्था मे जिसे हम सदाचार कहते हैं उसका कहीं पता न था। × × × पति अपनी पत्नी को कोड़ों से पीटता था × × × अपराधियों को टिकटिकी से बाँध कर पत्थर मार मार

कर मार डाला जाता था। औरतों की टाँगों को सरे बाज़ार शिकञ्जों में कस कर छोड़ दिया जाता था। × × × लोगों के दिल अत्यन्त सख़्त हो गए थे × × × गाँव के लोगों के मकान झोपड़े होते थे जिन पर फूस छाया हुआ होता था। × × × लन्दन में मकान अधिकतर लकड़ी और प्लासटर के होते थे, गलियाँ इतनी गन्दी होती थीं कि बयान नहीं किया जा सकता। शाम होने के बाद डर के मारे कोई अपने घर से न निकलता था, क्योंकि जो चाहे अपने ऊपर के कमरे से खिड़की खोल कर बेखटके गन्दा पानी नीचे फेंक देता था। × × × लन्दन की गलियों मे लालटेनों का कहीं निशान न था। उच्च श्रेणी के लोगों मे सदाचार की आमतौर पर यह हालत थी कि उनमें यदि कोई भी मनुष्य मरता था तो लोग यही समझते थे कि किसी ने ज़हर देकर मार डाला × × × सारे देश पर दुराचार की एक बाट आई हुई थी।"

विचार स्वातंत्र्य के विषय में ड्रेपर लिखता है—

ऑक्सफ़ोर्ड की विद्यापीठ ने यह आज्ञा दे दी कि बकेनन, मिलटन और बेक्सटर की राजनैतिक पुस्तकें स्कूलों के आँगनों मे खुले जला दी जायँ। × × × राजनैतिक या धार्मिक अपराधों के बदले में जिस तरह की सख़्त सज़ाएँ दी जाती थी उन पर विश्वास होना कठिन है। लन्दन में टेम्स नदी के पुराने टूटे हुए पुल पर इस तरह के अपराधियों के डरावने सिर काट कर लटका दिए जाते थे, इसलिए कि उस भयङ्कर दृश्य को देख कर जन

सामान्य क़ानून के विरुद्ध जाने से रुके रहें। उस समय की उदारता का अन्दाज़ा उस एक क़ानून से लगाया जा सकता है, जो ८ मई सन् १६८४ को स्कॉटलैण्ड की पार्लिमेण्ट ने पास किया। क़ानून यह था कि जो कोई मनुष्य सिवाय बादशाह की सम्प्रदाय के दूसरी किसी ईसाई सम्प्रदाय के गिरजे में जाकर उपदेश देगा या उपदेश सुनेगा, उसे मौत की सज़ा दी जायगी, और उसका माल असबाब ज़ब्त कर लिया जायगा। इस बात के काफ़ी से ज़्यादा सुबूत हमारे पास मौजूद हैं कि इस तरह के निन्दनीय भाव केवल क़ानूनों के अक्षरों में ही बन्द न रह जाते थे। × × × स्कॉटलैण्ड मे कवेनेण्टर (एक ईसाई सम्प्रदाय) लोगों के घुटनों को शिकञ्जों के अन्दर कुचल कर तोड़ दिया जाता था और वे दुःख से पड़े चिल्लाते रहते थे; स्त्रियों को लकड़ियों से बाँध कर समुद्र के किनारे रेत पर छोड़ दिया जाता था और धीरे धीरे बढ़ती हुई लहरें उन्हे बहा ले जाती थीं, केवल इस अपराध में कि वे सरकार के बताए हुए गिरजे मे जाने से इनकार करती थीं, या उनके गालों को दाग़ कर उन्हें जहाज़ों मे बन्द करके ज़बरदस्ती ग़ुलाम बनाकर अमरीका भेज दिया जाता था। × × × राजकुल की स्त्रियाँ यहाँ तक कि स्वयं इङ्गलिस्तान की मलका तक स्त्रियोचित दयाभाव और मामूली मनुष्यत्व तक को भूल कर ग़ुलामों के इस क्रय-विक्रय के नारकीय व्यापार में हिस्सा लेती थीं × × ×।"*

* "The peasant's cabin was made of reeds or sticks plastered over

उस समय के भारत से तुलना

ऊपर के लम्बे बयान से उस ज़माने के इङ्गलिस्तान के गावों और शहरों की हालत, मकानों, सड़कों, रहन सहन, धन्धों, कचहरियों, धार्मिक विचारों, शिक्षा और सदाचार इत्यादि का पूरा पूरा पता चलता है। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि यह वह ज़माना था, जब कि हिन्दोस्तान में कबीर और दादू के उदार धार्मिक विचार, अकबर का विश्वप्रेम, जहाँगीर का न्यायशासन, शाहजहाँ के समय की ख़ुशहाली और आश्चर्यजनक कलाकौशल संसार भर के यात्रियों को चकाचौंध कर रहे थे, जब कि भारत में दरजनों नगर सुन्दर से सुन्दर इमारतों से सुसज्जित और अत्यन्त घने बसे हुए थे, जब कि दिल्ली और आगरे के क़िले और ताजमहल जैसी इमारतें बन

---

with mud His fire was chimney-less—often it was made of peat In the objects and manner of his existence he was but a step above the industrious beaver who was building his dam in the adjacent stream There were highwaymen on the roads pirates on the rivers, vermin in abundance in the clothing and beds The common food was peas, vetches, fern roots and even the bark of trees There was no commerce to put off famine Man was altogether at the mercy of the seasons The population, sparse as it was, was perpetually thinned by pestilence and want Nor was the state of the townsman better than that of the rustic, his bed was a bag of straw, with a hard round log for his pillow If he was in easy circumstances, his clothing was of leather, if poor, a wisp of straw wrapped round his limbs kept off the cold As to the mechanic, how was it possible that he could exist where there were no windows made of glass, not even of oiled paper, no workshop warmed by a fire For the poor there was no physician . Sanitary provisions there were none . the rapidity of its (syphilis') spread all over Europe is a significant illustration of the fearful immorality of the times If contemporary authors are to be trusted, there was not a class, married or unmarried, clergy or laity, from the holy father, Leo X, to the begger by the wayside, free from it . Its (England's)

चुकी थीं, और जब कि औरङ्गज़ेब तक के शासनकाल में देश के पूरब से पच्छिम और दक्खिन से उत्तर तक प्रजा में चारों ओर अलौकिक सुख समृद्धि और सुशासन दिखाई देता था। निस्सन्देह मज़हब के नाम पर इङ्गलिस्तान के अन्दर जिन भयङ्कर अत्याचारों का ऊपर ज़िक्र आया है, उनके सामने औरङ्गज़ेब की धार्मिक सङ्कीर्णता भी उदारता थी। यही हालत उस समय शेष अधिकांश यूरोप की थी। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इङ्गलिस्तान की यह हालत १८ वीं सदी के शुरू तक बनी रही। इसी

---

population hardly reached five millions ... It was a system of organized labour, the possession of land being a trust, not a property. But now commerce was beginning to disturb the foundations on which all these arrangements had been sustained, and to compel a new distribution of population, trading companies were being established men were unsettled by the rumours or realities of immense fortunes rapidly gained in foreign adventure

A nation so illiterate that many of its peers in Parliament could neither read nor write, ... to so great an extent had these immoralities gone that it was openly asserted that there were one hundred thousand women in England made dissolute by the clergy ... The vilest crime in an ecclesiastic might be commuted for money, six shillings and eight pence being sufficient in the case of mortal sin ... the close of the seventeenth century ... London ... was dirty, ill-built, without sanitary provisions ... Wild animals roamed here and there ... In the rainy seasons the roads were all but impassable ... It was no uncommon thing for persons to lose their way, and have to spend the night out in the air Between places of considerable importance the roads were sometimes very little known, and such was the difficulty for wheeled carriages that a principal mode of transport was by pack-horses, of which passengers took advantage, stowing themselves away between the packs ... Toward the close of the century what were termed 'flying coaches' ... could move at the rate of from thirty to fifty miles in a day ... near the sources of the Tyne there were people scarcely less savage than American Indians, their half-naked

बयान में यह भी साफ़ लिखा है कि किस तरह हिन्दोस्तान जैसे देशों के धन का चरचा भूखे और अर्धसभ्य अंगरेज़ों को यहाँ तक खींच कर लाया, और किस तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी जैसी कम्पनियाँ बनीं।

वास्तव में इङ्गलिस्तान के पिछले इतिहास में कभी कोई इस तरह की सभ्यता का ज़माना न गुज़रा था, जिस तरह की सभ्यता भारत में हज़ारों साल पहले से चली आती थी, और जिसका हम आगे चलकर थोड़ा बहुत ज़िक्र करेंगे।

इगलिस्तान को सभ्य बनाने की कोशिशें

ऐतिहासिक ज़माने मे सबसे पहले हज़रत ईसा के जन्म के आस पास ईरान की मशहूर मिथ्री सम्प्रदाय के प्रचारकों ने इंगलिस्तान पहुँच कर वहाँ के अर्द्ध सभ्य बाशिन्दों को सभ्य बनाने और उनमें पाप पुण्य या धर्म अधर्म के विचार पैदा करने की कोशिश की। एक बार मिथ्री सम्प्रदाय का,

---

women chanting a wild measure, while the men, with brandished dirks, danced a war-dance It might be expected that the women were ignorant enough when very few men knew how to write correctly Social discipline was very far from being of that kind which we call moral the husband (whipped) his wife A culprit was set in the pillory to be pelted with brickbats women were fastened by the legs in the stocks at the market-place Such a hardening of heart The houses of the rural population were huts covered with strawthatch In London the houses were mostly of wood and plaster, the streets filthy beyond expression After nightfall a passenger went at his peril, for chamber windows were opened and slop pails unceremoniously emptied down There were no lamps in the streets Hardly any personage died who was not popularly suspected to have been made away with by poison, an indication of the morality generally supposed to prevail among the higher classes flood of immorality The University of Oxford had

जिसने रोमन लोगों में सब से पहले पाप पुण्य के विचार पैदा किये, इंगलिस्तान भर में खूब ज़ोर रहा। इंगलिस्तान के अनेक हिस्सों में वैदिक देवता मित्र के मन्दिर क़ायम हुए, जिनके टूटे हुए अवशेष अभी तक अजायब घरों में मौजूद हैं। किन्तु आने जाने की असुविधाओं और इंगलिस्तान की बहुत अधिक असभ्य अवस्था के कारण यह असर देर तक न ठहर सका।

इसके बाद से रोमन लोगों ने इंगलिस्तान के बाशिन्दों को सभ्य बनाने की कोशिश की। चार सौ साल तक इंगलिस्तान पर रोम वालों की हुकूमत रही, किन्तु इंगलिस्तान रोमन साम्राज्य के बिलकुल एक दूर के किनारे पर पड़ता था और इन चार सौ साल के अन्दर सबसे बड़ा उपयोग जो रोम के शासकों ने इंगलिस्तान का किया, या जो वह कर सके वह यही था

---

ordered the political works of Buchanan, Milton, and Baxter to be publicly burnt in the court of the schools In administering the law, whether in relation to political or religious offences, there was an incredible atrocity In London, the crazy old bridge over the Thames was decorated with grinning and mouldering heads of criminals, under an idea that these ghastly spectacles would fortify the common people in their resolves to act according to law. The toleration of the times may be understood from a law enacted by the Scotch Parliament, May 8, 1685, that whoever preached or heard in a conventicle should be punished with death and the confiscation of his goods That such an infamous spirit did not content itself with mere dead-letter laws there is too much practical evidence to permit anyone to doubt Shrieking Scotch Covenanters were submitted to torture by crushing their knees flat in the boot, women were tied to stakes on the sea-sands and drowned by the slowly advancing tide because they would not attend Episcopal worship, or branded on their cheeks and then shipped to America The court ladies, and even the Queen of England herself, were so utterly forgetful of womanly mercy and common humanity as to join in this infernal traffic "—*The Intellectual Development of Europe,* by John William Draper, vol ii, pp 230-244

कि इंगलिस्तान से हज़ारों जवान लड़कों और लड़कियों को हर साल पकड़ पकड़ कर अपने साम्राज्य के दूसरे हिस्सों में लेजाकर गुलाम बना कर बेचते रहे। एक ज़माना था जब कि रोमन साम्राज्य भर में किसी देश के गुलामों की इतनी माँग न थी जितनी ब्रिटिश गुलामों की।

सभ्यता या संस्कृति की तीसरी लहर जो ऐतिहासिक समय के अन्दर इंगलिस्तान के किनारों से जाकर टकराई ईसा की सातवीं सदी में इंगलिस्तान निवासियों का ईसाई धर्म स्वीकार करना था। किन्तु ईसाई धर्म से भी अपनी अनुन्नत अवस्था के कारण इंगलिस्तान निवासियों ने सिवाय भद्दे भद्दे मूढ़ विश्वासों, प्रतिमा पूजा, साम्प्रदायिक पक्षपात और कलह के उस समय और कुछ न सीखा।

इसके बाद यूरोप में अरबों का समय आया। आधे यूरोप के ऊपर अरबों का साम्राज्य क़ायम हो गया। सभ्यता, विज्ञान, शिक्षा, कला कौशल और समृद्धि की दृष्टि से यूरोप ने कभी उससे पहले इतने अच्छे दिन न देखे थे। इंगलिस्तान कई कारणों से इस अरब साम्राज्य से बाहर रहा। किन्तु यूरोप के बड़े से बड़े विद्यालय अरब प्रोफ़ेसरों से भरे हुए थे और अरबी ही सारे यूरोप की सर्वोच्च शिक्षा का माध्यम थी। ईसा की दसवीं और ग्यारहवीं सदियों में इंगलिस्तान का कोई मनुष्य उस समय तक शिक्षित न माना जा सकता था जब तक कि वह अरबी भाषा से अच्छी तरह परिचित न हो। किन्तु थोड़े दिनों के अन्दर ही यूरोप की संकीर्ण धार्मिक प्रवृत्तियों ने अरबों के इस असर का भी ख़ात्मा कर दिया। इसके बाद जो क़रीब एक हज़ार साल का समय तमाम यूरोप में अंधकार युग (dark ages) के नाम से

मशहूर है उसमें कम से कम ९०० साल तक इंगलिस्तान और देशों से भी अधिक गहरे अंधेरे मे डूबा रहा।

सारांश यह कि पाप पुण्य, या धर्म अधर्म के इस तरह के नैतिक आदर्श जो प्राचीन वैदिक मत, बौद्ध मत, जैन मत इत्यादि के कारण भारत में हज़ारों साल से स्थिर हो चुके थे और जो हर भारतवासी की पैतृक मानसिक सम्पत्ति थे, उस समय तक कभी भी इंगलिस्तान में स्थिर होने न पाये थे।

इसके अलावा १८ वी सदी के शुरू तक इंगलिस्तान के जन सामान्य न केवल भयंकर दरिद्रता ही मे डूबे हुए थे, वरन् थोड़े से रईसों और ज़मींदारों को छोडकर ६० फ़ीसदी इंगलिस्तान निवासियों की हालत अनेक बातों में ज़रख़रीद ग़ुलामों की हालत से बेहतर न थी। जिस पार्लिमेण्टरी शासन पद्धति की इतनी अधिक डींग हाँकी जाती है, उसका जन्म भी इस आपसी कलह और द्वेष ही में हुआ था, जिसके लिये सुसभ्य, सुसंगठित, ख़ुशहाल भारत में कभी कोई गुञ्जाइश ही न थी। सुसंगठित ग्राम-पंचायतों के रूप मे ग्रामवासियों के सच्चे स्वराज्य या ग्रामतन्त्र का इंगलिस्तान निवासियों को कभी अनुमान तक न हो सकता था। न राजा और प्रजा के बीच वह सुन्दर धार्मिक सम्बन्ध वहाँ कभी क़ायम हो पाया था जो, हिन्दुओं और मुसलमानों, दोनों के शासनकाल में भारत में कम से कम दो हज़ार साल से ऊपर तक क़ायम रहा। इन सब बातों को हम आगे चल कर अधिक विस्तार के साथ बयान करेंगे।

सच यह है कि इस तरह के नैतिक आदर्श केवल सदियों के सुसभ्य

जीवन द्वारा ही पैदा हो सकते हैं और इंगलिस्तान निवासियों को इस तरह के सुसभ्य जीवन का कभी भी सौभाग्य प्राप्त न हुआ था।

इंगलिस्तान और भारत की टक्कर

सत्रहवीं सदी के शुरू में इस तरह की एक क़ौम के साथ भारत जैसे प्राचीन देश का पहली बार सम्पर्क हुआ। क़रीब सौ साल तक वे केवल यहाँ थोडा बहुत व्यापार कर धन कमाते रहे। अठारहवीं सदी के शुरू में औरंगज़ेब को मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य की संहति मे फ़रक़ पड़ा। सौ साल के अन्दर इन विदेशियों की लालसा और आकांक्षा बेहद बढ़ चुकी थी। न्याय अन्याय या ईमानदारी बेईमानी का कोई सवाल उस समय उनकी आकांक्षाओं और उनकी पूर्ति के उपायों में बाधा डालने वाला न था। तिजारती कोठियों के बहाने इन लोगों ने क़िलेबन्दी शुरू की। उदार भारतीय नरेशों ने इसकी तनिक भी परवा न की। देश में व्यापार की उन्हें खुली इजाज़त और अनेक सुविधाएं दी ही जा चुकी थीं। विदेशियों का बल बढ़ता गया। भारतीय व्यापार से उचित और अनुचित तरीक़ों से उन्होंने बेहद धन कमाना शुरू किया। धन से फ़ौजें रक्खी गईं। फ़ौजों की मदद से उन्होंने मद्रास और बंगाल में भारतीय नरेशों के आपसी झगड़ों में कभी एक का और कभी दूसरे का पक्ष लेना शुरू किया। इस कूटनीति और इन साज़िशों द्वारा विदेशियों का बल और बढता चला गया। दिल्ली साम्राज्य की निर्बलता के कारण कोई केन्द्रीय शक्ति इस समस्त स्थिति को समझने और उसका उपाय कर सकने वाली बाक़ी न रह गई थी। भारतीय नरेशों को एक दूसरे से लड़ाकर इलाक़े पर इलाक़ा विदेशियों के शासन में आता गया। अब हम कुछ अंगरेज़ इतिहास लेखकों ही के विचार इस

विषय में दे देना चाहते हैं कि मोटे तौर पर किन किन उपायों से उस समय से धीरे धीरे अंगरेज़ों ने भारत में एक इतना बड़ा साम्राज्य क़ायम कर लिया, और इस देश के समृद्ध और लहलहाते हुए जीवन का अन्त कर दिया।

अंगरेज़ी राज क़ायम होने के तरीक़े

एक यूरोपियन विद्वान लिखता है —

"किसी भारतीय सन्त ने अपने देश के अन्दर यूरोपनिवासियों की तुलना दीमकों के साथ की है। आरम्भ में दीमकों की क्रियाएँ या तो अंधेरे मे ज़मीन के नीचे से शुरू होती हैं या कम से कम दिखाई नहीं देतीं। किन्तु इन दीमकों का लक्ष्य निश्चित होता है और वे चुपचाप और अज्ञात उस लक्ष्य को पूरा करने में लगी रहती हैं। बब के हरे वृक्षों को नष्ट कर डालती हैं और उन्हें भीतर ही भीतर खाकर उनके खोखले तनों में अपनी इमारतें खड़ी कर लेती हैं, उन इमारतों तक पास की और दूर की कड़ी मिट्टी की बामियों से आने जाने के लिए वे अनेक गुप्त रास्ते बना लेती हैं। जहाँ पहले दूर तक फैले हुए देवदार के वृक्ष लहलहाते थे वहाँ बामियाँ ही बामियाँ दिखाई देने लगती हैं। ये दीमकें हर चीज़ पर धावा करती हैं, हर चीज़ को खा जाती हैं, भीतर ही भीतर जड़ों को खोद डालती हैं, खोखला कर देती हैं और सब वीरान कर डालती हैं। इस उपमा पर हम अधिक गर्व नहीं कर सकते, यद्यपि उपमा एक दरजे तक फबती हुई है। × × × किन्तु कुछ हो, इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि भारतवर्ष के साथ हमारे शुरू के सम्बन्ध में बहुत सी ऐसी बातें हुई हैं जिनको याद

करके कोई भी सदाचार को समझने वाला मनुष्य काँप उठेगा और कोई भी सच्चा ईसाई जिनका घृणा के साथ निषेध किए बिना नहीं रह सकता।"*

एक और अंगरेज विद्वान लिखता है—

"कम्पनी ने बंगाल का राज या अरकाट का राज या दूसरे किसी भी प्रान्त का राज और किन उपायों से प्राप्त किया, सिवाय झूठी क़समें खाने और जालसाज़ियाँ करने के?"†

विलियम हॉविट नामक एक अंगरेज़ लिखता है—

"जिस तरीक़े से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने हिन्दोस्तान पर क़ब्ज़ा किया उससे अधिक बीभत्स और ईसाई सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी दूसरे तरीक़े की कल्पना तक नहीं की जा सकती। × × × यदि कोई कुटिल से कुटिल तरीक़ा हो सकता था—जिसमें नीच से नीच अन्याय की कोशिशों पर न्याय का बढ़िया मुलम्मा फेरने

---

* "Some native sage has compared the Europeans in India to *dimaks* or white ants, which from dark or scarcely visible beginnings, pursue their determined objects insidiously and silently, destroying green forest trees and in their excavated trunks building edifices, communicating by numerous galleries with the hardened clay pyramids, far and near, that denote where formerly flourished the far-spreading cedars. Attacking everything, devouring everything, they undermine and sap and desolate. The simile is not a very flattering one, though it is not in some measure without its aptitude either, . . . After all, however, there can be no question that in our early connection with India, there was much, from the contemplation of which, the moralist will shrink, and the Christian protest against, with abhorrence." *The Calcutta Review*, vol vii, (1847), p 226

† "How did the Company acquire Bengal, but by perjury and forgery? Or Arcot, or any other principality?"—*The British Friend of India*—March, 1843

की कोशिश की गई हो—यदि कोई तरीक़ा अधिक से अधिक निष्ठुर, क्रूर, गर्वयुक्त और दयाशून्य हो सकता था, तो वह तरीक़ा है जिसमें भारतवर्ष की अनेक देशी रियासतों का शासन देशी राजाओं के हाथों से छीन छीन कर ब्रिटिश सत्ता के चंगुल में इकट्ठा कर दिया गया है × × × जब कभी हम दूसरी क़ौमों के सामने अंगरेज़ क़ौम की सचाई और ईमानदारी का ज़िक्र करते हैं तो वे भारत की ओर इशारा करके ख़ूब हिक़ारत के साथ हमारा मज़ाक उड़ा सकते है। × × × जिस तरीक़े पर चल कर, लगातार सौ साल से ऊपर तक, देशी राजाओं से उनके इलाक़े छीने जाते रहे, और वह भी न्याय और औचित्य की पवित्रतम आड़ से, उस तरीक़े से बढ़ कर दूसरों को यन्त्रणा पहुँचाने का तरीक़ा राजनैतिक या धार्मिक किसी मैदान में किसी भी ज़ालिम हुकूमत ने कभी पहले ईजाद न किया था; संसार में उसके मुकाबले की कोई दूसरी मिसाल नहीं मिल सकती।"*

* "   the mode by which the East India Company has possessed itself of Hindostan, as the most revolting and un-Christian that can possibly be conceived   if ever there was one system more Machiavelian, more appropriative of the show of justice where the basest injustice was attempted, more cold, cruel, haughty and unrelenting than another, it is the system by which the Government of the different states of India has been wrested from the hands of their respective princes and collected into the grasp of the British power   Whenever we talk to other nations of British faith and integrity, they may well point to India in derisive scorn   *The system* which for more than a century, was steadily at work to strip the native princes of their dominions, and that too under the most sacred pleas of right and expediency, is a system of torture more exquisite than regal or spiritual

स्पेन्सर के विचार

प्रसिद्ध अंगरेज़ तत्ववेत्ता हरबर्ट स्पेन्सर पिछले क़रीब सौ साल के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन का सन् १८५१ में सिंहावलोकन करते हुए लिखता है—

"पिछली सदी में भारत में रहने वाले अंगरेज़, जिन्हें बर्क ने 'भारत मे शिकार की ग़रज़ से जाने वाले फ़सली परिन्दे' बतलाया है, अपने मुक़ाबले के पेरू और मेक्सिको निवासी यूरोपियनों* से कुछ ही कम ज़ालिम साबित हुए। कल्पना कीजिए कि उनके कृत्य कितने कलुषित रहे होंगे, जब कि कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने यह स्वीकार किया कि 'भारत के आन्तरिक व्यापार में जो बड़ी बड़ी पूँजियां कमाई गई हैं वे इतने ज़बरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा प्राप्त की गई हैं, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी देश या किसी ज़माने मे भी सुनने में नहीं आए।' अनुमान कीजिए कि वन्सीटॉर्ट ने समाज की जिस दशा को बयान किया है वह कितनी बीभत्स रही होगी, जब कि वन्सीटॉर्ट हमें बतलाता है कि अंगरेज़ भारतवासियों को विवश करके जिस भाव चाहते थे, उनसे माल ख़रीदते थे और जिस भाव चाहते थे उनके हाथ बेचते थे, और जो कोई इनकार करता

---

tyranny ever before discovered, such as the world has nothing similar to show."—*The English in India—System of Territorial Acquisition*, by William Howitt

* जिन्हो ने वहा के लाखो आदिमनिवासियो को अंग भंग कर के और उनका शिकार खेल खेल कर उन्हें निर्मूल कर दिया—लेखक।

था उसे बेत या क़ैदख़ाने की सज़ा देते थे। विचार कीजिए कि उस समय देश की क्या हालत रही होगी जब कि अपनी किसी यात्रा को बयान करते हुए वारन हेस्टिंग्स लिखता है कि, 'हमारे पहुँचते ही लोग अधिकाँश छोटे क़स्बों और सरायों को छोड़ छोड़ कर भाग जाते थे।' इन अंगरेज़ अधिकारियों की निश्चित नीति ही उस समय यह थी कि बिना किसी कारण के देशवासियों के साथ दग़ा की जावे। देशी नरेशों को धोखा दे देकर उन्हें एक दूसरे से लड़ा दिया गया; पहले उनमें से किसी एक को उसके विपक्षी के विरुद्ध मदद दी गई, और फिर किसी न किसी दुर्व्यवहार का बहाना लेकर उसी को तख़्त से उतार दिया गया। इन सरकारी भेडियों को किसी न किसी गँदले नाले का बहाना सदा मिल जाता था। जिन मातहत सरदारों के पास इस तरह के इलाक़े होते थे, जिन पर इन लोगों के दाँत होते थे, उनसे बड़ी बड़ी अनुचित रक़में बतौर ख़िराज के लेकर उन्हें निर्धन कर दिया जाता था, और अन्त में जब वे इन माँगों को पूरा करने के नाक़ाबिल हो जाते थे तो इसी सङ्गीन जुर्म के दण्ड रूप उन्हें गद्दी से उतार दिया जाता था। यहाँ तक कि हमारे समय (१८९१) में भी उसी तरह के ज़ुल्म जारी हैं। आज दिन तक नमक का कष्टकर ठेका और लगान की वही निर्दय प्रथा जारी है, जो कि ग़रीब रय्यत से ज़मीन की क़रीब क़रीब आधी पैदावार चूस लेती है। आज दिन तक भी वह धूर्ततापूर्ण स्वेच्छाशासन जारी है, जो देश को पराधीन बनाए रखने और उस पराधीनता को बढ़ाने के

लिए देशी सिपाहियों का ही बतौर साधनों के उपयोग करता है। इसी स्वेच्छाशासन के नीचे अभी बहुत साल नहीं गुज़रे कि हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक पूरी रेजिमेण्ट को इसलिए जान बूझ कर क़त्ल कर डाला गया, क्योंकि उस रेजिमेण्ट के सिपाहियों ने बग़ैर पहरने के कपड़ों के कूच करने से इनकार कर दिया था। आज दिन तक पुलिस के कर्मचारी धनवान लफङ्गों के साथ मिल कर ग़रीबों से ज़बरदस्ती धन ऐंठने के लिए सारी क़ानूनी मशीन को काम में लाते हैं। आज के दिन तक साहब लोग हाथियों पर बैठ कर निर्धन किसानों की खड़ी फ़सलों में से जाते हैं और गाँव के लोगों से बिना क़ीमत दिए रसद वसूल करते हैं। आज के दिन तक यह एक आम बात है कि दूर के ग्रामों मे रहने वाले लोग किसी यूरोपियन की शकल देखते ही जङ्गल मे भाग जाते हैं।"*

* "The Anglo-Indians of the last century whom Burke described as 'Birds of prey and passage in India' showed themselves only a shade less cruel than their prototypes of Peru and Mexico Imagine how black must have been their deeds, when even the Directors of the Company admitted 'That the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannical and oppressive conduct, that was ever known in any age or country' Conceive the atrocious state of society described by Vansittart, who tells us that the English compelled the natives to buy or sell at just what rates they pleased on pain of flogging or confinement Judge to what a pass things must have come when, in describing a journey, Warren Hastings says 'Most of the petty towns and serais were deserted at our approach' A cold-blooded treachery was the established policy of the authorities Princes were betrayed into war with each other, and one of them having been helped to overcome his antagonist, was then himself

कम्पनी के पाप

एक और अंगरेज़ लेखक डॉक्टर रसल लिखता है—

"ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय शासन को आरम्भ से ही बड़े बड़े पापों ने कलुषित कर रक्खा था, × × × लगातार अनेक पीढ़ियों तक बड़े से बड़े सिविल और फ़ौजी अफ़सरों से लेकर छोटे से छोटे कर्मचारियों तक, कम्पनी के मुलाज़िमों का एक मात्र महान लक्ष्य और उद्देश यह रहता था कि जितनी जल्दी हो सके और जितनी बड़ी से बड़ी पूँजी हो सके, इस देश से निचोड़ ली जाय और फिर अपना मतलब पूरा करते ही सदा के लिए इस देश को छोड़ दिया जाय। × × × यह बात बिलकुल

---

dethroned for some alleged misdemeanour Always some muddied stream was at hand as a pretext for official wolves Dependent chiefs possessing coveted lands were impoverished by exorbitant demands for tribute and their ultimate inability to meet these demands was construed into a treasonable offence, punished by deposition Even down to our own day kindred iniquities are continued Down to our own day, too are continued the grievous salt monopoly and the pitiless taxation, that wring from the poor ryots nearly half the produce of the soil Down to our own day continues the cunning despotism which uses native soldiers to maintain and extend native subjection, a despotism under which, not many years since, a regiment of sepoys was deliberately massacred, for refusing to march without proper clothing Down to our own day, the police authorities league with wealthy scamps, and allow the machinery of the law to be used for the purposes of extortion Down to our own day, so called gentlemen will ride their elephants through the crops of impoverished peasants and will supply themselves with provisions from the native villages without paying for them And down to our own day it is common with the people in the interior to run into the woods at sight of a European "—*Social Statics*, by Herbert Spencer

सच्चाई के साथ कही गई है कि × × × पराजित प्रजा को अपने बुरे से बुरे और अय्याश से अय्याश देशी नरेशों के बड़े से बड़े ज़ुल्म इतने घातक मालूम न होते थे जितने कम्पनी के छोटे से छोटे ज़ुल्म।"*

पुस्तक का सार

इससे अधिक अंगरेज़ विद्वानों की राय इस विषय में देने की ज़रूरत नहीं है। सन् १७५७ से १८५७ तक सौ साल के कम्पनी के शासन में हिन्दोस्तानी सिपाहियों का अपने देश और देशवासियों के ख़िलाफ़ जाँनिसारी के साथ विदेशी अफ़सरों की फ़रमाबरदारी करना, हिन्दोस्तानी नरेशों का अंगरेज़ों के साथ सन्धियों की शर्तों को ईमानदारी से निबाहना, अंगरेज़ों का बार बार जान बूझ कर अपनी सन्धियों और वादों को तोड़ना, देशी रियासतों के यूरोपियन नौकरों का पद पद पर अपने मालिकों के साथ विश्वासघात करना, अंगरेज़ रेज़िडेण्टों का देशी दरबारों में रह कर वहाँ फूट डलवाना, रिशवतें देना, गुप्त साज़िशें करना, हत्याएँ कराना और जाल साज़ियाँ करना, देशी नरेशों का कम्पनी के साथ 'सन्धि' और 'मित्रता' के जाल में एक बार फँस कर उससे बिना अपना मान और सर्वस्व दिए बाहर

* " the Government of the East India Company in India was tainted from the very first with mighty vices, for generation after generation the great aim and object of the servants of the Company, from the high, civil and military functionaries downwards was to squeeze as large as possible a fortune out of the country as quickly as might be, and turn their backs upon it for ever, so soon as that object had been attained, In perfect truth has it been said that the subjugated race found the little finger of the Company thicker than the loins of the worst and most dissolute of their native princes " – Dr Russell

न निकल सकना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत की प्राचीन ग्राम पञ्चायतों, शिक्षा प्रणाली, हज़ारों और लाखों पाठशालाओं, और हज़ारों साल के उन्नत उद्योग धन्धों का नाश कर डालना, और इन सब के नतीजे में भारत का सौ सवा सौ साल के अन्दर *संसार के सब से अधिक प्रबल, उन्नत तथा ख़ुशहाल* देशों की पंक्ति से निकल कर सब से अधिक निर्बल, अवनत और दरिद्र देशों की पंक्ति तक पहुँचा दिया जाना—इस सब की अत्यन्त दुखकर कहानी इस पुस्तक के विविध अध्यायों में बयान की जायगी।

पुराने हमले

अंगरेज़ों से पहले के हमले

भारत में अंगरेज़ी राज के इतिहास को ठीक ठीक समझने के लिए ज़रूरी है कि उससे ठीक पहले की भारत की हालत, यानी मुग़ल साम्राज्य के समय की हालत का पूरा चित्र हमारे सामने हो। किन्तु मुग़ल साम्राज्य के समय की हालत को बयान करने से पहले आदि काल से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत पर जितने और विदेशी हमले समय समय पर हुए हैं उन सब पर भी हम एक सरसरी नज़र डालना ज़रूरी समझते हैं। साथ ही हम यह भी दिखाना चाहेंगे कि इस तरह के हमले यूरोप के विविध देशों पर भी हुए थे या नहीं, और यदि हुए थे तो भारत के मुक़ाबले में यूरोपियन देशों ने उनका कहाँ तक सफलता के साथ सामना किया। हमारे

इस संक्षिप्त बयान से पाठकों को मालूम हो जायगा कि इस तरह के हमले भारत पर अन्य देशों की निस्बत अधिक नहीं हुए और न उन्हें भारत में अधिक सफलता ही प्राप्त हुई। इन हमलों के समय अपनी रक्षा न कर सकने के स्थान पर भारत ने ऐसे अवसरों पर यूरोपियन देशों के मुक़ाबले में कहीं अधिक सफलता के साथ अपनी रक्षा की और अक्सर अपने हमला करने वालों पर भौतिक और नैतिक दोनों तरह से विजय प्राप्त की।

आर्यों का हमला

भारत के ऊपर सब से पहला विदेशी हमला आर्य जाति का हमला बताया जाता है, जिसका समय यूरोपीय विद्वानों के अनुसार ईसा से क़रीब २,५०० साल पहले* था।

समस्त इतिहास लेखक इस बात को स्वीकार करते हैं कि आजकल के भारतवासी, ईरानी और यूरोपनिवासी सब उसी प्राचीन आर्य जाति की सन्तान हैं। कहा जाता है कि आज से चार पाँच हज़ार साल पहले या कुछ ज़्यादा इन आर्य जाति के लोगों ने मध्य एशिया के किसी हिस्से से निकल निकल कर हिन्दोस्तान, ईरान और तमाम यूरोप को विजय और आबाद किया था। इसलिए यदि उस प्राचीन आर्य जाति द्वारा विजय किया जाना किसी देश के लिए भी ज़िल्लत की चीज़ माना जा सकता है तो वह हिन्दोस्तान के लिए केवल उतनी ही ज़िल्लत की चीज़ हो सकता है, जितना ईरान, रूस, जरमनी, फ़्रान्स, इंगलिस्तान, यूनान, रोम इत्यादि के लिए, जिनकी भाषा और जिनकी सभ्यता पर प्राचीन आर्यों की भाषा और सभ्यता की वैसी ही गहरी छाप पड़ी जैसी भारत में। इतना ही नहीं, बल्कि

* *The Cambridge History of India,* vol 1, p 697

इतिहासज्ञ स्वीकार करते हैं कि जिस आर्य जाति के लोग अपने मध्य एशिया के आदि स्थानों से निकल कर अधिकांश यूरोपियन महाद्वीप के ऊपर हज़ारों साल तक अर्धसभ्य अवस्था मे रहते रहे, उसी जाति के लोगों ने भारत मे पहुँच कर, यूरोपियन विद्वानों के अनुसार ही, हज़रत ईसा से कम से कम हज़ारों साल पहले एक विशाल, ऊँची और शानदार सभ्यता की नींव रक्खी। इसकी एक वजह यह भी है कि आर्यों के आने से पहले भी हिन्दोस्तान बिल्कुल असभ्य न था। प्राचीन संस्कृत साहित्य तक में हमें भारत के उन आदिमवासियों की सभ्यता की उच्चता के अनेक सबूत मिलते हैं और इस मे भी सन्देह नही कि कई पहलुओं से उनकी सभ्यता नए आने वाले आर्यों की सभ्यता से उच्चतर थी।

भारत की उत्तर पच्छिमी सीमा

आर्यों के हमले के बाद भारत के ऊपर जो विदेशी हमले गिनाए जाते हैं, उनकी असलीयत को समझने के लिए हमें एक और बात ध्यान में रखनी होगी। मध्य एशिया के दक्खिन मे अफ़गानिस्तान, बलूचिस्तान और उसके आस पास का कुछ प्रदेश ईसा से क़रीब एक हज़ार साल पहले से लेकर औरंज़ेब की मृत्यु के समय तक हिन्दोस्तान ईरान और उसके पच्छिमी देशों के बीच विवाद ग्रस्त भूमि रहा है। भारत के अनेक हिन्दू और मुसलमान सम्राटों ने भारत मे बैठ कर सीसतान, हिरात और अफ़गानिस्तान पर हुकूमत की है। प्राचीन समय के अनेक ईरानी और यूनानी लेखकों ने हिन्दोस्तान की सीमाएँ अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान के पच्छिम में बयान की हैं और उस समस्त पहाड़ी प्रदेश को हिन्दोस्तान ही का अंग माना है। आर्यों के हमले के बाद जो अनेक हमले भारत पर गिने जाते हैं

उनमें से अधिकांश में भारत का अर्थ यही लिया जाता है। इस तरह उन हमला करने वालों को भी, जिन्होंने कभी सिन्धु नदी का किनारा नहीं देखा भारत के हमले करने वालों मे शुमार किया जाता है। मसलन् कहा जाता है कि ईरान के मशहूर बादशाह दारा के विशाल साम्राज्य में, जिसने ईसा से ५२२ साल पहले से लेकर ४८६ साल पहले तक शासन किया, उत्तर भारत का कुछ भाग भी शामिल था। किन्तु दारा के शिलालेखों से साफ़ पता चलता है कि उसका साम्राज्य कभी सिन्धु नदी से आगे नही बढ़ा।

सिकन्दर से पहले के हमले

आर्यों के हमले के बाद से सिकन्दर के हमले के समय तक भारत के ऊपर सिन्धु नदी के इस ओर तक केवल दो हमलों का थोड़ा बहुत विश्वस्त इतिहास मिलता है। इनमे पहला हमला असोरिया की जगत्प्रसिद्ध सम्राज्ञी मलका सेमिरामिस का है, जिसने ईसा से क़रीब आठ सौ साल पहले बलूचिस्तान को पार कर भारत विजय करने का प्रयत्न किया। इस हमले की बाबत यूनानी इतिहास लेखक नियारकस लिखता है कि सेमिरामिस को अपनी सेना के केवल बीस बचे हुए आदमियों सहित सिन्धु नदी से जान बचा कर भागना पड़ा। दूसरा हमला ईरान के प्रसिद्ध विजेता कुरु का था। यह वह कुरु था जिसे अंगरेज़ी मे 'साइरस' लिखा जाता है किन्तु जिसका असली ईरानी नाम कुरु था और जिसकी शुमार एशिया के बड़े से बड़े विजेताओं मे की जाती है। कुरु दारा का पितामह और विशाल ईरानी साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। काबुल से लेकर इराक़, शाम, टरकी, बैबिलोन, मिश्र और कुछ भाग यूनान का भी इस ईरानी विजेता की अधीनता स्वीकार कर चुका था। सेमिरामिस के बाद कुरु ने भारत पर

हमला किया। किन्तु उसे भी केवल सात आदमियों सहित जान बचा कर सिन्धु नदी से पीछे लौट जाना पडा, और अन्त में किसी भारतवासी के वार से ज़ख़्मी होकर ही उसकी मृत्यु हुई।"*

सिकन्दर का हमला

इसके बाद ईसा से ३२६ साल पहले यूनान के जगत प्रसिद्ध विजेता सिकन्दर के भारत पर हमले का समय आता है। पच्छिमी यूरोप से लेकर अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान तक कोई मुल्क इस अलौकिक विजेता की सेना के सामने न ठहर सका। उत्तर-पच्छिम की ओर से आकर सिकन्दर ने अपनी सेना सहित सिन्धु और झेलम नदियों को पार किया। सिकन्दर को पूरी उम्मीद थी कि वह उत्तर भारत के हरे भरे मैदानों को अपने विशाल साम्राज्य में मिला कर भारतीय महाद्वीप को पार कर पूर्वीय सागर तक जा पहुंचेगा। भारत की राजनैतिक हालत भी उस समय सिकन्दर के सौभाग्य से काफ़ी बिगडी हुई थी, सरहद के ऊपर झेलम के उस पार तक्षशिला के राजा और इस पार पञ्जाब के राजा पौरव मे, जिसे यूनानी पोरस कहते थे, बहुत दिनों से दुशमनी चली आती थी। तक्षशिला का राजा अपने प्रतिस्पर्धी पौरव के ख़िलाफ़ सिकन्दर से मिल गया। सिकन्दर ने पौरव से अधीनता स्वीकार कराने के लिए उसके पास दूत भेजे। पौरव ने दूतों को उत्तर दिया कि मैं अपनी सेना सहित युद्ध के मैदान में सिकन्दर और उसकी सेना के साथ बात चीत करूंगा। सिकन्दर की जिस सेना ने झेलम को पार कर पौरव पर हमला किया उसमें तक्षशिला के राजा की भारतीय सेना भी शामिल थी।†

---

* *The Cambridge History of India*, vol 1, pp 330-31

† *The Cambridge History of India*, vol 1, p 361

कुल हमला करने वाली सेना पौरव की सेना से तादाद में कहीं ज़्यादह थी। पौरव के दो बेटे मैदान में काम आए। विजय सिकन्दर की ओर रही। पौरव ज़ख़्मी हो गया और गिरफ़्तार होकर सिकन्दर के सामने लाया गया। यूनानी इतिहास लेखक सब इस बात के साक्षी हैं कि पौरव के सौन्दर्य उसकी वीरता और उसके साहस को देखकर सिकन्दर मुग्ध हो गया। सिकन्दर ने मुक्त कण्ठ से पौरव की तारीफ़ की और उसका सारा राज फिर से उसके हवाले कर दिया।

इस तरह पौरव से सन्धि कर सिकन्दर आगे बढ़ा। भारत की राज-शक्तियों में उस समय मगध का साम्राज्य सबसे मुख्य था। पञ्जाब से चल कर सिकन्दर ने मगध पर चढ़ाई करने का इरादा किया। किन्तु सिकन्दर की सेना ने, जिसे पौरव के साथ के संग्राम में भारतीय वीरता का काफ़ी परिचय मिल चुका था, व्यास नदी को पार करने से साफ़ इनकार कर दिया। यूनानी इतिहास लेखक लिखते हैं कि सिकन्दर ने अपनी सेना का हौसला बढ़ाने की भरसक कोशिश की, किन्तु उसकी एक न चल सकी। मजबूर होकर भारत को विजय करने का स्वप्न पूरा किए बिना ही उस अलौकिक जगत् विजेता को भी व्यास नदी के उस पार से पीछे लौट जाना पड़ा।

यूनानी इतिहास लेखक मेगेस्थनीज़ साफ़ लिखता है कि सिकन्दर के आने से पहले तक भारतवासियों पर कभी भी कोई विदेशी हमला करने वाला विजय प्राप्त न कर पाया था।*

अन्य यूनानी हमले

सिकन्दर के समय से लेकर मुसलमानों के हमले के समय तक भारत

---

* *The Cambridge History of India*, p 331

पर और भी कई हमले हुए, जिनमें कुछ असफल रहे और कुछ को सफलता मिली। इन सफल हमलों की एक विशेषता यह थी कि जो लोग भारत के किसी हिस्से को किसी तरह विजय कर पाते थे वे अपने पुराने देशों से हर तरह का नाता तोड़ कर भारत ही में बस जाते थे, भारत ही को अपना घर बना लेते थे, भारत के हित और भारत की उन्नति में अपना हित और अपनी उन्नति समझने लगते थे और थोड़े ही दिनों के अन्दर शेष भारत-वासियों में मिल जुल कर उनके साथ पूरी तरह एक हो जाते थे।

सिकन्दर के बाद सबसे पहले दो हमले, जो असफल रहे, यूनानी सेनापतियों सेल्यूकस और अन्तिओकस के हमले थे।

सिकन्दर के क़रीब २० साल बाद सिकन्दर के सेनापति और उत्तरा-धिकारी सेल्यूकस पहले ने भारत पर हमला किया। उस समय तक मौर्य कुल के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त का राज समस्त उत्तरी भारत में क़ायम हो चुका था। लिखा है कि चन्द्रगुप्त की लड़कपन में सिकन्दर से भेंट हो चुकी थी। सेल्यूकस के मुक़ाबले के लिए चन्द्रगुप्त ने पाँच लाख सेना और नौ हज़ार हाथी मैदान में खड़े किए। सेल्यूकस घबरा गया और दोनों में सन्धि होगई। सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त को सिन्धु नदी से पूरब के समस्त देश का अधिराज स्वीकार किया, और इसके अलावा काबुल, क़न्धार, हिरात और बलूचिस्तान भी उसी के हवाले कर दिए। इस तरह अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान दोनों देश जिन पर २० साल पहले सिकन्दर ने अपने नायब शासक नियुक्त कर दिए थे, अब चन्द्रगुप्त के भारतीय साम्राज्य में शामिल होगए। यूनानियों की किताबों से यह भी पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस की लड़की के साथ शादी कर ली। इस सब के बदले में चन्द्रगुप्त

ने पाँच सौ हाथी सेल्यूकस की भेंट किए और सेल्यूकस ने अफ़ग़ानिस्तान की सरहद को पार कर अपने देश का रास्ता लिया।

चन्द्रगुप्त के पोते जगत्प्रसिद्ध प्रियदर्शी सम्राट अशोक की मृत्यु के बाद मौर्यकुल की सत्ता फिर कुछ निर्बल हुई। फिर एक यूनानी सेनापति अन्ति ओकस ने हिन्दुकुश पर्वत को पार कर किसी छोटे से सरहदी भारतीय नरेश के इलाक़े में प्रवेश किया। किन्तु वहाँ सिवाय अपनी फ़ौज के लिए रसद और कुछ हाथियों के अन्ति ओकस को और कुछ न मिल सका और इतने ही से सन्तुष्ट होकर अन्ति ओकस को भी सिन्धु नदी के उस पार से ही पीछे लौट जाना पड़ा।

अन्ति ओकस के बाद भारत पर कुछ इस तरह के हमलों का ज़िक्र किया जाता है जिन्हें सचमुच सफल हमले कहा जा सकता है। ये हमले दो तरह के थे— (१) बख़्तियारी यूनानियों के हमले और (२) शक (सीदियन) हूण इत्यादि मध्य एशिया की अर्ध सभ्य क़ौमों के हमले।

यूनानियों का भारत में बस जाना

सिकन्दर के साथियों में से कुछ पच्छिम एशिया में बस गए थे। शुरू मे सिकन्दर ने इन्हें अपनी ओर से कुछ एशियाई प्रान्तों के शासक नियुक्त कर दिया था। सिकन्दर की मृत्यु के कुछ समय बाद इन लोगों ने इराक़ में और उसके आस पास एक सुन्दर सल्तनत क़ायम कर ली, जो बख़्तियारी सल्तनत के नाम से मशहूर हुई। इन बख़्तियारियों ने सेल्यूकस की पराजय को धोने के लिए सबसे पहले हिरात, अफ़ग़ानिस्तान और बलूचिस्तान को फिर से विजय किया। इसके बाद सिन्धु नदी के इस पार इन लोगों के हमले शुरू हुए। ये हमले पञ्जाब, सिन्ध और सौराष्ट्र (काठियावाड़) तक

पहुँचे ।※ इन हमलों के बाद मालूम होता है कि अनेक यूनानी भारत ही में बस गए। शाकल (सियाल कोट) का राजा मिलिन्द, जिसका बौद्ध ग्रन्थ 'मिलिन्द पन्ह' में ज़िक्र आता है, इन्हीं यूनानियों में से था।

जो यूनानी भारत में बस गए थे उनका फिर किसी तरह का सम्बन्ध यूनान या इराक़ इत्यादि से न रह गया। वे भारतवासियों के साथ मिल जुल कर एक हो गए। उन्होंने भारत की भाषा, भारत के साहित्य, भारत के धर्म, और भारत की सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य नागसेन ने मिलिन्द को बौद्ध धर्म की दीक्षा दी, और मिलिन्द भारत के बड़े से बड़े धर्मनिष्ठ, न्यायप्रिय और प्रजापालक नरेशों में गिना जाता है, जिसकी प्रजा अत्यन्त समृद्ध और ख़ुशहाल थी।

इसी तरह की दूसरी मिसाल यूनानी राजदूत हीलियोदोरस की है, जिसने तक्षशिला से विदिशा (भीलसा) पहुंच कर वैष्णव मत स्वीकार किया और वहीं पर श्रीकृष्ण की स्मृति में एक स्तम्भ खड़ा करवाया।† इस स्तम्भ पर खुदे हुए लेख में हीलियोदोरस ने अपने को हीलियोदोर भागवत लिखा है। हीलियोदोर का अर्थ सूर्य का उपासक है, और भागवत का अर्थ भगवत का अनुयायी है।

ये यूनानी जिस प्राचीन यूनानी चित्रकारी को अपने साथ भारत लाए

※ कालिदास के नाटक 'मालविकाग्नि मित्र' में एक संग्राम का ज़िक्र आता है जिसमें सिन्धु नदी के तट पर राजा पुष्यमित्र के पोते वसुमित्र ने यवन सेना को परास्त कर पीछे हटाया। उस समय के संस्कृत ग्रन्थों में 'यवन' शब्द से इन्हीं यूनानियों का मतलब है। Ibid, p. 512.

† *The Cambridge History of India*, p 558

थे उसे उन्होंने भारतीय बौद्ध चित्रकारी की सहायता से ख़ासी तरक्क़ी दी। इसी तरह बौद्ध चित्रकारी ने भी यूनानी चित्रकारी से उस समय कई नई बातें सीखीं। ज्योतिष, विज्ञान, दर्शन और अन्य कलाओं में भी यूनानियों ने भारतवासियों से और भारतवासियों ने यूनानियों से बहुत कुछ शिक्षा ली। दोनों में खुले ब्याह शादियां होने लगीं। यहाँ तक कि उस समय के बसे हुए 'यवन' (यूनानी) आज भारतवासियों में इस तरह घुल मिल कर एक हो गए हैं कि उनका कहीं पता तक नहीं रहा।

शक और हुण कौमों के हमले

इन यूनानियों के बाद जैसा हम अभी ऊपर कह चुके हैं, शक, पहलव और हुण क़ौमों के हमलों का समय आता है। ये हमले भी बख़्तियारी यूनानियों के हमलों की तरह एक दरजे तक भारत पर सफल हमले कहे जा सकते हैं, और ये क़ौमें भी ठीक उसी तरह भारत में आकर बस गईं जिस तरह कि यवन बस गए थे।

सिन्धु नदी के पश्चिम में गन्धार और पुष्कलावती और पूरब में तक्षशिला हज़रत ईसा के जन्म की सदी में शक (सीदियन) जाति के शासन में आ गए। पच्छिम पञ्जाब और सिन्ध के कुछ हिस्से पर कुछ दिनों के लिए शक जाति की हुकूमत क़ायम हो गई। उसी सदी में पहलव (पार्थियन) क़ौम के लोगों ने भी सिन्ध को विजय किया। इसके बाद इन लोगों ने दक्खिन की ओर बढना शुरू किया। किन्तु आन्ध्र कुल के सम्राटों ने कई संग्रामों में इन पर विजय प्राप्त कर मध्य और दक्खिन भारत को उनके हमलों से बचाए रक्खा। इसीलिए शक जाति के लोगों का शासन विन्ध्या तक ही रहा।

इन क़ौमों का इस देश में बस जाना

यह बात इतिहास से ज़ाहिर है कि इस बीच जिन शक और पहलव जातियों ने उत्तर भारत के कुछ हिस्सों पर शासन किया वे इस देश में आकर पूरी तरह बस गए और विदेशी रहने के स्थान पर इस देश की अधिक उच्चतर सभ्यता से प्रभावित होकर हर माइनों में भारतवासी बन गए। उन्होंने भारतीय रहन सहन, भारतीय ढङ्ग के नाम, भारतीय धर्म, भारतीय भाषा, और भारतीय सभ्यता को पूरी तरह अपना लिया। मसलन शक जाति का सबसे मशहूर सम्राट, जिसने भारत में कुशान साम्राज्य की नीव रक्खी, और जिसने सन् ७८ ईसवी के क़रीब अफ़ग़ानिस्तान और सरहदी प्रदेश पर शासन किया, सुप्रसिद्ध सम्राट कनिष्क था। कनिष्क ने बौद्धमत स्वीकार किया। उसके सिंहासन पर बैठने के समय से ही, उसी की यादगार मे शाका सम्वत् का प्रारम्भ हुआ, जिसका अभी तक भारत में उपयोग किया जाता है। सम्राट कनिष्क का राज दक्खिन में विन्ध्या तक और उत्तर में मध्य एशिया के अलताई पहाड़ तक फैला हुआ बताया जाता है। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। बौद्ध धर्म के प्रचार में उसने बहुत बडा भाग लिया। अन्तिम और सबसे बड़ी बौद्ध 'सङ्गति' यानी महासभा का वह संयोजक था। बौद्धमत की महायान सम्प्रदाय की उसने नींव रक्खी। संस्कृत के प्रचार में उसने बहुत बडा हिस्सा लिया। कनिष्क ही के प्रचारकों ने अधिकतर चीन, तातार, तिब्बत और उत्तर एशिया मे जाकर बौद्धमत का प्रचार किया।

शक जाति के लोग उस समय अपने को हिन्दू क्षत्री कहते थे और क्षत्री ही माने जाते थे। उनके नाम ज़्यादातर 'वर्मन्' या 'दत्त' से समाप्त होते

थे। धीरे धीरे उनका अस्तित्व भी 'यवनों' के अस्तित्व की तरह शेष भारत-वासियों के अस्तित्व में मिल कर एक हो गया।

शक और पह्लव जातियों के हमलों के बाद मुसलमानों के हमले से पहले भारत पर अब केवल एक हमला 'हुण' जाति का और बाक़ी रह जाता है। यह हमला वास्तव में प्राचीन भारत पर सब से वहशियाना हमला था। एशिया या यूरोप का क़रीब क़रीब कोई भी मुल्क इनके भयङ्कर हमलों से नहीं बचा। इसी हुण जाति के हमलों से अपनी रक्षा करने के लिये चीन के सम्राटों ने दो हज़ार मील लम्बी और अलौकिक चौड़ाई और ऊँचाई की चीन की प्रसिद्ध "बड़ी दीवार" को तामीर कराया था। इन्हीं हुण जाति के हमलों ने ईसा से क़रीब डेढ़ दो सौ साल पहले बख़्तियारी साम्राज्य को तहस नहस कर दिया। रूस और यूरोप को भी इन्हीं हमलों ने बरबाद किया और क़रीब एक हज़ार साल तक वीरान बनाए रक्खा। भारत का भी इन हमलों से बच सकना नामुमकिन था। ईसा के जन्म से पहले इराक़ से लेकर भारत की उत्तर पच्छिमी सीमा तक सारा मुल्क इसी जाति के अधीन था।

ईसा की पाँचवीं सदी के मध्य मे इस हुण जाति के लोगों ने भारत पर हमला किया। एक बार पञ्जाब, मध्य भारत और मालवा तक उनका शासन जम गया। हुण सरदार तुरामान ने भारत के सम्राट बुद्धगुप्त को परास्त कर दिया। किन्तु उसके बाद ही सम्राट यशोधर्मदेव ने, जिसकी राजधानी उज्जयनी थी, और जिसका साम्राज्य हिमालय से पूर्वीय घाट तक और ब्रह्मपुत्र से अरब समुद्र तक सारे भारत पर फैला हुआ था, सन् ५७३ ई० में तुरामान के पुत्र मिहिरकुल को मुलतान के पास कोरूर नामक स्थान

पर परास्त कर भारत से हुण जाति की हुकूमत को मिटा दिया। इसके बाद राज्यवर्धन ने शेष उत्तर भारत से हुण जाति के रहे सहे प्रभाव का भी अन्त कर दिया।

अब हम उन सब हमलों को एक एक कर बयान कर चुके हैं जो मुसलमानों के हमले से पहले भारत पर हुए थे। हमने यह सारा बयान यूरोपियन इतिहास लेखकों की किताबों से ही लिया है। इससे पूरी तरह अनुमान किया जा सकता है कि भारत पर उस समय तक कितने और किस तरह के हमले हुए। भारत ने कहाँ तक कामयाबी के साथ उनका मुक़ाबला किया, उन हमलों से भारत को कहां तक हानि या लाभ हुआ, और इन सब हमलों में और भारत पर अंगरेज़ों के हमले में कितना ज़बरदस्त अन्तर था।

अन्य देशों पर हमले

सच यह है कि कम या ज़्यादा बाहर से हमलों का होना हर मुल्क के इतिहास में एक मामूली बात है। फिर भी भारत पर कभी भी इतने ज़्यादा हमले नहीं हो पाए जितने बाक़ी संसार के ज़्यादातर देशों और ख़ास कर यूरोप के क़रीब क़रीब हर देश पर। इसके सबूत मे अब हम यूरोप के विविध देशों पर बाहर के हमलों और उनके नतीजों का सार वृत्तान्त यूरोपियन लेखकों ही के आधार पर देते हैं, जिससे यह भी मालूम हो जायगा कि भारत में कभी इस तरह के हमलों की वजह से उस बरबादी का हज़ारवां हिस्सा भी देखने में नहीं आया, जो बरबादी कि इस तरह के हमलों के सबब से तमाम यूरोप में एक हज़ार साल से ऊपर तक फैली रही।

यूरोप पर एशियाई जातियों के हमले

अनेक यूरोपियन इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि यूरोप के ऊपर

एशियाई क़ौमों के हमले ईसा से हज़ारों साल पहले से जारी थे। इनमें आर्य जाति के हमले का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। इसके बाद ईसा से ८०० साल पहले यूरोप पर अन्य एशियाई जातियों के हमलों का भी यूरोपियन इतिहास में ज़िक्र आता है। वास्तव में इस तरह के हमले समय समय पर बराबर होते रहे। किन्तु इस स्थान पर उन सब हमलों को छोड़ कर केवल हज़रत ईसा के जन्म के बाद के हमलों को ही थोड़े से शब्दों में बयान कर देना चाहते हैं।

ईसा की दूसरी सदी से लेकर पूर्वीय एशिया और मध्य एशिया की अनेक क़ौमें जैसे हुण, अवार, बलगर, ख़ज़ार, पञ्जेनाक, मगियार, मङ्गोल इत्यादि बराबर अपनी एशियाई आबादियों मे निकल निकल कर यूरोप पर हमला करती रही हैं। इस तरह के हमले एक हज़ार साल तक, रूस से लेकर जरमनी, इतालिया, इङ्गलिस्तान और स्पेन तक बराबर होते रहे। इनमें शुरू की हमला करने वाली क़ौमों ने पूर्वी यूरोप और मध्य यूरोप में जाकर अपनी बस्तियाँ आबाद कीं। बाद के हमला करने वालों ने इन पहले आए हुए लोगों को उत्तर और पच्छिम की ओर भगा कर ख़ुद उनकी जगह ले ली।

ये हमले तमाम यूरोप के ऊपर इतने लगातार और इतने अधिक देशों पर हुए कि उन्हें एक दूसरे के बाद तरतीबवार बयान करना हमारे लिए अनावश्यक है। इसलिए हम इन सब क़रीब एक हज़ार साल के हमलों का सार यूरोपियन इतिहास लेखकों ही के शब्दों में दे देना चाहते हैं।

ईसा की पाँचवीं सदी में क़रीब एक चौथाई यूरोप, जिसमें यूनान, बलकान, इतालिया, स्पेन और इङ्गलिस्तान—सब शामिल थे, रोमन लोगों

के अधीन था। इसके बाद एशिया की इन्हीं हमलावर क़ौमों ने यूरोप पहुँच कर सारे रोमन साम्राज्य को तहस नहस कर डाला।

इङ्गलिस्तान के ऊपर चार सौ साल तक रोमन लोगों की हुकूमत रही। उसके बाद ईसा की पाँचवीं सदी में इन्हीं एशियाई क़ौमों में से एक सैक्सन ने, जिसका उत्पत्ति स्थान कहीं पर मध्य एशिया में समझा जाता है, रोमन लोगों को निकाल कर बाहर किया, और इङ्गलिस्तान के असली बाशिन्दे ब्रिटनों को अपने अधीन कर लिया। आज कल की अंगरेज़ कौम जो अपने देश के अन्दर हर तरह आज़ाद है, इन्हीं ब्रिटनों, सैक्सनों और इसी तरह की अनेक कौमों से मिल कर बनी हुई है।

इन हमलों से यूरोप की बरबादी

जब कि विशाल और बलवान रोमन साम्राज्य भी इन लगातार हमलों का मुक़ाबला न कर सका, तो फिर बाकी यूरोप की हालत का केवल अनुमान कर लेना ही काफ़ी है। ईसा की पाँचवीं सदी में हूण जाति ने, जिसका ज़िक्र भारत के सम्बन्ध में ऊपर आ जा चुका है, कास्पियन समुद्र और डेन्यूब नदी के बीच अपना एक स्वतन्त्र साम्राज्य कायम कर लिया था और रोम के निर्बल सम्राट तक इन हूण सम्राटों को ख़िराज देते थे। इसी तरह का इन लोगों का एक दूसरा साम्राज्य ईसा की पाँचवीं और छठी सदियों में पच्छिमी यूरोप में भी क़ायम हो गया। इन हमलों के सबब से यूरोपियन समाज की जो हालत हुई उसे बयान करते हुए एक फ़्रांसीसी इतिहास लेखक बुइसोनेद लिखता है :—

"पुराने रोमन समाज की सबसे ऊपर की और बीच श्रेणियों के लोग उस तूफान में मिट गए, या हमला करने वाले असभ्य लोगों

ने उन्हें लूट लिया। उनमें से जो बचे वे विजेताओं में मिल कर एक हो गए××× ब्रिटेन में एंग्लो सेक्सन जाति ने ब्रिटेन जाति को बिलकुल बरबाद कर दिया××× इन ज़ालिम हमला करने वालों ने न केवल बड़े बड़े रोमन ज़मींदारों की ज़मीनें छीन कर उन पर खुद अपने कुटुम्बों सहित रहना ही शुरू कर दिया, बल्कि उन्होंने उन तमाम ज़मींदारों को मार डाला, गिरजों को बरबाद कर दिया××× ब्रिटेन (इंगलिस्तान) में जो ब्रिटेन जाति के लोग बचे उन्हें उन्होंने ग़ुलाम बना लिया×× ×चारों ओर इतना दुःख फैल गया कि अनेक निराश लोगों को केवल ग़ुलामी में ही एक तरह का आश्रय मिला। डेन्यूब और राइन के ज़िलों में गॉल (फ्रान्स) मे, बेल्जियम में और इटालिया में रोमन आबादी के जिन लोगों की इन विजेताओं ने जान बख़्श दी, उन्हे उन्होंने अपना ग़ुलाम बना कर रखा।××× ब्रिटेन में इन लोगों ने इस तरह के ज़ुल्म किए कि वहाँ के पुराने उच्च घरानों के लोग मौत से बचने के लिए अरमोरिका (पश्चिमोत्तर फ्रान्स) चले गए और ब्रिटन लोगों की बहुत बड़ी तादाद को क़त्ल कर डाला गया।××× एक्वीटन में और स्पेन में ईसाई धर्मपरायण लोगों को और पादरियों को पीटा गया, उन्हें ज़ञ्जीरों से बाँध दिया गया और ज़िन्दा जला दिया गया। हर जगह, जब कि शहरों और क़स्बों को लूटा जाता था, स्त्रियों को बड़ी बेइज़्ज़ती सहनी पड़ती थी। रोम विजय करने के बाद ऐलेरिक के अधीन विसीगॉथ लोगों ने दरख़्तों के साए में लेट

कर वहाँ की राजसभा के सदस्यों (सेनेटर्स) के बेटों और बेटियों को, जिन्हें उन्होंने अपने जनान खानों में क़ैद कर लिया था, इस बात के लिए मजबूर किया कि वे सोने के प्यालों में शराब भर भर कर उन्हें पिलाएँ। हर हमले के बाद हमला करने वालों की स्त्रियों की तादाद बढ़ जाती थी। × × × मकदूनियां में, थिसेली में, यूनान में, इलीरिया में, एपाइरस और डेन्यूब के प्रान्तों में हमला करने वाले तूरानियों, जरमनों और स्लैब लोगों ने पुरुषों को क़त्ल कर डाला और स्त्रियों और बच्चों को गिरफ़्तार कर लिया ! × × × एक्वीटेन का पादरी प्रॉसपर अपनी एक कविता में लिखता है कि—'ईश्वर के मन्दिर जला डाले गए और मठ लूट लिए गए ! यदि गॉल (फ्रान्स) की भूमि पर से समुद्र की लहरें फिर जातीं तो उनसे हमें इतना अधिक नुक़सान न होता !' × × × हूण जाति के लोगों ने सब चीज़ों का नाश कर डाला और जहाँ से निकले, मुल्क को वीरान बना दिया। × × × इतिहास लेखक इदेसियस लिखता है कि पाँचवी सदी में स्पेन का 'केवल नाम' बाक़ी रह गया था। पूरब में और पच्छिम में दोनों जगह बेशुमार खुशहाल नगर मिट गए और फिर कभी न उभर सके। अकेले हूण जाति ने पूरब में सत्तर नगरों को बरबाद कर दिया × × × ब्रिटेन में लन्दीनियम (लन्दन), इबोरेकम (यार्क), कैमेलोडूनम (कालचेस्टर), डोरोवरनम (कैण्टरबरी), वेण्टाइसेनोरम (नारविच), एक्वासालिस (बाथ) के खुशहाल छोटे छोटे शहर जिनकी रोमन लोगों ने बुनियाद

रक्खी थी, खण्डहर होकर ढेर होगए। × × × पोप ग्रिगरी पहला चिल्लाने लगा, 'मालूम होता है कि दुनियां का अन्त होने वाला है। × × × पैनोनिया, नारिकम, रेटिया, हैलवेशिया (स्वीज़रलैण्ड), गॉल (फ़्रान्स), बेलजियम, ब्रिटेन, स्पेन और उत्तर और मध्य इतालिया को ख़ास तौर पर तीव्र कष्ट भोगने पड़े, और बलकान प्रायद्वीप को शायद इनसे भी अधिक कष्ट भोगने पड़े। उस समय के इतिहास लेखक सब एक मत से बयान करते हैं कि पूरब (यूनान इत्यादि) में और पच्छिम (इतालिया आदि) में दुनियां पर एक समान वीरानी छा रही थी और इतिहास लेखकों के अपने चित्तों पर निर्जनता और वीरानी का असर रह जाता था। कोई कोई यह भी मानने लगे थे कि ईसाइयों के धर्म ग्रन्थों में सृष्टि के जिस अन्त (क़यामत) की पेशीनगोई की गई है उसका समय आ गया है।"*

यह कहानी अधिकांश यूरोप के ऊपर ईसा की पाँचवीं, छठी और सातवीं सदी के हमलों की है। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी के इसी के हमलों की बाबत इतिहास लेखक बुइसोनेद लिखता है—

"नवीं और दसवीं सदियों में नए हमलों ने पच्छिम यूरोप को बरबादी से ढक लिया। स्केनडिनेविया के डाकुओं ने, जिन्हें 'नॉर्थमैन' कहते थे' सन् ८३० से ९११ तक, क़रीब एक सदी तक, वही जरमनों के से दुष्ट पराक्रम जारी रक्खे, उन्होंने जनता

* *Life and Work in Medieval Europe*, by P. Boissonade, book i chapter, i, ii

का संहार किया, लोगों को ग़ुलाम बना लिया, नगरों को जला डाला, और ईसाई जरमनी, लो-कन्ट्रीज़ (हॉलेण्ड और बेल्जियम) पच्छिमी फ्रांस, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड और इङ्गलिस्तान को लूट लिया या बरबाद कर दिया। पूरबी यूरोप में हुण और अवार जातियों के भाईबन्द मगियार जाति ने डेन्यूब के मैदानों में, और मध्य यूरोप, उत्तर इतालिया और पूरबी फ़्रान्स में बरबादी फैला दी। दक्खिन यूरोप में बर्बर और अरब जाति के लुटेरों, सैरेसेन लोगों ने इतालिया के समुद्रतट और पास के टापुओं में, प्रावेन्स में और डोफ़ाइन (दक्खिन पूरबी फ्रांस) में लूट मार जारी रक्खी।"*

इन तमाम क़रीब एक हज़ार साल के हमलों के नतीजों को बयान करते हुए बुइसोनेद अन्त में लिखता है—

"असभ्य जातियों के हमलों ने एक सच्ची आफ़त बरपा कर दी। दो सौ साल के अन्दर ही ईसाई रोमन साम्राज्य का वह व्यवस्थित भवन, जिसकी छाया के नीचे मज़दूरों और कारीगरों ने उन्नति की थी और वे मालामाल हो गए थे, पच्छिमी यूरोप में नींव से लेकर शिखर तक उलट गया और पूरबी यूरोप में भी उसकी बुनियादें बेहद खोखली हो गईं। हर तरफ़ खण्डहर दिखाई देते थे, व्यवस्था की जगह अव्यवस्था और अराजकता का राज था, और क़ानून की जगह जिसकी लाठी उसकी भैंस का

* *Life and Work in Medieval Europe*, by P Boissonade, book 1, chapter x p 115

दौर था, प्रत्येक रूप में धन की उत्पत्ति रुक गई थी, जो ख़ज़ाने पिछली नसलों ने जमा कर रक्खे थे वे तितर बितर हो गए थे और आर्थिक और सामाजिक उन्नति बन्द हो गई थी।"*

हमने यूरोपियन लेखकों ही के शब्दों में यूरोप के विविध देशों के ऊपर एशियाई जातियों के इन हमलों के नतीजों को थोड़े से में बयान कर दिया है। इस बयान को पढ़कर आसानी से देखा जा सकता है कि भारत या यूरोप दोनों में से किसकी सरहदें अधिक कमज़ोर रही हैं, या दोनों में से किसने बाहर के हमलों से अधिक सफलता के साथ अपनी सरहद की रक्षा की है। इसके बाद भारत और यूरोप दोनों के ऊपर मुसलमानों के हमलों को बयान करना बाक़ी है।

इसलाम और भारत

भारत पर मुसलमानों के हमले

अब हम भारत के ऊपर मुसलमानों के हमलों की ओर आते हैं।

हमसे कहा जाता है कि भारत के ऊपर मुसलमानों का हमला अन्तिम और सबसे अधिक नाशकर हमला था, जिसने देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक जीवन का अनन्त काल के लिए नाश कर दिया और सारे देश को दो अलग अलग एक दूसरे के विरुद्ध दलों में बाँट

* *Life and Work in Medieval Europe*, by P Boissonade, conclusion, p 233

दिया। इस देश के ऊपर मुसलमानों के हमले को देश की घोरतम आपत्ति बताया जाता है, मुसलमानों की इस देश पर हुकूमत को देशवासियों की निर्बलता का सबूत बताया जाता है, और इसी आधार पर यह साबित करने की कोशिश की जाती है कि अंगरेज़ों ने इस देश में आकर उस घोरतम आपत्ति के बुरे नतीजों से भारतवासियों की रक्षा की।

निस्सन्देह कोई भी विदेशी हमला किसी भी देश के लिए बड़ाई की बात नहीं मानी जा सकती। फिर भी जिस तरह इससे पहले के हमलों की बाबत में, उसी तरह इस हमले की बाबत हमें यह देखना होगा कि मुसलमानों का दूसरे देशों पर हमला भारत ही की एक विशेषता थी या संसार के अन्य देशों को भी इस हमले का सामना करना पड़ा। हमें यह भी देखना होगा कि मुसलमानों का हमला पहले भारत पर हुआ या पहले किसी दूसरे देश पर, दूसरे देशों के मुक़ाबले में भारत ने इस हमले का कहाँ तक सफलता के साथ सामना किया, और मुसलमानों के हमले के आख़िरी नतीजे भारत के लिए कहाँ तक हितकर रहे या अहितकर।

मोहम्मद साहब

मोहम्मद साहब का जन्म सन् ५६९ ईसवी में हुआ था। सन् ६०९ ईसवी में उन्होंने अपने नए मज़हब का प्रचार शुरू किया, जिसका मुख्य रूप था—अरब के सैकड़ों क़बीलों और घरानों के अलग अलग हज़ारों देवी देवताओं और उनकी मूर्तियों का अन्त कर उनकी जगह मनुष्य मात्र के लिए एक निराकार अल्लाह की पूजा सिखाना, अलग अलग क़बीलों को तोड़ कर अरब निवासियों को एक संयुक्त क़ौम बनाना, अरबों की असंख्य धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों और हानिकर रूढ़ियों को तोड़ कर उनके

सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन को पवित्र और उच्च करना, और इन सब से बढ़ कर मनुष्य मात्र की समता और भ्रातृत्व का उपदेश देना। इसलाम के गौण, विवादास्पद, या अहितकर पहलू से इस स्थान पर हमें कोई सम्बन्ध नहीं है। वास्तव में मोहम्मद साहब के उपदेश धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक तीनों क्षेत्रों में एक सा प्रभाव रखते थे। इन उपदेशों ने अरबों के अन्दर एक नई रूह फूँक दी। वे धार्मिक और राजनैतिक दिग्विजय के लिए अपने देश से निकल पड़े और मोहम्मद साहब की मृत्यु के क़रीब सौ साल के अन्दर ही उन्होंने सभ्य संसार के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना प्रभुत्व क़ायम कर लिया।

मुसलमानों की हुकूमत

सन् ६२६ ईसवी में मक्का नगर ने मोहम्मद साहब की अधीनता स्वीकार की। सन् ६२६ से ६३१ तक दो साल के अन्दर तमाम अरब मोहम्मद साहब के अधीन हो गया। ६३२ में मोहम्मद साहब की मृत्यु हुई। सन् ६३६ में इराक़ (मैसोपोटेमिया) और शाम (सीरिया) पर अरबों ने विजय प्राप्त की। सन् ६३७ में उन्होंने बैतुलमुक़द्दस (जेरूसेलम) पर क़ब्ज़ा किया। सन् ६३७ से ६५१ तक समस्त ईरान अरबों के शासन में आ गया। सन् ७०१ से ७१५ तक मुसलमानों ने पूरब में चीन की सरहद तक धावा किया और समस्त तातार और तुर्किस्तान को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

इसके साथ ही साथ इस साहसी जाति की नज़र पच्छिम की ओर गई। सन् ६३८ से ६४१ तक समस्त मिश्र (इजिप्ट) अरबों के शासन में आ गया। ६४७ से ७०६ तक कारथेज और शेष समस्त उत्तर अफ़रीका पर अरबों का साम्राज्य क़ायम हो गया। यूरोप का विशाल रोमन साम्राज्य

भी इन लोगों के हमलों से न बच सका। यहाँ तक कि सन् ७०० ईसवी से ७१३ ईसवी तक स्पेन अरबों की हुकूमत में आ गया।

यह सब इसलाम की पहली सदी की विजयों का इतिहास है। किन्तु इसके बाद भी अरबों और दूसरी मुसलमान क़ौमों की फ़तूहात जारी रहीं। धीरे धीरे समस्त रूस, यूनान, बलक़ान, पोलैण्ड, दक्खिन इतालिया, सिसली इत्यादि, आधे यूरोप पर मुसलमानों की हुकूमत क़ायम होगई और कई सौ साल तक रही।

सन् ६३६ ई० की एक घटना

भारत में सब से पहले सन् ६३६ ईसवी में ख़लीफ़ा उमर के ज़माने में आजकल के बम्बई टापू के पास ताना नामक स्थान पर पहली बार मुसलमानों की कुछ जल सेना दिखाई दी। यह सेना बहरायन (इराक़) के मुसलमान गवरनर सक़ैफ़ी की आज्ञा से भेजी गई थी। ख़लीफ़ा उमर की इसमें इजाज़त न ली गई थी। लिखा है कि जब ख़लीफ़ा उमर को इस बात का पता लगा, वह बहरायन के गवरनर पर नाराज़ हुआ। जल-सेना बिना किसी तरह की भी लड़ाई इत्यादि के वापस बुला ली गई, और ख़लीफ़ा ने यह हुकुम दे दिया कि यदि फिर हिन्दोस्तान पर चढ़ाई की जायगी तो चढ़ाई करने वालों को कड़ी सज़ाएँ दी जायँगी।

इस छोटी सी घटना से मालूम होता है कि उस समय के अरब मुसलमानों और भारतवासियों के बीच किस तरह के प्रेम और परस्पर आदर का सम्बन्ध क़ायम था। हम अरबों और भारतवासियों के इस शुरू के सम्बन्ध को आगे चल कर और अधिक विस्तार के साथ बयान करेंगे। किन्तु इससे पहले यहाँ पर हम इस देश के ऊपर मुसलमानों के पहले

बाज़ाब्ता हमले, उसके कारणों और उसके नतीजों को बयान कर देना चाहते हैं।

भारत पर पहला हमला

ईसा की आठवीं सदी के शुरू में कुछ अरब सौदागरों की सिंहलद्वीप (लंका) में मृत्यु हुई। ये अरब सौदागर इराक़ के रहने वाले थे। सिंहलद्वीप के राजा ने इन अरबों की कुछ अनाथ लड़कियों को एक जहाज़ में बैठा कर इराक़ के मुसलमान गवरनर हज्जाज के पास भेजा। मार्ग में कच्छ के कुछ डाकुओं ने, जिन्हें बावरिज कहते थे, जहाज़ पर हमला करके अरब लड़कियों को छीन लिया। हज्जाज ने काठियावाड के हिन्दू राजा दाहिर से लड़कियाँ तलब कीं। दाहिर हज्जाज की माँग पूरी न कर सका। इस पर हज्जाज ने बलूचिस्तान के रास्ते ख़ुश्की से मोहम्मद बिन क़ासिम के नेतृत्व मे एक सेना सन् ७१२ ईसवी के क़रीब भारत पर हमला करने के लिए भेजी।* यही भारत के ऊपर मुसलमानों का सब से पहला हमला था। भारत की राजनैतिक हालत उस समय कुछ निर्बल थी जिसका अधिक हाल हम आगे चल कर देंगे। मोहम्मद बिन क़ासिम ने सिन्ध और मुलतान को विजय करके उन पर अपनी हुकूमत क़ायम कर ली।

सिन्ध पर मुसलिम हुकूमत

इस हमले के सम्बन्ध मे हमे चार बातें ध्यान मे रखनी चाहिएँ :—

(१) यह कि भारत पर मुसलमानों का पहला हमला उस समय हुआ जब कि पूरब में तातार तक और पच्छिम मे स्पेन तक मुसलमानों की हुकूमत क़ायम हो चुकी थी।

* Elliot's *History of India*, vol 1, p 118

(२) यह कि इतिहास लेखक विल्कस के अनुसार इराक़ का गवरनर हज्जाज अपने देश में तेज़ मिज़ाज मशहूर था और इराक़ के अनेक मुसलमानों ने उसकी सख़्तियों से भाग कर भारत के दक्खिन में कोकण और रासकुमारी आदि स्थानों में आश्रय लिया था।

(३) यह कि इतिहास से पता चलता है कि मोहम्मद बिन क़ासिम सिन्ध के अन्दर अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ एक समान निष्पक्ष व्यवहार करता था।

सिन्ध विजय के बाद उसने हज्जाज से लिख कर पूछा कि यहाँ के लोगों के साथ कैसा व्यवहार किया जावे। हज्जाज ने उत्तर दिया—

"जब कि उन लोगों ने आत्मसमर्पण कर दिया है और ख़लीफ़ा को टैक्स देना मंज़ूर कर लिया है तो उनसे और कुछ भी चाहना जायज़ नहीं है। हमने उन्हें अपनी हिफ़ाज़त में ले लिया है, और हम किसी तरह भी उनके जान या माल पर हाथ नहीं उठा सकते। उन्हें अपने देवताओं की पूजा करने की इजाज़त दी जाती है। हरगिज़ किसी शख़्स को भी न अपने धर्म का पालन करने से मना करना चाहिये और न रोकना चाहिये। अपने घरों में वे जिस तरह चाहें रहें।"*

डॉक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहाँगीर के इतिहास' में लिखा है कि—"८ वीं सदी मे मोहम्मद बिन क़ासिम की सिन्ध पर हुकूमत नरमी और धार्मिक उदारता की एक जीती जागती मिसाल थी।"†

---

* "*The History of Medieval India*" by Ishwari Prasad, p 52, 53

† "Mohammad Bin Qasim's administration of Sindh in the 8th century was a shining example of moderation and tolerance"—*History of Jehangir*, by Dr Beniprasad, p 89

(४) हमें यह याद रखना चाहिए कि इसके बाद महमूद ग़ज़नवी के समय तक यानी तीन सौ साल तक फिर न कोई और हमला मुसलमानों का भारत पर हुआ और न सिन्ध या मुलतान से आगे उनका राज बढ़ा।

प्राचीन अरब और भारत का सम्बन्ध

अब हम उस समय के अरबों और भारतवासियों के परस्पर सम्बन्ध को थोड़े विस्तार के साथ बयान कर देना चाहते हैं। अरबों और भारत-वासियों का सम्बन्ध अरबों के मुसलमान होने से बहुत पहले से यानी हज़रत मोहम्मद के जन्म से कम से कम पाँच सौ साल पहले से चला आता था। हज़रत ईसा के जन्म के समय से ही सैकड़ों बल्कि हज़ारों अरब सौदागर भारत के पच्छिमी और पूर्वी बन्दरगाहों पर आकर उतरते थे। ख़ासकर पच्छिम मे चाल, कल्याण, सुपारा, और मलबार तट पर अरबों की अनेक बड़ी बड़ी बस्तियों का उस समय के इतिहास में ज़िक्र आता है। हज़रत ईसा के जन्म से पहले ही लंका और दक्खिन भारत में अरबों और ईरानियों की अनेक बस्तियाँ मौजूद थीं। ईरान, अरब, अफ़रीका और यूरोप के विविध देशों के साथ भारत का उस समय जितना व्यापार था, अधिकतर अरब और ईरानी सौदागरों ही के हाथों में था। रोमन इतिहास लेखक लिखते हैं कि रोम और यूनान के जो जहाज़ उन दिनों भारत आते जाते थे उनके भी नाविक अधिकतर अरब ही होते थे। भारत और चीन के बीच की तिजारत का भी एक ख़ासा हिस्सा अरबों ही के हाथों में था, जिसके सबब भारत के पूर्वी तट से भी ये लोग पूरी तरह परिचित थे, और वहाँ भी स्थान स्थान पर इनकी अनेक बस्तियाँ आबाद थीं।

उस समय के अरबों का मज़हब एक प्राचीन ढङ्ग का सीधा सा मज़हब

था। वे अपने अलग अलग क़बीलों के अनेक देवी देवताओं को मानते थे और उनकी मूर्तियों की पूजा करते थे। उस समय के अनेक यात्रा वृत्तान्तों से साबित है कि ये अरब अत्यन्त सरल स्वभाव और उदार चित्त होते थे, भारतवासियों से उनका मेल जोल और प्रेम ख़ूब बढ़ा हुआ था और भारत में उनकी बस्तियाँ ख़ूब ख़ुशहाल थीं।

इसके बाद मोहम्मद साहब के जन्म और इसलाम के प्रचार का समय आया। अरबों और ख़ासकर अरब व्यापारियों का भारत आना जाना पहले की तरह जारी रहा। फ़रक़ केवल यह हो गया कि पुराने मूर्तिपूजक अरबों की जगह अब निराकार के उपासक नए मुसलमान अरब भारत आने लगे। या वही अरब अब मुसलमान हो गए, उनके साथ साथ अब एक नए मज़हब और इसलाम के नए विचारों और नए आदर्शों ने भी भारत में प्रवेश किया। हमें याद रखना चाहिए कि अरब मुसलमानों और उनके साथ इसलाम के इस तरह भारत में प्रवेश करने का किसी सैन्य यात्रा या फ़ौजी हमले से कोई सम्बन्ध न था।

आठवीं सदी का भारत

इस स्थान पर आगे बढ़ने से पहले उस समय के भारत की हालत को संक्षेप में बयान कर देना भी आवश्यक है। ईसा की सातवीं सदी के मध्य में सम्राट हर्षवर्धन की सत्ता का अन्त हुआ। उत्तर भारत टुकड़े टुकड़े होकर अनेक छोटी छोटी रियासतों में बँट गया। राजपूतों ने पच्छिम से चल कर उत्तर पूरब में और मध्य भारत में अनेक छोटी छोटी रियासतें क़ायम कर ली। अनेक नई जातियाँ अपने को राजपूत कहने लगीं। यहाँ तक कि मुसलमानों के आने से ठीक पहले पञ्जाब से दक्खिन तक और बङ्गाल से

अरब सागर तक क़रीब क़रीब सारा देश राजपूतों के शासन में आगया। कोई प्रधान केन्द्रीय शक्ति इन सब छोटी बड़ी रियासतों को वश में रखने वाली न थी, और आए दिन इन तमाम रियासतों के बीच अपना अपना राज बढ़ाने के लिए एक दूसरे से संग्राम होते रहते थे। यानी एक प्रधान और प्रबल भारतीय साम्राज्य की जगह एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी और एक दूसरे से स्वतन्त्र अनेक छोटे बड़े राजा भारत पर शासन करते थे, और राजनैतिक या राष्ट्रीय एकता केवल स्वप्नमात्र थी। पुराने साम्राज्यों के केन्द्र मगध, पाटिलीपुत्र, गया इत्यादि खण्डहर दिखाई दे रहे थे। वैशाली, कुशीनगर, केडिया, रामग्राम, कपिलवस्तु और श्रावस्ती, जिनके नाम बौद्ध इतिहास मे मशहूर हो चुके थे, अब बरबाद दिखाई देते थे और देश के राजनैतिक और आर्थिक जीवन के दूसरे केन्द्रों ने उनकी जगह ले ली थी।

धर्म के क्षेत्र में भी भारत का वह समय एक बहुत बड़े परिवर्तन और अवनति का समय था। बुद्ध की मृत्यु से ढाई सौ साल के अन्दर, यानी हज़रत ईसा के जन्म से क़रीब ढाई सौ साल पहले, उस समय के बिगड़े हुए हिन्दू धर्म को भारत से निकाल कर बौद्ध धर्म उसका स्थान ले चुका था। किन्तु जिन ब्राह्मण पुरोहितों और उच्च जातियों के विशेषाधिकारों पर बौद्ध धर्म ने हमला किया था उनकी ओर से विद्रोह की आग बराबर सुलगती रही। धीरे धीरे प्रतिमापूजा ने और अन्य प्राचीन हिन्दू कर्मकाण्ड ने बौद्ध धर्म में भी प्रवेश करना शुरू किया। उत्तर भारत में महायान सम्प्रदाय की नींव रक्खी गई, जिसमें बुद्ध भगवान के अलावा अनेक बोधिसत्वों की और ख़ासकर 'अमिताभ' की पूजा होने लगी। बौद्ध मन्दिरों का समस्त कर्मकाण्ड हिन्दू मन्दिरों के ढङ्ग पर ढल गया। शुरू के बौद्ध मत

ने जो स्थान संस्कृत से छीन कर देश की भाषा प्राकृत या पाली को दिया था, वह अब महायान सम्प्रदाय में फिर से संस्कृत को प्रदान किया गया। ज्ञान मार्ग की जगह बहुत दरजे तक कर्मकाण्ड और भक्ति ने ले ली।

धीरे धीरे आजकल के वैष्णव मत, शैवमत और तान्त्रिक सम्प्रदाय ने मिलकर बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर दिया और प्राचीन हिन्दू धर्म को फिर से उसका स्थान प्रदान कर दिया। निस्सन्देह उच्च श्रेणी के थोड़े से लोगों के लिए उपनिषद् और दर्शनशास्त्र के सूक्ष्म उपदेश उस समय भी मौजूद थे, किन्तु सर्वसाधारण के लिए धर्म का पथ ख़ासा अन्धकारमय और गन्दा हो चला था। जिस जातिभेद को बौद्ध धर्म ने नष्ट कर स्त्रियों और शूद्रों को मनुष्यत्व के अधिकार प्रदान करना चाहा था, वह जातिभेद फिर अपने पूरे ज़ोर के साथ क़ायम हो चुका था। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता और अन्य वर्णों, ख़ासकर शूद्रों की हीनता ने फिर से भारतीय समाज को जकड़ कर उसके विकाश को असम्भव कर दिया था। पण्डों और पुरोहितों के विशेषाधिकार फिर से क़ायम हो गए थे। और अधिकांश आम जनता के लिए सिवाय जात पाँत और ऊँच नीच के नियमों का पालन करने, असंख्य देवी देवताओं, भयङ्कर 'रुद्र' और प्रचण्ड 'शक्ति' की मूर्तियों को पूजने, जप, तप, यज्ञ, हवन, पूजा, पाठ, ब्राह्मणों को दान, तीर्थयात्रा, मन्तर, जन्तर और जटिल कर्मकाण्ड के और कोई धर्म न रह गया था। ज्ञान का सन्तोष केवल ऊपर के इने गिने लोगों के लिए था। शेष जन समुदाय के लिए कर्मकाण्ड और अन्धविश्वास। उस समय के भारतीय साहित्य, चीनी और अरब यात्रियों के वृत्तान्तों, सिक्कों और शिलालेखों, सबसे इसी शोचनीय हालत का पता चलता है।

चीनी यात्री फ़ाहियान के समय यानी पाँचवीं सदी में उत्तर पच्छिमी भारत के अन्दर काबुल से मथुरा तक बौद्धमत की हीनयान सम्प्रदाय का प्रचार अभी बाक़ी था, किन्तु शेष भारत से बौद्धधर्म मिटता जा रहा था। दो सौ साल बाद जब प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनत्साँग भारत पहुँचा तो उसने देखा कि उत्तर में हीनयान की जगह महायान ने ले ली थी। ह्यूनत्साँग के बयान से मालूम होता है कि ख़ासकर शिव की पूजा उस समय समस्त भारत में ज़ोरों के साथ फैलती जा रही थी। अयोध्या के पास उसे इस तरह के मनुष्य मिले जो हर साल दुर्गा की मूर्ति के सामने मनुष्य की बलि चढ़ाया करते थे। बंगाल के शैव राजा सशाङ्क ने अनेक बौद्ध मन्दिरों को तोड़ कर उनमें बुद्ध की मूर्तियों की जगह शिव की मूर्ति क़ायम करना और बौद्ध धर्म के मानने वालों को तकलीफ़ें दे देकर अपने राज से निकालना शुरू कर दिया था। अन्य स्थानों पर नर मुण्डों की मालाएँ पहिने कापालिकों से ह्यूनत्साँग की भेंट हुई, इत्यादि। ह्यूनत्साँग लिखता है कि अफ़ग़ानिस्तान, ईरान और मध्य एशिया तक उस समय बौद्ध मत के माननेवाले और शैव मत के मानने वाले दोनों पाए जाते थे। इसके बाद के अरब यात्रियों, मोहम्मद इब्न इसहाक़ अलनदीम, अलशहरस्तानी इत्यादि की पुस्तकों में भी इन्हीं बातों का समर्थन होता है और पता चलता है कि मुसलमानों के आने के समय तक भारत से बौद्धमत क़रीब क़रीब लोप हो चुका था और शैवमत इत्यादि ने उसकी जगह ले ली थी। अलबेरूनी लिखता है कि शैव और वैष्णव सम्प्रदायों के अलावा, शक्ति, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा, इन्द्र, अग्नि, स्कन्ध, गणेश यम और कुबेर की मूर्तियों की पूजा भी भारत में शुरू हो गई थी और इन

सब की अलग अलग सम्प्रदाएँ थीं। बौद्ध और जैन मतों ने मांस और मदिरा का उपयोग एक बार बिलकुल बन्द कर दिया था, किन्तु कापालिकों और शाक्तों दोनों के ज़रिये इन दोनों चीज़ों का उपयोग स्थान स्थान पर फिर से धर्म का एक अङ्ग बन गया था। सारांश यह कि राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक, तीनों दृष्टि से भारत उस समय अन्धकार और अराजकता की हालत में था,—असंख्य छोटी बड़ी रियासतें, एक दूसरे की दुशमन, सैकड़ो मत मतान्तर, और अगणित सदाचार-विरुद्ध कुरीतियाँ और अन्ध विश्वास !

भारत में इसलाम धर्म

ठीक उस समय, जब कि देश की यह हालत थी, इसलाम का भारत में पदार्पण हुआ। हम लिख चुके हैं कि इसलाम के जन्म से पहले अरबों की इस देश में ख़ासकर दक्खिन भारत में अनेक बस्तियाँ थीं। उस समय के समस्त इतिहास से यह भी साबित है कि अरबों और भारतवासियों में बड़ा प्रेम था, और अरब सौदागर इस देश के अन्दर आदर की दृष्टि से देखे जाते थे। मुसलमानों के सैनिक हमले से बहुत पहले, ईसा की सातवीं सदी से ही अरब सौदागरों के साथ साथ नए इसलाम धर्म ने भी दक्खिन की ओर से भारत के अन्दर प्रवेश किया। इतिहास से पता चलता है कि इस नए धर्म का भी भारतवासियों ने उसी प्रेम के साथ स्वागत किया, जिस प्रेम के साथ वे सैकड़ों साल पहले से अरब सौदागरों का स्वागत करते रहे थे। एक बार भारतवर्ष की सीमाओं के अन्दर प्रवेश करते ही इसलाम भी भारत की असंख्य सम्प्रदायों में से एक गिना जाने लगा। इतिहास लेखक रॉलैण्डसन लिखता है कि सातवीं सदी के अन्त में मुसलमान अरब

मलबार तट पर आकर बसने लगे थे। इतिहास लेखक स्टररॉक लिखता है कि—"सातवीं सदी से लेकर ईरानी और अरब सौदागर भारत के पच्छिमी तट पर अलग अलग बन्दरगाहों में बड़ी बड़ी तादाद में आकर बसने लगे। ये लोग इसी देश की स्त्रियों के साथ शादियाँ कर लेते थे। इनकी बस्तियाँ मलबार में ख़ास तौर पर बड़ी और महत्वपूर्ण थीं, क्योंकि वहाँ पर बहुत शुरू ज़माने से मालूम होता है राज की यह एक नीति चली आती थी कि बन्दरगाहों में व्यापारियों को हर तरह की सुविधाएँ दी जावें।"*

धीरे धीरे दक्खिन में मुसलमानों का प्रभाव बढ़ता गया। राज की ओर से उन्हें तिजारत करने और ज़मीन ख़रीदने के साथ साथ अपने नए धर्म का प्रचार करने की भी पूरी सुविधाएँ दी जाने लगीं। नवीं सदी तक ये लोग समस्त पच्छिमी तट पर फैल गए। हम लिख चुके हैं कि भारत में उस समय बौद्ध मत और जैन मत का हिन्दू मत और उसकी नई सम्प्रदायों के साथ संग्राम जारी था। इन अनेक नई हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में, जिनका हम ऊपर ज़िक्र कर आए हैं और जिनका ज़ोर उस समय बढ़ता जा रहा था, इसलाम के सीधे सादे और सरल सिद्धान्तों और उसके अन्दर मनुष्यमात्र की समता के विचार की ओर लोगों का ध्यान ज़ोरों के साथ आकर्षित हुआ। इसलाम के विरुद्ध पक्षपात या उसकी ओर द्वेष का कोई सबब उस समय तक मौजूद न था। नवीं सदी के शुरू में ही मलबार के हिन्दू राजा चेरामन पेरूमल ने, जिसकी राजधानी कोडङ्गलूर थी, इसलाम मत स्वीकार कर लिया।† राजा का नाम अब्दुर-

* Sturrock S. *Kanara, Madras District Manuals*, p 180

† Logan *Malabar*, vol 1, p 245

रहमान सानीनी रक्खा गया । इसलाम मत स्वीकार करने के बाद अब्दुर-रहमान अरब गया । चार साल बाद अरब में ही उसकी मृत्यु हुई । अरब से उसने कई मुसलमान विद्वानों और प्रचारकों को भारत भेजा, उनकी मारफ़त अपने उत्तराधिकारियों को शासन प्रबन्ध के लिए हिदायतें दीं, और यह भी हिदायत दी कि देश के अन्दर नए मत के प्रचार में अरब विद्वानों को पूरी सहायता दी जाय । राजा चेरामन पेरूमल के उत्तराधिकारियों ने बड़े हर्ष के साथ अरब विद्वानों का स्वागत किया और उनके आदेशानुसार मलबार तट पर निराकार की उपासना के लिए ११ नई मसजिद बनवाई ।

कालीकट के राजा का मुसलमान होना

कालीकट के सामुरी राजा और त्रिवानकुर के महाराजा उसी चेरामन पेरूमल के वंशज और उत्तराधिकारी हैं । इन दोनों स्थानों पर उस १,१०० साल पहले की घटना की याद में हाल तक (सन् १९१२ ई०) यह रिवाज चला आता था कि जिस समय नया सामुरी अपनी गद्दी पर बैठता था तो मुसलमानों की तरह उसका मुण्डन किया जाता था, मुसलमानों के से उसे कपड़े पहनाए जाते थे, एक मोपला उसके सिर पर ताज रखता था,* राज-तिलक के बाद से उसे जातिच्युत की तरह समझा जाता था, अपने घर के लोगों के साथ भी फिर वह सहभोज नहीं कर सकता और कोई नय्यर उसे स्पर्श नहीं करता । समझा यह जाता है कि प्रत्येक सामुरी चेरामन पेरूमल के अरब से लौटने के इन्तज़ार में केवल उसके एक प्रतिनिधि की हैसियत से तख्त पर बैठता है । त्रिवानकुर के महाराजाओं को गद्दी पर बैठते समय जब खड्ग हाथ में दी जाती है, तब आज पर्यन्त उन्हें यह कहना पड़ता है—

* Quadir Husain Khan South Indian Mussalmans, *Madras Christian College Magazine* (1912-13), p 241

"मैं इस खड्ग को उस समय तक रक्खूँगा, जब तक कि मेरा वह चचा, जो मक्का गया है, लौट न आए।"*

सामुरी ने अपने राज में मुसलमानों को हर तरह की सहायता दी। कोई नय्यर किसी नम्बूतरी ब्राह्मण के बराबर में न बैठ सकता था, किन्तु कोई भी मुसलमान बैठ सकता था। मुसलमानों का धर्मगुरु थङ्गल सामुरी के साथ साथ पालकी में निकलता था। अरबों और मुसलमानों की मदद से सामुरी ने अपने राज की सीमाओं को ख़ूब बढ़ाया, और राज की समृद्धि में बहुत बड़ी उन्नति हुई। वर्त्तमान कालीकट का नगर उस समय के एक मुसलमान क़ाज़ी ही का बसाया हुआ है। मलबार के राजाओं की जल सेना के सेनापति अधिकतर मुसलमान ही होते थे, जो 'अलीराजा' कहलाते थे। इसलाम धर्म के प्रचार में भी सामुरी ने ख़ूब सहायता दी। यहाँ तक कि उसने आज्ञा दे दी कि हर हिन्दू मल्लाह के घर के कम से कम एक लड़के को बचपन से मुसलमानों की तरह शिक्षा दी जाय। यही आजकल के मोपलों की उत्पत्ति है। मोपला शब्द का अर्थ महापिल्ला यानी ज्येष्ठ पुत्र है।†

मुसलमान फ़क़ीर और प्रचारक

इसी बीच समय समय पर असंख्य मुसलमान फ़क़ीर और विद्वान कुछ समुद्र के रास्ते और कुछ अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते अरब और ईरान से आ आकर भारत के अनेक भागों में बसते गए। हर जगह उनका ख़ूब आदर सत्कार होता था।

* Logan *Malabar*, vol 1, p. 231.

† Innes *Malabar and Anjengo District Gazetter*, p 190

भारत के पूर्वी तट पर भी मुसलमानों की बस्तियाँ और उनका महत्व बढ़ता चला गया। इन बस्तियों के अलग अलग नाम, हवाले और मुसलमानों की बढ़ती हुई तादाद को बयान करने की आवश्यकता नहीं है। एक मुसलमान फ़क़ीर नजद वली (Nathad Vali) के प्रभाव से ग्यारवीं सदी में मदुरा और त्रिचनापल्ली के इलाक़ों में अनेक लोगों ने इसलाम मत स्वीकार किया। यह नजद वली टरकी का एक शहज़ादा था, जो फ़क़ीर हो गया था, और अरब, ईरान और उत्तर भारत से होता हुआ त्रिचनापल्ली पहुँचा था, जिसे उस समय त्रिसूर कहते थे। बारहवीं सदी में एक दूसरे फ़क़ीर सय्यद इब्राहीम शहीद के प्रभाव से अनेक लोगों ने इसलाम मत स्वीकार किया। इसी तरह बाबा फ़ख़रुद्दीन इत्यादि अनेक अन्य इसलाम धर्म प्रचारकों के नाम उस समय के इतिहास में मिलते हैं। बाबा फ़ख़रुद्दीन के प्रभाव से पेन्नुकोण्डा के हिन्दू राजा ने इसलाम मत स्वीकार किया। यह भी साफ़ पता चलता है कि इन अरबों और मुसलमानों की कोशिश से भारत और ख़ास कर दक्खिन भारत की तिजारत और ख़ुशहाली में बहुत बड़ी तरक़्क़ी हुई। दक्खिन के हिन्दू राजाओं की ओर से चीन जैसे दूर दूर के देशों में मुसलमान एलची और राजदूत भेजे जाते थे। अनेक हिन्दू दरबारों में मुसलमान मन्त्री और प्रधान मन्त्री थे। अनेक प्रान्तों के शासक मुसलमान नियुक्त किए जाते थे। हिन्दू राजाओं के अधीन बड़ी बड़ी मुसलमान सेनाएँ थीं।

इसी तरह गुजरात के वल्लभी राजा बलहार ने अपने राज के अन्दर मुसलमानों का बड़े हर्ष और आदर के साथ स्वागत किया। काठियावाड़, कोकण और मध्यभारत के अन्य हिन्दू राजाओं ने भी मुसलमान

फ़क़ीरों और प्रचारकों का बड़े प्रेम के साथ स्वागत किया और उन्हें अपनी अपनी रियासत में इसलाम प्रचार के लिए हर तरह की सहायता दी।

ग्यारवीं सदी के क़रीब खम्भात में कुछ हिन्दुओं ने मुसलमानों की एक मसजिद पर हमला करके उसे गिरा दिया। राजा सिद्धराज ने तहक़ीक़ात करके अपराधियों को दण्ड दिया और मुसलमानों को अपने धन से एक नई मसजिद बनवा दी। सोमनाथ के हिन्दू राजा के अधीन मुसलमान सेना और अनेक मुसलमान अफ़सर थे। ग्यारवीं सदी में गुजराती बोहरों के शिया धर्माचार्य ने यमन (अरब) से आकर गुजरात में रहना शुरू किया। उसी समय के निकट नूरुद्दीन ने गुजरात के कुनबियों, खेरवाओं और काडियों को इसलाम धर्म में शामिल किया। उन असंख्य मुसलमान सन्तों और फ़क़ीरों के नाम गिनाने की आवश्यकता नहीं है, जो आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक बराबर उत्तर से लेकर दक्खिन तक और पूरब से लेकर पच्छिम तक भारत के विविध भागों में आकर बसते रहे और जिनके उच्च चरित्र और इसलाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों के सबब उस धार्मिक अव्यवस्था के युग में स्थान स्थान पर हज़ारों और लाखों भारतवासियों ने इसलाम धर्म स्वीकार करना शुरू कर दिया। अभी तक यदि उत्तर भारत के उन ग्रामों में घूमा जाय, जिनकी अधिकांश आबादी मुसलमान है, तो दरयाफ़्त करने पर मालूम होगा कि वहाँ के लोगों के इसलाम मत स्वीकार करने का सबब किसी न किसी समय किसी न किसी त्यागी और संयमी मुसलमान फ़क़ीर का उनके अन्दर सहवास ही था। हमें फिर यह याद रखना चाहिए कि यह कहानी अधिकतर उस ज़माने की है, जब कि अधिकांश

भारत के ऊपर मुसलमानों का राजनैतिक प्रभुत्व या तो शुरू ही न हुआ था और या कम से कम अभी जमने न पाया था।

भारत में इसलाम का प्रचार

हमारा हरगिज़ यह मतलब नहीं कि मुसलमानों की राजसत्ता का इस देश के अन्दर इसलाम के फैलने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निस्सन्देह हर युग और हर देश में प्रजा के ऊपर राजा या शासकों के धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक और अनिवार्य है। यदि सम्राट अशोक न होता तो बौद्ध धर्म का भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इस तरह फैल सकना शायद इतना आसान न होता। इसी तरह यदि सम्राट समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त (दूसरा) वैष्णव मत के पोषक और सम्राट यशोधर्म देव (विक्रमादित्य) शैव मत के पोषक न होते तो हिन्दू मत का बौद्ध मत को भारत से निकाल बाहर कर सकना इतना सरल न होता। हम यह भी नहीं कहते कि भारतवासियों से इसलाम मत के स्वीकार कराने में कहीं पर किसी तरह की भी ज़बरदस्ती का उपयोग नहीं किया गया। दुर्भाग्यवश धार्मिक मामलों में थोड़ी बहुत ज़बरदस्ती संसार के हर देश के इतिहास में पाई जाती है। हिन्दू मतों के साथ बौद्ध मत और जैन मत के सङ्घर्ष के दिनों में भी इस तरह की ज़बरदस्तियों की अनेक मिसालें भरी पड़ी हैं। किन्तु इतिहास से बिलकुल साफ़ पता चलता है कि इस देश के अन्दर मुसलमानों के हमलों से बहुत पहले इसलाम मत प्रवेश कर चुका था, इसलाम इस देश में महमूद ग़ज़नवी के हमले से भी पहले काफ़ी उन्नति कर चुका था, और इसलाम के भारत में फैलने का ख़ास सबब उस समय के इसलाम के प्रचारकों का त्याग, उनकी सच्चरित्रता, और इसलाम मत के वे स्पष्ट और

सीधे सादे सिद्धान्त थे, जो कम से कम उस समय के भारत की अनेक हिन्दू सम्प्रदायों के मुक़ाबले में मामूली जन सामान्य के लिए अधिक सरल, हितकर और सुसाध्य थे। भारत के जिन लोगों ने उस समय इसलाम मत स्वीकार किया, उनमें अधिकांश संख्या उन छोटी जाति के लोगों की थी जो उस समय की भारतीय वर्ण व्यवस्था को अपने लिए अन्याय अनुभव करते थे, और भारतवासियों की किसी संख्या का इसलाम मत स्वीकार करना ठीक वैसा ही था जैसा उनका वैदिक मत को छोड़ कर बौद्ध मत स्वीकार करना या बौद्ध मत को छोड़ कर वैष्णव मत या शैव मत स्वीकार करना, या चीनियों या बरमियों का अपने अपने मतों को छोड़ कर भारतीय बौद्ध मत को स्वीकार करना, इत्यादि।

भारतवासियों और भारतीय नरेशों का अरब सौदागरों के साथ सुन्दर व्यवहार, उनका अपने अपने राज में इसलाम मत को पूरी स्वतन्त्रता देना, और उस शुरू ज़माने के भारतवर्ष में हिन्दुओं और मुसलमानों का परस्पर प्रेम सम्बन्ध ही वह बात थी जिसके सबब ख़लीफ़ा उमर ने अरब सेना को हिदायत की थी कि भारत पर सैनिक हमला न किया जाय, और जिसके सबब से एशिया, अफ़रीका और यूरोप में अरब साम्राज्य के पूरा विस्तार पा जाने के वर्षों बाद तक भी मुसलमानों की ओर से भारत पर हमला नहीं किया गया।

भारत की क़रीब एक चौथाई आबादी के धीरे धीरे इसलाम मत स्वीकार करने में राजनैतिक दबाव या ज़बरदस्ती का हिस्सा कहाँ तक था, इसके सुबूत में हम केवल दो एक इतिहास लेखकों की सम्मतियाँ नीचे देते हैं। भारतीय मुसलमानों का ज़िक्र करते हुए इतिहास लेखक आरनॉल्ड लिखता है—

"इनमें से एक बहुत बड़ा अधिकांश भाग ऐसे लोगों का है, जिन्होंने अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इसलाम मत स्वीकार किया।"*

एक दूसरा इतिहास लेखक टाउन्सेण्ड लिखता है—

"इस मत के यहाँ पर फैलने का ख़ास सबब ज़बरदस्ती नहीं है।"†

एक दूसरे स्थान पर यही लेखक भारतीय मुसलमानों के विषय में लिखता है—

"इन तमाम मुसलमानों में से ६० फ़ीसदी में भारतीय रक्त है, वे इस देश के वैसे ही बच्चे हैं जैसे हिन्दू। उनमें बहुत से पुराने हिन्दू अन्धविश्वास भी अभी तक मौजूद हैं। वे केवल इस लिए मुसलमान हैं, क्योंकि उनके पूर्वजों ने अरब के उस महा-पुरुष का मत स्वीकार किया था।"‡

और आगे चल कर यही विद्वान लिखता है कि भारत में मुसलमानों का राज क़ायम हो जाने के बाद भी प्रजा को ज़बरदस्ती मुसलमान करना अधिकांश नए मुसलमान शासकों के स्वार्थ और उनकी रुचि दोनों के विरुद्ध था। वह लिखता है—

---

* "By far the majority of them entered the pale of Islam of their own free will"—*The Preaching of Islam*, by T W Arnold, 1913, p 255

† "Its spread as a faith is not due mainly to compulsion."—*Asia and Europe*, London, 1911 by M Townsend, p 44

‡ "Ninety per cent of the whole body of the Muslims are Indians by blood, as much children of the soil as the Hindoos, retaining many of the old pagan superstitions, and only Mussalmans because their ancestors embraced the faith of the Great Arabian."—Ibid, p 43.

"इसलाम का प्रचारक बलप्रयोग न कर सकता था और × ×
जिन हमला करने वालों ने यहाँ पर विजय प्राप्त की और जो
यहाँ बस गए, उन्होंने भी प्रायः कभी भी बलप्रयोग करना
नहीं चाहा। इसकी वजह भी काफ़ी थी और वह वजह यह थी
कि बलप्रयोग करने में उनका हित न था। वे राज, बादशाहतें या
साम्राज्य क़ायम करना चाहते थे; न कि अपनी ही टैक्स देने
वाली प्रजा के साथ घरेलू युद्ध छेड़ना या इस विशाल द्वीपप्राय
को युद्धप्रेमी जातियों की अदम्य शत्रुता को अपने विरुद्ध भड़का
लेना; ये जातियाँ हिन्दू थीं और हिन्दू रहीं।"*

तेरवीं सदी के अन्त से सोलवीं सदी के प्रारम्भ तक जब कि भारत में अपना साम्राज्य क़ायम करने के लिए मुसलमानों के प्रयत्न जारी थे, उस समय के विषय में सर अलफ़्रेड लॉयल लिखता है कि मुसलमान नरेश—

"आम तौर पर लड़ाई में इतने मशगूल रहते थे कि वे धर्म
प्रचार की ओर अधिक ध्यान न दे सकते थे या यह कि उन्हें
लोगों को मुसलमान बनाने की अपेक्षा उनसे टैक्स वसूल करने
की अधिक चिन्ता रहती थी।"†

---

* "The missionary of Islam could not use force and , as to the invaders who conquered and remained, they seldom or never wished to use it, for the sufficient reason that it was not their interest They wanted to found principalities, or kingdoms, or an empire, not to wage an internecine war with their own taxpaying subjects or to arouse against themselves the unconquerable hostility of the warrior races of the gigantic peninsula who were and who remain Hindoos "—Ibid, p 45.

† " . generally too busily engaged in fighting to pay much regard to the interests of religion, or else thought more of the exaction of

निस्सन्देह कहीं कहीं इस तरह की मिसालें भी मिलती हैं जिनमें राजनैतिक या अन्य बातों से प्रेरित होकर भारत के किसी किसी मुसलमान नरेश ने इसलाम मत के प्रचार के हित में अपने अधिकारों का अनुचित प्रयोग किया, किन्तु इसके विपरीत केवल बाबर और अकबर ही नहीं, बल्कि अधिकांश और असंख्य अन्य मुसलमान शासकों के लेख और उनकी आज्ञाएँ इस विषय की नक़ल की जा सकती हैं, जिनसे मालूम होता है कि वे अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक दृष्टि से देखते थे और राज-शासन में किसी तरह का धार्मिक पक्षपात अपने लिए हितकर न समझते थे। इतिहास से यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि वर्तमान भारतीय मुसल-मानों में से ९० नहीं, ९९ फ़ीसदी के इसलाम मत स्वीकार करने का सबब केवल उस समय के असंख्य मुसलमान फ़क़ीरों, पीरों और दरवेशों की सच्चरित्रता और इसलाम की आन्तरिक सामाजिक और अन्य विशेषताएँ थी।

जिज्ञासु अरब

अरबों के अन्दर नई धार्मिक लहरें

भारत के ऊपर अरब के इस नए मत का प्रभाव केवल उन लाखों या करोड़ों भारतवासियों तक ही परिमित न था, जिन्होंने इस नए मत को स्वीकार कर लिया। उस समाजिक अराजकता के दिनों में, जिसका चित्र हम

tribute than of the work of conversion"—*Asiatic Studies*, by Sir Alfred Lyall, London, 1882, p 288

ऊपर खींच चुके हैं, शेष भारतवासियों के विचारों, उनके धर्म, उनके साहित्य, उनकी चित्रकारी, उनके विज्ञान, उनकी निर्माण कला, सारांश यह कि समस्त भारतीय सभ्यता पर इसलाम के नए विचारों का गहरा और अमिट प्रभाव पड़ा। किन्तु इस प्रभाव को बयान करने से पहले यह आवश्यक है कि हम मोहम्मद साहब के बाद की अरबों के अन्दर की नई धार्मिक लहरों और उनकी सभ्यता के अन्य पहलुओं पर भी एक नज़र डाल लें।

इसलाम आरम्भ से ही एक ईश्वर का मानने वाला था। उसके सिद्धान्त अत्यन्त सरल थे और पूजा विधि अत्यन्त सुसाध्य। फिर भी मोहम्मद साहब की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद से ही इसलाम के अन्दर नई नई शाखें फूटने लगीं। जिस तरह अरब नीतिज्ञों ने पूरब और पच्छिम में अपने साम्राज्य को बढ़ाना शुरू किया, उसी तरह अरब विद्वानों और जिज्ञासुओं ने संसार के चारों कोनों से दर्शन, विज्ञान और अनेक विद्याओं की खोज कर अपने भण्डार को बढ़ाना शुरू किया।

बौद्ध और हिन्दू ग्रन्थ अरबी में

ईसाई धर्म ग्रन्थों के अरबी में अनुवाद किए गए। सुक़रात, अफ़लातून और अरस्तू जैसों के गूढ़ दर्शनशास्त्रों, और विज्ञान, वैद्यक, ज्योतिष इत्यादि पर यूनानी ग्रन्थों के अरबी मे अनुवाद किए गए। भारत के साथ अरबों का घनिष्ठ सम्बन्ध पहले से था ही। भारतीय माल के साथ साथ भारतीय संस्कृति और भारतीय विद्याओं का लेन देन भी शीघ्र ही शुरू हो गया। शुरू के ख़लीफ़ाओं के दिनों में अनेक हिन्दू बसरा में ऊँचे ऊँचे पदों पर नियुक्त थे।* शाम, काशगर इत्यादि में हिन्दुओं की अनेक बस्तियाँ

* Jean Perier *Vie d'al Hadjdjadg Ibn Yusuf*, p 249-52

थीं। ख़ुरासान, अफ़ग़ानिस्तान, सीसतान और बलूचिस्तान इसलाम मत स्वीकार करने से पहले बौद्ध थे या हिन्दू। बलख़ में एक बहुत बड़ा बौद्ध विहार था, जिसके बौद्ध मठाधीश अब्बासी ख़लीफ़ाओं के वज़ीर हुआ करते थे।* बौद्धधर्म की सब मुख्य मुख्य पुस्तकों के अरबी में अनुवाद किए गए। "किताबुल बुद" और "बिल बहर वा बुदसिफ़" उन्हीं दिनों की लिखी हुई अरबी भाषा में बौद्धधर्म की प्रामाणिक पुस्तकें हैं। इसी तरह सुश्रुत, चरक, पञ्चतन्त्र, हितोपदेश, चाणक्य इत्यादि अगणित संस्कृत ग्रन्थों के अरबी मे अनुवाद किए गए। विशेषकर बुद्ध के जीवन और उसके सिद्धान्तों का अरब के मुसलमानों पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा। धीरे धीरे जिज्ञासु अरबों में तरह तरह के स्वतन्त्र विचार, नए नए दार्शनिक, और नई नई सम्प्रदाएँ पैदा होनी शुरू हुईं। इसी परिस्थिति के अन्दर इसलाम में अद्वैतवाद और सुप्रसिद्ध सूफ़ी विचारों का जन्म हुआ।

इसलाम में अद्वैतवाद

उन्हीं दिनों शिया मुसलमानों की 'ग़ुलात' सम्प्रदाय के आचार्यों ने अवतारवाद (हुलूल, तशबीह), आवागमन (तनासुख़) इत्यादि को अपने सिद्धान्तों में स्थान दिया और यह प्रतिपादन किया कि मनुष्य की आत्मा भी बढते बढ़ते ख़ुदा के रुतबे तक पहुँच सकती है। 'अली इलाही' सम्प्रदाय के लोगों ने एक से अधिक स्त्री के साथ विवाह और तलाक़ की प्रथा दोनों को नाजायज़ क़रार दिया। मसजिद में जाना और शारीरिक 'शरई' पवित्रता को भी उन्होंने अनावश्यक बताया। अनेक सम्प्रदायों ने क़ुरान के ज़ाहिरा अर्थों को न मान कर उसे अलङ्कार के रूप में मानना शुरू

---

* Nicholson *A Literary History of the Arabs*, p 259

किया ।* अव्यक्त, निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में भेद किया जाने लगा। इस तरह की अनेक सम्प्रदाएँ क़ायम हुई, जिनमें लोगों को विशेष 'दीक्षा' देकर भरती किया जाता था। इनमें से कोई कोई सम्प्रदाय यह मानती थी कि दीक्षित मनुष्य अभ्यास करते करते नबी और स्वयं ख़ुदा के रुतबे तक पहुँच सकता है। गुरु (पीर) को ईश्वर और कहीं कहीं ईश्वर से भी बढ़ कर रुतबा दिया जाने लगा। मोतज़ली सम्प्रदाय के लोगों ने इस बात का खुले प्रतिपादन किया कि क़ुरान सदा के लिए निर्भ्रान्त ईश्वर वाक्य नहीं है, बल्कि मनुष्य जाति की उन्नति के साथ साथ हर मनुष्य की आत्मा के अन्दर बराबर समय समय पर इलहाम होता रहता है। अलग़िज़ाली (१०५७-११५२) ने क़ुरान, शरीयत और मामूली मुसलिम कर्मकाण्ड से असन्तुष्ट होकर संसार से पृथक तप (रियाज़त), अभ्यास (शग़ल) और ध्यान (ज़िक्र) शुरू किया और अपनी आत्मा के अन्दर शान्ति अनुभव की। इस तरह के आज़ाद ख़याल सूफ़ियों के अनेक मठ (ख़ानक़ाहें) क़ायम हुए, जिनमें अद्वैत (वहदतुलवजूद) का उपदेश दिया जाता था, संयम (नफ़्सकुशी) पर ज़ोर दिया जाता था और भक्ति (इश्क़) और योग (शग़ल) को मुक्ति का एक मात्र मार्ग बताया जाता था। कवियों और वैज्ञानिकों में अनेक तरह के अविश्वासी पैदा होने लगे, जो नबी और क़ुरान से इनकार करते थे, दोज़ख़ और बहिश्त और रोज़े और नमाज़ का मज़ाक़ उड़ाते थे और सगुण ईश्वर के अस्तित्व को तर्क विरुद्ध बतलाते थे, यहाँ तक कि ख़लीफ़ा यज़ीद (मृत्यु सन् ७४४) को भी इन्हीं नास्तिकों में गिना जाने लगा। प्रसिद्ध विद्वान और महात्मा अबुल अला अलमआरी (मृत्यु सन् १०५७) के विचारों

* Friedlaender *Heterodoxies of Shiites* J A O S No, 23 and 29

पर बुद्ध के विचारों की छाप साफ़ दिखाई देती है। अबुल अला आत्मा के आवागमन में विश्वास करता था, कड़ा निरामिषभोजी था, यहाँ तक कि दूध और शहद या चमड़े के उपयोग को भी पाप मानता था, प्राणिमात्र के साथ दया का उपदेश देता था, आहार और वस्त्रों में अत्यन्त परहेज़गार था और ब्रह्मचर्य को आत्मा की उन्नति के लिए आवश्यक बताता था, मसजिद, नमाज़, रोज़े और दिखावटी मज़हब का वह बड़ा विरोधी था।* अपने एक पद में वह लिखता है—

"ला इलाह इल्लल्लाह ! सच है, किन्तु जो मनुष्य कि अँधेरे में भी उस स्वर्ग को खोजता है, जो स्वर्ग मेरे अन्दर और तुम्हारे अन्दर मौजूद है, उसकी अपनी आत्मा के सिवा कोई दूसरा रसूल भी नहीं है।"

अबुलअला संसार को माया मानता था।

उमरख़य्याम के स्वतन्त्र विचार प्रसिद्ध हैं। रतजगे करना, लम्बे लम्बे उपवास रखना, और कई तरह के नियम और तप सूफ़ियों ने मोहम्मद साहब की ज़िन्दगी से सीखे, किन्तु सूफ़ियों के सिद्धान्तों पर ईसाई मत, प्राचीन ईरान के ज़रथुस्त्री मत और भारतीय हिन्दू और बौद्धमतों इन सब की छाप भी साफ़ दिखाई देती थी। मोहम्मद साहब ने संसार से पृथक रहने को मना किया था, किन्तु उनके अनुयाइयों में आरम्भ से ही इस तरह के लोग पैदा हो गए थे जिनका सिद्धान्त संसार से भागना (अलफ़िरारो मिनद्दुनिया) था। कट्टर मौलवियों और इन आज़ाद ख़याल सूफ़ियों में बराबर झगड़ा चला आता था, फिर भी सैकड़ों साल तक हज़ारों और

---

* Baerlein *Abul-Ala, the Syrian*

लाखों मनुष्य चारों ओर से आ आकर इन सूफ़ियों की ख़ानक़ाहों में जमा होते थे और इसमें कोई सन्देह नहीं कि उस ज़माने के मुसलमानों के जीवन और विचारों पर इनका बहुत गहरा प्रभाव था।

महात्मा मनसूर का नाम संसार भर में प्रसिद्ध है। मनसूर ने भारत की भी यात्रा की थी। उसका मुख्य सिद्धान्त और वाक्य "अनल हक़" था, जिसका ठीक वही अर्थ है जो 'अहं ब्रह्म' का है। अपने आज़ाद ख़यालों के सबब से ही मनसूर को क़ैद किया गया और सन् ९२२ ईसवी में यातनाएँ दे देकर सूली पर चढ़ा दिया गया। कबीर, दादू, नानक और अन्य भारतीय महात्माओं के वचनों में मनसूर के वाक्य के वाक्य इधर से उधर तक भरे हुए हैं। मनसूर सबको ख़ुदा मानता था और हर तरह की दुई को धोखा बतलाता था। क़ुदरती तौर पर इस अद्वैतवाद ने उस समय के असंख्य मुसलमानों में सब मज़हबों की एकता और एक दूसरे की ओर उदारता के विचार भी पैदा किए। सूफ़ियों के साहित्य में योगाभ्यास के मुक़ामात, समाधि, सत्सङ्ग की महिमा, गुरु के महत्व, प्राणायाम इत्यादि का ख़ूब ज़िक्र आता है और भक्ति के उन्माद में गाने, बजाने और नाचने की तारीफ़ की गई है। शेख़ बदरुद्दीन के विषय में, जो तेरहवीं सदी में भारत में आकर रहने लगा था, लिखा है कि जब वह इतना बूढा हो गया था कि हिल डुल न सकता था तब भी हरि कीर्तन की आवाज़ पर वह तुरन्त अपने बिस्तरे से कूद कर जवान मनुष्य की तरह नाचने लगता था। जब उससे पूछा जाता था कि इस निर्बल अवस्था में शेख़ कैसे नाच सकता है तो वह जवाब देता था, "शेख़ कहाँ है? इश्क़ नाच रहा है।"*

* Blochman and Jarrett *Ayeen-i- Akbari*, vol, iii, p 368

निस्सन्देह सूफ़ियों का मार्ग भक्तिमार्ग था, उनका सिद्धान्त अद्वैत था, इश्क़ उनकी पूजा थी और ब्रह्म में लीन होकर तद्वत् हो जाना उनकी निजात (मोक्ष) थी।

दक्षिण में धर्म सुधार की लहरें

ईसा की आठवीं सदी से पहले भारत की धार्मिक अव्यवस्था का ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। बौद्ध मत समाप्त हो चुका था और शैव मत, वैष्णव मत और शाक्त मत ने उसकी जगह ले ली थी। बौद्ध मत के उच्च सदाचार और मनुष्यमात्र की समता के सिद्धान्तों के स्थान पर फिर से असंख्य देवी देवताओं, मत मतान्तरों, कर्मकाण्ड, जात पाँत, ऊँच नीच और हज़ारों अन्य पाखण्डों ने अपना साम्राज्य जमा लिया था। मदुरा के जैन राजा ने जब शैव प्रचारक तिरुज्ञान के उपदेश से जैन मत त्याग कर शैव मत स्वीकार किया और मदुरा की शेष प्रजा ने जैन मत को छोड़ने से इनकार किया तो राजा ने तिरुज्ञान की सलाह से अनेक जैनों को फाँसी पर लटकवा दिया। धर्म के नाम पर इस तरह के अत्याचार उस समय जैनों और बौद्धों के ऊपर जगह जगह सुनने में आते थे। ऐसी हालत में उन हज़ारों मुसलमान फ़क़ीरों और सूफ़ियों के सिद्धान्तों और उनके चरित्र का भारतीय जनता पर हितकर प्रभाव पड़ना, जो शुरू की सदियों में अधिकतर दक्खिन और पच्छिम में आकर बसे, एक स्वाभाविक घटना थी। अनेक हिन्दू विद्वानों के चित्तों में भी उस समय अपने देश की जटिल धार्मिक स्थिति को सुलझाने की चिन्ता उत्पन्न हुई। एक दूसरे के बाद शङ्कर, रामानुज, निम्बादित्य, वासव, वल्लभाचार्य, माधव इत्यादि अनेक सन्त, महात्मा भारत के दक्खिन में पैदा हुए, जिन्होंने अपने अपने ढङ्ग से

अपने दुखित देशवासियों को फिर से शान्ति, प्रेम और आशा का सन्देश सुनाया।

इसलाम का प्रभाव

शुरू से लेकर ईसा की आठवीं सदी तक भारत में जितने धार्मिक और सामाजिक सुधार के आन्दोलनों ने जन्म लिया, वे प्रायः सब उत्तर ही से शुरू हुए। किन्तु आठवीं सदी के समय से यह एक नई बात देखने में आती है कि इस तरह के आन्दोलनों को जन्म देने का श्रेय उत्तर के स्थान पर अब दक्खिन को मिलने लगा। आठवीं से पन्द्रहवीं सदी तक दक्खिन भारत का यह बडप्पन क़ायम रहा। शङ्कर, रामानुज, निम्बादित्य वासव, वल्लभाचार्य और माधव सब दक्खिन के रहने वाले थे। इसका एक सबब निस्सन्देह यह था कि उन दिनों अधिकांश मुसलमान सन्त, सूफ़ी और दरवेश दक्खिन और पच्छिम मे ही जाकर बसते थे। इन भारतीय आचार्यों के उपदेशों और सिद्धान्तों पर इसलाम की साफ़ छाप दिखाई देती है। एक विद्वान इतिहासज्ञ लिखता है—

"इसलाम के अनुयाइयों की उपस्थिति ने जाति भेद, आत्मिक जीवन और ईश्वर के अस्तित्व इत्यादि विषयों पर लोगों को विचार करने के लिए उत्तेजित किया।"*

इतिहास लेखक बार्थ लिखता है—

"अफ़ग़ानों, तुरकों या उनके सहधर्मी मुग़ल विजेताओं

* "The presence of the followers of Islam stimulated thought on such subjects as caste, spiritual birth and the personality of God"—*Kabir and Kabir Panth*, by H G Westcott, London, 1907, p 45

के इस देश में आने से बहुत पहले ख़िलाफ़त के अरब लोग यात्रियों के रूप में इन तटों पर पहुँच चुके थे और देशवासियों के साथ तिजारत का सम्बन्ध और मेल जोल पैदा कर चुके थे। अब देश के ठीक इन्हीं हिस्सों में नवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक वे ज़बरदस्त धार्मिक तहरीकें शुरू हुईं जो शङ्कर, रामानुज, आनन्दतीर्थ और वासव के नामों के साथ सम्बन्ध रखती हैं। ऐतिहासिक सम्प्रदायों में से अधिकांश इन्हीं तहरीकों से पैदा हुईं और बहुत दिनों तक हिन्दोस्तान में इनसे मिलती जुलती और कोई चीज़ न थी।"*

थोड़ी सी सरसरी तुलना से मालूम हो सकता है कि उस समय के क़रीब क़रीब सब हिन्दू आचार्यों ने अपने समय के इसलाम से काफ़ी विचार लिए।

अब हम आठवीं सदी से लेकर पन्द्रहवीं सदी तक के मुख्य मुख्य भारतीय आचार्यों और महात्माओं के उपदेशों की इसलाम और सूफ़ियों के उपदेशों के साथ थोड़ी सी तुलना करते हैं। हमारा हरगिज़ यह मतलब नहीं है कि इन महात्माओं ने जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, वे सब किसी न किसी रूप में या कम से कम बीज रूप में भारत के उससे पहले के धार्मिक साहित्य में मौजूद न थे, इसमें भी सन्देह नहीं कि ख़ासकर शङ्कर जैसे विद्वानों ने अधिकतर भारत के प्राचीन ज्ञान भण्डार से ही अपनी ज्ञान पिपासा को तृप्त किया और उसी आधार पर अपने शेष देशवासियों को ठीक मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया।

* Barth *Religions of India*

फिर भी नीचे की तुलना से यह स्पष्ट हो जायगा कि कम से कम उस समय इन आचार्यों ने बहुत दरजे तक इसलाम से अपने सिद्धान्तों में सहायता और पुष्टि प्राप्त की, और एक दरजे तक भारत ही के अनेक प्राचीन विचारों ने अरब और ईरान से टक्कर खाकर एक नए वेश और पुनरुज्जीवित रूप मे फिर भारत के अन्दर प्रवेश किया।

सब से पहले हमारा ध्यान शङ्कराचार्य की ओर जाता है। शङ्कराचार्य ने बौद्ध मत के विरुद्ध उस समय की अनेक हिन्दू सम्प्रदायों को मिला कर उन्हें दार्शनिक नीव और एक सुन्दर व्यवस्थित रूप देने का ज़बरदस्त प्रयत्न किया। शङ्कर ने अपने से पहले के हिन्दू धर्म में अनेक नवाचार किए। उसने सब वर्णों के लोगों के लिए सन्यास की दीक्षा को जायज़ क़रार दिया। 'मनुष्य-पञ्चक' मे उसने एक स्थान पर लिखा है—"कोई भी तत्वदर्शी मनुष्य मेरा सच्चा गुरु है, चाहे वह द्विज हो और चाहे चाण्डाल।" वैष्णव और शैव आचार्यों ने अनेक स्थानों पर शङ्कर का कड़ा विरोध किया। शङ्कर का अद्वैतवाद निस्सन्देह भारतीय था, किन्तु उस समय के मुसलमान सूफ़ियों के अद्वैतवाद के साथ उसमें गहरी समानता थी। कम से कम शङ्कर से पहले भारत में किसी ने भी अद्वैतवाद को इस तरह का रूप न दिया था। इसलाम के कठोर एक ईश्वरवाद और शङ्कर के अद्वैतवाद मे भी थोड़ी सी समानता अवश्य है। शङ्कर के समय में इसलाम भारत में पहुँच चुका था। लिखा है कि जिस प्रदेश में शङ्कर का जन्म हुआ था, वहाँ का हिन्दू राजा तक इसलाम मत स्वीकार कर चुका था।*

* Fawcett *Anthropology*, Bulletin, vol III, No I

रामानुज और अन्य आचार्यों के उपदेशों में एक ईश्वरवाद पर ज़ोर, भक्ति का उन्माद, प्रपत्ति, गुरुभक्ति, जातिभेद का ढीलापन, इत्यादि अनेक बातें इसलाम के साथ मिलती हुई हैं। इनमें से अनेक विद्वानों के ग्रन्थों में अनेक मुसलमान सूफ़ियों के ग्रन्थों के साथ कहीं कहीं आश्चर्य-जनक समानता दिखाई देती है।

लिङ्गायत सम्प्रदाय की स्थापना बारवीं सदी के क़रीब हुई। वासव, चन्न वासव और एकान्त रमय्या तीनों आचार्य इस सम्प्रदाय के संस्थापक माने जाते हैं। लिङ्गायत सम्प्रदाय एक शैव सम्प्रदाय है। लिङ्गायत लोग एक ईश्वर (परशिव) को मानते हैं। अपने गुरु 'अल्लमा प्रभु' को वे ईश्वर का अवतार मानते हैं। मुसलमानों के 'चार पीरों' के समान वे भी चार आराध्य मानते हैं। दीक्षा के नियम बिलकुल वैसे ही हैं जैसे सूफ़ियों में। लिङ्गायत लोग जातिभेद को नहीं मानते। पैरिया ठीक उसी तरह उनकी सम्प्रदाय में लिया जा सकता है जिस तरह ब्राह्मण। दोनों में कोई अन्तर नहीं माना जाता। विवाह में कन्या की रज़ामन्दी आवश्यक समझी जाती है। बाल विवाह की मनाही है। तलाक़ की इजाज़त है। विधवाओं को पुनर्विवाह की इजाज़त है। मुर्दे बजाय फूँकने के दफ़न किए जाते हैं। श्राद्ध इत्यादि नहीं किए जाते। लिङ्गायत लोग आवागमन के सिद्धान्त को नहीं मानते। सब लिङ्गधारी एक दूसरे के साथ खा पी सकते हैं, विवाह सम्बन्ध कर सकते हैं। ये लोग अपने को 'जङ्गम' या 'वीर शैव' भी कहते हैं। बेलगाम, बीजापुर और धारवाड़ ज़िलों में ३५ फ़ीसदी और मैसूर और कोल्हापुर रियासतों मे १० फ़ीसदी आबादी लिङ्गायतों की है। निस्सन्देह लिङ्गायतों के सिद्धान्तों में अनेक बातें ऐसी हैं जो इसलाम

में पाई जाती हैं, और उससे पहले की किसी भी भारतीय सम्प्रदाय में नहीं थीं। 'ब्रह्म' और अल्लाह शब्द भी निस्सन्देह एक दूसरे से मिलते हुए हैं।

इसी तरह सिद्धर सम्प्रदाय के लोगों ने एक ईश्वर को माना, आवागमन के सिद्धान्त से इनकार किया, वेद और शास्त्रों के प्रमाण को अस्वीकार किया, मूर्तिपूजा को निन्दनीय ठहराया, जाति भेद को झूठा माना, सत्गुरु की आवश्यकता पर ज़ोर दिया, इत्यादि। इन लोगों के ग्रन्थों में इसलाम के शब्द और सूफ़ियों की परिभाषाएँ स्थान स्थान पर पाई जाती हैं।

मुसलमानों का यहाँ बस जाना

भारतीय जीवन के अनेक पहलुओं पर इसलाम और मुसलमानों के प्रभाव से थोड़ी देर के लिए हट कर अब हम यह देखना चाहते हैं कि मोहम्मद बिन क़ासिम के बाद भारत पर मुसलमानों के कौन कौन से हमले हुए, मुसलमानों की हुकूमत इस देश में किस तरह क़ायम हुई और किस तरह बाहर से आने वाले मुसलमान भी इसी देश में बस गए।

महमूद ग़ज़नवी

सिन्ध पर मोहम्मद बिन क़ासिम के हमले के तीन सौ साल बाद महमूद ग़ज़नवी के हमलों का समय आया। ग़ज़नी के शासक महमूद ने कुछ नगरों को बरबाद किया, कुछ हिन्दू नरेशों के साथ सुलह करके उन्हें सुर-

क्षित छोड़ दिया, कुछ मन्दिरों को लूटा, और कहा जाता है सोमनाथ पर हमला करके वहाँ की मूर्ति को तोड़ा और लूट का बहुत सा माल लेकर ग़ज़नी वापस चला गया। सोमनाथ पर महमूद ग़ज़नवी के हमले की सचाई के विषय में भी प्रामाणिक इतिहासज्ञों में ज़बरदस्त मतभेद है। महमूद के चरित्र के अनेक गुणों की भी अनेक इतिहास लेखक मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।"* किन्तु यह सब बहस हमारे प्रसंग से बाहर है। इसमें सन्देह नहीं कि महमूद की सेना मे हज़ारों सिपाही हिन्दू थे, उसका एक प्रसिद्ध सेनापति हिन्दू था, जिसका नाम तिलक था और जिसने एक बार महमूद के एक मुसलमान सेनापति के विद्रोह को दमन किया था। जो कुछ भी हो महमूद के हमलों का कोई स्थायी असर भारत पर न रह सकता था। महमूद के हमलों का मूल्य ज़्यादा से ज़्यादा एक धन लोलुप आक्रामक के हमलों से अधिक नहीं कहा जा सकता। इस देश पर उसका प्रभाव भी क्षणभङ्गुर था।

मोहम्मद ग़ोरी

सौ साल बाद तुर्कों ने अफ़ग़ानिस्तान के ग़ोरी राजकुल को दबाना और खदेड़ना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप मोहम्मद ग़ोरी को भारत पर हमला करने के लिए क़रीब क़रीब विवश होना पड़ा। मोहम्मद ग़ोरी के समय से पञ्जाब पर भी मुसलमानों का शासन जम गया। मोहम्मद ग़ोरी के भारत आने के समय तक भारत की राजनैतिक अव्यवस्था हद को पहुँच गई थी। तेरहवीं सदी तक उत्तर भारत पर मुसलमानों का राज जम गया।

* *Medieval Hindu India*, by C V Vaidya vol III, p 104 and *History of Medieval India*, by Ishwari Prashad, p 91

राजपूत नरेशों ने अलग अलग ख़ासी वीरता के साथ मुक़ाबला किया। किन्तु उनमें किसी तरह का ऐक्य या नीतिज्ञता बाक़ी न रह गई थी। इसके बाद सौ साल के अन्दर मैसूर तक अधिकांश भारत पर मुसलमानों की हुकूमत क़ायम हो गई।

विदेशी और स्वदेशी

ज़ाहिरा देखने में भारतीय जीवन को एक बार गहरा धक्का पहुँचा। किन्तु जिन मुसलमानों ने बाहर से आकर भारत पर हमला किया वे फिर भारत में बस गए, और भारत ही के होकर रह गए। भारत पर मुसलमानों की हुकूमत क़ायम होने से पहले जो लाखों भारतवासी इसलाम धर्म स्वीकार कर चुके थे, उनके सबब और उस आदर के सबब जो, जैसा हम दिखा चुके हैं, अधिकांश भारतवासियों के चित्त में इसलाम की ओर पैदा हो चुका था, इन बाहर से आने वाले मुसलमानों को भारत के अन्दर बसने और मिल जुल जाने में काफ़ी सुगमता हुई। एक नसल के अन्दर ही वे पूरी तरह भारतवासी बन गए। उन्हें देशवासियों के हित में अपना हित और उनके सुख में अपना सुख दिखाई देने लगा। भारत को उस अन्धकार मय युग में एक प्रधान राजनैतिक शक्ति की आवश्यकता थी। जिन मुसल-मानों ने विदेशी रूप में इस देश पर हमला किया था, उन्होंने स्वदेशी और भारतीय बन कर भारत की इस आवश्यकता को बड़ी सुन्दरता के साथ पूरा किया।

हम कभी किसी भी व्यक्ति या क़ौम के दूसरे व्यक्ति या क़ौम पर हमला करने को जायज़ क़रार नहीं देते। किसी भी विदेशी हमला करने वाले के सामने सिर झुका देना या विदेशी सेना से पराजित हो जाना किसी

भी देश के लिए यशस्कर नहीं कहा जा सकता। किन्तु इसके साथ ही हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि कोई जाति विशेष किसी देश विशेष का ठेका लेकर पृथ्वी पर नहीं उतरी। सच यह है कि बहुत दरजे तक मानव समाज का जातियों या देशों में बटवारा एक कृत्रिम बटवारा है। मानव समाज एक विशाल कुटुम्ब है, जिसका घर पृथ्वी है। आजकल के राष्ट्रीयता के भाव भी जो मानव समाज की आजकल की स्थिति में हर देश के जीवित रहने के लिए एक दरजे तक आवश्यक प्रतीत होते हैं, वास्तव में एक अनिवार्य रोग ही हैं। इस विषय को अधिक विस्तार देना भी हमारे इस समय के प्रसङ्ग से बाहर है। फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे कि कोई मनुष्य किसी देश के अन्दर विदेशी केवल उस समय तक ही कहा जा सकता है, जब तक कि वह उस देश की सीमाओं मे बाहर किसी दूसरे देश को अपना घर मानता हो, या उस पहले देश से धन बटोर कर दूसरे देश को ले जाता हो। किन्तु जिस समय कोई मनुष्य किसी देश को अपना घर बना लेता है, वहीं पर बस जाता है, देशवासियों के सुख में अपना सुख और दुख में अपना दुख समझने लगता है, तो फिर चाहे वह किसी भी धर्म का मानने वाला हो, अच्छे आचरण का हो या बुरे आचरण का, उसे विदेशी नहीं कहा जा सकता।

अंगरेज़ों के आने से पहले तक अधिकांश समय में अफ़ग़ानिस्तान भारत का एक प्रान्त था। फिर भी यदि अफ़ग़ानिस्तान को भारत से बाहर मान लिया जाय तो महमूद ग़ज़नवी के हमले भारत पर विदेशी हमले थे। मुहम्मद बिन क़ासिम का सिन्ध पर हमला निस्सन्देह विदेशी हमला था। मोहम्मद ग़ोरी का भारत पर हमला भी विदेशी हमला था। किन्तु जो

मुसलमान ईरान या अफ़ग़ानिस्तान से आकर एक बार भारत में बस गए, उनकी हुकूमत किसी तरह विदेशी हुकूमत नहीं कही जा सकती। तेरवीं सदी के अन्त से लेकर सोलवीं सदी के शुरू तक ढाई सौ साल का समय लगातार संग्रामों का समय था। इसके बाद भारत पर केवल मुग़लों का हमला बाक़ी रह जाता है। जिस बाबर ने तुर्किस्तान से आकर भारत पर हमला किया वह विदेशी था। पानीपत के मैदान में सन् १५२६ ईसवी में स्वदेशी और भारतीय इब्राहीम लोधी ने विदेशी बाबर का मुक़ाबला किया। इब्राहीम लोधी हार गया। बाबर हिन्दोस्तान में बस गया। मुग़ल साम्राज्य भारत में क़ायम हो गया।

मुग़ल साम्राज्य से भारत को क्या लाभ हुआ या क्या हानि हुई, यह एक दूसरे स्थान का विषय है। यहाँ पर हमें केवल यह दिखाना है कि जिस तरह इसलाम एक बार भारत में आकर भारत की अनेक सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय बन गया, उसी तरह मुसलमान हमलेआवर एक बार भारत में बस कर अन्य भारतवासियों के समान भारतवासी बन गए। भारत पर मुसलमानों के शासन के समय की बेशुमार मिसालें इस बात की मिलती हैं जब कि भारत के मुसलमान शासकों ने बाहर से हमला करने वाले मुसलमानों का वीरता के साथ मुक़ाबला किया, या स्वयं भारत की सीमा से बाहर निकल कर बाहर के मुसलमान देशों को विजय किया, उन्हें अपने भारतीय साम्राज्य का एक अंग बनाया और कभी कभी भारत के हिन्दू नरेशों को वहाँ का शासक नियुक्त किया।

अपने धार्मिक विचारों के सबब से भी कोई मनुष्य किसी देश में विदेशी नहीं कहा जा सकता। धार्मिक आज़ादी हर सभ्य देश का एक आवश्यक

गुण है, और भारत ने अपने पिछले हज़ारों साल के इतिहास मे इस गुण को अन्य देशों की अपेक्षा ख़ासी सुन्दरता के साथ निबाहा है।

यदि स्वदेशी और विदेशी की इस परिभाषा को स्वीकार न किया जाय तो भारत, इंगलिस्तान, जरमनी, फ़ान्स या संसार का कोई भी देश इस समय ऐसा नही है, जो पूरी तरह विदेशियों से बसा हुआ न हो। फिर न इंगलिस्तान के एङ्गलो सेक्सन वहां के असली बाशिन्दे माने जा सकते है और न जर्मनी या हिन्दोस्तान के 'आर्य' जिन्हें अपने देशों का इस समय ख़ासा गर्व है। सच यह है कि जिस बाबर ने पानीपत में इब्राहीम लोधी को परास्त किया वह बाबर विदेशी था, किन्तु जिस बाबर ने दिल्ली मे अपना साम्राज्य क़ायम करके तातार और ईरान से अपना सम्बन्ध सदा के लिए तोड कर भारत को अपना देश बना लिया वह बाबर भारतवासी था। बाद के मुग़ल सम्राटों मे से किसी सम्राट की किसी नीति विशेष का कोई नतीजा चाहे भारत के लिए हितकर रहा हो या अहितकर, चाहे सम्राट अकबर के समान उनमे से किसी ने हिन्दू और मुसलमानों को एक दृष्टि से देखा हो, या चाहे औरङ्गज़ेब के समान किसी तरह के भी भेद भाव द्वारा अपने शासन को बदनाम किया हो, फिर भी वे सब सम्राट भारतवासी थे और उनका साम्राज्य स्वाधीन भारतीय साम्राज्य था।

मानव धर्म

हम फिर भारत की उस समय की धार्मिक लहरों की ओर आते है। रामानुज के धार्मिक विचारों और उसके भक्तिमार्ग को दक्खिन से

गोस्वामी तुलसीदास

[श्री बहादुर सिंह जी सिंघी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, नवाब मुर्शिदाबाद के यहां की एक फ़ारसी हस्त लिखित रामायण के समकालीन चित्र से]

उत्तर में लाकर उनके प्रचार करने का कार्य रामानन्द ने किया। रामानन्द ने विष्णु के स्थान पर राम की भक्ति का उपदेश दिया और हर जाति के लोगों को अपनी सम्प्रदाय में शामिल किया। मैकॉलिफ़ लिखता है कि—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि बनारस में विद्वान मुसलमानों के साथ रामानन्द की भेंट हुई।' रामानन्द के शिष्यों और अनुयाइयों में अनेक मुसलमान भी थे। दो नाम उसके शिष्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं, एक तुलसीदास और दूसरा कबीर। गोस्वामी तुलसीदास की रामायन सारे उत्तर भारत में प्रसिद्ध है। तुलसीदास का मोहावरा अवधी है। फिर भी संस्कृत, फ़ारसी, और अरबी तीनों के शब्द भण्डारों से अपनी पुस्तक को अलंकृत कर एक ऐसी सरल और सर्वप्रिय हिन्दोस्तानी भाषा को रचने का श्रेय गोस्वामी तुलसीदास को प्राप्त है जिसमें ऊँचे से ऊँचा साहित्य लिखा जा सका। हिन्दोस्तानी ज़बान के बनाने वालों में गोस्वामी तुलसीदास का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

कबीर

निस्सन्देह कबीर की शुमार भारत के महान से महान तत्वदर्शियों, धर्माचार्यों और समाज सुधारकों में की जानी चाहिए। कबीर एक अत्यन्त स्वतन्त्र विचार का महापुरुष था। वह मत मतान्तरों के भेद और हर तरह के कर्मकाण्ड और रूढ़ियों का कट्टर विरोधी था। हिन्दुओं और मुसलमानों की एकता का इस देश के अन्दर वह सब से पहला प्रचारक और सब से महान समर्थक था। उसका जन्म सन् १३९८ ईसवी में हुआ और मृत्यु सन् १५१८ ईसवी में। कहा जाता है कि कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। बनारस के एक मुसलमान जुलाहे नीरू और

उसकी स्त्री ने कबीर का पालन पोषण किया। बनारस में रह कर कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों मतों के सिद्धान्तों से पूरी तरह परिचित हो गया। मोहसिन फ़ानी लिखता है कि कबीर ने लड़कपन ही में अनेक हिन्दू और मुसलमान विद्वानों और सन्तों से भेंट की। बहुत दिनों वह जौनपुर, झूँसी इत्यादि मे शेख़ तक़ी और अन्य मुसलमान सूफ़ियों और पीरों के के साथ रहा, जिनका ज़िक्र कबीर साहब ने अपनी रमैनी में किया है। इसके बाद कबीर ने बनारस में अपना सत्सङ्ग शुरू कर दिया। कबीर के विचार इतने स्वतन्त्र थे कि शुरू में मुसलमान मौलवी और हिन्दू पण्डित दोनों उससे बेहद नाराज़ हुए। इन लोगों ने हर तरह से कबीर को कष्ट पहुँचाने और दिक़ करने की कोशिश की। अन्त में हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियों में से कबीर के हज़ारों अनुयायी हो गए। जीवन भर कबीर ने अपने पिता का काम यानी कपड़े बुनने का धन्धा नहीं छोड़ा। हिन्दुओं मे यह एक बात सदा से प्रसिद्ध रही है कि काशी में मरने से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। इसके विपरीत कहा जाता है कि गोरखपुर से १५ मील पच्छिम मे मगहर मे मरने वाले को गधे की योनि में जन्म लेना पड़ता है। कबीर ने अन्त समय निकट आने पर जान बूझ कर इस प्राचीन अन्ध-विश्वास की अवहेलना प्रकट करने के लिए काशी से मगहर के लिए प्रस्थान किया और मगहर ही में अपने हज़ारों हिन्दू और मुसलमान अनुयाइयों की मौजूदगी मे चोला छोड़ा। कहा जाता है कि कबीर के मरने के बाद उसके कुछ हिन्दू और मुसलमान अनुयाइयों में झगड़ा हुआ, हिन्दू उसे हिन्दू कहते थे और उसके शरीर को जलाना चाहते थे, मुसलमान उसे मुसलमान मान कर दफ़न करना चाहते थे।

कबीर हिन्दुओं के वर्णाश्रम धर्म या जातिभेद का कट्टर विरोधी था। वेदों, शास्त्रों या कुरान में से किसी को भी वह निर्भ्रान्त या हर बात में प्रमाण न मानता था। सूफ़ियों के समान प्रेम, इश्क़ या भक्ति उसका मुख्य धर्म था। अपनी रमैनी, शब्दों और साखियों के ज़रिए उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक समान धर्म का उपदेश दिया, निर्भीकता के साथ दोनों मतों की रूढ़ियों का एक समान खण्डन किया, और प्राणि-मात्र के साथ प्रेम और एक ईश्वर की भक्ति का सबको एक समान उपदेश दिया।

कबीर ने हिन्दू मत और इसलाम दोनों में से सामान्य सच्चाइयों को एक समान ग्रहण किया। संस्कृत और फ़ारसी, उर्दू और हिन्दी, चारों भाषाओं के शब्दों का अपने पद्यों में उसने एक समान उपयोग किया।

हिन्दू और मुसलमान धर्मों की झूठी पृथकता पर दुख प्रकट करते हुए, दोनों को एक सार्वजनिक धर्म दर्शाते हुए और दोनों को प्राणिमात्र पर दया का उपदेश देते हुए, कबीर कहता है—

भाई रे दुइ जगदीश कहाँ ते आया, कहु कौने बौराया।
अल्लाह राम करीमा केशव, हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना, यामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापे, एक निमाज एक पूजा॥
वही महादेव वही महम्मद, ब्रह्मा आदम कहिए।
को हिन्दू को तुरक कहावे, एक जिमी पर रहिए॥
वेद कितेब पढ़े वै कुतुबा, वै मुलना वै पांड़े।
बेगर बेगर नाम धराए, एक मिट्टी के भाँड़े॥

कहहिं कबीर वै दूनों भूले, रामहिं किनहु न पाया।
वै खस्सी वै गाय कटावें, बादिहि जन्म गमाया॥

अर्थ—हे भाई दो ईश्वर कहाँ से आगए! तुम्हें किसने बहका दिया? अल्लाह और राम, करीम और केशव, हरि और हज़रत, एक ही स्वर्ण के बने आभूषणों के अलग अलग नाम हैं। इनमें दुई का भाव नहीं है। कहने सुनने को तुमने दो दो नाम रख लिए हैं—एक नमाज़ और एक पूजा। वही महादेव है और वही मोहम्मद, वही ब्रह्मा है और वही आदम। हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं, दोनों एक ज़मीन पर रहते हैं। एक वेद पढ़ते हैं और दूसरे कुरान पढ़ते हैं। एक मौलाना कहलाते हैं और दूसरे पण्डित। ये सब अलग अलग नाम धर लिए हैं वास्तव में सब एक ही मिट्टी के बरतन हैं। कबीर कहता है, ये दोनों भूले हुए हैं। इनमें से किसी ने राम को नही पाया। एक बकरा काटते हैं और दूसरे गाय काटते हैं—दोनों वृथा जन्म खोते हैं।

कबीर कहता है—

हिन्दू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्त का पूतला, गैबी खेले माहिं॥

अर्थ—मैं न हिन्दू हूँ और न मुसलमान, मैं पञ्च तत्वों का बना हुआ पुतला हूँ जिसके अन्दर ग़ैबी (आत्मा) क्रीडा करता है।

कबीर के उपदेशों पर मुसलमान सूफ़ी फ़क़ीरों के उपदेशों का प्रभाव बिलकुल साफ़ दिखाई देता है। हिन्दुओं में कबीर से पहले का कोई ऐसा महात्मा न था जिसका वह अनुसरण करता; इसलिए उसके लिए मुसलमानों का अनुसरण स्वाभाविक और अनिवार्य था। फ़रीदुद्दीन अत्तार के पन्दनामे

और जलालुद्दीन रूमी और शेख़सादी शीराज़ी की कविताओं से कबीर निस्सन्देह भली भाँति परिचित था। कबीर के पद्यों में इन महापुरुषों और दूसरे सूफ़ियों के उपदेशों की बार बार झलक आती है। कबीर का नीचे लिखा पद्य —

जब तू आयो जगत में, जगत हँसे तू रोय।
अब तो ऐसी कर चलो, तू हाँसे जग रोय॥

शेख़सादी के इस मशहूर पद्य का साफ़ भाषान्तर है—

याद दारी के वक़्ते ज़ादने तो,
हमा ख़न्दाँ बुदन्दो तू गिरियाँ।
आँचुनाज़ी के बाद मुर्दने तो,
हमा गिरियाँ शवन्दो तू ख़न्दाँ॥

इसी तरह की और भी अनेक मिसालें कबीर के पद्यों से दी जा सकती हैं। कबीर के पद्यों में फ़ारसी और अरबी के शब्द और सूफ़ियों की उपमाएँ और उनके अलङ्कार इधर से उधर तक भरे पड़े हैं। अहमदशाह ने कबीर के बीजक में हबीब, महबूब, आशिक़, माशूक़, मुसाफ़िर, मुक़ाम, हाल, जमाल, जलाल, साक़ी, शराब, क़हर, मेहर, ग़ैबत, हुज़ूर, हैरत, नासूत, मलकूत, जबरूत, लाहूत, हाहूत, हक़ इत्यादि, इस तरह के दो सौ से ऊपर अरबी और फ़ारसी के शब्द चुने हैं, जिन्हें कबीर ने ठीक उन्हीं माइनों में उपयोग किया है जिनमें सूफ़ियों ने, और जिनसे साफ़ मालूम होता है कि कबीर अपने विचारों और उपदेशों के लिए मुसलमान सूफ़ियों का किस दरजे आभारी था।

कबीर ने संस्कृत की निस्बत भाषा में अपने पद्यों को लिखना पसन्द

किया। उसका उद्देश आम जनता तक अपने विचारों को फैलाना था। कबीर ने अपनी साखी में एक जगह पर लिखा है—

संस्किरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।

अर्थ—संस्कृत कुएँ का पानी है, किन्तु भाषा (हिन्दी) बहती हुई नदी के समान है।

कबीर के पद्यों में कहीं संस्कृत भरी हिन्दी और कहीं फ़ारसी भरी उर्दू, दोनों मिलती हैं। कबीर ने ईश्वर के लिए जगह जगह—राम, हरी, गोविन्द, ब्रह्म, समरथ, साईं, सत्पुरुष, रँगरेजवा, बेचूँ (अनिर्वचनीय), अल्लाह और ख़ुदा—सब शब्दों का उपयोग किया है; किन्तु ईश्वर के लिए उसका सब से प्यारा नाम "साहेब" है। कबीर को इस बात का दावा है कि उसने "तुममे और मुझमे" प्राणिमात्र में, और सब पदार्थों में व्यापक "ज़ाते पाक" का साक्षात दर्शन किया था। सूफ़ियों के समान ही कबीर ने स्थान स्थान पर ख़ुदा को 'नूर' बतलाया है और हर चीज़ को ख़ुदा माना है। रमैनी मे बदरुद्दीन शहीद, इब्न सीना और जिली के अनेक पद्यों का बिलकुल तरजुमा सा दिखाई देता है। सूफ़ियों ही के समान कबीर ने गुरु को गोविन्द बतलाया है और अपनी साखी मे लिखा है—

हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर।

अर्थ—यदि हरि नाराज़ हो जाय तब भी कुछ बचत हो सकती है, किन्तु यदि गुरु नाराज़ हो जाय तब फिर कोई बचत नहीं। कबीर का यह पद्य मौलाना रूम के एक पद्य का तरजुमा मालूम होता है।

कबीर ने गुरु को 'सिकलीगर' लिखा है। कबीर प्रेम का परम विश्वासी

था। वह लिखता है कि—एक प्रेम समस्त संसार में व्यापक है। ईश्वर की खोज के विषय में वह लिखता है—

मोको कहाँ ढूंढ़े बन्दे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में॥
खोजी होय तो तुरते मिलिहों, पल भर की तालास में।
कहें कबीर सुनो भई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥

अर्थ—ऐ बन्दे! तू मुझे कहाँ ढूँढ़ता है? मैं तेरे पास हूं। मैं न मन्दिर मे हूँ न मसजिद में, न काबे में हूं न कैलाश मे। यदि तू सच्चा खोजी है तो मैं तुरन्त एक पल भर की खोज मे तुझे मिल जाऊँगा। कबीर कहता है—हे साधो! सुनो, साहेब सब के प्राणों का प्राण है।

सूफ़ियों की तरह कबीर ने लोगों को इश्क़ की शराब पीने की दावत दी है। अभ्यास द्वारा ब्रह्मत्व की ओर रूह की यात्रा को कबीर ने ठीक उन्हीं शब्दों मे बयान किया है जिन शब्दों में कबीर से पाँच सौ साल पहले मनसूर ने बयान किया था। अपनी पुस्तक 'दस मुक़ामी रेख़्ता' मे कबीर ने हज़रत मोहम्मद के मेराज के क़िस्से को अपने ढङ्ग से बयान किया है।

वास्तव मे कबीर ने भारत का ध्यान एक ऐसे सार्वजनिक धर्म की ओर दिलाया जो न हिन्दू था, न मुसलमान। इसीलिए उसने हिन्दू और मुसलमान दोनों के अलग अलग कर्मकाण्डों, दोनों के मतभेदों, दोनों के धार्मिक ग्रन्थों की निर्भ्रान्तता इत्यादि की अत्यन्त कड़े से कड़े शब्दों में निर्भीकता के साथ आलोचना की है। ब्राह्मणों के प्रभुत्व, जात पाँत और छुआछूत का वह कट्टर विरोधी था ही। राम शब्द को उसने ईश्वर के अर्थों

में उपयोग किया है, किन्तु उसने साफ़ लिखा है कि उसका राम दशरथ का पुत्र राम नहीं है। वह लिखता है—

सिरजनहार न व्याही सीता, जल पषाण नहिं बन्धा।

यानी—सिरजनहार ने सीता से विवाह नहीं किया था और न उसने समुद्र के ऊपर पत्थरों का पुल बाँधा।

कबीर ने अनेक स्थान पर दसों अवतारों का खण्डन किया है। वह ईश्वर के विषय में कहता है —

दशरथ कुल अवतरि नहिं आया, नहिं लङ्का के राव सताया।
नहीं देवकी गर्भहि आया, नहीं यशोदा गोद खेलाया।
पृथ्वी रवन धवन नहिं करिया, पैठि पताल नाहिं बलि छलिया।
नहिं बलिराज सो माँडल रारी, नहिं हरनाकुश बधल पछारी।
बराह रूप धरणि नहिं धरिया, छत्री मारि निछत्री नहिं करिया।
नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया, नहिं ग्वालन सँग बन बन फिरिया।
गण्डकि शालिग्राम नहिं कूला, मच्छ कच्छ होय नहिं जल डोला।
द्वारावती शरीर नहिं छाँड़ा, ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा।

जात पाँत और छुआछूत के विषय में कबीर ने कहा है—

गुन प्रकट है एकै दूधा, का को कहिए ब्राह्मण शूद्रा।
झूठे गर्भ भूलो मति कोई, हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई।
और के छिये लेत हो छींछा, तुमसों कहहु कौन है नीचा।

कबीर ने आवागमन के मोटे रूप का जिस तरह आम हिन्दू मानते हैं खण्डन किया है; इस विषय में उसके विचार काफ़ी गूढ़ और गहरे हैं।

सारांश यह कि कबीर ने क़ुरान और मोहम्मद साहब में अन्धविश्वास, हज्ज, रोज़े और नमाज़ इत्यादि का मज़ाक़ उड़ाते हुए मुसलमानों को समस्त रूढ़ियाँ छोड़ देने का उपदेश दिया है, हिन्दुओं को उसने उतने ही ज़ोर के साथ जात पाँत, मूर्तिपूजा, अवतार, और छुआछूत और वेद और शास्त्रों में अन्धविश्वास छोड़ देने की सलाह दी है, दोनों को उसने प्राणि-मात्र पर दया रखने, सबको एक ख़ुदा की औलाद और भाई भाई समझने, अहङ्कार त्यागने और सब की सेवा करने का उपदेश दिया। कबीर के नीचे लिखे पद्य इस विषय में याद रखने योग्य हैं—

पूरब दिशा हरी को बासा, पच्छिम अलह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहि माँ खोजो, इहै करीमा रामा॥

जेते औरत मर्द उपानी, सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगरा अलह राम का, सो गुरु पीर हमारा॥

हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु सोइ लखाई।
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहूँ खुदाई॥

हिन्दू कहें राम मोहि प्यारा, तुरुक कहें रहिमाना।
आपस में दोउ लरि लरि मूए, मर्म न काहू जाना॥

यानी— लोग कहते हैं हरि पूरब मे रहता है और अल्लाह पच्छिम मे, लेकिन कबीर कहता है अपने दिल के अन्दर खोजो, वहीं करीम है और वही राम है।

जितने पुरुष और स्त्री रचे गए हैं सब तुम्हारा ही रूप है, कबीर अल्लाह का और राम का बेटा है, वही कबीर का गुरु और पीर है।

हिन्दू और तुरुक की एक ही राह है, जो सत्गुरु ने बताई है, कबीर कहता है, सुनो भाई सन्तो! राम और ख़ुदा में कोई भेद नहीं है।

हिन्दू राम कहते हैं, मुसलमान रहीम कहते हैं। आपस में दोनों लड लड कर मरते हैं, मर्म को कोई नहीं जानता।

कबीर पहला भारतवासी था, जिसने हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए बल्कि समस्त मानव जाति के लिए एक सामान्य धर्म का निर्भीकता के साथ प्रतिपादन किया। उसके अनुयाइयों में हज़ारों हिन्दू और मुसलमान शामिल थे। अभी तक कबीरचौरा (काशी) में कबीर के हिन्दू अनुयायी और मगहर में कबीर के मुसलमान अनुयायी हर साल जमा होकर कबीर की याद में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं। कबीरपन्थियों की संख्या इस समय शायद दस लाख से अधिक नहीं है, किन्तु कबीर का प्रभाव इससे कहीं अधिक है, और पञ्जाब, गुजरात, बङ्गाल और दक्खिन तक फैला हुआ है। मुग़ल साम्राज्य के दिनों कबीर के विचार बराबर फैलते गए, यहाँ तक कि दूरदर्शी सम्राट अकबर ने 'दीने इलाही' के रूप में उन्हें सर्वस्वीकृत कराने की कोशिश की। वास्तव में कबीर ही अकबर का मानसिक पिता था। विधि ने या देश के भीतर तथा बाहर की परिस्थिति ने कबीर और अकबर को पूरी तरह सफल न होने दिया, किन्तु भारत की अन्तरात्मा भीतर से पुकार रही है—यदि सत्य है तो यही है, और यदि भविष्य के लिए कोई मार्ग है तो केवल यही है।

कबीर के विचारों की मौलिकता और महानता के कारण कबीर के

समय से फिर एक बार उत्तर ने धार्मिक विचारों के क्षेत्र में शेष भारत का नेतृत्व हाथ में लिया और कबीर ही के विचार अनेक सन्तों और महात्माओं द्वारा एक बार उत्तर से दक्खिन तक समस्त भारत में फैलने लगे।

पञ्जाब के मुसलमान फ़क़ीर

जिस तरह शुरू की सदियों में दक्खिन भारत, उसी तरह पन्द्रवीं सदी में समस्त पञ्जाब के नगर और गाँव मुसलमान सूफ़ियों और फ़क़ीरों से भरे हुए थे। पानीपत, सरहिन्द, पाकपट्टन, मुलतान और उच्छ में अनेक प्रसिद्ध सूफ़ी शेख़ों ने अपनी ज़िन्दगियाँ गुज़ारीं, जिनमें बाबा फ़रीद, अला उलहक़, जलालुद्दीन बुख़ारी, मख़दूम जहानियाँ, शेख़ इसमाइल बुख़ारी, दाता गञ्जबख़्श इत्यादि के नाम अपनी सच्चाई और ईश्वरभक्ति के लिए देश भर में प्रसिद्ध थे। जो ज़बरदस्त क्रान्ति इन महात्माओं ने देश-वासियों के विचारों में उत्पन्न की, उसी का फल या फूल गुरु नानक का वह सुन्दर प्रयत्न था जो उस महापुरुष ने ठीक कबीर ही के समान और उसी की सरणी पर हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने के लिए किया।

नानक

गुरु नानक का जन्म सन् १४६६ ईसवी में वैशाख शुक्ला तृतीया को हुआ था। उसने फ़ारसी और संस्कृत दोनों की शिक्षा पाई थी। नानक नाम उन दिनों हिन्दू और मुसलमान दोनों का नाम होता था। कुछ दिनों उसने नवाब दौलत ख़ाँ लोधी के यहाँ नौकरी की। तीस साल की आयु में उसने फ़क़ीरी ली। अपने मुसलमान शिष्य मरदाना के साथ उसने भारत, लङ्का, ईरान, अरब इत्यादि की यात्रा की। लिखा है कि पानीपत के शेख़ शरफ़, मुलतान के पीरों, बाबा फ़रीद के उत्तराधिकारी

शेख़ ब्रह्म (इब्राहीम) इत्यादि सूफ़ियों के साथ उसने बहुत दिनों तक धर्म चर्चा किया। कबीर के समान नानक के मरने पर भी उसके हिन्दू और मुसलमान शिष्यों में झगड़ा हुआ। अन्त में हिन्दुओं ने उसकी स्मृति में एक समाधि बनाई और मुसलमानों ने एक अलग क़ब्र, किन्तु दोनों इमारतें रावी की बाढ़ में आकर बह गईं।

नानक का धर्म भी एकता और प्रेम का धर्म था, उसकी सम्प्रदाय में भी हिन्दू और मुसलमान दोनों शामिल हुए। नानक मक्के पहुँचा। वहाँ पर मोहम्मद साहब के समान उसने एक ख़ुदा का प्रतिपादन किया और अपने को उसका 'ख़लीफ़ा' बताया—

ला इलाह इललल्लाह, गोविन्द नानक खलफ़ल्लाह।*

यानी अल्लाह केवल एक है, वही गोविन्द है, नानक उसका ख़लीफ़ा है।

नानक के पदों में भी संस्कृत, फ़ारसी और अरबी तीनों भाषाओं के पदों की भरमार है। दोनों धर्मों की पृथकता को मिथ्या बताते हुए उसने लिखा—

बन्दे इक ख़ुदाय दे, हिन्दू मूसलमान,
दावा राम रसूल कर, लड़दे बेईमान।

ना हम हिन्दू ना मूसलमान,
दोनों बिच्च बसे शैतान।
एकै, एकी, एक सुभान,

* गुरु नानक की जन्मसाखी, न० ३६ पाकनामा।

गुरु जी कहिया सुन अब्दुर्रहमान।
दावा भूलो ताँ इक पिछान।

हिन्दू जपते राम राम, मूसलमान खुदाय,
इको राम रहीम है, मन में देखो लाय।

यानी—हिन्दू मुसलमान दोनों एक ख़ुदा के बन्दे हैं, किन्तु दोनों बेईमान, एक राम का और दूसरा रसूल का, झूठा दावा करके लड़ते हैं।

हम न हिन्दू है और न मुसलमान, इन दोनों के दिलों में शैतान बसा है। गुरु नानक कहते हैं, ऐ अब्दुर्रहमान! सुनो, ईश्वर एक ही है, मत मतान्तरों की हठ छोड़ दो, तब उस एक ईश्वर को पहचान सकोगे।

हिन्दू राम राम जपते हैं, मुसलमान ख़ुदा कहते हैं, किन्तु यदि अपनी आत्मा के अन्दर ध्यान से देखोगे तो मालूम होगा कि राम और रहीम एक ही हैं।

एक दूसरे स्थान पर—

तग्ग न हिन्दू पाइया, तग्ग न मूसलमान।
दोए भूले राह ते, ग़ालिब भया शतान॥

जित दर लक्ख मोहम्मदाँ, लख ब्रह्मा बिश्न महेश।
लख लख राम वडीरिएँ, लख राहें लख वेश।

यानी— मार्ग न हिन्दू को मिला और न मुसलमान को—दोनों मार्ग से भटक गए, दोनों पर शैतान ग़ालिब हो गया।

मालिक के दर पर लाखों मोहम्मद, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और राम खड़े लाखों तरीक़े से स्तुति करते रहते हैं।

मोहम्मद साहब की तरह नानक ने भी ईश्वर की इच्छा पर अपने आपको पूरी तरह छोड़ देने का उपदेश दिया।

गङ्गास्नान, तीर्थयात्रा, जप, पूजा पाठ इत्यादि को नानक ने फ़ज़ूल बताया, अठारह पुराण और चारों वेदों को निरर्थक बतलाया, प्रतिमा पूजा का विरोध किया, कबीर के समान राम के अवतार का खण्डन किया, और जाति भेद को मिथ्या और हानिकर बताया।

ऊँच नीच के विचार के विरुद्ध नानक ने कहा है—

ज़ोर न कीजे किसी पर, उत्तम मधम न कोय,
हिन्दू मुसलमान नूं, दोहाँ नसीहत होय।

नीचाँ अन्दर नीच ज़ात, नीचे हों अत नीच,
जित्थे नीच सम्हालिए, उत्थे नज़र तेरी बख़शीश।

नीचाँ अन्दर नीच ज़ात, सतगुरु रहे बोलाय।

यानी—किसी पर ज़बरदस्ती नहीं करनी चाहिए, कोई ऊँच नीच नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों को यही नसीहत है।

ईश्वर की बख़शीश उन्हीं को मिलेगी जो नीचों से भी नीच को, और सब से अति नीच को अपनाते हैं।

सतगुरु उन्हें बुलाते हैं, जो नीच से भी नीच जाति के समझे जाते हैं।

मुसलमानों को उपदेश देते हुए नानक ने कहा—

गुरु नानक

मेहर मसीत, सिद्दक मुसल्ला, हक़ हलाल कुरआन,
शर्म सुन्नत, सील रोज़ा, होय मूसलमान।
करनी काबा, सच्च पीर कलमा करम नेवाज़,
तसबीह सातिश भावसी नानक रक्खे लाज।

यानी—दया को अपनी मसजिद बना, सच्चाई का मुसल्ला बना, इन्साफ़ को अपनी क़ुरान बना, विनय को ख़तना समझ, सुजनता का रोज़ा रख, तब तू सच्चा मुसलमान होगा। नेक कामों को अपना काबा बना, सच्चाई को अपना पीर बना, परोपकार को कलमा समझ, ख़ुदा की मरज़ी को अपनी तसबीह, तब ऐ नानक! ख़ुदा तेरी लाज रक्खेगा।

ठीक इसी तरह का उपदेश नानक ने हिन्दुओं को भी दिया।

संयम और सदाचार पर नानक ने बहुत अधिक ज़ोर दिया है। अन्य सूफ़ियों के समान नानक ने आत्मा की उन्नति के लिए गुरु को परमावश्यक बताया है। सूफ़ियों की शरीयत, मारफ़त, उक़वा और लाहूत के मुक़ाबले में नानक ने धर्मखण्ड, ज्ञानखण्ड, कर्मखण्ड और सचखण्ड का उपदेश दिया। इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि नानक सूफ़ी साहित्य से पूरी तरह परिचित था। उस साहित्य का उसने अपने पद्यों में भरपूर उपयोग किया और उसी के आधार पर हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक मालिक और एक मार्ग का उपदेश दिया।

मुग़ल साम्राज्य के अन्त के दिनों में, उस समय की शोकजनक परिस्थिति में नानक के अनुयाइयों ने बेहद पलटा खाया। वे नानक के सार्वभौम सिद्धान्तों के अनुरूप न चल सके। किन्तु संसार के अधिकांश

महापुरुषों के सिद्धान्तों की उनके अनुयाइयों द्वारा उनके बाद इसी तरह अवहेलना होती रही है।

अन्य हिन्दू सन्त

कबीर और नानक के अलावा धन्ना जाट, पीपा, सेना नाई और रैदास चमार इत्यादि महात्माओं के उपदेश भी ठीक इसी ढङ्ग के हैं। इन सबके पद्यों और उपदेशों में सूफ़ी विचार, सूफ़ी शब्द और हिन्दू और इसलाम धर्मों की एकता का ज़िक्र है। रैदास ने एक स्थान पर राम के अवतार से साफ़ इनकार किया, उसके कोई कोई पद्य फ़ारसी भाषा में भी हैं। रैदास ने ईश्वर को "सुलतानों का सुलतान" और अपने को उसका "शिकस्ता बन्दा" बताया है, मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा, जात पाँत इत्यादि का इन सब ने विरोध किया है।

दादू

कबीर के अन्य अनेक शिष्य देश के अनेक भागों में प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक मशहूर नाम अकबर के समय में दादू का था। कहते हैं कि सम्वत् १६४२ में दादू की मुलाक़ात फ़तेहपुर सीकरी में सम्राट अकबर के साथ हुई जिसमें अकबर ने सवाल किया कि ख़ुदा की ज़ात, अंग, वजूद और रंग क्या है। दादू ने जवाब दिया—

> इसक अलह की जाति है, इसक अलह का अंग।
> इसक अलह औजूद है, इसक अलह का रंग॥

यानी—प्रेम (इश्क़) अल्लाह की जाति है, प्रेम ही उसका शरीर है, प्रेम ही उसका अस्तित्व है, और प्रेम ही उसका रंग है।

दादू के पाँच हज़ार पद्यों में से अनेक उर्दू में और कोई कोई अशुद्ध फ़ारसी में हैं, मसलन्—

बे मेहर गुमराह ग़ाफ़िल गोश्त ख़ुरदनी,
बे दिल बदकार आलम हयात मुरदनी।

या—

कुल आलम यके दीदम अरवाहे इख़लास,
बद अमल बदकार दुई पाक यारां पास।

दादू ने भी शरीयत और मारिफ़त इत्यादि पर दरजे बदरजे ज़ोर दिया है। दादू लिखता है—

हौद हजूरी दिल ही भीतर, गुस्ल हमारा सारं।
उजू साजि अलह के आगे, तहाँ निमाज गुजारं॥
काया मसीत करि पञ्चजमाती, मन ही मुला इमामं।
आप अलेख इलाही आगे, तहँ सिजदा करै सलामं॥
सब तन तसबी कहै करीमं, ऐसा करले जापं।
रोज़ा एक दूर करि दूजा, कलमा आपै आपं॥
अठे पहर अलह के आगे, इकटग रहिवा ध्यानं।
आपै आप अरस के ऊपर, जहाँ रहै रहमानं॥

यानी—ऐ दादू, मालिक की मौजूदगी का तालाब दिल के अन्दर है, उसी तालाब में मैं स्नान करता हूँ, अल्लाह के सामने वज़ू करके वहीं पर मैं नमाज़ पढ़ता हूँ।

दादू का शरीर उसकी मसजिद है, जमात के पञ्च उसके मन के अन्दर

हैं, वहीं पर उसका मुल्ला इमाम है, अलख ईश्वर को सामने खड़ा करके वहीं पर वह सिजदा करता है और सलाम करता है।

दादू अपने समस्त शरीर को तसबीह (माला) बना कर उस पर 'करीम' का नाम जपता है, उसका केवल एक रोज़ा है और वह स्वयं अपना 'कलमा' है।

इस तरह दादू अल्लाह के सामने एकाग्र होकर आठ पहर खड़ा रहता है और अर्श के ऊपर 'रहमान' के रहने की जगह पहुंच जाता है।

नीचे के पद्यों में दादू ने धार्मिक सङ्कीर्णता का विरोध, हिन्दू मुसलिम एकता का प्रतिपादन और एक सच्चे सार्वभौम धर्म का उपदेश दिया है। ज़ाहिर है कि सूफ़ियों से उसने भरपूर शिक्षा ग्रहण की थी। वह लिखता है—

सब घट एकै आतमा, क्या हिन्दू मूसलमान।

अलह राम छूटा भ्रम मोरा।
हिन्दू तुरक भेद कछु नाहीं, देखौं दरसन तोरा॥

ब्रह्मा विस्नु महेस को कौन पन्थ गुरुदेव।

महम्मद किसके दीन में, जबराइल किस राह।
इनके मुर्शिद पीर को, कहिए एक अलाह॥
ये सब किसके ह्वै रहे, यह मेरे मन माँहि।
अलख इलाही जगत गुरू, दूजा कोई नाँहि॥

दोनों भाई हाथ पग, दोनों भाई कान।
दोनों भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान॥

ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान।
षट दरशन में हम नहीं, हम राते रहिमान॥

हिन्दू लागे देहुरे, मूसलमान मसीत।
हम लागे इक अलख सौं, सदा निरन्तर प्रीत॥
ना तंह हिन्दू देहुरा, ना तंह तुरक मसीत।
दादू आपे आप है, नहीं तहां रह रीत॥
यहु मसीत यहु देहुरा, सत गुरु दिया दिखाय।
भीतर सेवा बन्दगी, बाहरि काहे जाय॥
दून्यू हाथी ह्वै रहे, मिलि रस पिया न जाय।
दादू आपा मेंटिकर, दून्यू रहे समाय॥

यानी हिन्दू या मुसलमान सब के घट में एक ही आत्मा है।

अल्लाह और राम एक है मेरा भ्रम दूर होगया, हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नही है। सब मे मुझे तू ही तू दिखाई देता है।

ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पन्थ क्या है, मोहम्मद का दीन क्या है, जिबराईल का क्या मार्ग है, एक अल्लाह उन सब का पीर और मुर्शिद है। दादू अपने दिल में जानता है कि वे सब किसके हैं, वही अलख इलाही सारी दुनिया का गुरु है, उसके सिवा और कोई नहीं।

हिन्दू और मुसलमान दोनों भाई एक शरीर के हाथ और पैर हैं, दोनों एक शरीर के दो कान हैं, दोनों भाई दो आँखें हैं।

न हम हिन्दू होंगे और न मुसलमान, षट दरसन के मतभेद से हमें कोई सम्बन्ध नहीं। हमें केवल रहमान से प्रेम है।

हिन्दू देवालय में जाते हैं और मुसलमान मसजिद में। हमारा सम्बन्ध केवल एक अलख से है। उसी से हमें सदा प्रीत है। हमारे धर्म में न हिन्दू के देवालय की ज़रूरत है और न मुसलमान की मसजिद की। न वहाँ किसी कर्मकांड की ज़रूरत है। वहाँ सम्बन्ध केवल अपनी आत्मा से है।

सतगुरू ने दिखला दिया है कि यह शरीर ही हमारी मसजिद है और यही हमारा देवालय है। असली पूजा और नमाज़ अपने भीतर ही की जाती है फिर लोग बाहर क्यों जाते हैं?

हिन्दू और मुसलमान अपने अपने झूठे अभिमान में दो हाथियों की तरह एक दूसरे से लड़ रहे हैं। जब तक उनमें अपने अपने धर्म का यह झूठा अभिमान है वे मिलकर सच्चो ईश्वर भक्ति का रस नहीं ले सकते। दादू ने अपने इस आपे को मिटा दिया है। इसलिए दोनों मत उसके अन्दर समा गए हैं।

पण्डितों, मुल्लाओं, जातपाँत, मूर्तिपूजा, तीर्थस्थान, हज इत्यादि के विषय में दादू के विचार ठीक वैसे ही थे जैसे कबीर के। पुनर्जन्म या आवागमन के सिद्धान्त को दादू ने अलङ्कार की तरह माना है। गुरु को उसने वेद और कुरान दोनों से बड़ा बताया है।

मलूकदास

एक और प्रसिद्ध महात्मा मलूकदास अकबर के समय में सन् १५७४

ईसवी में कड़ा, इलाहाबाद में पैदा हुआ और औरङ्गज़ेब के समय में सन् १६८२ ईसवी में १०८ वर्ष की उम्र में मरा। उसके मठ नैपाल और काबुल तक में मौजूद थे। उसके विचार मूर्तिपूजा, तीर्थयात्रा अन्य कर्मकाण्ड इत्यादि के विषय में ठीक कबीर और दादू के से थे। परसेवा, सब धर्मों की एकता, हिन्दू मुसलमानों के परस्पर प्रेम इत्यादि पर उसके विचार हर तरह अपने समय के अन्य महात्माओं के समान थे। वह लिखता है—

माला कहाँ औ कहाँ तसबीह,
अब चेत इनहिं कर टेक न टेकै।
काफ़िर कौन मलेच्छ कहावत,
सन्ध्या निवाज समै करि देखै।
है जमराज कहाँ जबरील है,
काजी है आप हिसाब के लेखै।
पाप औ पुण्य जमा कर बूझत,
देत हिसाब कहाँ धरि फेकै।
दास मलूक कहा भरमौ तुम,
राम रहीम कहावत एकै।

यानी—कहाँ माला और कहाँ तसबीह ! जागो और उनके भरोसे न रहो, कौन काफ़िर और कौन म्लेच्छ ! वही सन्ध्या और वही नमाज़। यम कहाँ है और जिबराईल कहाँ पर है ! ख़ुदा ही आप क़ाज़ी है, और कोई हिसाब नहीं रखता। वही सब के पाप पुण्य को समझता है और हिसाब रखता है। मलूकदास ! तू कहाँ भूला है, राम और रहीम एक ही के नाम हैं।

सत्तनामियों के बारह हुकुम

सत्तनामी सम्प्रदाय का संस्थापक बीरभान दादू का समकालीन था। सत्तनामी अपने को साध भी कहते हैं। बीरभान ने केवल एक ईश्वर का उपदेश दिया, जिसका नाम उसने सत्तनाम रक्खा। सत्तनामी जात पाँत और छुआछूत के खिलाफ हैं। वे एक दूसरे के साथ खाते पीते हैं, और आपस ही मे विवाह करते हैं। सत्तनामियों में तलाक़ की इजाज़त है, वे मूर्तिपूजा के विरुद्ध हैं, ध्यान और सदाचार और मनुष्य मात्र की समता पर ज़ोर देते है, मांस मदिरा का निषेध करते हैं। औरङ्गज़ेब के समय में ईश्वरदास नागर ने सम्राट से इस बात की शिकायत की थी कि सत्तनामी हिन्दू और मुसलमानों में किसी तरह का भेद नही करते। सत्तनामियों के 'आदि उपदेश' में 'बारह हुकुम' दिए हुए हैं, जिनका सार इस तरह है—

(१) केवल एक ही ईश्वर को मानो, मिट्टी, पत्थर, लकड़ी या किसी और बनी हुई चीज़ की पूजा न करो।

(२) दीनता से रहो।

(३) कभी झूठ मत बोलो, कभी किसी की निन्दा न करो, कभी चोरी न करो, दूसरे की चीज़ को कभी लालच की निगाह से न देखो।

(४) कभी बुरी बात न सुनो, सिवाय मालिक के भजनों के और कुछ न गाओ।

(५) ईश्वर पर विश्वास करो।

(६) जात पाँत को मत मानो, किसी से बहस मत करो।

(७) साफ़ कपड़े पहनो, किसी तरह का तिलक न लगाओ, और न माला पहनो।

(८) तम्बाकू और मादक द्रव्यों से बचो। किसी मूर्ति के सामने सिर मत झुकाओ।

(९) किसी की जान मत लो, किसी को कष्ट मत पहुँचाओ।

(१०) एक पुरुष के लिए केवल एक स्त्री और एक स्त्री के लिए केवल एक पुरुष।

(११) साधुओं की सङ्गत ही तीर्थ है। और

(१२) किसी तरह के अन्ध विश्वासों, नजूम, शकुन, इत्यादि को न मानो।

निस्सन्देह ये हुकुम उस समय के हिन्दू धर्म और इसलाम दोनों के सर्वोच्च सिद्धान्तों को मिलाकर रचे गए थे।

दाराशिकोह का गुरु बाबालाल

औरंगज़ेब के भाई दाराशिकोह का गुरु बाबालाल भी इसी तरह के विचारों का मनुष्य था। दाराशिकोह और बाबालाल की बातचीत एक फ़ारसी किताब 'नादिर-उन-निकात' में दर्ज है। बाबालाल ने अपने सिद्धान्तों के समर्थन में जगह जगह फ़ारसी कवि हाफ़िज़ के हवाले दिए हैं।

नारायनी सम्प्रदाय

इसी तरह उस समय की और भी अनेक सम्प्रदायों ने हिन्दुओं और मुसलमानों को मिलाने की पूरी कोशिश की। नारायनी सम्प्रदाय में हिन्दू और मुसलमान दोनों एक समान लिए जाते थे। ये लोग पूरब की तरफ़ मुँह करके दिन में पाँच बार ईश्वर प्रार्थना करते थे। उनके ईश्वर के नामों में एक नाम अल्लाह भी था। वे अपने मुरदों को दफ़न करते थे, इत्यादि।

प्राणनाथ

औरंगज़ेब के अन्त के दिनों में प्राणनाथ और धरनीदास के नाम भी मशहूर हैं। प्राणनाथ ने अपनी गुजराती पुस्तक 'कुलज़ुम सरूप' में वेदों और क़ुरान दोनों से हवाले देकर दोनों के सिद्धान्तों की समानता दर्शाई है। प्राणनाथ जाति भेद, मूर्तिपूजा और ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध था। उसके अनुयाइयों में हिन्दू और मुसलमान दोनों थे। और हर नए दीक्षा लेने वाले को हिन्दू और मुसलमान दोनों के साथ बैठ कर भोजन करना पड़ता था। यही उनकी दीक्षा थी। प्राणनाथ की एक ख़ास पुस्तक 'क़यामत नामा' है, जिसमें उसने साफ़ लिखा है कि—"तुम सब का, चाहे हिन्दू हो या मुसलमान, एक ईमान होना चाहिए।" इस पुस्तक में उसने यहूदी, ईसाई, मुसलमान और हिन्दू सब के पीर, पैग़म्बरों और महात्माओं की जीवनियाँ दी हैं और सब में मौलिक समानता दर्शाई है। ईश्वर के लिए उसने अल्लाह और ख़ुदा दोनों नामों का उपयोग किया है।

अन्य प्रयत्न

जगजीवनदास, बुल्ला साहब, केशव, चरनदास, सहजोबाई, दयाबाई, ग़रीबदास, शिवनारायन, रामसनेही इत्यादि के उपदेशों का भी ठीक यही सार था। जगजीवन के शिष्यों में ब्राह्मण, ठाकुर, चमार और मुसलमान, सब जातियों के लोग शामिल थे। बुल्ला साहब के उपदेशों में फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएँ भरी हुई हैं। बुल्ला साहब और केशव दोनों, दिल्ली के एक मुसलमान फ़क़ीर यारी साहब के शिष्य थे। मुसलमान फ़क़ीरों के हिन्दू शिष्य और हिन्दू फ़क़ीरों के मुसलमान शिष्य उन दिनों लाखों की तादाद में पाए जाते थे। सहजो और दयाबाई दोनों स्त्रियाँ थीं

और चरनदास की शिष्य थीं। चरनदास ने मूर्तिपूजा का विरोध किया, गुरु की महिमा और भक्ति का उपदेश दिया। ग़रीबदास कबीर का अनुयायी था, उसके पद्यों में भी फ़ारसी के शब्द और सूफ़ी परिभाषाएं भरी हुई हैं।

रामसनेही सम्प्रदाय का संस्थापक रामचरन भी मूर्तिपूजा का कट्टर विरोधी था। ये लोग भी दिन में पाँच मरतबा प्रार्थना करते थे और हर जाति और हर मज़हब के लोगों को अपने में ले लेते थे। स्वामी नारायन सिंह की क़ायम की हुई शिवनारायनी सम्प्रदाय में भी सब जाति और सब मज़हबों के लोग लिए जाते थे। जब कोई शिवनारायनी मरता था तो उसकी अन्तिम इच्छा के अनुसार उसके शरीर को दफ़न कर दिया जाता था, या फूंक दिया जाता था और या दरिया मे बहा दिया जाता था। मुग़ल सम्राट मोहम्मदशाह स्वामी नारायनसिंह का शिष्य था। मोहम्मदशाह की सहायता से यह सम्प्रदाय कुछ दिनों ख़ूब फैली।

पिछले दो तीन सौ साल के अन्दर इनमें से अनेक सम्प्रदायों के रूप मे आकाश पाताल का अन्तर पड़ गया और कही कहीं उनके अनुयाइयों का रहन सहन सम्प्रदाय के क़ायम करने वालों की इच्छा और उनके उपदेशों के ठीक विपरीत साँचे में ढल गया, फिर भी सम्राट मोहम्मदशाह का दस्तख़ती परवाना अभी तक शिवनारायनियों के मुख्य मठ बलिया ज़िले में मौजूद है।

अठारवी सदी में सहजानन्द, दुलनदास, गुलाल, भीका और पल्टूदास के नाम काफ़ी मशहूर हैं।

जगजीवन के शिष्य दुलनदास ने अपने पद्यों में मुसलमान सूफ़ियों मनसूर, शम्श तबरेज़, निज़ामुद्दीन, हाफ़िज़, बूअली क़लन्दर और फ़रीद

की ख़ूब तारीफ़ें की हैं और ईश्वर को "अल्लाह ला मकाँ" बताया है। गुलाल, भीका और पल्टूदास के कोई कोई पद्य कविता, भाव और भक्तिरस, तीनों की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। इन सब में सूफ़ी परिभाषाएँ भरी हुई हैं। ख़ुदा को उन्होंने प्रायः 'हक़' (सत्य) कह कर पुकारा है। पल्टूदास का एक पद है—

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता।
साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू औ तुरुक तोफ़ान करता॥
हिन्दू औ तुरुक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता।
दास पलटू कहै साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक मैं सांच कहता॥

यानी—यदि राम पूरब में है और ख़ुदा पच्छिम में है, तब फिर उत्तर और दक्खिन मे कौन रहता है ? ख़ुदा कहाँ है और कहाँ नहीं है ? हिन्दू और मुसलमान व्यर्थ तूफ़ान खड़ा करते है। हिन्दू और मुसलमान लड़ते हैं और दोनों मज़हबों को एक दूसरे के विरुद्ध खेचते हैं। दास पलटू सच कहता है, ख़ुदा सब मे है, वह हरगिज़ बटा हुआ नही है। यही सच है।

सत्यपीर की पूजा

जिस तरह उत्तर भारत में हिन्दू और मुसलमानों के धार्मिक मेल की लहरें चल रही थीं, उसी तरह बङ्गाल और महाराष्ट्र में भी उनके अक्स दिखाई देने लगे। बारवीं सदी के बङ्गाल में हिन्दुओं का मुसलमानों की

दरगाहों में मिठाई चढ़ाना, क़ुरान पढ़ना, और मुसलमानों के त्योहार मनाना और इसी तरह मुसलमानों का हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों की ओर क्रियात्मक आदर दिखलाना एक आम बात थी। इसी मेल जोल में से बङ्गाल के अन्दर एक नए देवता की पूजा शुरू हुई, जिसे 'सत्यपीर' कहते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों सत्यपीर की पूजा करते थे। कहा जाता है कि गौड़ का बादशाह हुसेनशाह इस नई सम्प्रदाय का संस्थापक था। निस्सन्देह सत्यपीर की पूजा सम्राट अकबर के 'दीने इलाही' का एक प्रारम्भिक रूप थी।

चैतन्य

पन्द्रवीं सदी के अन्त में बङ्गाल के अन्दर महाप्रभु चैतन्य का जन्म हुआ। दिनेशचन्द्र सेन ने बङ्गला भाषा और बङ्गला साहित्य के इतिहास पर एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है। उसमें वह लिखता है कि चैतन्य के जन्म से पहले—

"ब्राह्मणों का प्रभुत्व बहुत कष्टकर हो गया था। कुलीनता के पक्का होने के साथ साथ जाति भेद अधिकाधिक कड़ा होता चला गया। ब्राह्मण लोग कहने के लिए अपने धर्म में ऊँचे आदर्शों का प्रतिपादन करते थे, किन्तु जाति बन्धन के सबब मनुष्य मनुष्य में अन्तर बढ़ता जा रहा था। नीची जातियों के लोग ऊँची जातियों के लोगों के स्वेच्छाचार के नीचे आहें भर रहे थे। इन ऊँची जाति के लोगों ने नीची जाति वालों के लिए विद्या के दरवाज़े बन्द कर रक्खे थे। इन लोगों के लिए अधिक ऊँचे जीवन में प्रवेश करने की मनाही थी और नए पौराणिक धर्म

पर ब्राह्मणों का ठेका हो गया था, मानो वह कोई बाज़ारी चीज़ हो।"*

इसलाम के सरल धार्मिक सिद्धान्तों और मनुष्य मात्र की समता के आदर्श ने उस समय के बङ्गाली समाज में तहलका मचा दिया। चैतन्य ने इस स्थिति पर गम्भीरता के साथ विचार किया। वह घर बार छोड़ कर देशाटन करने लगा। अनेक साधुओं और फ़क़ीरों से उसकी भेंट हुई। चैतन्य के जीवन चरित्र का रचयिता कृष्णदास लिखता है कि वृन्दावन में एक मुसलमान पीर के साथ चैतन्य की भेंट हुई और पीर ने अपनी धार्मिक पुस्तक के आधार पर चैतन्य को एक ख़ुदा की पूजा का उपदेश दिया। जदु भट्टाचार्य लिखता है—"चैतन्य के जीवन की अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जिनसे पूरी तरह साबित है कि वह मुसलमानों से बड़ा प्रेम करता था।"† इसमें सन्देह नहीं कि मुसलमानों के विचारों का चैतन्य के उपदेशों पर बहुत बड़ा असर पड़ा।

चैतन्य ने गुरु की सेवा और भक्ति का उपदेश दिया। जाति भेद का उसने कड़ा विरोध किया। ब्राह्मणों के तमाम कर्मकाण्ड को उसने त्याज्य बताया। चैतन्य के शिष्यों में हिन्दू और मुसलमान, उच्च जाति के लोग और नीच जाति के लोग, सब शामिल थे। उसके मुख्य शिष्यों में से तीन रूप, सनातन और हरिदास, मुसलमान थे। अपने तमाम शिष्यों में वह हरिदास से सब से अधिक प्रेम रखता था।

कर्ताबाबा

चैतन्य की सम्प्रदाय की एक शाखा का नाम कर्ताभज था। उसका

---

* *History of Bengali Language and Literature*, by Dinesh Chandra Sen.

† Jadu Bhattacharya: *Hindoo Castes and Sects* p 464

संस्थापक कर्ताबाबा एक मुसलमान फ़क़ीर की दुआ से पैदा हुआ था और उस फ़क़ीर ने ही उसे पाला था। कर्ताबाबा के बाईस मुख्य शिष्य 'बाईस फ़क़ीर' के नाम से मशहूर हुए। इनमें से एक रामदुलाल की बाबत, जो कर्ताबाबा का उत्तराधिकारी हुआ, कहा जाता है कि उसके अन्दर उसी मुसलमान फ़क़ीर की रूह आ गई थी। इस सम्प्रदाय के आचार्यों में से अनेक हिन्दू हुए और अनेक मुसलमान। ये लोग केवल एक ईश्वर को मानते थे, गुरु को ईश्वर का अवतार मानते थे, दिन में पाँच बार गुरुमन्त्र का जाप करते थे, मांस मदिरा से परहेज़ करते थे, शुक्रवार को पवित्र दिन मानते थे और उसे धर्म चर्चा में व्यतीत करते थे, जात पाँत, ऊँचनीच, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई का उनमें कोई भेद न था, साल में कम से कम एक दो बार सम्प्रदाय के सब लोग एक साथ मिल कर भोजन करते थे, इत्यादि।

बौद्ध ग्रन्थों में मुसलमान

बङ्गाल में जिन दिनों बौद्धों के ऊपर शैवों के अत्याचार जारी थे, मालूम होता है, एक दरजे तक बौद्धों को मुसलमानों से सहायता, दिलासा और आश्रय मिला। बङ्गाल के उस समय के बौद्ध ग्रन्थों, 'शून्य पुराण', 'धर्म पूजा पद्धति', 'धर्म गजन', 'बाद जननी', इत्यादि में और बौद्ध गीतों में ब्राह्मणों के प्रति क्रोध और बदले का भाव और मुसलमानों, मुसलिम विचारों और मुसलमान ग्रन्थों के प्रति प्रेम भरा हुआ है। उस समय के इन बौद्ध काव्यों से कुछ विचित्र बातों का पता चलता है। मसलन यह कि उस समय बङ्गाल जाने वाले बहुत से मुसलमान मांस से परहेज़ करते थे, एक जगह लिखा है—

"खोंकद (?) पच्छिम की तरफ को मुँह किए ईश्वर से प्रार्थना कर रहा है।

"कोई अल्लाह की पूजा करता है, कोई अली की और कोई महमूद साईं की।

"मियाँ किसी जीव की हत्या नहीं करता और न मुरदार खाता है।

"धीमी आँच के ऊपर वह अपना भोजन पका रहा है।

"जात पाँत के भेद अब धीरे धीरे टूट जायँगे, क्योंकि देखो हिन्दू कुटुम्ब के अन्दर एक मुसलमान है।

× × ×

"ऐ खुदा! मैं जानता हूँ तू और सब से बड़ा है। मैं बहुत चाहता हूँ कि तेरे मुँह से क़ुरान सुनूँ।"

महाराष्ट्र सन्त

उत्तर भारत की तरह महाराष्ट्र के हिन्दू महात्माओं ने भी हिन्दू और मुसलमान धर्मों को मिलाने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध महाराष्ट्र विद्वान महादेव गोविन्द रनाडे लिखता है—

"इसलाम का कठोर एक ईश्वरवाद कबीर, नानक इत्यादि सन्तों के चित्तों में साफ़ घर कर गया था। हिन्दू त्रिमूर्ति दत्तात्रय के उपासक अक्सर अपने देवता को मुसलमान फ़क़ीर के से कपड़े पहनाते थे। यही प्रभाव महाराष्ट्र जनता के चित्तों पर और भी ज़ोरों के साथ काम कर रहा था। ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों तरह के प्रचारक वहाँ लोगों को उपदेश दे रहे थे कि राम और

रहीम को एक समझो, कर्मकाण्ड और जातिभेद के बन्धनों को तोड़ दो और ईश्वर में विश्वास और मनुष्य मात्र के साथ प्रेम को सब मिलकर अपना एक समान धर्म बनाओ।"*

नामदेव

महाराष्ट्र का पहला सन्त, जिसने लोगों को जातिभेद, कर्मकाण्ड और धार्मिक सङ्कीर्णता के बन्धन से हटा कर स्वतन्त्रता, प्रेम और भक्ति का उपदेश दिया, नामदेव था। रनाडे लिखता है कि नामदेव और दूसरे सन्तों के उपदेशों का नतीजा यह हुआ कि—मराठी भाषा के साहित्य की उन्नति हुई, जातिभेद ढीला हुआ, स्त्रियों का पद ऊँचा हुआ, उदारता और दयालुता फैली, इस्लाम के साथ हिन्दू मत का एक दरजे तक मेल हो गया, कर्मकाण्ड, तीर्थयात्रा इत्यादि का महत्व घटा, प्रेम का महत्त्व बढा, अनेक देवी देवताओं की पूजा कम हुई, और विचारों और क्रियाओं दोनों के क्षेत्रों में राष्ट्र की ताक़त बढ़ी। †

खेचर

नामदेव के गुरु खेचर ने नामदेव को जो उपदेश दिया उससे ज़ाहिर है कि खेचर मूर्तिपूजा का कट्टर विरोधी था। उसने कहा कि—

"पत्थर का देवता कभी नहीं बोलता, तो फिर वह हमारे इस जीवन के दुःखों को कैसे दूर कर सकता है? पत्थर की मूर्ति को लोग ईश्वर समझ बैठते हैं, किन्तु सच्चा ईश्वर बिलकुल दूसरा ही है। यदि पत्थर का देवता हमारी इच्छाएँ पूरी कर सकता तो

* Ranade *Rise of the Maratha Power*, pp 50, 51
† Ibid

गिराने पर वह टूट क्यों जाता ? जो लोग पत्थर के बने हुए देवता की पूजा करते हैं वे अपनी मूर्खता से सब कुछ खो बैठते हैं। जो लोग ये कहते हैं और जो ये सुनते हैं कि पत्थर का देवता अपने भक्तों से बातचीत करता है, वे दोनों मूर्ख हैं। × × ×।"*

नामदेव के अनेक शिष्यों और अनुयाइयों में पुरुष और स्त्री, हिन्दू और मुसलमान, ब्राह्मण और मराठा, कुनबी, दर्ज़ी और कुम्हार यहाँ तक कि अन्त्यज, महार और धर्मनिष्ठ वेश्याएँ तक शामिल थीं।†

चोखमेला और बहिराम

नामदेव का एक महार शिष्य चोखमेला जिस समय पण्ढरपुर के मशहूर मन्दिर मे जाने लगा और ब्राह्मण पुरोहित ने उसे मना किया तो चोखमेला ने उत्तर दिया—

"उच्च जाति में पैदा होने से क्या लाभ × × × चाहे मनुष्य नीच जाति का भी हो, किन्तु यदि वह दिल का सच्चा है, ईश्वर से प्रेम करता है, सब प्राणियों को अपने समान समझता है, अपने और दूसरों के बच्चों में कोई भेद भाव नहीं रखता, और सच बोलता है, तो उसकी जाति पवित्र है और ईश्वर उससे प्रसन्न है। जिस मनुष्य के हृदय मे ईश्वर पर विश्वास है और मनुष्य के साथ प्रेम है, उससे जाति कभी न पूछो। ईश्वर अपने बच्चों से प्रेम और भक्ति चाहता है, वह उनकी जाति की परवा नहीं करता।"‡

---

* Bhandarkar *Vaishnavism*

† Ranade *Rise of the Maratha Power*, p 146

‡ Ibid p 154

बहिराम भट्ट सत्य की खोज में दो दफ़े हिन्दू से मुसलमान और मुसलमान से हिन्दू हुआ। अन्त में उसने कहा—"न मैं हिन्दू हूँ और न मुसलमान।"

शेख़ मोहम्मद

दक्खिन के अन्दर शेख़ मोहम्मद एक बहुत बड़ा भक्त हुआ है। उसके अनुयायी रमज़ान के रोज़े भी रखते हैं और एकादशी का व्रत भी, मक्के की भी यात्रा करते हैं और पण्ढरपुर के मन्दिर की भी।

तुकाराम

सन्त तुकाराम दक्खिन का शायद सब से अधिक सर्वमान्य भक्त था। कबीर इत्यादि के समान तुकाराम जात पाँत, मूर्तिपूजा, यज्ञ, हवन और अन्य कर्मकाण्ड का कट्टर विरोधी और एक हरि की भक्ति का प्रचारक था। प्रत्येक प्राणी के रूप में उसे हरि ही दिखाई देता था। इसलाम और हिन्दू धर्म को मिलाने का तुकाराम का प्रयत्न उसके एक पद्य से ज़ाहिर है जिसका भाषान्तर यह है—

जो 'अल्लाह' चाहता है, ऐ मेरे बाबा! वही होता है। सब का बनाने वाला सब का बादशाह है। पशु और मित्र, बग़ीचे और माल, सब जाते रहेंगे। ऐ बाबा! मेरा चित्त मेरे 'साहेब' पर लगा है। वही मेरा बनाने वाला है। मैं मन के घोड़े पर सवार हूँ और आत्मा सवारी करती है। ऐ बाबा! अल्लाह का ज़िक्र करो, सब उसी के रूप हैं। तुका कहता है, जो मनुष्य इस बात को समझे, वही दरवेश है।

बड़े नामों में सब से पहला नाम 'अल्लाह' है। उसे सदा

दोहराते रहो, भूलो नहीं। सचमुच अल्लाह एक है, सचमुच नबी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है, वहाँ तू भी एक है! वहाँ न मैं हूँ और न तू है!*

निस्सन्देह हिन्दूमत, बौद्धमत और इसलाम के मेल से उस समय भारत के अन्दर उत्तर से दक्खिन तक और पूर्व से पच्छिम तक एक सुन्दर सार्वजनिक मानव धर्म की नीव रक्खी जा रही थी, जिसका मूल मन्त्र एकता, प्रेम और सब की सेवा था।

भारतीय कला और मुसलमान

निर्माणकला

जिस तरह धार्मिक विचारों पर उसी तरह भारतीय निर्माणकला और भारत की चित्रकारी पर भी मुसलमानों के आने का बहुत गहरा और हितकर प्रभाव पड़ा। प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार लिखता है कि मुसलमानों के समय में भारत की निर्माणकला ने साफ़ उन्नति की।

ईसा की आठवीं सदी तक भारतीय शिल्पकला पर बौद्धमत का ख़ास असर था। आठवीं से तेरवीं सदी तक इस कला में हिन्दू आदर्शों की प्रधानता रही, किन्तु फिर भी बौद्धमत का प्रभाव उस पर साफ़ दिखाई देता रहा। हम इस विषय की वैज्ञानिक बारीकियों में पड़ना नहीं

* Tukaram's *Abhanga*, p 85, 86, Godbole's edition

सन्त तुकाराम

[श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]

चाहते। किन्तु एक दो बातें स्पष्ट हैं। हर देश के लोगों के कला सम्बन्धी आदर्शों पर बहुत बड़ा असर उस देश की भौगोलिक स्थिति का पड़ता है। भारत अभेद्य जङ्गलों, प्रचण्ड ऋतुओं, बड़ी बड़ी नदियों, पहाड़ों और घनी वनस्पतियों का देश है। यही वजह है कि भारतीय शिल्पकला में सदा से विशालता, स्थूलता और विस्तार पर अधिक ज़ोर दिया जाता रहा है। भारत के बनों में बेशुमार तरह तरह की फूल पत्तियाँ इधर से उधर तक गुथी हुई दिखाई देती हैं, नीचे की ओर या ऊपर की ओर कहीं भी नज़र डाली जाय, एक गज़ भर ज़मीन सूनी दिखाई नहीं देती। यही वजह है कि प्राचीन भारतीय मन्दिरों और प्रासादों की दीवारों के ऊपर, और कोनों में कहीं एक फुट ज़मीन भी ख़ाली दिखाई नहीं देती। पुराने समय के हिन्दू मन्दिरों में नींव के ऊपर नींव, मञ्ज़िल के ऊपर मञ्ज़िल, कङ्गूरे के ऊपर कङ्गूरा और कलश के ऊपर कलश आकाश तक पहुँचते हुए दिखाई देते हैं, और इसके साथ साथ कोई कोना या दीवार का हिस्सा नहीं रहता जो मूर्तियों या चित्रों से न भरा हो। शिल्पकला विशारदों की राय है कि संसार के किसी भी दूसरे देश की निर्माणकला विस्तार बाहुल्य और अतिशोभा में हिन्दू निर्माणकला का मुक़ाबला नहीं कर सकती।

इसके ठीक विपरीत अरब एक विशाल रेगिस्तान है, जिसमें दूर दूर और कहीं कहीं थोड़े से हरे भरे नख़लिस्तान दिखाई देते हैं। इसके ऊपर अरब की तेज़ गरमी, भोजन और वस्त्र के लिए परिमित और इनी गिनी सामग्री और रेत के पहाड़। क़ुदरती तौर पर मुसलमानों की शुरू की निर्माणकला मे बड़े बड़े भवन, सादी साफ़ दीवारें और ऊँचे मीनार और

गुम्बद अधिक देखने में आते हैं। इसलाम के एक ईश्वरवाद और मूर्तिभञ्ज-कता ने भी पुराने मूर्तिपूजक धर्मों के मुक़ाबले में मुसलिम कला के इस आदर्श को अपना एक ख़ास रूप दिया और उसे और अधिक पक्का कर दिया। जिस मनुष्य की आँखें प्राचीन हिन्दू मन्दिरों के विस्तार प्रपञ्च से उकता गई हों उसे एक सीधी सादी मुसलिम मसजिद की साफ़ दीवारों में विश्राम मिलना क़ुदरती है। इसी तरह जो मनुष्य पुरानी मुसलिम मसजिदों या प्रासादों की अभिन्नता से ऊब गया हो, उसके लिए हिन्दू निर्माणकला का बाहुल्य एक दरजे तक अवश्य आकर्षक होगा।

दो कलाओं का आलिंगन

यह भी स्पष्ट ज़ाहिर है कि इन दोनों आदर्शों के मेल जोल से एक इस तरह की निर्माणकला को जन्म दिया जा सकता था, जो दोनों की अपेक्षा सुन्दर और अधिक आकर्षक हो। धार्मिक और जातीय पक्षपात इस तरह के सम्मिश्रण के रास्ते में बाधक होते हैं, किन्तु फिर भी दो अलग अलग आदर्शों के मिलने से जाने या अनजाने इस तरह का सम्मिश्रण हुए बिना नहीं रह सकता। इसके अलावा हम ऊपर दिखला चुके हैं कि मुसलमानों के भारत आने के समय से ही इस धार्मिक या जातीय पक्षपात के मिटाने के लिए भी अनेक कोशिशें जारी थीं। जिस तरह धार्मिक विचारों में उसी तरह निर्माणकला और चित्रकारी के मैदान में भी भारत ने नए आदर्शों को जन्म देना शुरू किया, जो हिन्दू और मुसलिम दोनों अलग अलग आदर्शों से उन्नतर थे और जिनके नतीजे भी उन दोनों के नतीजों से अधिक सुन्दर थे। इन तीनों तरह के आदर्शों को साक्षात करने के लिए हमें एक ओर दक्खिन के प्राचीन मन्दिरों या जगन्नाथपुरी के मन्दिर, दूसरी ओर अजमेर

और दिल्ली इत्यादि की पुरानी मसजिदों, और तीसरी ओर मुग़ल समय के आगरे और दिल्ली के शाही महलों या भारतीय निर्माणकला के सब से अधिक सुन्दर नमूने, आगरे के ताज की ओर दृष्टि डाल लेना काफ़ी है। निस्सन्देह आगरे का ताज संसार की सब से उत्कृष्ट और सब से अधिक सुन्दर इमारतों में गिना जाता है, भारतीय निर्माणकला के मस्तक पर वह झूमर का काम देता है, देश की इस पतित अवस्था में भी प्रत्येक भारतवासी के सच्चे अभिमान और गौरव का पात्र है, और शिल्प के मैदान में इसलाम से पूर्व के भारतीय आदर्शों और बाद के मुसलिम आदर्शों, दोनों के प्रेमालिंगन का सबसे सुन्दर नमूना है।

शिल्पकला के पण्डित हमें बताते हैं कि ईसा की तेरवीं सदी से पहले की भारत की हिन्दू और मुसलमान इमारतें दो साफ़ अलग अलग आदर्शों के अनुसार बनी हुई दिखाई देती हैं, किन्तु उसके बाद की हिन्दू इमारतों पर मुसलिम छाप और मुसलिम इमारतों पर हिन्दू छाप भी उतनी ही साफ़ दिखाई देती हैं और दोनों के सौन्दर्य को बढ़ाती हुई नज़र आती है। यही वजह है कि भारत की मुसलिम शिल्पकला, मिश्र की मुसलिम शिल्पकला, शाम की मुसलिम शिल्पकला, ईरान की मुसलिम शिल्पकला और टरकी की मुसलिम शिल्पकला, इन सब में बहुत बड़ा अन्तर है।

दिल्ली और आगरे के अलावा राजपूताना और काश्मीर इत्यादि में भी इस मिश्रित कला आदर्श के काफ़ी नमूने अभी तक मौजूद हैं। सोलवीं सदी के बने हुए वृन्दावन के कुछ वैष्णव मन्दिर, सोनागढ़ के कुछ जैन मन्दिर, विजयनगर की अनेक इमारतें और सत्रवीं सदी का बना हुआ मदुरा का तिरुमलाई नायक का प्रसिद्ध महल भी इसी मिश्रित कला आदर्श के नमूने हैं।

सोलवीं सदी के क़रीब 'समाधियाँ' या 'छतरियाँ' बनाना हिन्दुओं में पहली बार शुरू हुआ और निस्सन्देह यह रिवाज हिन्दुओं में मुसलमानों से पड़ा। इमारतों में महाराब का उपयोग, डाट की गोल छत और आज कल की उद्यान कला ये तीनों भारत ने मुसलमानों ही से सीखीं। वर्तमान भारत के सुन्दर से सुन्दर बाग़ मुग़ल सम्राटों के समय के बने हुए हैं, जिनमें जहाँगीर के समय का बना हुआ काशमीर का शालामार बाग़ अभी तक संसार का सब से सुन्दर बाग़ स्वीकार किया जाता है।

चित्रकला

इसी तरह चित्रकला में भी दो अलग अलग आदर्शों के मेल से मुग़ल सम्राटों के अधीन भारत ने एक अधिक उच्च और अधिक सुन्दर चित्रकला को जन्म दिया। हुमायूँ, अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के महलों में सैकड़ों हिन्दू चित्रकार केवल अपनी कला को तरक़्क़ी देने के लिए बड़ी बड़ी तनख़्वाहें पाते थे। शीराज़, तबरेज़ यहाँ तक कि चीन के बड़े बड़े चित्रकार भी वहाँ पर मौजूद रहते थे और निस्सन्देह ये सब एक दूसरे की सहायता से अपनी अपनी कला को उन्नति देते थे। उस समय की फ़ारसी पुस्तकों और दस्तावेज़ों में जयपुर, ग्वालियर, गुजरात, काशमीर इत्यादि के रहने वाले मुग़ल दरबार के अनेक हिन्दू और मुसलमान चित्रकारों के नाम मिलते हैं, जिनमें से कुछ के हाथ के खिंचे हुए सुन्दर चित्र अभी तक चित्रकला विशारदों को चकित करते रहते हैं। दिल्ली और आगरे से लेकर जयपुर, जम्मू, चम्बा, काँगड़ा, लाहौर, अमृतसर और दक्खिन में तञ्जोर तक उस समय एक सुन्दर भारतीय चित्रकला फैलती और उन्नति करती हुई दिखाई देती थी। दिल्ली और आगरे में जिन आदर्शों

को जन्म दिया जाता था, राजपूताना और शेष भारत के हिन्दू दरबारों में उन्हीं का अनुसरण किया जाता था। प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार लिखता है—

"चित्रकला के मैदान में हमारे चित्रकारों ने जो असाधारण उन्नति मुग़लों के ज़माने में की वह और कभी नहीं की।"*

उस समय के अनेक अंगरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि जहाँगीर के उदार प्रोत्साहन के प्रताप से जहाँगीर के समय की भारतीय चित्रकला संसार भर में सब से अधिक उन्नत चित्रकला थी।†

मुग़लों का समय

मुग़लों के हमले

अब हम यह देखना चाहते हैं कि धार्मिक विचारों, शिल्प और चित्रकारी से बाहर बाक़ी भारतीय जीवन पर बाहर के मुसलमानों का क्या असर पडा। हम ऊपर लिख चुके हैं कि मोहम्मद ग़ोरी के हमले के समय से लेकर ३०० साल तक भारत मे लगातार संग्रामों और छोटी बड़ी सल्तनतों का समय था। इसके बाद दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य का समय

---

* the highest genius was displayed by our artists in this field in the Mughal age "—*Mughal Administration* by J. N. Sarkar, p 128

† *History of Jehangir*, by Dr Beniprasad, M A, pp 92-94

आया। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में ही भारत के अन्दर मुसलमानों की हुकूमत, उनकी सभ्यता और उनका प्रभाव अपनी पराकाष्ठा को पहुँचा। किन्तु मुग़लों के शासन और भारत के ऊपर मुग़ल साम्राज्य के उपकारों या अपकारों को बयान करने से पहले हम मुग़लों द्वारा संसार के अन्य देशों की विजय पर भी एक नज़र डालना चाहते हैं।

ईसा की तेरवीं सदी के शुरू में चङ्गेज़ ख़ाँ ने पूर्वी एशिया से निकल कर उत्तरी चीन, तातार और शेष अधिकांश एशिया को विजय कर लिया था। सन् १२२७ ईसवी में चङ्गेज़ ख़ाँ की मृत्यु हुई। इसके ६८ साल के अन्दर चङ्गेज़ ख़ाँ के उत्तराधिकारियों ने भारत को छोड़ कर बाक़ी क़रीब क़रीब तमाम एशिया को और यूरोप के एक बहुत बड़े हिस्से को मुग़ल साम्राज्य में शामिल कर लिया। यूरोप पर उनका हमला सन् १२३८ ईसवी में हुआ। यूरोपियन इतिहास लेखक कहते हैं कि ईसा की आठवीं सदी से जब कि अरबों ने यूरोप पर हमला किया था उस समय से सन् १२३८ तक कोई और इतनी भयंकर आपत्ति यूरोप पर न आई थी। कुछ साल के अन्दर ही तमाम रूस, पोलैण्ड, बलकान, हङ्गेरी यहाँ तक कि उत्तर में बाल्टिक समुद्र और पच्छिम में जरमनी तक, आधे से ज़्यादा यूरोप मुग़लों के अधीन हो गया। रूस के ऊपर दो सौ साल तक मुग़लों की हुकूमत रही। शुरू के मुग़ल बौद्ध थे। स्वयं चङ्गेज़ ख़ाँ बौद्धमत का अनुयायी था और साथ ही अपने देश मङ्गोलिया के कुछ प्राचीन धार्मिक विचारों अश्वपूजा इत्यादि को भी मानता था। इन्हीं मुग़लों ने अधिकांश एशिया और यूरोप को विजय किया। बौद्ध मुग़लों ने मुसलिम ईरान और मुसलिम इराक़ को फ़तह किया और उसके बाद चङ्गेज़ ख़ाँ के पौत्र हुलाकू

ख़ाँ और उसके साथ के दूसरे मुग़लों ने पराजित ईरानियों और अरबों से इसलाम मत की दीक्षा ली।

भारत पर मुग़लों का सब से पहला हमला सन् १३९८ ईसवी में तैमूर का हमला था। महमूद तुग़लक उस समय दिल्ली के तख़्त पर था। किन्तु सिवाय चन्द रोज़ की लूट खसोट और संहार के जिसमें हिन्दू और मुसलमानों का कोई फ़रक़ नहीं किया गया और कोई असर तैमूर के हमले का भारत पर न रह सका और न तैमूर १५ दिन से ज़्यादा दिल्ली में ठहर सका।

मुग़लों का दूसरा हमला इस देश के ऊपर सन् १५२६ ईसवी में बाबर का हमला था। उस समय तक मुग़ल अपनी जन्मभूमि मङ्गोलिया से कहीं अधिक सभ्य देश ईरान में बरसों रह चुकने के सबब से चङ्गेज़ और तैमूर के मुक़ाबले मे कहीं अधिक सभ्य और सभ्यताप्रेमी बन चुके थे। पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहीम लोधी को शिकस्त दी और भारत में मुग़ल साम्राज्य की नींव रक्खी।

पानीपत की विजय के बाद ही बाबर ने भारत को अपना घर बना लिया। हुमायूँ को छोड़कर उसके बाक़ी वशंज भारत ही में पैदा हुए।

भारत में एक प्रधान शक्ति की ज़रूरत

सम्राट हर्षवर्धन के बाद से यानी ईसा की सातवीं सदी के मध्य से सोलवीं सदी के शुरू तक क़रीब ९०० साल तक भारत के अन्दर कोई भी प्रधान राजनैतिक शक्ति ऐसी उत्पन्न होने न पाई थी जो समस्त भारत को एक शासन के सूत्र मे बाँध सकती। ९०० साल के अन्दर भारत अनेक छोटी बड़ी एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी रियासतों का युद्धक्षेत्र बना हुआ था। वह समय भारत के इतिहास में राजनैतिक निर्बलता, अनैक्य और अव्यवस्था

का समय था। भारत को उस समय एक ऐसी प्रधान शक्ति की ज़बरदस्त आवश्यकता थी जो सारे देश के ऊपर एक समान हुकूमत क़ायम कर सके, देश की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में बाँध सके, और देश व्यापी शान्ति और सुशासन द्वारा जीवन के विविध क्षेत्रों में देश को अग्रसर होने का मौक़ा दे सके। इतिहास इस बात का साक्षी है कि ईसा की सोलवीं सदी से लेकर अठारवीं सदी तक दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य ने भारत की इस कमी को ख़ासी सुन्दरता के साथ पूरा किया। निस्सन्देह राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग धन्धे, कला कौशल, समृद्धि, शिक्षा और सुशासन की दृष्टि से भारत के समस्त इतिहास में मुग़ल साम्राज्य का समय सबसे अधिक गौरवान्वित समय था।

मुग़लों द्वारा उसका निर्माण

मुग़लों के समय से पहले प्रियदर्शी सम्राट अशोक और सम्राट समुद्रगुप्त के साम्राज्य भारत में सब से अधिक विशाल साम्राज्य रह चुके थे। किन्तु प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार लिखता है कि मुग़ल साम्राज्य अपनी पराकाष्ठा के समय अशोक और समुद्रगुप्त दोनों के साम्राज्यों से कहीं बड़ा था। इसके अलावा अशोक या समुद्रगुप्त के दिनों में साम्राज्य के अन्दर विविध प्रान्तों का जीवन एक दूसरे से इतना अच्छा गुथा हुआ न था। सबकी अलग अलग भाषाएँ, अलग अलग शासन पद्धति और अलग अलग जीवन। किन्तु जदुनाथ सरकार लिखता है—

"इसके विपरीत, अकबर के सिंहासन पर बैठने के समय से मोहम्मदशाह की मृत्यु के समय तक (१५५६—१७४८), मुग़ल शासन के इन दो सौ साल ने समस्त उत्तरी भारत और अधि-

कांश दक्खिन को भी, एक सरकारी भाषा, एक शासन पद्धति, एक समान सिक्के, और हिन्दू पुरोहितों या निश्चल ग्रामीण जनता को छोड़ कर बाक़ी समस्त श्रेणियों के लोगों के लिए एक व्यापक सर्वप्रिय भाषा प्रदान की। जिन प्रान्तों पर मुग़ल सम्राटों का बराहरास्त शासन था (यानी जिनके सूबेदार दिल्ली सम्राट की ओर से नियुक्त किए जाते थे), उनसे बाहर भी आस पास के हिन्दू राजा, कम या अधिक, मुग़लों की शासन प्रणाली, उनकी सरकारी परिभाषाओं, उनके दरबारी शिष्टाचार, और उनके सिक्कों का उपयोग करते थे।

"मुग़ल सम्राज्य के अन्दर बीस भारतीय 'सूबे' थे। इन सब सूबों पर ठीक एक प्रणाली के अनुसार शासन किया जाता था, सब में एक शासन विधि का पालन किया जाता था, और विविध सरकारी ओहदों के नाम और उपाधियाँ सब में एक समान थी। तमाम सरकारी मिसलों, फ़रमानों, सनदों, माफ़ियों राहदारी के परवानों, पत्रों, और रसीदों में एक फ़ारसी भाषा का उपयोग किया जाता था। साम्राज्य भर में एक समान वज़न, एक से मूल्य, एक नाम और एक सी धातु के सिक्के प्रचलित थे, केवल जिस शहर की टकसाल का कोई सिक्का बना होता था उस शहर का नाम उस पर और खुदा होता था। सरकारी कर्मचारियों और सिपाहियों का अक्सर एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में तबादला होता रहता था। इस तरह एक प्रान्त के रहने वाले दूसरे प्रान्त में पहुँच कर उसे क़रीब क़रीब अपने घर की तरह समझने लगते

थे। सौदागर और यात्री निहायत आसानी से एक शहर से दूसरे शहर और एक सूबे से दूसरे सूबे आ जा सकते थे, और एक साम्राज्य की छाया में सब लोग इस विशाल देश की एकता को अनुभव करते थे।"*

इतिहास कला

मुसलमानों के आने से पहले का हिन्दुओं का लिखा हुआ ऐतिहासिक साहित्य अव्वल तो है ही बहुत कम, और जो है भी उसमें तिथियों का क़रीब क़रीब अभाव है। इसके विपरीत अरबों के लिखे हुए इतिहासों, यात्रा वृत्तान्तों और जीवन चरित्रों में सदा ठीक ठीक तिथि दर्ज होती है।

* "On the other hand, the two hundred years of Mughal rule, from the accession of Akbar to the death of Mohammad Shah (1556-1749), gave to the whole of Northern India and much of the Deccan also, oneness of the official language, administrative system and coinage and also a popular, *lingua franca* for all classes except the Hindoo priests and the stationary village folk Even outside the territory directly administered by the Mughal Emperors, their administrative system, official nomenclature, court etiquette and monetary type were borrowed, more or less, by the neighbouring Hindoo Rajas

"All the twenty Indian *subahs* of the Mughal Empire were governed by means of exactly the same administrative machinery, with exactly the same procedure and official titles Persian was the one language used in all office records, farmans, sanads, landgrants, passes, despatches and receipts The same monetary standard prevailed throughout the Empire, with coins having the same names, the same purity and the same denominations, and differing *only in the name of the mint-town* Officials and soldiers were frequently transferred from one province to another Thus, the native of one province felt himself almost at home in another province, traders and travellers passed most easily from city to city, *subah* to *subah*, and all realised the imperial oneness of this vast country "—*Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, pp 129, 130

प्रोफ़ेसर जदुनाथ सरकार का कहना है कि भारतवासियों को दूसरा लाभ जो मुसलमानों से पहुँचा वह इस देश के अन्दर ऐतिहासिक साहित्य का प्रारम्भ था।

दूसरे देशों से सम्बन्ध

बौद्धमत के बाद से बाहर के देशों के साथ भारत का सम्बन्ध भी कम होता जा रहा था। तिजारत गिरती जा रही थी। मुग़लों के शासन काल में भारत का सम्बन्ध बाहर के अन्य देशों के साथ फिर से क़ायम हुआ। मुग़ल साम्राज्य के क़रीब क़रीब आख़ीर तक अफ़ग़ानिस्तान दिल्ली के सम्राट के अधीन था, और अफ़ग़ानिस्तान के ज़रिए बुख़ारा, समरक़न्द, बलख़, ख़ुरासान, ख़्वारज़िम और ईरान से हज़ारों यात्री और व्यापारी भारत आते जाते थे। सम्राट जहाँगीर के दिनों मे तिजारती माल से लदे हुए चौदह हज़ार ऊँट हर साल केवल बोलन दर्रे से होकर भारत आते जाते थे। इसी तरह पच्छिम मे ठट्ठा, भड़ोच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ और कारवार, और पूरब मे मछलीपट्टन और दूसरे बन्दरगाहों से हज़ारों जहाज़ हर साल अरब, ईरान, टरकी, मिश्र, अफ़रीका, लङ्का, सुमात्रा, जावा, स्याम और चीन आते जाते रहते थे। जदुनाथ सरकार इसे भारत के ऊपर मुग़ल साम्राज्य का तीसरा उपकार बताता है।

धार्मिक और सामाजिक एकता

चौथा उपकार प्रोफ़ेसर सरकार की राय में भारत की उन धार्मिक और सामाजिक लहरों का और अधिक ज़ोरों के साथ फैलना था, जिनका हम ऊपर विस्तार के साथ ज़िक्र कर चुके हैं। पाँचवाँ शिल्पकला और चित्रकारी की अपूर्व उन्नति और उसका विस्तार।

युद्ध विद्या, सैनिक व्यवस्था और क़िलेबन्दी के कामों ने भी जो उन्नति मुग़लों के समय में की उतनी पहले कभी न की थी। बन्दूक़ों और तोपों का रिवाज तमाम भारत में अधिकतर मग़लों ही के समय से फैला।

विशेष कर उत्तर भारत के रहन सहन और वेश भूषा में मुसलमानों का साफ़ प्रभाव दिखाई देता है। हिन्दी, बङ्गला और मराठी भाषाओं में इस समय तक असंख्य फ़ारसी, अरबी और तुरकी शब्द भरे हुए हैं। उत्तर भारत में यदि किसी हलवाई की दूकान पर मिठाइयों के नाम गिने जायँ तो उनमें बालूशाही, गुलाब जामुन, बरफ़ी, हलवा, क़लाक़न्द, खुरमा इत्यादि अधिकांश नाम मुसलमानी हैं और इनमें से अधिकांश मिठाइयाँ मुग़ल समय की ईजाद हैं। यहाँ तक कि हिन्दुओं के विवाह जैसे संस्कार में भी सेहरा, और जामा जैसी चीज़ों का अभी तक उपयोग किया जाता है।

भारत की प्राचीन ग्राम पञ्चायतों और उनके अधिकारों में मुग़लों ने किसी तरह का भी हस्तक्षेप नहीं किया। जदुनाथ सरकार लिखता है—

> "उन्होंने बुद्धिमत्ता के साथ ग्राम शासन की पुरानी पद्धति को और लगान वसूल करने के पुराने हिन्दुओं के तरीक़े को ज्यों का त्यों जारी रक्खा, यहाँ तक कि लगान के मोहकमे में अधिकतर केवल हिन्दू ही नौकर रक्खे जाते थे, नतीजा यह हुआ कि राजधानी के अन्दर राजकुल के बदल जाने से हमारे करोड़ों ग्रामवासियों के जीवन पर किसी तरह का अहितकर प्रभाव न पड़ता था।"*

---

* Ibid, p 139

मुग़लों की प्रजा पालकता

किसानों को और रैय्यत को मुग़ल सम्राटों के समय में ख़ास सहायता दी जाती थी और उनकी हर तरह रक्षा की जाती थी। जिस समय कोई नया सूबेदार नियुक्त किया जाता था तो उसे और बातों के साथ साथ यह आदेश दिया जाता था—

> "रय्यत को इस बात के लिए प्रोत्साहन देना कि वे खेती को उन्नति दें और अपने पूरे दिल से खेती बाड़ी को बढ़ाएँ। कोई चीज़ उनसे ज़बरदस्ती न छीनना। याद रखना कि रय्यत ही राज की आमदनी का एक मात्र स्थाई ज़रिया है। × × ×
>
> "× × × इस बात का ख़याल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें।"*

इसी तरह जब किसी प्रान्त के लिए नया सूबेदार नियुक्त होता था तो सम्राट का वज़ीर, जिसे दीवाने आला कहते थे, उसे जो हिदायतें करता था, उनमें से एक यह होती थी—

> "ख़याल रखना कि बलवान निर्बलों पर अत्याचार न करें। तमाम अत्याचारियों को दबा कर रखना।"†

* "Encourage the ryots to extend the cultivation and carry on agriculture with all their hearts Do not screw anything out of them Remember that the ryots are permanent that is the only permanent source of income to the State

" See that the strong may not oppress the weak "—Ibid, p 85, 86

† Ibid, p. 81

हर प्रान्त में सूबेदार या नाज़िम के अलावा एक दीवान होता था। सूबेदार का काम फ़ौज का इन्तज़ाम, शासन प्रबन्ध और न्याय करना होता था। दीवान का काम लगान वसूल करना। हर दीवान की नियुक्ति की सनद में लिखा होता था कि उसका सब से मुख्य काम "खेती के काम को और ग्रामों की आबादी को बढ़ाना" है। लगान की वसूली में खेतिहर के साथ किसी तरह की ज़बरदस्ती की इजाज़त न थी। एक हिदायत हर सनद में यह होती थी कि—

> "यदि किसी आमिल के इलाक़े में कई साल की लगान की बक़ाया चली आती है, तो तुम उस रक़म को किसानों से बहुत आसान क़िस्तों में वसूल करना, यानी बक़ाया का केवल पाँच फ़ीसदी हर फ़सल के मौक़े पर वसूल करना।"*

इसी तरह फ़ौजदारों, थानेदारों, करोड़ियों, तहसीलदारों इत्यादि सब को हिदायत होती थी कि किसानों को किसी तरह का कष्ट न पहुँचाएँ।

उस समय के किसानों की हालत

जदुनाथ सरकार, मुग़ल साम्राज्य के दिनों के भारतीय किसानों की उस समय के फ़्रांस और आयरलैण्ड के किसानों से तुलना करते हुए, लिखता है—

> "किन्तु फ़रक़ यह था कि अंगरेज़ों के आने से पहले (मुग़ल-भारत मे) किसी किसान को लगान अदा न करने के क़सूर में ज़मीन से बेदख़ल न किया जाता था, कोई किसान भूखा न था।" × × × बटाई की प्रथा के अनुसार चूँकि लगान पैदावार

* Ibid p 88

की शकल में लिया जाता था, किसान को बड़ा फ़ायदा रहता था, क्योंकि लगान की अदायगी हर साल की असली पैदावार पर निर्भर होती थी। इसके ख़िलाफ़ आज कल का लगान रुपयों की शकल में नियत होता है जिसका उस साल की पैदावार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं होता।"

हर मुग़ल सम्राट की तरफ़ से तमाम सूबों के कर्मचारियों और सामन्त नरेशों के नाम बार बार इस मज़मून की आज्ञाएँ निकलती रहती थीं कि किसी किसान के साथ लगान की वसूली में या किसी मामले में किसी तरह की ज़बरदस्ती न की जाय और कोई नाजायज़ रक़म या 'अबवाब' किसी से वसूल न की जाय।

इतिहास लेखक फ़्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि—

"जब कभी सम्राट की सेना ग्रामों में से होकर निकलती थी और उनके कूच की वजह से किसान के माल को हानि पहुँचती थी या उसकी बरबादी होती थी, तो विश्वस्त आदमी इस बात के लिए नियुक्त किए जाते थे कि वे उस हानि या बरबादी के मूल्य का ठीक ठीक तख़मीना लगाएँ। तख़मीना लगाने के बाद ये लोग या तो उस रक़म को किसान के सरकारी लगान में से कम कर देते थे या व्यर्थ की शिकायतों और बहसों से बचने के लिए उसी समय किसानों के दावे के अनुसार उन्हें रक़म अदा कर देते थे।"*

---

* *The Emperor Akbar, etc*, by Frederick Augustus, translated by A S Beveridge, pp 273-77

औरंगज़ेब का एलान

सन् १६७३ में सम्राट औरंगज़ेब ने अपने साम्राज्य भर में एक एलान प्रकाशित किया, जिसमें ५४ चीज़ों की एक सूची दी गई थी और लिखा था कि इनमें से किसी के ऊपर प्रजा से किसी तरह का महसूल आदि न लिया जाय। इसी एलान में सम्राट ने राज कर्मचारियों और ज़मींदारों को आज्ञा दी कि किसी किसान से किसी तरह की भी 'भेंट या बेगार' न ली जाय। इन ५४ चीज़ों में मछली, तेल, घी, दूध, दही, उपले, तरकारियाँ, घास, ईंधन, मिट्टी के बरतन, ऊँट, गाड़ियाँ, चरागाह, सड़कों की रहदारी का महसूल, नदियों के घाटों का महसूल, रुई, गन्ना, रस, कपड़े की छपाई, इत्यादि भी शामिल थीं। इसी एलान में लिखा था कि गंगा या अन्य तीर्थों में नहाने वालों से या अपने मुर्दों की अस्थियाँ गंगा में ले जाने वाले हिन्दुओं से किसी तरह का महसूल न लिया जाय।

इस तरह की आज्ञाएँ सम्राट अकबर के समय से लेकर बराबर निकलती रहती थीं। हर नए सम्राट को अपने तख़्त पर बैठने के समय या कभी कभी अपने शासन काल में एक से अधिक बार उन्हें इसलिए दोहराते रहना या कभी कभी बदलना पड़ता था ताकि कोई सामन्त या कर्मचारी इस विषय में असावधान न हो जाय। जदुनाथ सरकार लिखता है—

> "उस समय के इतिहासों और पत्रों से ज़ाहिर है कि मुग़ल साम्राज्य के अधिराज की नीति सदा यही होती थी कि रय्यत पर किसी तरह का अत्याचार न होने पाए। यह बात साबित की जा सकती है कि यह नीति केवल एक शुभ कामना ही न थी, बल्कि यही उस समय की सच्ची हालत थी। शाहजहाँ और

औरंगज़ेब के समय की अनेक ऐसी घटनाएँ उस समय के इतिहास में मिलती हैं, जिनमें कि ज्योंही माल के मोहकमे के किसी कर्मचारी, या किसी प्रान्त के सूबेदार की सख़्ती या ज़बरदस्ती की कोई शिकायत प्रजा की ओर से सम्राट के कानों तक पहुँची, तुरन्त उस राजकर्मचारी को या उस सूबेदार तक को बरख़ास्त कर दिया गया।"*

ऊपर के लेखक ने एक फ़ारसी दस्तावेज़ से मिसाल के तौर पर एक घटना नक़ल की है, जिससे "साफ़ पता चलता है कि शाहजहाँ किसानों के साथ इन्साफ़ करने, बल्कि उदारता का व्यवहार करने के लिए कितना उत्सुक था।"

शाहजहाँ और किसान

एक दिन शाहजहाँ साम्राज्य के माल के काग़ज़ात का मुआयना कर रहा था। उसने देखा कि किसी गाँव की उस साल की मालगुज़ारी पिछले वर्षों की मालगुज़ारी से कई हज़ार अधिक दर्ज है। तुरन्त माल के मोहकमे के प्रधान अफ़सर दीवाने आला सादुल्ला ख़ाँ को तलब किया गया। सम्राट ने दीवान से मालगुज़ारी के बढ़ने की वजह पूछी। तहक़ीक़ात कराने पर मालूम हुआ कि उस साल गाँव के पास की नदी कुछ पीछे को हट गई

* "The policy of the supreme head of the Mughal Government not to commit any exaction on the ryot is manifest from the contemporary histories and letters, and can be proved to have been a reality and not merely a pious wish Several instances are recorded in the reigns of Shah Jahan and Aurangzeb in which harsh and exacting revenue collectors and even provincial viceroys were dismissed on the complaints of their subjects reaching the Emperor's ears "—Ibid, p 108

थी जिससे गाँव की ज़मीन बढ़ गई थी। इसीलिए लगान बढ़ाया गया था। सम्राट ने फिर दरियाफ़्त किया कि जो ज़मीन बढ़ी है, वह मामूली ज़मीन के पास की है या माफ़ी की ज़मीन के पास की। मालूम हुआ कि पास की ज़मीन माफ़ी की ज़मीन है। यह बात सुनते ही शाहजहाँ ग़ुस्से में भर कर चिल्ला पड़ा—

"उस जगह के यतीमों, बेवाओं और ग़रीबों की आहोज़ारी पर वहाँ की ज़मीन का पानी सूख गया है। यह उनको ख़ुदा की एक देन थी, तुमने उसे राज के लिए छीनने का साहस किया! यदि ख़ुदा के बन्दों के लिए दया का भाव मुझे न रोकता तो मैं उस दूसरे शैतान को यानी उस ज़ालिम फ़ौजदार को, जिसने इस नई ज़मीन से लगान वसूल किया है, फाँसी का हुकुम देता। अब उसे केवल बरख़ास्त कर देना उसके लिए काफ़ी सज़ा होगी, ताकि दूसरे लोग भी आगाह हो जायँ, और इस तरह की बेइन्साफ़ी के बदकार न करें। हुकुम जारी कर दो कि तुरन्त जितना ज़्यादा लगान वसूल किया गया है वह सब जिन किसानों से लिया गया है, उन्हें फ़ौरन वापस कर दिया जाय।"*

सन् १६६२ में उड़ीसा प्रान्त के दीवान मोहम्मद हाशिम ने कुछ नए 'करोड़ी' (लगान वसूल करने वाले कर्मचारी) इसलिए नियुक्त किए क्योंकि इन लोगों ने पुराने करोड़ियों की निस्बत अपने इलाक़ों से अधिक लगान वसूल करके भेजने का वादा किया था। तुरन्त समाचार मिलते ही मोहम्मद हाशिम को बरख़ास्त कर दिया गया।

* India Office Library, *Persian Manuscript*, No 370, interleaf facing folio 68

'अबवाब' की वसूली के ख़िलाफ़ आज्ञाएँ फ़ीरोज़शाह तुग़लक़ (सन् १३७५) के समय से सम्राट अकबर (१५६०) के समय तक और उसके बाद क़रीब क़रीब हर मुग़ल सम्राट के समय में बराबर जारी होती रहती थीं।

मुग़ल सम्राट अपनी विशाल प्रजा के सुख दुख से बेख़बर भी न रहते थे। मुग़ल समय में 'वाक़े नवीसों', 'सवाने नवीसों', 'अख़बार नवीसों', 'ख़फ़िया नवीसों' इत्यादि का एक ज़बरदस्त मोहकमा था, जिसके ज़रिए साम्राज्य के कोने कोने की ख़बरें दिल्ली सम्राट के कानों तक पहुँचती रहती थीं।

निस्सन्देह किसानों के सुख और उनकी समृद्धि का भारत के लिखे हुए इतिहास में किसी समय भी इतना अच्छा और व्यवस्थित प्रबन्ध न था जितना मुग़ल सम्राटों के समय में। यही वजह है कि उस समय के अनेक यूरोपियन और अन्य यात्री भारतीय ग्रामों की ख़ुशहाली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं और लिखते हैं कि संसार के अन्य किसी भी देश में उस समय किसानों की हालत इतनी अच्छी न थी।*

कोतवाल के कर्त्तव्य

मुग़ल साम्राज्य के अन्दर हर शहर में अन्य कर्मचारियों के अलावा एक कोतवाल होता था, जिसके कामों में से एक काम यह भी होता था—

> "कोतवाल का यह काम है कि शराब का खिंचना बिलकुल बन्द कर दे। वह इसके लिए ज़िम्मेदार होता है कि शहर में कोई वेश्या न रहे × × ×"†

* *e g Bengal in 1756-57*, by S C Hill, vol 1

† Manucci, vol *ii*, pp 420, 421

यह बयान एक विद्वान् यूरोपियन यात्री का है, जिसने औरङ्गज़ेब के समय में स्वयं मुग़ल साम्राज्य की हालत को देखा था। हर कोतवाल की सनद में लिखा होता था कि तुम्हारी यह ज़िम्मेदारी है कि तुम्हारे शहर में कोई चोरी न होने पाए, शहर के लोग सुरक्षित रहें, और अमन के साथ अपने व्यापार आदिक कर सकें।

हर इलाक़े के लिए एक, 'मुहतसिब' होता था, जिसका ख़ास काम यह होता था कि शहर की हर गली में जाकर शराब बनने और बिकने के स्थानों, जुआख़ानों आदि को ज़बरदस्ती बन्द कर दे। शायद हिन्दू साधुओं की प्रथा का ख़याल करते हुए सूखे मादक द्रव्यों जैसे गाँजा, भाँग इत्यादि की इतनी कड़ी मनाही न थी। मुहतसिब की हिदायतों में लिखा होता था कि "शहरों के अन्दर शराब इत्यादि मादक द्रव्यों के बिकने की इजाज़त न दो और न 'तवायफ़ों' को शहरों के अन्दर रहने दो।"*

शराब बन्दी

इतिहास लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि सम्राट अकबर ने साम्राज्य भर के शहर कोतवालों को यह आज्ञा दे दी थी कि बिना किसी के घर में ज़बरदस्ती घुसे, शराब का बनना जहाँ तक सम्भव हो बन्द करा दिया जाय, इसके बाद सम्राट जहाँगीर ने शराब का बनाना क़ानूनन बन्द कर दिया, किन्तु शाहजहाँ के समय में इस आज्ञा का बहुत अधिक कड़ाई के साथ पालन कराया गया।† औरङ्गज़ेब के समय में भी यह कड़ाई जारी रही।

* *Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, p 41

† *India at the Death of Akbar*, by Moreland, p 159

किन्तु बाद के निर्बल सम्राटों के समय में इस शाही आज्ञा पर ठीक ठीक अमल न हो सका।

न्याय शासन

अब हम मुग़ल समय के न्यायशासन को थोड़े से शब्दों में बयान करते हैं। अत्यन्त प्राचीन काल से भारत के हर गांव में एक ग्राम पञ्चायत होती थी जिसके पञ्चों का चुनना ग्रामवासियों के हाथों में होता था। इस ग्राम पञ्चायत को अपने गाँव के सब म्युनिसिपल अधिकार प्राप्त होते थे, और इनके अलावा गाँव वालों की जान माल की रक्षा और आस पास की सड़कों पर यात्रियों और व्यापारियों की हिफ़ाज़त का काम भी इन्हीं के सुपुर्द होता था। हर पञ्चायत के मातहत चौकीदार होते थे, जो पञ्चायत से तनख़ाह पाते थे और जिन पर राज को किसी तरह का अधिकार न होता था। अपने यहाँ के दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़दमों को तय करने और अपराधियों को दण्ड देने का भी इस पञ्चायत को अधिकार होता था। यह पञ्चायत ही गाँव के बालकों और बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करती थी, जिसका अधिक ज़िक्र हमने इस पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर किया है। अधिकांश नगरों और ख़ास कर छोटे नगरों मे भी इसी तरह की पञ्चायतें थीं जिन्हें इसी तरह के विस्तृत अधिकार प्राप्त थे।

मुग़ल सम्राटों ने इन हज़ारों भारतीय ग्राम पञ्चायतों के प्राचीन अधिकारों में किसी तरह का भी दख़ल नहीं दिया, उन्होंने उन्हें ज्यों का त्यों क़ायम रक्खा, जिसका मतलब यह है कि अंगरेज़ों के आने से पहले सिवाय राज का लगान अदा कर देने के भारतीय ग्रामवासियों को स्वराज्य के अन्य क़रीब क़रीब सब अधिकार प्राप्त थे।

इन पञ्चायतों को मामूली पुलिस के काम में मदद देने के लिए हर ज़िले में एक फ़ौजदार होता था, जिसका काम केवल बडी बडी डकैतियों, उपद्रवों आदि में पञ्चायतों की मदद करना होता था। न्यायशासन में पञ्चायतों को सहायता देने और उनके काम को पूरा करने के लिए हर इलाक़े में फ़ौजदारी के मुक़दमों को तै करने के लिए एक 'क़ाज़ी' और दीवानी के मुक़दमों के लिए एक 'सद्र' होता था। साम्राज्य भर के क़ाज़ियों का अफ़सर एक 'क़ाज़िउलक़ुज़्ज़ात' होता था, जो राजधानी में रहता था। इसी तरह तमाम सद्रों के ऊपर एक 'सद्रुस्सुदूर' होता था। हर नए क़ाज़ी की नियुक्ति के समय राज की ओर से उसे नीचे लिखी हिदायत की जाती थी—

"सदा इन्साफ़ करना, ईमानदार रहना और किसी की रू रियायत न करना। मुक़दमे या तो अदालत की जगह और या सरकारी दफ्तर में हमेशा दोनों फ़रीक़ की मौजूदगी में करना।

"जिस जगह तुम्हारी नियुक्ति हो वहाँ के किसी आदमी से किसी तरह का उपहार स्वीकार न करना, और न किसी के जलसे इत्यादि में जाना।

"अपने फ़ैसले, दस्तावेज़ इत्यादि बड़ी सावधानी से लिखना ताकि कोई विद्वान उनमें नुक़्स निकाल कर तुम्हें शरमिन्दा न करे।

"ग़रीबी (फ़क़्र) को ही अपने लिए गौरव (फ़ख़्र) जानना।"*
केवल सुचरित्र और विद्वान लोगों को ही क़ाज़ी और सद्र की पदवियों

* *Mughal Administration*, by Jadunath Sarkar, p 37

पर नियुक्त किया जाता था। इतिहास लेखक फ़्रेडरिक आगस्टस इस बात की गवाही देता है कि भारतीय मुग़ल साम्राज्य के "अधिकांश मुलाज़िम और कर्मचारी ईमानदार और योग्य होते थे।"*

मुक़दमों का फ़ैसला करने में देश के प्राचीन रस्मोरिवाज और धर्म-शास्त्रों का पूरा ख़याल रखा जाता था। सम्राट अकबर ने अनेक योग्य ब्राह्मणों को न्यायाधीश के अधिकार प्रदान किए और आज्ञा दे दी कि न्यायालयों में मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्मशास्त्रों की आज्ञाओं का पालन किया जाय। हर सम्राट सप्ताह में कम से कम एक दिन (प्रायः मङ्गल या बुध का दिन) ख़ास ख़ास मुक़दमों और अपीलों को सुनने में व्यय करता था। प्रजा के हर छोटे से छोटे मनुष्य को अपनी शिकायत लेकर सम्राट तक जाने का अधिकार होता था। सम्राट जहाँगीर ने, जो अपने इन्साफ़ के लिए मशहूर था, आगरे में अपने क़िले की दीवार के ऊपर से एक सोने की ज़ञ्जीर लटका रक्खी थी जो ज़मीन तक लटकती थी। किसी भी छोटे से छोटे फ़रियादी को उस ज़ञ्जीर को खीचने और अपनी अर्ज़दाश्त उसमें बाँध देने का अधिकार होता था और तुरन्त उसे सम्राट के सामने लाकर पेश कर दिया जाता था।

धार्मिक उदारता

धार्मिक उदारता के विषय में अकेले औरङ्गज़ेब को छोड़ कर भारतीय मुग़ल सम्राटों का समय वास्तव में आदर्श समय था। बाबर, हुमायूँ,

* ". . . the mass of the employees were both scrupulous and capable "—*The Emperor Akbar, A Contribution Towards the History of India in the 16th Century*, by Frederick Augustus, Count of Noer, translated by Annette S Beveridge, 1890, p 293

अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ और उनके अधिकांश उत्तराधिकारियों के समय में हिन्दू और मुसलमानों के साथ राज की ओर से एक समान व्यवहार किया जाता था, दोनों धर्मों को एक समान आदर की दृष्टि से देखा जाता था और किसी के साथ किसी तरह का भी पक्षपात न किया जाता था। अंगरेज़ एलची सर टॉमस रो ने सन् १६१६ ईसवी में सम्राट जहाँगीर के शासन काल में उस समय की हालत को देखते हुए लिखा था—

"तैमूरलङ्क की सन्तान अपने साथ मोहम्मद का मज़हब भारत में लाई, किन्तु उन्होंने अपनी विजय के बल किसी को ज़बरदस्ती उस मज़हब में शामिल नहीं किया, और धर्म के मामले में सबको आज़ाद छोड़ दिया।"*

औरङ्गज़ेब और उसके उत्तराधिकारियों के समय की (१६८८-१७२३) बंगाल की हालत को बयान करते हुए एक दूसरा अंगरेज़ कप्तान अलेक्ज़ेण्डर हैमिल्टन लिखता है—

"यहाँ पर एक सौ से ऊपर मत मतान्तरों के लोग हैं, किन्तु वे अपने उसूलों या उपासना विधियों के विषय में कभी नहीं लड़ते झगड़ते। हर शख़्स को आज़ादी है कि अपने तरीक़े के अनुसार ईश्वर की सेवा और पूजा करे। मज़हब के नाम पर दूसरे को किसी तरह की यातनाएँ देने का यहाँ कोई नाम भी नहीं जानता × × ×

---

* "Tamerlain's offspring brought in the knowledge of Mohammad, but imposed it on none by the law of conquest, leaving consciences at liberty"—*A General Collection of the Best and Most Interesting Voyages etc*, edited by John Pinkerton, London 1811, vol viii p 46

"बङ्गाल के शासकों का मज़हब इसलाम है, किन्तु हर मुसलमान पीछे वहाँ सौ से ऊपर हिन्दू हैं और तमाम सरकारी नौकरियाँ और ओहदे बिना किसी भेद भाव के दोनों मज़हब के लोगों को दिए जाते हैं।"*

डॉक्टर बेनीप्रसाद ने अपनी पुस्तक जहाँगीर के इतिहास में लिखा है कि भारतीय मुग़ल सम्राटों के दरबारों में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों के मुख्य मुख्य त्योहार एक समान उत्साह और वैभव के साथ मनाए जाते थे। दशहरे के दिन सम्राट के हाथी और घोड़े सज धज कर जुलूस में निकाले जाते थे। रक्षाबन्धन के दिन ब्राह्मण लोग और हिन्दू सामन्त सरदार सम्राट की कलाई में आकर राखी बाँधते थे, दीपावली की रात को महल में रोशनी होती थी और जुआ तक खिलता था। शिवरात्रि को महलों के अन्दर ख़ास रौनक़ दिखाई देती थी। ठीक इसी तरह मुसलमानों की ईद और शबबरात भी उतने ही उत्साह के साथ मनाई जाती थी।* हर सम्राट की सालगिरह साल में दो बार मनाई जाती थी, एक मुसलमान चाँद की तारीख़ों के अनुसार और दूसरे हिन्दू तिथियों के अनुसार।

---

* There are above one hundred different sects but they never have any hot disputes about their doctrine or way of worship Every one is free to serve and worship God in their own way, and persecutions for religion's sake are not known among them "

Further, 'The religion of Bengal is established, is Mohammadan, yet for one Mommadan there are above one hundred pagans and the public offices and posts are filled promiscuously with men of both persuasions "— Ibid, pp 321, 415

* *History of Jehangir,* by Beniprasad, M A., D Sc, Ph D, p 100

निस्सन्देह धार्मिक उदारता ही भारतीय मुग़ल साम्राज्य की आधार शिला थी। सम्राट बाबर ने अपने बेटे हुमायूँ के नाम अपने अन्तिम आदेश में इस धार्मिक उदारता की नींव रक्खी। हुमायूँ ने ईमानदारी के साथ उस पर अमल किया। सम्राट अकबर ने इस उदारता को उस अलौकिक पराकाष्ठा तक पहुँचाया जो संसार के धार्मिक इतिहास में सदा के लिए एक सीमा चिन्ह रहेगी। जहाँगीर और शाहजहाँ ने आश्चर्यजनक सफलता के साथ उसका पालन किया।

उस समय का ईसाई यूरोप

हमें याद रखना चाहिए कि यह ठीक वह समय था जब कि यूरोप के अन्दर धर्म के नाम पर अत्याचार और ज़बरदस्तियाँ एक आए दिन की मामूली घटना थी। आयरलैण्ड में उस समय न किसी रोमन कैथलिक को अपने पूर्वजों की जागीर मिल सकती थी, न कोई कैथलिक फ़ौज का अफ़सर हो सकता था और न जजी की बेञ्च पर बैठ सकता था। फ़्रान्स में ह्यूगेनाट सम्प्रदाय के एक एक आदमी को देश से समुद्र पार निर्वासित कर दिया गया था। स्वीडन में सिवाय लूथर की सम्प्रदाय के और किसी ईसाई को जूरी का मेम्बर होने का अधिकार न था। स्पेन में प्रॉटेस्टेण्ट सम्प्रदाय के लोगों के मरने के समय किसी पादरी को उनकी अन्त्येष्टि क्रिया करने की इजाज़त न थी। इतना ही नहीं, बल्कि यूरोप के एक एक देश में उस समय 'ऐक्टस् ऑफ़ यूनिफ़ॉर्मिटी' पास हो रहे थे जिनका अर्थ यह था कि सिवाय ईसाई मत की उस सम्प्रदाय विशेष के मानने वालों के, जिस सम्प्रदाय के कि वहाँ के शासक होते थे, किसी दूसरी सम्प्रदाय के लोग देश में सुख चैन से न रहने पाएँ। इन्हीं अत्याचारी क़ानूनों के फलरूप यूरोप के हर

देश में हज़ारों कैथलिक, हज़ारों एङ्गलिकन, हज़ारों लूथरेन, हज़ारों प्युरिटेन, हज़ारों प्रेसबिटेरियन, हज़ारों लेवेटर, हज़ारों एनेबेप्टिस्ट, और हज़ारों कवेनेण्टर ज़िन्दा जला दिए गए, तलवार के घाट उतारे गए, या यातनाएँ दे देकर मार डाले गए, और ये सब के सब ईसाई थे, उतने ही कट्टर ईसाई जितने कि उन पर अत्याचार करने वाले उनके दूसरे देशवासी थे।

भारत और यूरोप की तुलना

उस समय के भारत और यूरोप की तुलना करते हुए अंगरेज़ इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है—

> "दिल्ली के शुरू के सम्राटों के दिनों में, सत्रहवीं सदी के मध्य तक, सब धर्मों के लोगों के साथ पूरी उदारता का व्यवहार किया जाता था। ठीक उसी समय यूरोपनिवासी धर्म के नाम पर अत्याचारों द्वारा अपने महाद्वीप को एक विशाल श्मशान भूमि बनाने की ज़ोरदार कोशिशों में लगे हुए थे, अपने अपने धर्म की रक्षा के लिए लोग यूरोप के विविध देशों से भाग भागकर अमरीका में जा जाकर बस रहे थे। क्या आज उन्हीं लोगों के वंशज, उनकी क़बरें बनाने वाले, भारत पर दोष लगाने का साहस कर सकते हैं? क्या वे बेशर्मी के साथ इस बात का दम भर कर इतिहास को कलङ्कित कर सकते हैं कि उस समय उनकी सभ्यता भारत की सभ्यता से अधिक सच्ची थी? यदि उन्हीं के लिखे इतिहास पर विश्वास करके उन्हीं की गवाही ली जाय, और जो कट्टर ईसाई उस तमाम समय में धर्म के नाम पर फाँसियाँ खड़ी

कर रहे थे, बेड़ियाँ कस रहे थे और दूसरी सम्प्रदाय के ईसाइयों को दण्ड देने के लिए 'ऐक्टस ऑफ़ यूनिफ़ार्मिटी' पास कर रहे थे, जिनकी उँगलियों से कवेनेण्टर सम्प्रदाय के लोगों का ख़ून, कैथलिक लोगों का ख़ून और प्यूरिटन लोगों का ख़ून लगातार टपक रहा था, यदि उन्हीं को बुला कर उनकी गवाही ली जाय, तो वे क्या मुँह दिखला सकेंगे ?"*

इस पुस्तक में कई स्थान पर यह दिखलाया गया है कि मुसलमानों और ख़ास कर मुग़लों के शासनकाल में राज की ऊँची से ऊँची पदवियाँ हिन्दुओं को मिली हुई थीं। हर सम्राट की ओर से बेशुमार हिन्दू मन्दिरों को जागीरें और माफ़ियाँ दी गईं। औरङ्गज़ेब मुतास्सिब और अनुदार था, फिर भी औरङ्गज़ेब के दरबार में भी हिन्दू मन्त्री और उसकी सेना में हिन्दू सेनापति मौजूद थे। औरङ्गज़ेब की मृत्यु को आज दो सौ साल से ऊपर हो चुके, किन्तु अभी तक अनेक हिन्दू मन्दिरों के पास, मिसाल के तौर पर इलाहाबाद के पास अरैल में सोमेश्वरनाथ के मन्दिर के हिन्दू पुजारियों के

* "During the reigns of the earlier Emperors of Delhi, to the middle of the seventeenth century, complete tolerance was shown to all religions. Shall they who build the tombs of those who at that very time, were busily employed in making Europe one mighty charnel-house of persecution, and in colonising America with fugitives for conscience' sake, rise up in judgment against India, or load the breath of history with the insolent pretence of having then enjoyed a truer civilization ? What if they were taken at their word, and called forth with the Covenanters' blood, and the Catholic's blood, and the Puritan's blood dripping quick from the orthodox hands that all that time were building scaffolds, riveting chains, and penning penal 'Acts of Uniformity' ? "—*Empire in Asia, How We Cam by It. A book of Confessions* by W. M Torrens, M. P., Panini Office reprint, pp. 96, 97.

पास, औरङ्गज़ेब के दस्तख़ती परवाने मौजूद हैं जिनमें उन मन्दिरों को राज की ओर से जागीरें दी गई हैं।

अमन और ख़ुशहाली के लिहाज़ से मुग़ल साम्राज्य का समय भारत के इतिहास में निस्सन्देह स्वर्ण युग था। असंख्य यूरोपियन और एशियाई यात्रियों की गवाहियाँ और उस समय के ऐतिहासिक उल्लेख इस विषय में नक़ल किए जा सकते हैं। धन धान्य, और सुख सम्पत्ति की जो रेल पेल भारत के अन्दर सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल में देखने में आती थी वह संसार के इतिहास में शायद ही कभी किसी दूसरे देश को नसीब हुई हो।

इतिहास लेखक मोरलैण्ड लिखता है कि विदेशी व्यापारी और यात्री उन दिनों इस बात को देख कर चकित रह जाते थे कि भारत के नगरों में लोगों के माल की रक्षा का कितना सुन्दर प्रबन्ध था। अनेक यात्री इस बात की गवाही देते हैं कि अव्वल तो चोरियाँ होती ही बहुत कम थीं, और यदि किसी नगर में चोरी हो जाती थी और माल बरामद न हो पाता था तो नगर के कोतवाल को अपने पास से माल की क़ीमत भर देनी पड़ती थी।*

हुमायूँ के दो शासनकालों के बीच के कुछ साल तक दिल्ली में शेरशाह का शासन रहा। किन्तु फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि "शेरशाह का चन्दरोज़ा शासन भी हिन्दोस्तान की उन्नति के लिए अहितकर साबित न हुआ, सड़कों के ऊपर आने जाने, माल के लाने ले जाने और व्यापारियों की रक्षा का उसने इतना सुन्दर प्रबन्ध कर दिया कि जितना पहले न था।"†

---

* *India at the Death of Akbar*, by Moreland, pp 38, 39

† *The Emperor Akbar, etc*, by Frederick Augustus, p 277.

सम्राट जहाँगीर ने तख़्त पर बैठते ही सब से पहले जो आज्ञाएँ जारी कीं उनमें से एक यह थी कि साम्राज्य भर में सड़कों और सड़कों के ऊपर सरकारी कुओं, सरायों आदि की मरम्मत की जाय और यात्रियों की हिफ़ाज़त का पूरा प्रबन्ध किया जाय, और दूसरी यह थी कि कोई भी राजकर्मचारी या ज़मींदार किसी वजह से भी किसी किसान की ज़मीन से उसकी इच्छा के ख़िलाफ़ उसे बेदख़ल न करे,* तीसरी यह थी कि किसी व्यापारी का माल चुङ्गी इत्यादि के लिए चौकियों और सड़कों पर खोल कर न देखा जाय। जहाँगीर ने साम्राज्य भर में अनेक मुसाफ़िरख़ाने, मदरसे और अस्पताल, तालाब, कुएँ और पुल बनवाए, तमाम बड़े बड़े नगरों में राज के ख़र्च पर हकीम और वैद्य नियुक्त किए, शराब और तम्बाकू का बनना और पिया जाना क़ानूनन् बन्द किया। संसार के किसी भी देश में उस समय राज की ओर से प्रजा की शिक्षा का बाज़ाब्ता इन्तज़ाम न था। मुग़ल सम्राटों ने इस कमी को पूरा करने के लिए साम्राज्य भर में हज़ारों विद्वान पण्डितों और मौलवियों को पाठशालाएँ और मकतब जारी रखने के लिए माफ़ियाँ और वज़ीफ़े अता किए।† अनेक अंगरेज़ यात्री स्वीकार करते हैं कि मुग़ल सम्राटों के उदार प्रोत्साहन के प्रताप से उस समय के भारत में शिक्षितों की संख्या आबादी के हिसाब से संसार भर मे सब से अधिक थी।

उद्योग धन्धों में भारत उस समय न केवल अपनी समस्त आवश्यकताओं को ही पूरा करता था, बल्कि शेष अधिकांश संसार की मण्डियों

* *India at the Death of Akbar*, by Moreland, p 46 and 129

† *History of Jehangir*, by Beniprasad, M A, D Sc., Ph. D., pp 92-94

में भी अधिकतर भारत का बना हुआ माल ही दिखाई देता था। आज से क़रीब सवा सौ साल पहले तक यानी उन्नीसवीं सदी के शुरू तक भारत के बने हुए जहाज़ उस समय के इङ्गलिस्तान और अन्य यूरोपियन देशों के बने हुए जहाज़ों से कहीं अधिक सुन्दर, कहीं अधिक मज़बूत और कहीं अधिक टिकाऊ होते थे।*

ईसा की पन्द्रवीं सदी में यूरोपियन यात्री काउण्टी लिखता है कि जितने बड़े जहाज़ भारत में बनते थे उतने यूरोप मे कहीं देखने को न मिलते थे। मुग़ल साम्राज्य के शुरू के दिनों में जो अङ्गरेज़ भारत आए उन्होंने और भी अधिक बड़े बड़े सुन्दर और मज़बूत भारतीय जहाज़ों का हाल अपने यात्रा वृत्तान्तों में लिखा है। मुग़ल साम्राज्य के दिनों में चीन और जापान मे लेकर अफ़रीका के दक्खिन तक जितने जहाज़ आते जाते थे, उनमें से अधिकांश भारत के और ख़ास कर गुजरात के बने हुए होते थे। बङ्गाल से सिन्ध तक का सारा व्यापार केवल भारतीय जहाज़ों द्वारा किया जाता था। मुसाफ़िरों के आने जाने के लिए जितने बड़े जहाज़ भारत में बनते थे उतने और कहीं न बनते थे। पूरब में मेक्सिको (अमरीका) तक और पच्छिम में इङ्गलिस्तान तक भारत का बना हुआ माल भारतीय जहाज़ों में लद कर दूसरे देशों को जाता था। हज के लिए जाने वाले भारतीय मुसलमान भारतीय जहाज़ों ही में भारत से अरब तक आते जाते थे।†

बारबोसा लिखता है कि सत्रवीं सदी के शुरू में गुजरात के बने हुए रेशम के कपड़े अफ़रीका और पगू तक जाते थे। वारथेमा लिखता है कि

* *Prosperous British India*, by William Digby, pp 86, 88

† *India at the Death of Akbar*, pp. 67-71

उन दिनों गुजरात "समस्त ईरान, तातार, टरकी, शाम, बारबरी, अरब, ईथियोपिया (अबीसीनिया, अफ़रीका) और अन्य कई देशों" को अपने यहाँ के बने हुए "रेशमी और सूती कपड़े" मुहय्या करता था। उस समय के यात्री लिखते हैं कि स्वयं भारत के अन्दर कपड़े की खपत उस समय मामूली न थी। क़रीब क़रीब सब ऊपर की और बीच की श्रेणी के लोग रेशम पहनते थे और बड़े बड़े चोग़े पहनते थे।

ख़ास कर रेशम के धंधे ने सम्राट अकबर के समय में अपूर्व उन्नति की। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि अकबर ने ख़ुद रेशम के धंधे का परिश्रम के साथ अध्ययन किया, चीन और अन्य देशों से कारीगर बुला कर नौकर रक्खे और लाहौर, आगरा, फ़तहपुर, अहमदाबाद इत्यादि में राज के ख़र्च पर बड़े बड़े कारख़ाने खुलवाए। अकबर के समय में जब कि गेहूँ आजकल के वज़न के हिसाब से एक रुपए का एक मन बारह सेर आता था, चार आने में एक सुन्दर ख़ालिस ऊन का कम्बल ख़रीदा जा सकता था। अबुलफ़ज़ल लिखता है कि लाहौर के अन्दर उस समय शाल बनाने के एक हज़ार सरकारी कारख़ाने थे, काशमीर और अन्य स्थानों में अलग रहे। आगरे और लाहौर में दरियों और क़ालीनों के अनेक सरकारी कारख़ाने थे।

सौ सवा सौ साल पहले तक के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि बार बार अपने पत्रों में इंगलिस्तान लिखकर भेजते थे कि इङ्गलिस्तान के बने हुए कपड़ों की भारतीय कपड़ों के मुक़ाबले में भारत में कोई खपत नहीं हो सकती।

पुर्तगाली यात्री पिरार्ड लिखता है कि सत्रवीं सदी के शुरू में बङ्गाल के अन्दर जो अत्यन्त घना बसा हुआ देश था, सूती वस्त्रों का धंधा घर

घर फैला हुआ था और "आशा अन्तरीप (अफ़रीका) से लेकर चीन तक हर स्त्री और पुरुष सिर से पाँव तक कपड़े पहनता है और ये सब कपड़े भारतीय करघों के बने हुए होते थे।" अरब के सौदागर मिश्र में और यूरोप में भारत के बने हुए कपड़े ले जाकर बेचते थे। लङ्का, बरमा, मलाका, चीन, जापान, फ़िलिप्पाइन और मेक्सिको में उन दिनों भारत के कपड़ों की बेहद खपत थी। इस पुस्तक के अन्दर 'भारतीय उद्योग धंधों का नाश' शीर्षक अध्याय में हमने अङ्गरेज़ों के आने से पहले की भारतीय उद्योग धंधों की अवस्था को बयान किया है।

उस समय के इतिहास और यूरोपियन और अन्य यात्रियों के वृत्तान्तों से यह भी पता चलता है कि मुग़ल समय का भारत न केवल उस समय के यूरोपियन देशों से ही कहीं अधिक घना बसा हुआ था, बल्कि इस समय के भारत से भी उस समय के भारत की आबादी कम से कम ख़ास ख़ास प्रान्तों मे कहीं अधिक घनी थी। कलकत्ता, बम्बई और कराची का उस समय निशान न था। किन्तु आगरा, क़न्नौज, विजयनगर, गोलकुण्डा, बीजापुर, मुलतान, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, पटना, उज्जैन, अहमदाबाद अजमेर और सूरत अत्यन्त घने बसे हुए सुन्दर और बड़े बड़े नगर थे, जिनमें से हर एक उस समय के लन्दन या पेरिस से कई गुना बड़ा था। यूरोप में कहीं भी उस समय आजकल के समान मर्दुमशुमारी का बाज़ाब्ता रिवाज न था। भारत में घरों के हिसाब से आबादी की गणना की जाति थी। फ़्रान्स की आबादी मोरलैण्ड के अनुसार उस समय इस समय से आधी थी, इङ्गलिस्तान की आबादी इस समय का आठवाँ हिस्सा थी। विजयनगर के विषय में कॉण्टी, अबुलरज़ाक़, पेज़ और दूसरे यात्री लिखते हैं कि वहाँ

की आबादी उस समय "इतनी अधिक थी की जिस पर विश्वास करना कठिन है।" विजयनगर के हिन्दू राजाओं के पास बीस लाख फ़ौज तैयार रहती थी। इतनी ही घनी आबादी दखन, गुजरात, पञ्जाब और बाक़ी उत्तर भारत की बताई जाती है। आगरे शहर से लिखा है कि किसी भी समय दो लाख सशस्त्र योधा जमा किए जा सकते थे। बङ्गाल की राजधानी गौड़ के मकानों की संख्या बारह लाख थी, जिसका अर्थ यह है कि उस समय के गौड़ की आबादी इस समय के लन्दन की आबादी से बहुत कम न थी। सूरत से लाहौर तक, लाहौर से आगरे तक और आगरे से गौड़ तक जिन घने बसे हुए ग्रामों और नगरों से होकर यूरोपियन यात्रियों को जाना पड़ता था उन्हें देख कर वे चकित रह जाते थे। निस्सन्देह आबादी और ख़ुशहाली दोनों के लिहाज़ से मुग़ल समय का भारत, केवल एक चीन को छोड़ कर, संसार के अन्य समस्त देशों से कहीं अधिक बढ़ा चढ़ा था।

देशी भाषाओं की उन्नति

मुग़लों और उन दूसरे मुसलमानों के ऊपर भी जो बाहर से आकर भारत में बसे भारतीय जीवन, भारतीय रहन सहन, और भारतीय विचारों की छाप लगे बग़ैर न रह सकी। यहाँ तक कि भारत के मुसलमान दूसरे देशों के मुसलमानों से अलग बिल्कुल भारतीय मुसलमान बन गए। भारत वासियों से मुग़लों ने पान खाना सीखा। हिन्दोस्तानी भाषा को जिसे वे पहले ज़बानेहिन्दवी कहते थे, उन्होंने अपनी भाषा बनाया। बाबर और उसके साथी आरम्भ में ईरानी ज़बान बोलते थे। थोड़े ही दिनों में उन्होंने अपने घरों में, दफ़्तरों में और दरबारों में हिन्दोस्तानी बोलनी शुरू की,

हिन्दोस्तानी उनकी मातृभाषा बन गई, किन्तु उनका साहित्य और सरकारी पत्र व्यवहार फ़ारसी में जारी रहा। सन् १७५० के क़रीब उन्होंने साहित्य के लिए भी हिन्दोस्तानी ही को अपनाना शुरू कर दिया। क़ुदरती तौर पर इस हिन्दोस्तानी में फ़ारसी और तुरकी के अधिक शब्द आ गए, और शाही दरबार में यह भाषा इस्तेमाल होने और दिन प्रति दिन मंजने लगी। इसी से मुग़ल शासन के दिनों में उर्दू की नींव रखी गई। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह उर्दू का सुन्दर कवि था।

दूसरी भारतीय भाषाओं ने भी मुग़ल समय में अपूर्व उन्नति की। जदुनाथ सरकार लिखता है—

> "अकबर ही के अधीन हिन्दी में तुलसीदास और बङ्गला में वैष्णव लेखकों के प्रताप एक ज़बरदस्त हिन्दू साहित्य देश की भाषाओं में पैदा हुआ। सम्राट अकबर ही ने इस देश में एक सच्चे राष्ट्रीय दरबार को जन्म दिया और अकबर के अधीन भारतीय मस्तिष्क का बहुत बड़ा उत्थान हुआ।"*

मुग़ल साम्राज्य से पहले भी बङ्गाल और दक्खिन के मुसलमान शासकों के अधीन वहाँ के देशी साहित्य ने बहुत उन्नति की थी। दिनेश-चन्द्र सेन, जिसकी पुस्तक बङ्गला भाषा और बङ्गला साहित्य के इतिहास पर अत्यन्त प्रामाणिक मानी जाती है, लिखता है—

> "बङ्गला भाषा को साहित्य के पद तक पहुँचाने में कई प्रभावों ने काम किया है, जिनमें निस्सन्देह एक सब से अधिक महत्वपूर्ण प्रभाव मुसलमानों का बङ्गाल विजय करना था। यदि

* *Mughal Administration*, p 146

हिन्दू राजा स्वाधीन बने रहते तो बङ्गला भाषा को राजाओं के दरबारों तक पहुँचने का मुशकिल से ही मौक़ा मिल सकता था।"†

बङ्गाल के मुसलमान शासकों ने विद्वान पण्डितों को नियुक्त करके रामायण और महाभारत का संस्कृत से बङ्गला में अनुवाद कराया। बङ्गाल के मुसलमान शासक नसीरशाह ने चौदवीं सदी के शुरू में महाभारत का बङ्गला में अनुवाद कराया। मैथिल कवि विद्यापति ने इस विषय में नसीरशाह और सुलतान ग़यासुद्दीन की ख़ूब प्रशंसा की है। राजा कंस के उत्तराधिकारी ने इसलाम मत स्वीकार किया। कंस के दरबार में मुसलमानों का प्रभाव बहुत अधिक था। रामायण के अनुवादक कृत्तिवास को उस दरबार से पूरी सहायता मिलती थी। सम्राट हुसेनशाह ने मलधर वसु द्वारा भागवत का बङ्गला में अनुवाद कराया और इसके इनाम में मलधर वसु को गुनराज ख़ाँ का ख़िताब दिया। हुसेनशाह के सेनापति परङ्गल ख़ाँ ने महाभारत का एक दूसरा बङ्गला अनुवाद कवीन्द्र परमेश्वर से कराया।‡ परङ्गल ख़ाँ के बेटे चट्टग्राम के शासक छोटे ख़ाँ ने श्रीकरण नंदी से महाभारत के अश्वमेध पर्व का अनुवाद कराया। एक मुसलमान अलाउल ने मलिक मोहम्मद जायसी की हिन्दी पुस्तक पद्मावत का बङ्गला में अनुवाद किया। अलाउल ने कुछ फ़ारसी किताबों का भी बङ्गला में अनुवाद किया। दिनेशचन्द्र सेन लिखता है—

"इस तरह की मिसालें बेहद मिलती हैं जिनमें कि मुसलमान सम्राटों और सरदारों ने संस्कृत और फ़ारसी के ग्रन्थों

---

† Dinesh Chandra Sen *History of Bengali Language and Literature*, p 10

का अपनी ओर से बङ्गला में अनुवाद कराया, और दूसरों को इस तरह के कामों में मदद दी × × × जब कि बङ्गाल के बलवान मुसलमान बादशाहों ने देश की भाषा को अपने दरबारों में यह उच्च स्थान प्रदान किया तो क़ुदरती तौर पर हिन्दू राजाओं ने उनका अनुसरण किया × × × इस तरह हिन्दू राजाओं के दरबारों में बङ्गाली कवियों की नियुक्ति का रिवाज मुसलमान बादशाहों की देखा देखी शुरू हुआ।"*

बङ्गाल के मुसलमान बादशाहों के समान दक्खिन के बहमनी बादशाहों ने भी वहाँ के साहित्य और कलाकौशल को ख़ूब उन्नति दी। आदिलशाही बादशाहों के दफ़्तरों मे मराठी भाषा का उपयोग किया जाता था और मराठों को माल और सेना विभाग के उच्च पदों पर नियुक्त किया जाता था। क़ुतुबशाह दक्खिनी ख़ुद मराठी भाषा का सुन्दर कवि था और साहित्य का बड़ा प्रेमी था। मराठी भाषा में हिन्दी और फ़ारसी दोनों भाषाओं के शब्दों ने ख़ूब प्रवेश किया।

हिन्दी, उर्दू, बङ्गला और मराठी के अलावा और उन्हीं के समान पञ्जाबी और सिन्धी भाषाओं और उनके साहित्य ने भी मुसलमानों के समय में भारत में अपूर्व उन्नति की। वास्तव मे वह समय प्राचीन संस्कृत के स्थान पर देशी भाषाओं के उत्थान का समय था। हिन्दुओं और मुसलमानों का जीवन इस विषय में इतना गुथा हुआ था कि मिश्रबन्धुओं ने अपनी पुस्तक में अनेक मुसलमान हिन्दी कवियों की और दिल्ली के

* *History of Bengali Language and Literature*, by Dinesh Chandra Sen, pp 13, 14

मुन्शी श्रीराम ने अपनी पुस्तक में उर्दू के अनेक हिन्दू कवियों की सूची दी है। हिन्दी, मराठी, बङ्गला इत्यादि समस्त भारतीय भाषाओं पर मुसलिम शासन, फ़ारसी और तुरकी शब्दों और मोहावरों का अभी तक अमिट प्रभाव मौजूद है।

साहित्य और विज्ञान की उन्नति

विज्ञान के मैदान में भी भारत की वैद्यक, गणित और ज्योतिष ने आरम्भ के दिनों में अरब विचारों और अरब पुस्तकों द्वारा यूनानी वैज्ञानिक विचारों से अपने ज्ञान कोष को ख़ासी उन्नति दी। सत्रवीं सदी के अन्त या अठारवी सदी के शुरू में महाराजा जयसिंह ने हिन्दू पञ्चाङ्ग का सुधार करने के लिये जयपुर, मथुरा, देहली और बनारस में मान मन्दिर बनवाए और अरबी ग्रन्थ 'अलमजस्ती' का संस्कृत में अनुवाद कराया। भारतीय वैद्यक ने अनेक नई चीज़ें, ख़ासकर तेज़ाबों और कीमिया के क्षेत्र में, अरबों से सीखी। कई तरह के नए धंधे मसलन काग़ज़ बनाना, क़लई करना, चीनी मिट्टी के बरतन और कई तरह के धातों के काम भारत में मुसलमानों के समय से प्रचलित हुए। इसी तरह वस्त्रों, भोजन, सङ्गीत, रहन सहन इत्यादि में भी मुसलमानों के समय में भारतीय जीवन में गहरे और बहु-मूल्य परिवर्तन हुए।

वास्तव में जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, भारत के अन्दर उस समय जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे एक नई समन्वयात्मक सभ्यता का विकास हो रहा था, जो न हिन्दू थी न मुसलमान, न वैदिक थी न बौद्ध, बल्कि जो शुद्ध भारतीय थी, इन सब अलग अलग सभ्यताओं के मेल से बनी थी और जो

प्राचीन भारतीय सभ्यताओं या अरब और ईरान की विदेशी सभ्यताओं दोनों के सर्वोच्च गुण लिए हुए, उन सब से ऊँची थी। हिन्दू अपने प्राचीन जात पाँत के भेदों, अनेक तरह के देवी देवताओं की पूजा, आडम्बरयुक्त कर्मकाण्ड, पुरोहितों के प्रभुत्व, असंख्य अन्धविश्वासों और सदियों की सङ्कीर्णता को तिलाञ्जलि दे, मानव समता, एक ईश्वरवाद और प्रेम और सदाचार के महत्व की ओर बढ़ते हुए दिखाई दे रहे थे। भारत का इसलाम अरब के प्रारम्भिक इसलाम से भिन्न एक नई ही सुन्दर वस्तु बन रहा था और मुसलमान सूफ़ी हिन्दुओं के अनेक उच्च दार्शनिक सिद्धान्तों और योग प्राणायाम जैसी विधियों को अपना कर उन्हें इसलाम का एक अङ्ग बना रहे थे। कबीर, दादू, नानक और बाबा फ़रीद जैसे सैकड़ों हिन्दू और मुसलमान फ़क़ीर महात्मा अलग अलग धर्मों और सम्प्रदायों की बनावटी और हानिकर दीवारों को तोड़ कर मनुष्य मात्र को प्रेम का और एक सार्वजनिक उच्चतम सच्चे मानव धर्म का उपदेश दे रहे थे। शिल्प, विज्ञान, कला कौशल, साहित्य और सामाजिक रहन सहन में नए और उच्चतर आदर्शों का प्रादुर्भाव हो रहा था। भारत की विविध प्रान्तीय भाषाएँ पहली बार अपने अन्दर उच्च और स्फूर्तिदायक साहित्य को जन्म दे रही थीं। समस्त देश सुख चैन और ख़ुशहाली की ओर बढ़ रहा था। एक देश और एक राष्ट्र के भाव मानव प्रेम के रंग में रङ्ग कर समस्त भारत को एक समान उच्चतर और पवित्रतर जीवन की ओर ले जा रहे थे।

सम्राट अकबर

लगातार कई सौ साल से बढ़ते हुए और लहलहाते हुए इस राष्ट्रीय वृक्ष का सब से सुन्दर, सब से महान और सब से गौरवान्वित पुष्प सोलवीं

सदी के मध्य में सुप्रसिद्ध सम्राट अकबर के रूप में आकर खिला। प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान एच० जी० वेल्स सम्राट अकबर के विषय में लिखता है—

"हर इस तरह के पक्षपात से शून्य—जो समाज के टुकड़े टुकड़े करके मतभेद पैदा करते हैं, दूसरे धर्मों के लोगों की ओर उदार, हिन्दू या द्रविड़ समस्त जातियों के लोगों की ओर समदर्शी, वह एक इस तरह का मनुष्य था जो साफ़ साफ़ अपने साम्राज्य भर की परस्पर विरोधी जातियों और श्रेणियों को मिलाकर एक प्रबल, और समृद्ध राष्ट्र बना देने के लिए पैदा हुआ था।"*

एक दूसरे स्थान पर एच० जी० वेल्स लिखता है—

"एक सच्चे नीतिज्ञ के समान उसमे समन्वय की स्वाभाविक प्रवृत्ति मौजूद थी। उसने निश्चय किया कि मेरा साम्राज्य न मुसलिम होगा न मुग़ल, न राजपूत होगा न आर्य, न द्रविड़ होगा न हिन्दू, न उच्च जातियों का होगा न नीच जातियों का, मेरा साम्राज्य भारतीय साम्राज्य होगा।"†

अकबर भारत की उन राष्ट्रीय लहरों का केवल मूर्तिमान फल था जो

---

* Free from all those prejudices which separate society and create dissensions, tolerant to men of other beliefs, impartial to men of other races, whether Hindoo or Dravidian, he was a man obviously marked out to weld the conflicting elements of his kingdom into a strong and prosperous whole "—*The Outline of History*, by H G Wells, London, p 455

† "His instinct was the true statesman's instinct for synthesis. His Empire was to be neither a Moslem nor a Mughal one, nor was it to be Rajput or Ariyan or Dravidian, or Hindoo or high or low caste, it was to be Indian."—Ibid, p 454

नौ रतन

यह चित्र १६ वीं सदी शुरू के दिल्ली के एक चित्रकार याक़ूब ख़ाँ का बनाया हुआ समझा जाता है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसमें कुछ दोष हैं। मसलन् सम्राट अकबर तम्बाकू न पीता था और तम्बाकू पीने के ख़िलाफ़ उसने कड़ी आज्ञाएँ दे रखी थीं। फिर भी यह चित्र इतना अधिक प्रचलित और रोचक है कि हम इसे यहाँ स्थान देते हैं।

नौ नाम नवरत्नों के आगे आते हैं—(१) मिरज़ा कोकलताश, (२) राजा बीरबल, (३) मिरज़ा राजा मानसिंह, (४) [illegible] दीवान राजा टोडर मल, (५) शेख़ अबुल फ़ज़ल, (६) शेख़ फ़ैज़ी, (७) मिरज़ा अब्दुर्रहीम ख़ान ख़ाना, (८) हकीम अबुल फ़तह [illegible] गीलानी और (९) मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी।

दरबार नौरतन अकबरी

By the Courtesy of the [illegible] Victoria Memorial, Calcutta

अकबर के सैकड़ों साल पहले से भारत में चल रही थीं और जो अकबर के बाद तक भी अपना काम करती रहीं। धार्मिक विषय में अकबर ने कबीर के ज्वलन्त उपदेशों से शिक्षा और प्रोत्साहन लिया। सम्राट हर्ष अकबर से कई सौ साल पहले प्रयाग में शिव, बुद्ध, और सूर्य तीनों के मन्दिरों में जाकर बारी बारी पूजा किया करता था। बंगाल में सम्राट हुसेनशाह द्वारा 'सत्यपीर' की पूजा का प्रचार जिसे हज़ारों हिन्दू और मुसलमान एक समान मानते थे, अकबर के धार्मिक विचारों का एक प्रारम्भिक रूप था। फिर भी अकबर का व्यक्तित्व और उसका लक्ष्य दोनों निराले और अत्यन्त महान थे।

धार्मिक क्षेत्र में अपने 'अल्लाह उपनिषद' और 'दीने इलाही' द्वारा उसने एक सरल सार्वजनिक धर्म की नीव रखने की कोशिश की। सामाजिक जीवन में उसने हज़ारों साल की उस प्रथा को, जिसके अनुसार हर विजेता अपने युद्ध के क़ैदियों को ग़ुलाम बना लिया करता था, सन् १५७३ में क़ानूनन् बन्द कर दिया। बलात् वैधव्य, बालविवाह, बहुविवाह, धर्म के नाम पर पशुबलि और सती की प्रथा को उसने यथाशक्ति बन्द करने का प्रयत्न किया। किन्तु उसने अपने किसी सुधार को भी तलवार के ज़ोर से चलाने की चेष्टा नहीं की। फ्रेडरिक आगस्टस लिखता है कि अकबर प्रति दिन ग़रीबों में जितना भोजन वस्त्र इत्यादि तक़सीम किया करता था और अपनी तीर्थ यात्राओं में जितना दान दिया करता था उसमें साम्राज्य की आय का एक ख़ासा हिस्सा ख़र्च हो जाता था। स्त्री जाति की स्वतन्त्रता का वह सच्चा पक्षपाती था। उसके हिन्दू मुसलिम विवाहों ने हिन्दू मुसलिम सम्मिश्रण को और भी अधिक पक्की नींव पर क़ायम करने की

चेष्टा की। अकबर ने एक संयुक्त भारतीय राष्ट्र को अपनी आँखों के सामने साक्षात करने का प्रयत्न किया। वास्तव में उसने एक नए भारत की रचना करना चाहा। अकबर के स्वप्न सर्वथा पूरे न हो सके, किन्तु "उदारता और खोज की जिस महान प्रवृत्ति" को उसने जन्म दिया वह अभी तक क़ायम है और इसमें सन्देह नहीं कि जिस भारतीय राष्ट्रीयता को इस समय भारत में जन्म देने का प्रयत्न किया जा रहा है उसका सब से पहला प्रवर्त्तक और प्रचारक सम्राट अकबर ही था।

फ़्रेडिरक आगस्टस लिखता है—

"बहैसियत एक सेनापति के अकबर महान था, बहैसियत राजनीतिज्ञ के वह नए समाज का निर्माणकर्ता था और सच्चे मानवधर्म के एक क्रियात्मक व्याख्याता की हैसियत से आज तक कोई उससे बढ़कर नहीं हुआ।"*

उस समय की हिन्दू मुसलिम संकीर्णता

सम्राट अकबर के बाद उसके दोनों उत्तराधिकारियों, जहाँगीर और शाहजहाँ, ने एक दूसरे के बाद इसी नीति का अनुसरण किया और इसी राष्ट्रीय प्रगति को बड़ी सुन्दरता के साथ जारी रखा। प्रगति और उसका बल बढ़ता गया, यहाँ तक कि जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, शाहजहाँ का समय भारतीय इतिहास में सबसे अधिक समृद्ध समय और अनेक अर्थों में भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग था। किन्तु एकता, समता, उदारता और

* "Akbar was great as a general, as a statesman creative and down to the present day he is unsurpassed as a practical exponent of genuine humanity."—*The Emperor Akbar etc*, by Frederick Augustus p 296

मानव प्रेम की जो लहरें उस समय भारत के अन्दर काम कर रही थीं वे अभी तक भारतीय जीवन के समस्त क्षेत्र को पूरी तरह अपने वश में न कर पाई थीं। निस्सन्देह उस समय इन शक्तियों का ज़ोर था और वह ज़ोर दिन प्रति दिन बढ़ता जा रहा था। किन्तु दूसरी ओर हिन्दू धर्म और इसलाम की प्राचीन संकीर्ण प्रवृत्तियाँ भी अभी तक समाप्त न हुई थीं। रामानन्द ही के चेलों में यदि एक कबीर था तो दूसरा तुलसीदास। दोनों महान थे, दोनों ईश्वर भक्त थे, दोनों का भारत को गर्व है, दोनों ने अपने अपने ढङ्ग से भावी भारत की रचना मे कम या ज़्यादा भाग भी लिया, किन्तु एक ने अलग अलग धर्मों की दीवारों को तोड़ कर निःशङ्क भावी सार्वजनिक मानव धर्म का उपदेश दिया और दूसरे का झुकाव अभी तक जात पाँत युक्त मध्यमकालीन हिन्दुत्व की ओर था। वल्लभाचार्य इत्यादि अनेक इस तरह की शक्तियाँ और ख़ास कर शैव और वैष्णव आचार्य समस्त भारत में मौजूद थे जो राष्ट्र को भविष्य की ओर ले जाने के बजाय उसे अभी तक भूतकाल की संकीर्णताओं में फँसाए रखने की ओर लगे हुए थे। मुसलमानों मे भी जब कि एक ओर शरीयत के कर्मकाण्ड की परवा न करने वाले सूफ़ी और दरवेश मौजूद थे, जो कबीर के समान एक मानवधर्म के प्रचारक थे, दूसरी ओर इस तरह के अदूरदर्शी मुल्लाओं का भी अभी तक अभाव न हुआ था जो अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तीनों को काफ़िर बतलाते थे। इन्हीं सङ्कीर्ण मुल्लाओं के पूर्वजों ने मनसूर को सूली पर चढ़ाया था और शम्स तबरेज़ की खाल खिचवाई थी। निस्सन्देह संसार को किसी भी दूसरी श्रेणी के लोगों से इतनी हानि न पहुंची जितनी विविध धर्मों के उन पुरोहितों, पादरियों या मुल्लाओं से जो अपने धर्म के अन्तर्गत सच्चे भावों,

सदाचार और मानव प्रेम की अवहेलना कर कर्मकाण्ड और रूढ़ियों में जन सामान्य को फँसाए रखना और विविध मतों और सम्प्रदायों को एक दूसरे से पृथक करने वाली, मानव समाज के टुकड़े करने वाली, कृत्रिम दीवारों को बनाए रखना अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझते हैं। दुर्भाग्यवश अलग अलग मतों के पुरोहितों या मुल्लाओं का व्यक्तिगत हित भी इसी में होता है। जिस समय भारत में कबीर और अकबर जैसों की चलाई हुई लहरें इन सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों को सदा के लिए अन्त करने वाली ही थीं, ठीक उस समय, आज से पौने तीन सौ साल पहले, वह दुर्घटना हुई जिसने इस समस्त राष्ट्रीय प्रगति को उलट पुलट कर दिया।

दाराशिकोह और औरङ्गज़ेब

शाहजहाँ का बड़ा लड़का दाराशिकोह अपने पिता, पितामह और प्रपितामह के समान भारत की इस राष्ट्रीय प्रगति का सच्चा प्रतिनिधि, उसका भक्त और अनुयाई था। दाराशिकोह प्रसिद्ध हिन्दू सन्त बाबालाल का शिष्य था। दाराशिकोह की फ़ारसी पुस्तक 'नादिरुन्निकात', जिसमें दारा ने अपने गुरु बाबालाल के साथ अपने वार्तालाप को बयान किया है, वेदान्त के ऊपर फ़ारसी के सर्वोत्तम ग्रन्थों में गिनी जाती है। दारा के लिए ईश्वर का सबसे प्यारा नाम 'प्रभु' था, जो उसकी मोहर तक में खुदा हुआ था। दारा के छोटे भाई औरङ्गज़ेब ने दारा को हटा कर पिता की गद्दी पर बैठना चाहा। देश की समस्त उन्नत शक्तियाँ स्वभावतः दारा की ओर थीं। विशेष कर समस्त हिन्दू समाज दारा के पक्ष में था। दारा को शिकस्त देने के लिए औरङ्गज़ेब को कट्टर मुल्लाओं और इसलाम की सङ्कीर्ण प्रवृत्तियों को अपनी ओर करना पड़ा। देश की उन्नति में बाधा डालने वाली इन

दारा शिकोह

शक्तियों को नया जीवन मिल गया। वास्तव में भारत की क़िस्मत का फ़ैसला कम से कम आइन्दा तीन सौ साल के लिए ३० मई सन् १६५८ को सामूगढ़ के मैदान में उस समय हुआ जब कि अनुदार, और अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने उदार, और दूरदर्शी दाराशिकोह पर विजय प्राप्त की।

सम्भव है कि औरङ्गज़ेब के स्वभाव में ही सङ्कीर्ण धार्मिकता छिपी रही हो। कहीं अधिक सम्भव है कि, जैसा हमने ऊपर लिखा है, यह सङ्कीर्ण धार्मिकता उसके लिए एक राजनैतिक आवश्यकता रही हो। किन्तु हमारे इस समय के प्रसङ्ग या भारत के भाग्य में इससे कोई फ़रक़ नहीं पड़ता।

सिंहासन पर बैठते ही औरङ्गज़ेब ने देश की समस्त उन्नति बाधक, कट्टर मुसलिम प्रवृत्तियों को अपनी ओर जमा करना शुरू किया। शासक की हैसियत से औरङ्गज़ेब अन्यायी न था। साम्राज्य की ऊँची से ऊँची पदवियाँ उसने बिना भेद भाव हिन्दू और मुसलमानों को एक समान दे रखी थीं। बिना किसी ख़ास वजह के वह अपनी हिन्दू प्रजा के दिल को दुखाना भी न चाहता था। गोवध के ख़िलाफ़ जो कड़ी आज्ञाएँ सम्राट अकबर के समय से चली आती थीं, औरङ्गज़ेब ने उन्हें जारी रखा, और अपने ५० वर्ष के शासन काल में साम्राज्य भर के अन्दर कड़ाई के साथ उनका पालन कराया। किसानों के हित का वह ख़ास ख़याल रखता था। औरंगज़ेब के धार्मिक पक्षपात के जो बेशुमार क़िस्से देश भर में प्रचलित हैं और जिनमें से अनेक इतिहास की पुस्तकों में भी प्रवेश कर गये हैं वे अधिकांश में झूठे हैं। किन्तु औरङ्गज़ेब कट्टर शरई मुसलमान था। वह इसलाम की समस्त संकीर्ण रूढ़ियों का मानने वाला था और उन पर अमल करता था। अकबर और शाहजहाँ के दरबारों के विषय में कहा जा सकता था कि वे

दरबार न हिन्दू दरबार थे और न मुसलिम दरबार, वे शुद्ध भारतीय दरबार थे। औरङ्गज़ेब के दरबार के बारे मे यह न कहा जा सकता था। अकबर और शाहजहाँ को मुसलमान जितना अपना कह सकते थे उतना ही हिन्दू अपना कह सकते थे। औरङ्गज़ेब के विषय में यह बात नामुमकिन थी। शाही दरबार के अन्दर दशहरे, दीवाली, रक्षा बन्धन और शिवरात्रि का मनाया जाना और भारतीय सम्राट का उनमें हिस्सा लेना औरङ्गज़ेब ने बन्द कर दिया। यह सब बातें फिर एक पुरानी कहानी रह गईं।

राष्ट्र के अधिक समझदार लोगों ने, जो पहले की हितकर राष्ट्रीय प्रगति से परिचित थे, इसका विरोध किया। उन्हें दिखाई दे गया कि औरङ्गज़ेब की नीति बने बनाए राष्ट्रीय जीवन के टुकड़े कर देश को नाश की ओर ले जाने वाली है। इन लोगों ने औरङ्गज़ेब को समझाने की कोशिश की। जिस समय औरङ्गज़ेब ने 'जज़िए' के उस निरर्थक किन्तु विवादास्पद कर को, जिसे सम्राट अकबर ने बन्द कर दिया था, फिर से जारी करना चाहा, तो महाराजा सवाई जयसिंह ने सन् १६७८ में औरङ्गज़ेब से कहा—

> "ख़ुदा केवल मुसलमानों ही का ख़ुदा नहीं, बल्कि तमाम इनसानों का ख़ुदा है। उसके सामने हिन्दू और मुसलमान सब एक समान हैं। हिन्दुओं के धार्मिक रिवाजों का अनादर करना उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की इच्छा की अवहेलना करना है।"*

अदूरदर्शी औरङ्गज़ेब ने इस सलाह की परवा न की। स्वभावतः राजपूत, मराठे, सिख और अन्य हिन्दू राजे, महाराजे एक एक कर औरङ्गज़ेब के

* *Rise of the Maratha Power*, by Ranade, p 81

ख़िलाफ़ खड़े हो गए। जिस तरह औरङ्गज़ेब ने सङ्कीर्ण मुसलिम शक्तियों को अपनी ओर किया, उसी तरह मराठों और सिखों ने, हिन्दू सङ्कीर्णता का आश्रय लिया। सारा देश दो विरोधी दलों में बँट गया। कुछ वर्षों के अन्दर ही कबीर और अकबर जैसों के महान प्रयत्नों और सदियों की राष्ट्रीय प्रगति का सत्यानाश हो गया। औरङ्गज़ेब संयमी और बलवान था। वह अपनी ज़िन्दगी भर केवल उस सङ्गठित शक्ति के सहारे, जो बाबर से लेकर शाहजहाँ तक के शासनकालों में मुग़ल साम्राज्य ने प्राप्त कर ली थी, चारों ओर के विद्रोहों को दमन करता रहा। किन्तु जिस साम्राज्य की नींव देश वासियों के हित और उनकी सहानुभूति पर क़ायम की गई थी वह अब केवल हथियारों के बल के सहारे चलाया जाने लगा। दुर्भाग्यवश औरङ्गज़ेब का शासनकाल भी बहुत लम्बा था। अलग अलग धार्मिक सङ्कीर्णता को दोनों ओर बल प्राप्त करने और समता, उदारता, प्रेम और एकता की शक्तियों को तितर बितर होने का काफ़ी मौक़ा मिल गया। औरङ्गज़ेब के मरते ही भारतीय साम्राज्य के टुकड़े टुकड़े होने लगे। देश की प्रधान राजनैतिक सत्ता के निर्बल होने के साथ साथ देश के समस्त उद्योग धन्धों, व्यापार, साहित्य और सुख समृद्धि के भी नाश के बीच बोए गए।

औरङ्गज़ेब के बाद

बहुत सम्भव है कि औरङ्गज़ेब के बाद देश फिर अपनी ग़लती को अनुभव कर उस ग़लती के बुरे नतीजों को दूर कर लेता और शीघ्र ही फिर एक बार पहले की तरह ऐक्य, स्वस्थता और उन्नति के पथ पर चलने लगता, बहुत दरजे तक देश ने ऐसा किया भी। जज़िया औरङ्गज़ेब ही के समय में

चार दिन चल कर बन्द हो गया था। औरङ्गज़ेब के अनेक उत्तराधिकारियों ने औरङ्गज़ेब की सङ्कीर्ण नीति को छोड़ कर फिर उदारता और विशालता का सबूत देना शुरू कर दिया। दिल्ली दरबार में फिर से दशहरा और रक्षा बन्धन उत्साह के साथ मनाए जाने लगे। सम्राट शाहआलम ने शिवाजी के उत्तराधिकारी पूना के पेशवा को अपनी सलतनत का 'वकील' क़रार दिया, और माधोजी सींधिया को अपना 'फ़रज़न्द जिगर बन्द' कहकर स्वयं देहली और आगरे का सूबेदार और राजधानी का शासक नियुक्त किया। शाहआलम के पुत्र अकबरशाह ने ब्रह्मसमाज के जन्मदाता प्रसिद्ध राममोहन राय को राजा का ख़िताब देकर और अपना विश्वस्त वकील नियुक्त करके इङ्गलिस्तान भेजा। अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के जीवन की अनेक घटनाएँ और उसके अनेक कथन इस तरह के मौजूद हैं जिनसे ज़ाहिर है कि वह हिन्दू और मुसलमानों को एक आँख से देखता था और स्वयं सूफ़ी विचारों का था। साम्राज्य के केन्द्र की इस हितकर नीति का प्रभाव भारत के दूसरे प्रान्तों में भी जगह जगह साफ़ देखने में आता था। प्लासी के युद्ध के बाद तक बङ्गाल के मुसलमान सूबेदारों के अधीन बड़े से बड़े प्रान्तों की दीवानी हिन्दुओं को मिली हुई थी, और सूबेदार के दरबार मे हिन्दू और मुसलमानों के साथ व्यवहार में किसी तरह का भेद भाव न किया जाता था। सिराजुद्दौला का सब से विश्वस्त अनुयाई राजा मोहनलाल था जिसने प्लासी के मैदान में सिराजुद्दौला के लिए अपने प्राण दिए। मीरजाफ़र ने दीवान रज़ा ख़ाँ के स्थान पर महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त करने की ज़िद की। नन्दकुमार ने ही मीर जाफ़र के मरने पर एक हिन्दू मन्दिर से गंगा जल लाकर उसे अपने हाथ से गंगाजल से अन्तिम

स्नान कराया। यही हालत महाराजा रणजीत सिंह, होलकर, सींधिया, हैदर अली और टीपू सुलतान के दरबारों की थी। प्रसिद्ध मराठा नीतिज्ञ नाना फ़ड़नवीस हैदरअली को अपना दाहिना हाथ कहा करता था और दोनों में गहरी मित्रता थी। हमने इस पुस्तक में आगे चलकर दिखलाया है कि हैदरअली की सारी नीति ही इस विषय में ठीक सम्राट अकबर की नीति की नक़ल थी। जगद्गुरु शङ्कराचार्य और टीपू सुलतान में एक दूसरे के लिए गहरा प्रेम था। अवध के मुसलमान नवाबों के अधीन अधिकांश बड़े बड़े ताल्लुक़ेदार और मुख्य मुख्य मन्त्री तक हिन्दू होते थे, और लखनऊ दरबार उदारता, एकता और प्रेम में रंगा रहता था। इसी तरह की और भी मिसालें उस समय के इतिहास से दी जा सकती हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि यदि भारत को मौक़ा मिलता तो वह शीघ्र एक औरङ्गज़ेब की ग़लती के नतीजों से पनप कर अपना पहले का परस्पर विश्वास और पहले का गौरव प्राप्त कर लेता।

किन्तु भारत के दुर्भाग्य से ठीक उस समय जब कि औरङ्गज़ेब की ग़लती के नतीजे अभी ताज़े थे और दिल्ली की केन्द्रीय सत्ता एकबार निर्बल हो चुकी थी, एक ऐसी तीसरी शक्ति ने भारत के राजनैतिक मञ्च पर प्रवेश किया जिसे भारत की उस ग़लती से पैदा हुए परस्पर के अविश्वास और उनके बुरे नतीजों को स्थाई कर देने में ही अपना सब से बड़ा लाभ दिखाई दिया और जिसका हित हर तरह भारतवासियों के हित के विरुद्ध था, और जिसने भारत की उस समय की अस्तव्यस्त हालत से पूरा पूरा फ़ायदा उठाया।

अंगरेज़ों का आना

उस समय के अङ्गरेज़ व्यापारी

अंगरेज़ों के भारत आने और उस समय के इङ्गलिस्तान और भारत दोनों की हालत का चित्र ऊपर दिया जा चुका है। भारत में उनकी १०० साल से ऊपर की कोशिशों और काररवाइयों का विस्तृत हाल प्रामाणिक अंगरेज़ लेखकों ही के आधार पर पाठकों को इस पुस्तक में मिलेगा। औरङ्गज़ेब के समय तक भारत के अन्दर अंगरेज़ व्यापारियों की हालत क़रीब क़रीब वैसी ही थी जैसी आजकल के भारत में हींग बेचने वाले काबुलियों या काग़ज़ के खिलौने बेचने वाले चीनियों की। औरङ्गज़ेब की अनुदार और अदूरदर्शी नीति ने थोड़े दिनों में चारों ओर छोटी छोटी और एक दूसरे की प्रतिस्पर्धी रियासतें पैदा कर दीं, साम्राज्य की केन्द्रीय शक्ति को निर्बल कर दिया, और देश के अन्दर हिन्दू और मुसलमानों के परस्पर प्रेम और एकता की उन अलौकिक राष्ट्रीय लहरों को एक समय के लिए पीछे हटा दिया जो कबीर के समय से लेकर क़रीब तीन सौ साल की लगातार कोशिशों से देश को चिरस्थाई सुख और समृद्धि की ओर ले जाती हुई दिखाई दे रही थी। देश के शत्रुओं को अपनी कोशिशों के लिए खुला मैदान मिल गया।

औरङ्गज़ेब की मृत्यु के चन्द साल के अन्दर ही मद्रास और बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की साज़िशें शुरू हो गईं जो बढ़ते बढ़ते औरङ्गज़ेब की मृत्यु के पचास साल बाद प्लासी के मैदान में अपना रंग लाईं। क़ुदरती तौर पर अंगरेज़ों का हित इसी में था कि भारतीय जीवन की उस समय की अव्यवस्था को जिस तरह हो सके चिरस्थाई बना दें और राष्ट्रीय ऐक्य की

उन कल्याणकर प्रवृत्तियों को, जिनका बढ़ना औरङ्गज़ेब के समय में रुक गया था, फिर से पनपने न दें।

उनकी सफलता के कारण

किन्तु एक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने यह पैदा होता है कि क्या कारण हुए जिनसे अधिक सभ्य, अधिक बलवान और अधिक उन्नत भारतवासी अपने से कम सभ्य, कम बलवान और अनुन्नत इङ्गलिस्तान निवासियों की चालों में लगातार इस आसानी से आते चले गए, यहाँ तक कि अन्त में अपना सर्वस्व खो बैठे। यही प्रश्न इस पुस्तक को पढ़ने से हर पाठक के दिल में पैदा होगा। वास्तव में इतिहास की यह एक कठिनतम पहेलियों में से है।

सबसे पहले कुशाग्रधी फ्रांसीसी सेनापति डूप्ले ने मालूम किया कि यूरोपीय अर्थों में 'राष्ट्रीयता' या 'देशभक्ति' का उस समय भारत में अभाव था। डूप्ले के अनुसार यूरोपनिवासियों के लिए भारतवासियों को एक दूसरे से लड़ा देना निहायत आसान था और इसी लिए भारत अपनी आज़ादी खो बैठा। निस्सन्देह डूप्ले की बात एक दरजे तक सत्य अवश्य है, किन्तु हमें इस पर और अधिक गम्भीरता के साथ विचार करना होगा। अंगरेज़ विद्वान करनल मालेसन लिखता है कि अपने क़ौमी चरित्र की जिन कमज़ोरियों के कारण भारतवासी पराधीन किए जा सके उनमें एक यह थी कि उन्हें "स्वभाव से ही ग़ैरों पर विश्वास कर लेने और उनके साथ ईमानदारी का व्यवहार करने की आदत," थी।* करनल मालेसन का कथन डूप्ले के कथन की निस्बत सच्चाई के ज़्यादा नज़दीक है।

---

* " . the trusting and faithful nature "—*The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, chapter 1

सबसे पहली बात इस सम्बन्ध में हमें यह समझनी होगी कि किसी एक कम सभ्य क़ौम का अपने से अधिक सभ्य क़ौम पर विजय प्राप्त कर लेना या उसे पराजित कर लेना कोई नई घटना नहीं है। संसार के इतिहास में अनेक बार अधिक सभ्य क़ौमें अपने से कम सभ्य क़ौमों का इस तरह शिकार होती रही हैं। यूरोप में गॉल और वेण्डाल क़ौमों के जिन लोगों ने उत्तर और पूरब से जाकर विशाल रोमन साम्राज्य पर हमला किया और उस साम्राज्य के सदा के लिए टुकड़े टुकड़े कर डाले, वे रोमन लोगों की निस्बत कहीं कम सभ्य थे। जिन तातारियों और मुग़लों ने आज से हज़ार डेढ़ हज़ार साल पहले पूरब और मध्य एशिया से निकल कर बग़दाद और ईरान के गौरवान्वित साम्राज्यों का अन्त किया वे उस समय के अरबों और ईरानियों के मुक़ाबले में सर्वथा असभ्य थे। मध्य एशिया की असभ्य जातियों ने ही समृद्ध यूनानी साम्राज्य का ख़ात्मा कर डाला। भारतवासियों का भी अपने से किसी कम सभ्य जाति के इस तरह अधीन हो जाना इसी तरह की एक घटना थी। इस विचित्र ऐतिहासिक घटना के आम तौर पर दो सबब हो सकते हैं। एक तो अधिक उच्च सभ्यता लोगों में थोड़ी बहुत आरामतलबी की आदत पैदा कर देती है और असभ्य क़ौमों की उद्दण्ड पराक्रमशीलता उनमें नहीं रह जाती। दूसरे यह कि असभ्य या कम सभ्य लोग जिस निस्सङ्कोच भाव के साथ अपनी पाशविक प्रवृत्तियों और शक्तियों का उपयोग कर सकते हैं, अधिक सभ्य लोग अपने यहाँ के नैतिक आदर्शों के अधिक स्थिर हो जाने के कारण उस तरह नहीं कर सकते।

पराजय के तीन कारण

भारत की इस दुर्घटना के हमें तीन मुख्य कारण साफ़ दिखाई देते हैं—

(१) अपने और पराए का भाव जिसे आज कल 'राष्ट्रीयता' का भाव कहा जाता है उदार भारतवासियों के चित्तों में कभी भी अधिक स्थान न कर पाया था। हम ऊपर लिख चुके हैं कि १८ वीं सदी के शुरू में भारत के अन्दर कोई प्रबल केन्द्रीय शक्ति न रही थी। अनेक छोटी बड़ी शक्तियाँ उस समय देश के अन्दर प्राधान्य प्राप्त करने के लिए उत्सुक और प्रयत्नशील थीं। मुसलमानों और हिन्दुओं में भी ऊपर के कारणों से जगह जगह एक तरह की पृथकता पैदा हो गई थी। ऐसी हालत में एक तीसरी बाहर की ताक़त अनेक लोगों को निष्पक्ष मध्यस्थ की तरह दिखाई दी। इससे पहले जितने लोगों ने बाहर से आकर भारत में प्रवेश किया उनमें से, उन थोड़े सों को छोड़ कर, जो महमूद ग़ज़नवी या नादिरशाह की तरह लूट मार कर चार दिन के अन्दर वापस चले गए, और किसी से भारतवासियों को किसी तरह का कड़ुवा अनुभव न हुआ था। हम ऊपर दिखा चुके हैं कि इन सब लोगों ने भारत में बस कर भारत को अपना घर बना लिया और समस्त भारतवासियों की उन्नति और विकास में पूरा पूरा भाग लिया। ऐसी सूरत में अपने और ग़ैर का भेद भारतवासियों के लिए कोई विशेष अर्थ ही न रखता था। भारतवासियों के धार्मिक और नैतिक आदर्श भी उनके अन्दर इस तरह का विचार पैदा होने न दे सकते थे। क़ुदरती तौर पर भारतवासियों ने सात समुद्र पार के यूरोपनिवासियों के साथ उसी तरह के प्रेम और सत्कार का व्यवहार किया जिस तरह का वे आपस में एक दूसरे के साथ करने के आदी थे। ऐसी सूरत में अंगरेज़ों का विविध भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में कभी एक और कभी दूसरे का साथ देना या अपनी साज़िशों द्वारा इस तरह के संग्राम खड़े करके उनसे पूरा लाभ उठाना अत्यन्त सरल हो गया।

(२) भारत की तिजारत उस समय इङ्गलिस्तान की तिजारत से हज़ारों गुना ज़्यादा बढ़ी हुई थी, किन्तु फिर भी 'तिजारत' या व्यापार को जो स्थान उस समय यूरोपियन क़ौमों और ख़ास कर अंगरेज़ क़ौम के जीवन में दिया जाता था वह भारत में कभी न दिया गया था। अंगरेज़ क़ौम एक व्यापारी क़ौम थी। इंगलिस्तान के बड़े से बड़े लॉर्ड्स के व्यापारी कम्पनियों में हिस्से होते थे, यहाँ तक कि, जैसा हम अभी ऊपर दिखला चुके हैं, इंगलिस्तान की मलका तक ग़ुलामों के क्रय विक्रय जैसे निकृष्ट व्यापार में हिस्सा लेना या उससे हज़ार दो हज़ार गिन्नी कमा लेना अपने लिए ज़िल्लत की चीज़ न समझती थी।* इसके विपरीत भारत में कोई भी राजा, नवाब या ज़मींदार तिजारत में कभी किसी तरह का हिस्सा न लेता था, न राजदरबार से सम्बन्ध रखने वाले किसी आदमी की किसी कम्पनी में पत्ती होती थी। तिजारत से धन कमाने का काम इस देश में एक गौण या छोटा काम समझा जाता था और अनादिकाल से एक श्रेणी विशेष के लिए छोड़ दिया गया था। यहाँ तक कि खेती का पेशा भी वाणिज्य से उन्नतर समझा जाता था। इसलिए किसी भारतीय नरेश का यह सोच सकना कि इस देश के साथ अंगरेज़ों के व्यापार के भावी राजनैतिक या राष्ट्रीय नतीजे क्या हो सकते हैं उस समय नामुमकिन था।

इसके साथ ही व्यापारी मात्र की रक्षा करना और अपने राज में व्यापार को जहाँ तक हो सके उत्तेजना और सहायता देना हर भारतीय नरेश सदा से अपना धर्म समझता था। बड़े से बड़े और छोटे से छोटे भारतीय नरेशों के इतिहास में एक ख़ास बात यह देखने को मिलती है

* *The Intellectual Development of Europe*, vol. ii, p 244

कि उन्हें इस बात की चिन्ता रहती थी कि किसी व्यापारी को हमारे राज के अन्दर नुक़सान न होने पाए। यही वजह थी कि मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने एशियाई नरेशों की मर्यादा के अनुसार उदारता और दरियादिली में आकर अंगरेज़ क़ौम के व्यापारियों को भारत में रहने और व्यापार करने के लिए इस तरह की रिआयतें अता कर दीं जो आजकल का कोई नरेश किसी भी दूसरी क़ौम के लोगों को अपने देश में देने का कभी विचार तक न करेगा। भारतीय सम्राट को यह गुमान तक न हो सकता था कि उसकी यह नृपोचित उदारता एक दिन बढ़ते बढ़ते भारतीय व्यापार, भारतीय उद्योग धन्धों और भारत की राजनैतिक स्वाधीनता, तीनों के सर्वनाश का बीज साबित होगी।

व्यापार की आड़ में राजनैतिक कुचक्र एक ऐसी चीज़ थी जिसका भारतवासियों को उस समय तक अपने हज़ारों साल के इतिहास में कभी तजरुबा न हुआ था, और जो किसी भी भारतीय नरेश के दिमाग़ मे न आ सकती थी। सम्राट औरंगज़ेब भारत के सब से अधिक निष्ठुर सम्राटों मे गिना जाता है। औरंगज़ेब ही ने अंगरेज़ कम्पनी की प्रार्थना पर कालीकाता, सूतानटी और गोविन्दपुर, तीन गाँव, अपने व्यापार के लिए एक कोठी बनाने को बतौर जागीर कम्पनी को प्रदान किए थे। थोड़े ही दिनों में अंगरेज़ों ने वहाँ पर क़िलेबन्दी शुरू कर दी। औरंगज़ेब के कर्मचारियों ने उससे शिकायत की। औरंगज़ेब यदि चाहता तो केवल एक शब्द द्वारा उसी समय उस क़िलेबन्दी को बन्द कर सकता था, या विदेशी व्यापारियों को भारत से निकाल बाहर कर सकता था। किन्तु इस शिकायत के पहुँचने पर उस भारतीय सम्राट ने बजाय क़िलेबन्दी को बन्द करने के उलटा अपने ही

आदमियों को डाँटा और कहा—"मुमकिन है, मेरी आस पास की देसी रिआया ने हसद के सबब फ़िरंगियों से कुछ झगड़ा किया हो। क्यों न फ़िरंगी जिस तरह हो सके, अपनी हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम करें ? ये बेचारे परदेसी बहुत दूर से आए हैं और बहुत मेहनती हैं। मैं हरगिज़ दख़ल न दूँगा।"*

भारत के व्यापारियों को भी उस समय तक कभी किसी दूसरे देश के व्यापारियों से किसी तरह का कड़ुआ अनुभव न हुआ था। व्यापारी या आक्रमक, अंगरेज़ों से पहले के किसी भी विदेशी के ज़रिये भारतीय व्यापारियों को किसी तरह की हानि न पहुँची थी। इसके विपरीत विविध देशों के व्यापारियों के मेल जोल से सदा एक दूसरे को लाभ ही पहुँचता रहा था। इसलिए यह भी असम्भव था कि भारतीय व्यापारी, जिनको अन्त में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कारण सबसे अधिक हानि पहुँची, कम्पनी के कुचक्रों का मुक़ाबला करने या उसे देश से बाहर निकालने का मिल कर कोई प्रयत्न करने की सोचते। इसके विपरीत उस समय के अंगरेज़ व्यापारी आयरलैण्ड और स्कॉटलैण्ड के व्यापारों का हाल ही में नाश करके इन परस्पर नाशकारी तरीक़ों का पूरा अनुभव प्राप्त कर चुके थे। यहाँ तक कि स्कॉटलैण्ड तक को, 'बिल ऑफ़ सिक्यूरिटी' पास करके इंगलिस्तान के इन नाशकर प्रयत्नों से अपने व्यापार की रक्षा करनी पड़ी थी।

(३) भारतवासियों को इससे पहले किसी विदेशी के वचनों पर अविश्वास करने का कोई कारण न था। भारत में सन्धिपत्रों और राजकीय एलानों को सदा से पवित्र माना जाता था और यूरोपियनों के आने से पहले एशियाई नरेशों के सन्धिपत्र और एलान अधिकतर सच्चे होते

* *Our Empire in Asia*, by Torrens, pp 14, 15

भी थे। वास्तव में इस विषय में अंगरेज़ों और भारतवासियों के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर है। इस देश में मराठे सब से अधिक चतुर राजनीतिज्ञ माने जाते थे। मराठों ने कई बार बङ्गाल पर हमला किया। फिर भी बङ्गाल के मुसलमान सूबेदार अलीवर्दी ख़ाँ ने कहा था कि मराठों ने कभी भी अपनी सन्धियों का उल्लङ्घन नहीं किया। अङ्गरेज़ों और भारतीय नरेशों के क़रीब सौ साल के सम्बन्ध में शायद एक भी मौक़ा ऐसा नहीं हुआ जिसमें किसी भी भारतीय नरेश ने अंगरेज़ों के साथ अपनी सन्धि का उल्लङ्घन किया हो। सच यह है कि अनेक भारतीय नरेशों की मुसीबतों का ख़ास सबब यही हुआ कि उन्होंने ऐसे ऐसे मौक़ों पर कम्पनी के साथ अपनी सन्धियों का ईमानदारी के साथ पालन किया, जब कि उन सन्धियों का पालन उनके और उनके देश के लिए साफ़ अहितकर दिखाई दे रहा था। हमारे इस कथन के सबूत में असंख्य मिसालें पाठकों को स्थान स्थान पर इस पुस्तक में मिलेंगी। इसके विपरीत अंगरेज़ों के अपनी सन्धियाँ पालन करने या न करने के विषय में प्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक सर जॉन के जो इङ्गलिस्तान के इण्डिया ऑफ़िस के 'पोलिटिकल और गुप्त विभाग' का सेक्रेटरी रह चुका था, लिखता है—

"मालूम होता है कि अंगरेज़ सरकार ने सन्धियों के तोड़ने का ठेका ले रक्खा था। यदि मौजूदा अहदनामों के तोड़ने की सज़ा में किसी से उसका इलाक़ा छीना जा सकता है, तो इस समय ब्रह्मपुत्र से लेकर सिन्धु नदी तक एक चप्पा ज़मीन भी भारत में अंगरेज़ों के पास नहीं बच सकती।"*

* "It would seem as though the British Government claimed to itself

एडमण्ड बर्क ने इङ्गलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने वारन हेस्टिंग्स के मुक़दमें के सिलसिले में कहा था—"एक भी ऐसी सन्धि नहीं है जो अंगरेज़ों ने भारतवर्ष में किसी के साथ की हो और जिसे उन्होंने बाद में तोड़ा न हो।"

दोनों के चरित्र में अन्तर

अंगरेज़ों और भारतवासियों के सम्बन्ध की अनेक छोटी मोटी घटनाएँ इस तरह की मिलती हैं जिनसे पता चलता है कि दोनों जातियों के चरित्र में इस बात में कितना ज़बरदस्त अन्तर था। इस विषय की एक दो मिसालें यहाँ पर बे मौक़े न होंगी। हैदरअली और अंगरेज़ों की लड़ाइयों में अनेक ही बार ऐसा हुआ कि हैदरअली ने पराजित अङ्गरेज़ सैनिकों और सेना-पतियों को उनसे यह वादा लेकर छोड़ दिया कि हम इसके बाद कम से कम बारह महीने तक आपके ख़िलाफ़ कहीं न लड़ेंगे। किन्तु फिर चन्द दिन के बाद ही वे ही अंगरेज़ सैनिक और सेनापति किसी दूसरी जगह के संग्राम में हैदरअली के ख़िलाफ़ लड़ते हुए दिखाई दिए। इसके विपरीत हैदरअली ने एक बार जब कि वह अंगरेज़ी इलाक़े में विजय पर विजय प्राप्त करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था, कम्पनी के अंगरेज़ दूत से यह वादा किया कि मद्रास के फाटक पर पहुँचकर मैं आपकी ओर से सुलह की बातचीत सुन लूँगा। विजयी हैदर मद्रास के फाटक तक पहुँच गया। वह

---

the exclusive right of breaking through engagements If the violation of existing covenants ever involved *ipso facto* a loss of territory, the British Government in the East would not now possess a rood of land between the Brahmaputra and the Indus "—Sir John Kaye in the *Calcutta Review*, vol 1, p. 219

चाहता तो बात की बात में मद्रास के क़िले पर क़ब्ज़ा कर लेता और कम से कम दक्खिन भारत से उसी समय अङ्गरेज़ों को निकाल कर बाहर कर देता। किन्तु मद्रास पहुँचते ही उसने अपने वचन का पालन किया। सुलह की बातचीत हुई और विजयी हैदरअली ने पराजित अङ्गरेज़ों के साथ सुलह स्वीकार कर ली।

सन् ५७ के विप्लव में अवध के अन्दर बेशुमार ही मिसालें इस बात की मिलती हैं, जिनमें कि अवध के उन ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों ने, जो अपने अपने इलाक़े में विप्लव के खुले नेता थे, मुसीबतज़दा अङ्गरेज़ पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को अपने क़िलों के अन्दर आश्रय दिया, और उनकी प्रार्थना पर उन्हें अपनी किश्तियों में बैठा कर इलाहाबाद और बनारस भेज दिया। किन्तु चन्द महीने के बाद ये ही अंगरेज़ अवध वापस आकर उन्हीं ताल्लुक़ेदारों के विरुद्ध लड़ते हुए दिखाई दिए। इस तरह की और अधिक मिसालें देना केवल इस विषय को विस्तार देना होगा।

जिन भारतवासियों ने अंगरेज़ों और भारत के सम्बन्ध में समय समय पर देशघातकता का परिचय दिया उनमें भी शायद विरले ही ऐसे होंगे जिन्होंने अंगरेज़ों के साथ अपने वचनों का पालन न किया हो। सच यह है कि यदि मध्य काल के और आजकल के यूरोप के इतिहास को ध्यान से पढ़ा जाय तो मालूम होगा कि देशीयता या राष्ट्रीयता के सङ्कीर्ण भाव यूरोप की विशेष सामाजिक परिस्थिति की एक उपज हैं। मध्य कालीन यूरोप में ज़मींदारों और काश्तकारों, रईसों और ग़रीबों के बीच वह ज़बरदस्त संग्राम क़रीब एक हज़ार साल तक जारी रहा जिसकी वजह से वहाँ की जनता में अपने और पराए का भेद ज़ोरों से जम जाना क़ुदरती था। धार्मिक पक्षपात

का भी यूरोप में सदियों तक साम्राज्य रहा, जिससे इस तरह की सङ्कीर्णता के बढ़ने को और अधिक मौक़ा मिला। इसके अलावा यूरोप भर में अनेक छोटे छोटे देश, क़रीब क़रीब हर देश में भोजन और वस्त्र के सामान की कमी, और इस पर श्रेणी श्रेणी के बीच लगातार आर्थिक कलह और प्रतिस्पर्धा, इन सब कारणों से भी यूरोप के अन्दर मेरे और तेरे देश के भाव ज़ोर पकड़ते चले गए।

किन्तु भारत के दो हज़ार साल के इतिहास में इस तरह के कोई भी कारण मौजूद न थे। यदि प्रान्तीय नरेशों में यदा कदा लड़ाइयाँ होती थीं, या बाहर से चन्द रोज़ के लिए कोई हमला भी होता था तो करोड़ों जनता के रहन सहन, उनके जीवन, उनके धन्धों और उनकी ख़ुशहाली पर इन लड़ाइयों का कोई किसी तरह का भी असर न पड़ता था।

निस्सन्देह आजकल की राष्ट्रीयता आजकल के राष्ट्रों के स्वार्थमय जीवन संग्राम का फल है। हम स्वीकार करते हैं कि यह राष्ट्रीयता का भाव मनुष्य को एक दरजे तक व्यक्तिगत स्वार्थ के भाव से ऊपर उठा कर राष्ट्र के नाम पर अपनी आहुति देने के लिए तैयार कर देता है। इस दरजे तक यह भाव निस्सन्देह मनुष्य को ऊँचा उठाने वाला भी है। किन्तु यदि उच्च मानव प्रेम और मानव जाति के हित की दृष्टि से देखा जाय तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज कल की 'राष्ट्रीयता' का भाव अधिक से अधिक एक अनिवार्य आपत्ति है और इस समय भी समस्त मानव समाज के विकास में एक बहुत बड़ी बाधा साबित हो रहा है। जो हो, भारत में इस भाव के पैदा होने के लिए अंगरेज़ों के आने से पहले कोई गुञ्जाइश ही न थी। यही वजह है कि भारतवासियों में अपने और पराए का भेदभाव मौजूद न था।

इसीलिए यदि निष्पक्षता के साथ देखा जाय तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सौ साल के इतिहास में जिन भारतवासियों ने अंगरेज़ों के साथ मिलकर अपने देश और देशवासियों को हानि पहुँचाई, उनमें से थोड़े सों को छोड़ कर बाक़ी का पाप केवल इतना ही था जितना किसी भी दो राजाओं के संग्राम में एक मनुष्य का एक पक्ष से दूसरे पक्ष की ओर चला जाना। यही वजह थी कि इनमें से अधिकांश देशघातकों ने विदेशियों के साथ अपनी प्रतिज्ञाओं का सदा सच्चाई के साथ पालन किया।

हमें यह लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ता है कि उन सौ साल के इतिहास में हमें अपनी ओर कई असम्य देशघातकता और विश्वासघातकता की मिसालें भी मिलती हैं। किन्तु इस तरह की मिसालें किसी भी देश के इतिहास में इस तरह की परिस्थिति में थोड़ी बहुत मिलना स्वाभाविक है।

इतिहास से स्पष्ट है कि अन्य अनेक दोषों के होते हुए भी भारतवासियों में अपने वचन का पालन करना एक सामान्य नियम था जिसके कहीं कहीं सम्भव है अपवाद मिल सकते हों, दूसरी ओर कम्पनी के अंगरेज़ प्रतिनिधियों में अपनी प्रतिज्ञाओं का निस्सङ्कोच उल्लङ्घन एक सामान्य नियम था, जिसका शायद एक भी अपवाद मिलना कठिन है। इसीलिए सन् १७५७ से लेकर १८५७ तक बार बार के प्रतिकूल अनुभवों के होते हुए भी भारतवासियों ने सदा अंगरेज़ों की प्रतिज्ञाओं पर विश्वास कर लिया।

इन सौ साल के इतिहास से यह भी ज़ाहिर है कि वीरता, साहस या युद्ध कौशल में भारतवासी कहीं भी अंगरेज़ों से पीछे नहीं रहे। अंगरेज़ों के भारतीय संग्राम अंगरेज़ों ने नहीं जीते, बल्कि भारतवासियों ने अंगरेज़ों के लिए जीत कर अपनी विजय का फल अंगरेज़ों के हवाले कर दिया।

करनल मालेसन ने अपनी पुस्तक 'दी डिसाइसिव बैटिल्स ऑफ़ इण्डिया' में स्वीकार किया है कि सन् १७५७ से १८५७ तक जो असंख्य लड़ाइयाँ अंगरेज़ों और भारतवासियों के बीच लड़ी गईं उनमें एक भी ऐसी नहीं हुई जिसमें अंगरेज़ी सेना एक ओर रही हो और हिन्दोस्तानी सेना दूसरी ओर, और फिर अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की हो। इस तरह के संग्राम, जिनमें अंगरेज़ एक ओर थे और हिन्दोस्तानी दूसरी ओर, अनेक बार हुए, किन्तु उनमें सदा अंगरेज़ों को ज़िल्लत के साथ हार खानी पड़ी। जहाँ कहीं किसी संग्राम में अंगरेज़ों ने विजय प्राप्त की है वहाँ सदा हिन्दोस्तानियों में दो दल दिखाई दिए हैं, एक विदेशियों के विरुद्ध और दूसरा उनके पक्ष में। यह एक अकाट्य, किन्तु लज्जाजनक सचाई है कि अंगरेज़ों ने भारतवर्ष को तलवार से नहीं जीता, बल्कि भारतवासियों ने अपनी तलवार से अपने देश को जीत कर विदेशियों के हवाले कर दिया। हमारे इस कथन के यथेष्ट सबूत पाठकों को इस पुस्तक के क़रीब क़रीब हर अध्याय में मिलेंगे।

हमारा पतन

किन्तु जो हो, अब हमें इस भीषण सचाई की ओर ध्यान देना होगा कि हमारी इन दो सौ साल की लगातार ग़लतियों या कमज़ोरियों ने हमें कहाँ से कहाँ पहुँचा दिया। केवल दो सौ साल पहले जो देश संसार का सब से अधिक ख़ुशहाल और सब से अधिक बलवान देश समझा जाता था वह आज संसार का सब से अधिक दरिद्र और सब से अधिक निर्बल और असहाय देश माना जाता है। केवल डेढ़ सौ साल पहले जिस देश में एक भी पुरुष या स्त्री किसी गाँव के अन्दर ऐसा न मिल सकता था जो लिखना पढ़ना न जानता हो, वहाँ आज ९३ फ़ी सदी आबादी बिलकुल अनपढ़ है।

केवल सवा सौ साल पहले यानी १६ वीं सदी के शुरू तक जो देश अपने उद्योग धन्धों की दृष्टि से शायद केवल एक चीन को छोड़कर संसार का सब से अधिक उन्नत देश स्वीकार किया जाता था और जो उस समय तक आधे से अधिक सभ्य संसार की, जिसमें इङ्गलिस्तान और फ्रांस भी शामिल थे, कपड़े इत्यादि की आवश्यकता को पूरा करता था, वह आज अपने जीवन की एक एक आवश्यकता के लिए, यहाँ तक कि अपना तन ढकने के लिए दूसरों का मोहताज है। इन सब बातों के अकाट्य सबूत इस पुस्तक में उचित स्थान पर दिए जायँगे।

ऊपर लिखी हानियों से कहीं अधिक भयङ्कर हानि जो दूसरे देश की राजनैतिक अधीनता किसी भी देश को पहुँचा सकती है, वह उस देश के चरित्र का नाश है। समाज विज्ञान का प्रसिद्ध अमरीकन विद्वान ई० ए० रॉस लिखता है।

> "किसी भी राष्ट्र के चरित्र के अधःपतन के सबसे प्रबल कारणों में से एक कारण उस राष्ट्र का किसी विदेशी क़ौम के अधीन हो जाना है।"*

अपने समय के भारतवासियों के चरित्र को बयान करते हुए यूनानी इतिहास लेखक एरियन लिखता है कि—

> "इन लोगों में अद्भुत वीरता है, युद्ध विद्या में ये समस्त एशिया निवासियों से बढ़कर हैं। सरलता और सच्चाई के लिए ये विख्यात हैं। ये इतने समझदार हैं कि इन्हें कभी मुक़दमे-

* "Subjugation to a foreign yoke is one of the most potent causes of the decay of national character"—Professor E A Ross *Principles of Sociology*, pp. 132, 133

बाज़ी की शरण नहीं लेनी पड़ती और इतने ईमानदार हैं कि न इन्हें अपने दरवाज़ों में ताले लगाने पड़ते हैं और न लेन देन में इन्हें लिखा पढ़ी की ज़रूरत होती है। कभी भी किसी भारत-वासी को झूठ बोलते हुए नहीं सुना गया।"*

उस समय के भारतवासियों के चरित्र की इस समय के भारतवासियों के चरित्र से तुलना करना अत्यन्त दुखकर है। इस तुलना पर टीका करते हुए और मिश्र यूनान इत्यादि की मिसालें देते हुए ई० ए० रॉस लिखता है—

"भारतवासियों के उन्नतर जीवन के ऊपर विदेशी शासन का प्रभाव ऐसा ही है जैसा किसी चीज़ को पाला मार गया हो।"†

निस्सन्देह पिछले पौने दो सौ साल से यह प्राचीन देश वेग के साथ मानसिक, नैतिक और भौतिक सर्वनाश की ओर बढ़ता चला जा रहा है।

हमारा कर्त्तव्य

अंगरेज़ी राज कब से

सब से अन्तिम, किन्तु सब से अधिक गम्भीर प्रश्न हमारे सामने यह है कि इस घातक विपत्ति से निकलने का हमारे लिए अब क्या उपाय हो

* "They are remarkably brave, superior in war to all Asiatics, they are remarkable for simplicity and integrity, so reasonable as never to have recourse to a law suit and so honest as neither to require locks to their doors nor writings to bind their agreement No Indian was ever known to tell an untruth"—The Greek Historian Arrian, as quoted in Ibid, pp 132, 133

† " the alien dominion has a blighting effect upon the higher life of the people of India "—Ibid

सकता है। इस सम्बन्ध में हमें सब से पहले दो बातों की ओर से सावधान रहना होगा। एक यह कि घबराहट या किसी तरह के आवेश में आकर हम मानव जीवन के उन उच्च नैतिक सिद्धान्तों से न डिगने पाएँ जिनके बिना मानव समाज का सुख से रह सकना सर्वथा असम्भव है और जो मनुष्य के ऐहिक जीवन के आध्यात्मिक आधार स्तम्भ हैं। दूसरे यह कि नैराश्य या अकर्मण्यता को हमें एक क्षण के लिए भी अपने पास नहीं फटकने देना चाहिए। इन दोनों बातों में से हम पहले दूसरी के विषय में कुछ कहना चाहते हैं।

आज से पौने दो सौ साल पहले भारतवर्ष की एक चप्पा ज़मीन पर भी अंगरेज़ों का किसी तरह का अधिकार न था। आज (१९२९) से ८७ साल पहले यानी सन् १८४२ तक वे दिल्ली सम्राट को अपना सम्राट स्वीकार करते थे, अपने तईं उसकी विनम्र आज्ञाकारी प्रजा कहा करते थे, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिक्कों में दिल्ली सम्राट का नाम खुदा होता था और कम्पनी के भारतीय इलाक़ों के अंगरेज़ गवरनर जनरल की मोहर में 'दिल्ली के बादशाह का फ़िदविए ख़ास' ये शब्द खुदे रहते थे। निस्सन्देह अनभ्यस्त और भोले भारतवासी विदेशियों की इन चालों से धोखे में आते रहे। दिल्ली दरबार की निर्बलता ने धीरे धीरे उन्हें और भी अपाहज कर दिया। किन्तु ज्योंही भारतवासियों ने यह अनुभव करना शुरू किया कि इस नए राजनैतिक प्रयोग के नतीजे विविध प्रान्तों में देशी रियासतों और देश के जीवन के लिए कितने घातक साबित हो रहे हैं, ज्योंही सम्राट शाहआलम की मृत्यु (१८०६) के बाद कम्पनी के प्रतिनिधियों ने सम्राट अकबरशाह और उसके बाद सम्राट बहादुरशाह के पद

की अवहेलना शुरू की, उनकी आँखें खुल गईं। उन्होंने सन् ५७ में विदेशी सत्ता से अपने तईं आज़ाद करने का वह ज़ोरदार प्रयत्न किया जिसने एक बार वास्तव में अंगरेज़ी राज की जड़ों को हिला दिया और उसके अस्तित्व को ख़तरे में डाल दिया। सन् ५७ का स्वाधीनता संग्राम हमारी पराधीनता के इतिहास की उस समय तक की सब से महत्वपूर्ण घटना थी। उसकी प्रगति और असफलता के कारणों को हमने इस पुस्तक में विस्तार के साथ दूसरे स्थान पर बयान किया है।

स्वाधीनता के प्रयत्न

वास्तव में अंगरेज़ी हुकूमत भारतवर्ष में बाज़ाब्ता और पूरी तरह सन् १८५९ ही से जमी। उस समय ही भारतीय साम्राज्य की बाग विधिवत् उस व्यापारी कम्पनी के हाथों से नहीं, जो अन्त समय तक दिल्ली सम्राट की प्रजा होने का बनावटी दावा करती रही, बल्कि स्वयं भारत के अन्तिम सम्राट बहादुरशाह के हाथों से छीनकर इंगलिस्तान की मलका विक्टोरिया के हाथों में दी गई। ७० साल का समय या १७० साल का समय भी किसी देश के इतिहास में और ख़ास कर भारत जैसे प्राचीन और सुसभ्य देश के इतिहास में कोई लम्बा समय नहीं होता। सन् ५७ के बाद भी भारत ने अपनी आज़ादी की कोशिशों को एक क्षण के लिए भी ढीला होने नहीं दिया। सन् ५७ की क्रान्ति और पंजाब के कूका विद्रोह में केवल १५ साल का अन्तर था, सन् ५७ और काँग्रेस के जन्म में २८ साल का, काँग्रेस के जन्म और बङ्गभङ्ग के बाद के आन्दोलन में २० साल का, बङ्गभङ्ग और उस असहयोग आन्दोलन में, जिसने फिर एक बार सन् ५७ की क्रान्ति से भी अधिक और उससे उन्नतर उपायों द्वारा अंगरेज़ी राज के अस्तित्व को ख़तरे

में डाल दिया, और जिसके विषय में उस समय के गवरनर जनरल को स्वीकार करना पड़ा कि 'उस आन्दोलन की सफलता में केवल एक इंच की कसर बाक़ी रह गई थी,' और 'मैं हैरान और परेशान था,'* केवल १४ साल का।

ब्रिटिश साम्राज्य की हालत

स्वयं इंगलिस्तान के ऊपर रोमन लोगों की हुकूमत चार सौ साल तक जारी रही। उसके बाद सदियों नॉर्मन जाति के लोगों ने इंगलिस्तान को अपने अधीन रक्खा। इंगलिस्तान निवासियों को रोमन लोगों या नॉर्मन लोगों के राजनैतिक चंगुल से अपने को मुक्त करने में, आइरिश जाति को अंगरेज़ों के पंजे से अपने को आज़ाद करने में, अमरीका को इंगलिस्तान का जुआ अपने ऊपर से उखाड़ कर फेंकने में, इटालिया को ऑस्ट्रिया की पराधीनता से छुटकारा पाने मे या अपने ही देश में रूस को ज़ार की अत्याचारी सत्ता का अन्त करने में यदि ध्यान से देखा जाय तो इससे कम समय नहीं लगा। भारत जैसे प्राचीन और विशाल देश का अपने प्रियतम आदर्शों के विरुद्ध नई परिस्थिति के अनुसार अपने जीवन को ढाल सकना और इस नए ढंग के संग्राम के लिए अपने तई सुसन्नद्ध कर सकना आसान काम नहीं है। फिर भी इसमें किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि इस विषय में भारत की जनता के अन्दर जागृति और तत्परता दिन प्रतिदिन वेग के साथ बढ़ती जा रही है। हर नया आन्दोलन पिछले आन्दोलन की अपेक्षा हमें साफ़ सैकड़ों क़दम आगे पहुँचा देता है। दूसरी ओर जिन

* 'His programme came within an inch of success,' 'I stood puzzled and perplexed,'—Lord Reading at Calcutta on the Non-Cooperation Movement of 1921

लोगों ने संसार के विविध साम्राज्यों के बनने और बिगड़ने के इतिहासों को ध्यान से पढ़ा है और उनके कारणों का अध्ययन किया है, वे पूरी तरह समझ रहे हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य की अवस्था इस समय बिलकुल उस विशाल वृक्ष के समान है जिसका तना ऊपर से देखने में मोटा है, जिसकी शाख़ें लम्बी हैं, जिस पर कहीं कहीं घने पत्ते भी नज़र आते हैं, किन्तु जिसकी जड़ों को आन्तरिक दोषों ने दीमक की तरह इधर से उधर तक खोखला कर रक्खा है, और जिसका किसी समय भी हवा के एक झोंके से उन्मूल हो जाना असन्दिग्ध है ।

हम केवल अलंकार की भाषा का उपयोग नहीं कर रहे हैं । इतिहास के एक विनम्र विद्यार्थी की हैसियत से हमारा अनुमान है कि जितने लक्षण भी किसी साम्राज्य के नाश के समय उसमें पैदा हो जाते हैं और जो उसे मृत्यु की ओर ले जाए बिना नहीं रह सकते वे इस समय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर ज़ोरों के साथ उभर रहे हैं । इंगलिस्तान के प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता एडवर्ड कारपेण्टर ने अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों में अपने देश की तुलना एक ऐसे मरणासन्न व्यक्ति के साथ की है जिसकी नाड़ियों मे जगह जगह 'स्वर्ण रज' के अटक जाने के कारण उन नाड़ियों से रक्त का प्रवाह क़रीब क़रीब बन्द हो चुका ।

हमारे नैतिक आदर्श

दूसरी बात हमने ऊपर यह कही थी कि किसी तरह की घबराहट या आवेश में आकर हम मानव जीवन के उच्चतर नैतिक सिद्धान्तों से न डिगने पाएँ । वास्तव में भारतवासियों के लिए सब से पहला काम अपने धार्मिक और नैतिक आदर्शों को स्थिर करना है । उसके बाद उन्हें अपने कर्तव्य की

ओर अग्रसर होना होगा। हमें यह पूरी तरह ध्यान में रखना होगा कि जिन सदाचार शून्य स्वार्थमय नीवों पर यूरोप ने अपनी आजकल की सभ्यता को क़ायम करना चाहा और जिनके बल उसने भारतीय जीवन को इतनी भयंकर हानि पहुँचाई, उनका नतीजा अन्त में क्या हुआ। आजकल की सारी यूरोपियन सभ्यता अपने अद्भुत विज्ञान, विशाल पुतलीघरों, विचित्र साम्राज्यवाद और नवीन भयंकर पूँजीवाद को लेकर दो सौ साल भी सुख चैन से न जी सकी। आज यूरोप मनुष्य मनुष्य के बीच कलह, श्रेणी श्रेणी के बीच कलह, और देश देश के बीच कलह का मक़तब बना हुआ है। यूरोप ही के हर देश की ६० फ़ीसदी आबादी के लिए यह अन्तर्वर्गीय और अन्तर्राष्टीय कलह और प्रतिस्पर्धा, दुख, विपत्तियों और सार्वजनिक नाश का कारण साबित हो रही है। पिछले यूरोपियन महायुद्ध ने यूरोप के कुछ विचारवान लोगों की आँखें इस विषय में खोल दी हैं। वे अपने नैतिक आदर्शों को बदलने या यूँ कहना चाहिए कि अपने यहाँ के जीवन मे नैतिक आदर्श उत्पन्न करने की आवश्यकता को अनुभव करने लगे हैं। रूस जैसे देशों के पैर उस ओर को थोड़े बहुत बढ़ते हुए भी दिखाई दे रहे हैं। किन्तु विविध यूरोपियन देशों के जिन शासकों को पूँजी वाद और नवीन साम्राज्यवाद के नशे ने उन्मत्त कर रक्खा है वे अभी तक अपनी इस घातक प्रवृत्ति से पीछे हटने के लिए तैयार नहीं हैं, और न शायद वे अभी तक उसे घातक अनुभव करते हैं। नतीजा यह है कि पिछले महायुद्ध से एक कहीं अधिक भयङ्कर और विकराल नया महायुद्ध इस समय संसार की आँखों के सामने फिर रहा है, जो सम्भव है, वर्त्तमान यूरोपियन सभ्यता के लिए मौत का ताण्डव नृत्य साबित हो। वास्तव में समस्त

अर्वाचीन यूरोप इस समय एक कठिन परीक्षा के तप्तदिव्य में से निकल रहा है।

इसके विपरीत जिन नैतिक आदर्शों पर प्राचीन भारत और प्राचीन चीन जैसे देशों ने अपने सामाजिक जीवन को क़ायम किया था उन आदर्शों के सहारे ये देश हज़ारों साल तक सुख चैन से रह सके और कम या ज़्यादह अपने से सम्बन्ध रखने वाले संसार के अन्य देशों को भी सुख चैन से रख सके।

ऐसी हालत में हमें सब से ज़्यादह ध्यान इस बात का रखना होगा कि हम अपने आज़माए हुए और मानव समाज के लिए कहीं अधिक कल्याणकर आदर्शों को हाथ से न खो बैठें। जो स्थान भटके हुए यूरोप ने आज बिजली और कूटनीति को दे रक्खा है वह हमें मानवप्रेम और सत्यता को देना होगा, और हर मनुष्य के व्यक्तिगत 'अधिकारों' पर ज़ोर देने के स्थान पर हमें मनुष्यमात्र के लिए 'कर्तव्यपालन' को अधिक महत्व देना होगा।

एक मानवधर्म की आवश्यकता

इसके बाद हमें अपने राष्ट्रीय रोग के जड़ों की ओर दृष्टि डालनी होगी और साहस के साथ उन्हें अपने जीवन से उखाड़ कर फेंकना होगा। असत्य को छोड़ कर हमें फिर से अपने राष्ट्रीय जीवन को सत्य की नींव पर क़ायम करने का महान प्रयत्न करना होगा। हमारा पथ इस विषय में बिलकुल स्पष्ट है। आज से पौने तीन सौ साल पहले जिस मार्ग से विचलित हो जाने के कारण धीरे धीरे हमारी राष्ट्रीय विपत्तियों का

प्रारम्भ हुआ, अपने कल्याण के उसी एक मात्र मार्ग को हमें फिर से ग्रहण करना होगा। हमें यह स्वीकार करना होगा कि मानव समाज के टुकड़े करने वाली पृथक पृथक धर्मों और सम्प्रदायों की दीवारें कृत्रिम और हानिकर हैं। कबीर के शब्दों में हमें यह मानना पड़ेगा कि इस संसार में 'दो जगदीश' नहीं हो सकते। हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि किसी देश, किसी काल, किसी जाति या किसी भाषा विशेष ने, चाहे वह कितनी भी प्राचीन क्यों न हो, ईश्वरीय ज्ञान का इजारा नहीं ले रक्खा। वास्तव में इस तरह के अनुदार विचार ही मानव समाज की आधी से अधिक विपत्तियों की जड़ हैं। सारांश यह कि जन सामान्य को अपने अपने ढंग से अपने इष्टदेव की आराधना करने में स्वाधीन छोड़कर भी हमें सब धर्मों की मौलिक एकता को साक्षात करना होगा। उस मौलिक एकता की रोशनी में ही हमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, पारसी और ईसाई के भेदों की असत्यता और हानिकरता को भी अनुभव करना होगा और समस्त समाज को एक सच्चे सार्वभौम मानवधर्म की ओर लाने का सस्नेह और प्रशान्त प्रयत्न करना होगा। जात पाँत या छुआछूत जैसी रूढ़ियों की अनर्गलता और अन्याय्यता को तो आज अधिकांश विचारवान भारतवासी अनुभव करने लगे हैं। इन समस्त भेदभावों को हमें अपने राष्ट्रीय जीवन से समूल उखाड़ कर फेंक देना होगा। इस सब के स्थान पर हमें मानव समता, मानव प्रेम, परसेवा, स्वार्थत्याग, न्याय और सत्यता के उस सार्वभौम धर्म को अपना एक मात्र धर्म स्वीकार करना होगा, जिस तक मनसूर और कबीर जैसे अनेक सूफ़ियों और महात्माओं ने हमें लाने का प्रयत्न किया।

निस्सन्देह यदि दो सौ साल पहले ही हमने अपने जीवन को इन सच्ची

नींवों पर क़ायम कर लिया होता, यदि औरंगज़ेब के समय से पृथक पृथक धर्मों के झूठे भेदों ने फिर से देशवासियों के विचारों को पथभ्रष्ट न कर दिया होता, तो आज इस देश की यह दशा होना असम्भव था। और किसी भी तरह का सुधार, सामाजिक या राजनैतिक, केवल रोग की जड़ों को छोड़ कर पत्तियों और डालियों के साथ काट छाँट करना है। इस तरह का कोई सुधार चिरस्थाई नहीं हो सकता। वास्तव मे यदि सत्य है तो यही है और यदि भारत के या संसार के भावी कल्याण का कोई सच्चा मार्ग है तो यही है।

सत्याग्रह और असहयोग

इसके साथ साथ हमें प्रेम और सत्य के पवित्र सिद्धान्तों से न डिगते हुए राजनैतिक क्षेत्र में 'सत्याग्रह' की अजेयता को अनुभव करना होगा और सत्याग्रह के अनन्त बल का अपने अन्दर संचार करना होगा। हमें यह समझना होगा कि हर अन्याय अन्यायी और अन्याय पीड़ित दोनों की आत्माओं के एक समान पतन का कारण होता है। कोई सच्चा प्रेमी किसी अन्याय को अपनी आँखों के सामने देखते हुए निश्चेष्ट नहीं बैठ सकता। घृणा और द्वेष की अपेक्षा प्रेम, सच्चा और क्रियात्मक प्रेम, एक कहीं अधिक प्रबल शक्ति है। जो मनुष्य किसी भी अन्याय को दूर करने के लिए सच्चे प्रेम के साथ अपने स्वार्थ, अपने सर्वस्व और अपने प्राणों की आहुति देने के लिए प्रस्तुत हो जाता है और हँसते हँसते कर्तव्य के नाम पर अनन्त कष्टों का सामना करने के लिए मैदान में निकल पड़ता है, उसकी शक्ति तोपों और बन्दूकों की शक्ति के मुक़ाबले में सर्वथा अजेय होती है। इस शक्ति का थोड़ा बहुत अनुभव हमें अपने हाल के राष्ट्रीय संग्रामों में मिल

चुका है। इसी एक मात्र अमोघ शक्ति का हमें अपने इस दुखित देश के उद्धार के लिए आश्रय लेना होगा।

तीसरी बात हमें यह भी स्पष्ट दिखाई दे रही है कि अपनी पराधीनता के एक एक विभाग में हमारी ही शक्तियाँ हमारे विरुद्ध काम कर रही हैं। विदेशी व्यापार के हर मद में, विदेशी शासन के हर मोहकमे में हम स्वयं ही अपनी बेड़ियों के वास्तविक गढ़ने वाले हैं। बिना भारतवासियों की सहायता के न विदेशी शासन भारत में क़ायम हो सकता था और न एक क्षण के लिए इस समय चल सकता है। जाने या अनजाने, हमारा यह स्वार्थ, हमारा यह पाप ही देश की समस्त वर्त्तमान आपत्तियों की जड़ है और उसी के द्वारा ये आपत्तियाँ क़ायम हैं। इलाज स्पष्ट है। हमें अपने विनाश के साधनों से सहयोग करने के इस महापाप से अपने को मुक्त करना होगा।

निस्सन्देह मार्ग सर्वथा निष्कण्टक नहीं है। किन्तु संसार का कोई भी महान कार्य बिना स्वार्थत्याग और कष्टसहन के सिद्ध नहीं हो सकता। कोई मनुष्य या राष्ट्र बिना अपने पिछले पापों का प्रायश्चित किए धर्म और कल्याण के मार्ग पर अग्रसर नहीं हो सकता। भारत के राजनैतिक उद्धार का इस समय यही एक मात्र मार्ग है। हर भारतवासी के लिए सच्चे कर्त्तव्य पालन का यही एक मात्र पथ है।

हमारा भविष्य

जिस तरह हर मनुष्य से उसी तरह हर राष्ट्र से अपने जीवन में भूलों का होना स्वाभाविक और अनिवार्य है। अपनी इन भूलों के दुष्परिणाम भी हर व्यक्ति या राष्ट्र को सहने ही पड़ते हैं। किन्तु भविष्य के लिए

हमारा हृदय आशा और विश्वास से भरा हुआ है। एक बार अपने कर्त्तव्य को समझ लेने पर हमें अपने देशवासियों के साहस और उनकी शक्ति में भी पूरा भरोसा है। हमें विश्वास है कि आजकल का आदर्शशून्य सन्तप्त संसार इन सब बातों में भारत ही से सच्चे मार्ग प्रदर्शन की बाट जोह रहा है। अपने देश के सन् १६१६ से अब तक के इतिहास को ध्यान से देखते हुए हमें निकटवर्ती भविष्य में भारत और फिर स्वाधीन भारत के पग उस भावी अपूर्व दिग्विजय की ओर साफ़ बढ़ते हुए दिखाई दे रहे हैं।

सम्राट जहाँगीर से सर टामसरो की भेंट

By the courtesy of the Curator Victoria Memorial,
Calcutta

भारत में अंगरेज़ी राज

पहला अध्याय

भारत में यूरोपियन जातियों का प्रवेश

चार सौ साल पहले भारत और यूरोप का सम्बन्ध

अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष मानव जाति की सभ्यता और उसकी उन्नति का एक विशेष स्रोत रहा है और पृथ्वी की विविध जातियों के विकास में एक महत्वपूर्ण भाग लेता रहा है। आज से दो तीन सौ साल पहले तक यह देश हर तरह स्वाधीन था, और ज्ञान, विज्ञान, विद्या-प्रचार, कला-कौशल, शासन-प्रबन्ध इत्यादि में संसार के समस्त देशों का शिरोमणि था। उस समय यूरोप का कोई देश सभ्यता के किसी अङ्ग में भी भारत की बराबरी न कर सकता था। धनधान्य की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय

संसार का सब से अधिक धनवान देश माना जाता था। ईसा की अठारवीं सदी तक यह देश संसार भर के यात्रियों के लिए एक अपूर्व चमत्कार की जगह, कवियों के लिए उनकी उच्चतम कल्पनाओं का एक विषय और धन-लोलुप जातियों के लिए उनकी लालसा का मुख्यतम पदार्थ बना हुआ था। सैकड़ों और हज़ारों वर्षों तक समस्त यूरोप, बल्कि समस्त संसार के बाज़ारों और मंडियों में अच्छे से अच्छे रेशमी और सूती कपड़े, ज़ेवर, बरतन और तरह तरह के अन्य अद्भुत पदार्थ हिन्दोस्तान के बने हुए ही दिखाई पड़ते थे। संसार के व्यापारियों को उस समय भारतीय धन और भारतीय वैभव के ही स्वप्न दिखाई देते थे, और इस भारतीय धन का लालच ही यूरोप निवासियों को इस प्राचीन देश की ओर खींच कर लाया। वास्तव में बहुत दरजे तक भारत का यह प्राचीन धन-वैभव ही इस देश की समस्त आपत्तियों का मूल कारण हुआ।

चार सौ साल पहले तक भारत और यूरोप के बीच का समस्त व्यापार अरब और ईरान के सौदागरों के ज़रिए होता था। ये साहसी सौदागर भारत के पच्छिमी तट पर भारत के क़ीमती माल से अपने जहाज़ लादते थे, फिर अरब और ईरान की खाड़ियों से होकर उस माल को अपने देशों में ले जाते थे, और फिर वहाँ से अधिकतर खुश्की के रास्ते ऊँटों और गाड़ियों पर लाद कर उसे यूरोप और अफ़रीका के तमाम देशों में पहुँचाते थे। यूरोप में व्यापार की सब से बड़ी मंडियाँ उस समय इतालिया (इटली) देश के वेनिस, जेनोआ आदि बन्दरगाहों में थीं और वहाँ ही से

जमा होकर भारत, ईरान आदि एशियाई देशों का बना हुआ माल यूरोप के सब देशों में पहुँचता था। समुद्र के रास्ते यूरोप से भारतवर्ष आने जाने का मार्ग उस समय किसी को मालूम न था। न उस समय कोई यूरोपियन जाति इतनी बलवान या इतनी धनवान थी और न यूरोप से बाहर का कोई ग़ैर-ईसाई मुल्क उस समय किसी यूरोपियन ईसाई जाति के अधीन था।

भारत के जलमार्ग की खोज

ईसा की पन्द्रवीं सदी में कुछ साहसी यूरोपनिवासियों के दिलों में भारत का जल-मार्ग ढूँढ़ निकालने की उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, इसके दो ख़ास सबब थे। एक यह कि स्थल-मार्ग से माल के लाने लेजाने में अनेक असुविधाएँ झेलनी पड़ती थीं। बीच में कई जगह माल को उतारना और फिर से लादना पड़ता था। कई कई जगह पुलों पर, सड़कों पर और मंडियों में चुङ्गी देनी होती थी। सड़कें कहीं अच्छी थीं तो कहीं ख़राब और कहीं बिलकुल न थीं। मार्ग में डाकुओं और जंगली जानवरों का भय रहता था। देर अधिक लगती थी और लागत इतनी आ जाती थी कि विशेष कर यूरोप के उत्तर और पच्छिम के हिस्सों तक पहुँचते पहुँचते माल के दाम बहुत बढ़ जाते थे। दूसरा यह कि यूरोप के अंदर एशियाई माल का समस्त व्यापार उन दिनों प्रायः इतालिया के सौदागरों के हाथों में था, जिनकी कमाई को देख देख कर उत्तर और पच्छिम की यूरोपियन जातियों की स्पर्धा और उनकी धन-लोलुपता और अधिक भड़कती थी।

के बाद के जीवन पर ख़ासा ज़बरदस्त पड़ा। किन्तु भारत का जल-मार्ग ढूंढ़ निकालने की दृष्टि से कोलम्बस का प्रयत्न बिलकुल निष्फल गया। यह एक ख़ास बात है कि कोलम्बस मरते समय तक अमरीका ही को हिन्दोस्तान समझता रहा और उसी भ्रम के सिलसिले में आज तक यूरोपनिवासी अमरीका के पुराने बाशिन्दों को "इण्डियन्स" या "रेड इण्डियन्स" और अमरीका के पास के टापुओं को "वेस्ट इण्डीज़" कहते हैं।

भारत में पुर्तगालियों का प्रवेश

सब से पहला यूरोपनिवासी, जिसे इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त हुई, पुर्तगाल का रहने वाला वास्को-दे-गामा नामक एक नाविक था। वास्को-दे-गामा का जहाज़ अफ़रीका के नीचे से आशा अन्तरीप (केप आफ़ गुडहोप) का चक्कर लगाता हुआ २२ मई सन् १४९८ ईसवी को मलाबार तट पर कालीकट के पास आकर ठहरा *। कालीकट का राजा उस समय एक हिन्दू था जिसे सामुद्रिक या सामुरी (ज़ामोरिन) कहते थे। इस राजा ने वास्को-दे-गामा और उसके ईसाई साथियों का बड़े हर्ष के साथ स्वागत किया और इनकी ख़ूब ख़ातिरदारी की। पुर्तगालियों की प्रार्थना पर सामुरी ने उन्हें अपने राज में रहने और व्यापार करने की इजाज़त दे दी। पुर्तगाल से आना जाना बढ़ता गया।

---

* मौजूदा नहर स्वेज़ सन् १८६९ में खुली। इससे पहले लोग इसी चक्कर के रास्ते कई महीने में यूरोप से भारत आते जाते थे।

कालीकट-नरेश सामुरी से वास्को-डे-गामा की भेंट

[From Major Basu's Rise of the Christian Power in India 2nd edition]

सन् १५०० ई० में पुर्तगालियों ने अपने व्यापार के लिए कालीकट में एक कोठी बनाई। तीन साल बाद उन्होंने सामुरी की इजाज़त से अपनी कोठी की क़िलेबन्दी कर ली और एक फ़ौजी अफ़सर अल्बुकर्क को उसका क़िलेदार नियुक्त किया। अल्बुकर्क ने किनारे किनारे उत्तर की ओर बढ़कर सन् १५०६ में गोआ नगर पर क़बज़ा कर लिया। भोले भारतवासी उस समय तक इन विदेशियों के वास्तविक चरित्र या इनके इरादों से बिल्कुल अपरिचित थे। होते होते सन् १५१० ईसवी में पुर्तगालियों का कालीकट के राजा के साथ कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें पुर्तगालियों ने कालीकट के राजमहल को आग लगा दी और नगर को लूट लिया। केवल बारह साल पहले इन परदेसियों पर अनुग्रह करने का भोले और उदार सामुरी को यह फल मिला।

उस समय का भारत

राज-शासन की दृष्टि से भारतवर्ष उस समय अनेक छोटी बड़ी रियासतों में बँटा हुआ था, जो एक दूसरे के साथ बहुत कम संबन्ध रखती थीं। कोई एक प्रधान शक्ति इन रियासतों को वश में रखने या देश को एक सूत्र में बाँधने वाली न थी। पुराने हिन्दू साम्राज्य बहुत समय पहले टुकड़े टुकड़े हो चुके थे और दिल्ली का मुग़ल साम्राज्य अभी तक क़ायम न हुआ था। मालूम होता है कि इस बात का विचार तक कि भारत 'एक देश' है उस समय किसी के दिल में मौजूद न था। इसके सिवा भारतवासी उस समय तोप, बन्दूक़ आदि आग्नेय अस्त्रों का बनाना जानते हुए भी आमतौर पर

इनके उपयोग को मानवधर्म के विरुद्ध समझते थे और पुर्तगाल-निवासी इन हथियारों के इस्तेमाल में होशियार थे। इस सबसे बढ़कर भारतवासी राजनीति में अत्यन्त भोले थे। नतीजा यह हुआ कि सौ सवा सौ साल के अंदर पुर्तगालियों ने भारतीय व्यापार से इतना अधिक धन कमाया कि उसे देख अन्य यूरोपनिवासी दंग रह गए और इसी समय के अंदर पुर्तगाली मङ्गलोर, कच्चिन, लङ्का, दिव, गोआ, बम्बई के टापू और नेगापट्टन के मालिक बन बैठे।

पुर्तगालियों का व्यवहार

पुर्तगालियों के उस समय के व्यापार को दो बातें ख़ास तौर पर जानने योग्य हैं। एक यह कि इन लोगों के कुछ जहाज़ भारत के पूर्वी और पच्छिमी तटों के बराबर बराबर घूमते रहते थे और किसी भी भारतीय जहाज़ को पास से निकलते हुए देखकर उसे पकड़ कर लूट लेते थे। अपने जहाज़ों में बैठकर ये लोग किनारे की आबादियों पर भी धावा कर देते थे, उन्हें लूट लेते थे और कभी कभी मौक़ा पाकर वहाँ के पुरुष स्त्रियों को ग़ुलाम बनाकर पकड़ ले जाते थे। दूसरे ये लोग अफ़रीका और अन्य देशों से अपने जहाज़ों में ग़ुलाम भर भर कर लाते थे और भारत के बाज़ारों में, विशेष कर उन स्थानों में जो उनके अधीन थे, अत्यन्त सस्ते दामों पर बेच डालते थे।

भारत के जिन हिस्सों पर पुर्तगालियों का क़ब्ज़ा हो गया था, वहाँ की प्रजा के साथ इन लोगों का व्यवहार अत्यन्त अनुदार था। ये लोग कट्टर ईसाई थे और जिस देश पर इनका राज होता

था वहाँ की प्रजा को ज़बरदस्ती ईसाई बना लेना वे अपना धर्म समझते थे। गोआ में उन्हों ने अपनी ग़ैर-ईसाई प्रजा को पकड़ कर और उन्हें ला-मज़हब कहकर मार डालने और ज़िन्दा जला देने के लिए एक अदालत क़ायम कर रक्खी थी, जिसे "इंकिज़िशन" कहते थे। इसीलिए आज तक गोआ की अधिकांश आबादी ईसाई है। अपनी हिन्दोस्तानी प्रजा को बेहतरी के लिए पुर्तगालियों ने कभी किसी तरह के यत्न नहीं किये।

पुर्तगालियों की सत्ता का अन्त

१७ वीं सदी के शुरू में पुर्तगालियों का व्यापार बंगाल की ओर फैलने लगा। बंगाल के किसी हिस्से पर पुर्तगालियों का राज क़ायम न हुआ, किन्तु वहाँ भी वही लूट मार, वही ज़्यादतियाँ, वही ग़ुलाम और बाँदियों का व्यापार चल पड़ा। इस समय तक मुग़ल साम्राज्य की जड़ें पकी हो चुकी थीं। शाहजहाँ अब दिल्ली के तख़्त पर था। बंगाल की हुकूमत दिल्ली सम्राट के अधीन एक सूबेदार के हाथ में थी। सूबेदार ने अपने अहलकारों के ज़रिए पुर्तगालियों को उनकी ज़्यादती के विरुद्ध आगाह किया। पुर्तगालियों ने सूबेदार की आज्ञाओं की ख़ाक परवा न की। इन बातों की शिकायत शाहजहाँ के कानों तक पहुँची। उसने तुरंत पुर्तगालियों के दमन के लिये एक सेना भेजी। पुर्तगाली हरा दिये गये, उनकी हुगली की कोठियाँ गिरा दी गईं। उनके जहाज़ जला डाले गए और बचे खुचे पुर्तगाली क़ैद करके आगरे पहुँचा दिये गए। यहीं से पुर्तगालियों की भारतीय सत्ता का अन्त शुरू होता है।

भारत से पुर्तगालियों की सत्ता के इतनी जल्दी मिट जाने का एक सबब यह भी बताया जाता है कि बहुत अधिक धनाढ्य हो जाने से ये लोग भोग विलास में पड़ गए थे। एक पुर्तगाली लेखक लिखता है:—

"पुर्तगालनिवासियों ने एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में सलीब (क्रॉस) लेकर भारतवर्ष में प्रवेश किया, किन्तु जब उन्हें यहाँ बहुत अधिक सोना नज़र आया तो उन्होंने सलीब को अलग रखकर उस हाथ से अपनी जेबें भरनी शुरू कर दीं और जब उनकी जेबें इतनी भारी हो गईं कि वे उन्हें एक हाथ से न सँभाल सके तो उन्होंने तलवार भी फेंक दी। इस हालत में जो लोग उनके बाद आए वे आसानी से उन पर हावी हो सके।*"

पुर्तगालियों के क़रीब सौ साल पीछे १६ वीं सदी के अंत में, एक दूसरे यूरोपियन देश हॉलैण्ड के रहने वाले, जिन्हें "डच" कहते हैं भारत पहुँचे। इन लोगों ने आसानी से पुर्तगालियों के रहे सहे जहाज़ आदि जलाकर उनकी बाक़ी सत्ता अपने हाथों में ले ली। आज दिन पुर्तगालियों का राज हिन्दोस्तान के अंदर केवल गोआ और दो एक छोटे छोटे टापुओं पर बाक़ी रह गया है।

भारत में डच जाति

यूरोप में डच लोगों ने भारत के धन वैभव का ज़िक्र पहले पहल पुर्तगालियों से सुना। उनके दिल में भी भारत पहुंच कर धन कमाने की अभिलाषा पैदा हुई। जल-मार्ग से भारत आने के उन्होंने अनेक

---

* Alfonzo-de-Souza, Governor of Portuguese India, 1545

निष्फल प्रयत्न किये। अन्त में सन् १५९८ ईसवी तक इनके जहाज़ अफ़रीका के नीचे से जावा होकर भारत पहुंचने लगे।

डच जाति के लिखे हुए इतिहास से मालूम होता है कि भारत के नरेशों ने इनका वैसा ही अच्छा स्वागत किया, जैसा शुरू में पुर्तगालियों का किया था। पुर्तगालियों से इनकी लाग डाट थी। जिस तरह पुर्तगालियों ने अरब सौदागरों की रोज़ी छीनी थी, उसी तरह डच अब पुर्तगालियों की रोज़ी छीनने या कम से कम उसमें हिस्सा बटाने के लिये उत्सुक थे। इन लोगों ने भारतवासियों से पुर्तगालियों की ख़ूब बुराइयाँ कीं। मुग़ल सम्राट ने इन्हें अब व्यापार के लिये कोठियाँ बनाने और अपनी रक्षा के लिये क़िले-बंदी करने की इजाज़त दे दी।

सब से पहले पुलीकट और सद्रास नामक स्थानों पर इन्होंने अपनी कोठियाँ बनाईं और क़िले खड़े किये। पुलीकट मौजूदा मद्रास के उत्तर में और सद्रास मद्रास के दक्खिन में है। बढ़ते बढ़ते सन् १६६३ ईसवी में उनकी एक कोठी आगरे में थी, जिसमें जौ सड़ाकर उससे शराब तैयार की जाती थी। इसी तरह की उनकी कोठियाँ सूरत, अहमदाबाद और पटने में मौजूद थीं। धीरे धीरे बंगाल में भी उनका व्यापार बढ़ने लगा और सन् १६७५ में उन्होंने चुंचड़ा (चिनसुरा) में एक कोठी क़ायम की।

जब तक डच लोगों की निगाह केवल व्यापार पर रही, उन्होंने भारत से ख़ूब धन कमाया, किन्तु इसके बाद उनमें भारत के अंदर अपना राज क़ायम करने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसी बीच अंगरेज़

जाति भी भारत पहुंच गई और इस देश को अपने अधीन करने के लिये हर तरह के उपाय करने लगी। डच जाति को अधिक चतुर अंगरेज़ों के साथ टक्कर लेनी पड़ी। प्लासी की लड़ाई के दो साल बाद अगस्त सन् १७५६ ईसवी में डच लोगों के सात जंगी जहाज़ एका-एक चुंचड़ा के नीचे आ धमके। अंगरेज़ों का प्रभाव उस समय ख़ासा जम चुका था। अंगरेज़ों ने उन्हें चुंचड़ा तक पहुंचने भी न दिया और बंगाल के नवाब की सहायता से पूरी तरह शिकस्त देकर पीछे हटा दिया। उसी समय से डच लोगों का भारतीय व्यापार घटने लगा। अंत में सन् १८०५ ईसवी में अंगरेज़ों ने चुंचड़ा और मलाका के बदले में उन्हें सुमात्रा का टापू देकर डच जाति के अंतिम चिन्ह को इस देश से मिटा दिया।

भारत पर अंगरेज़ों की दृष्टि

१६वीं सदी के शुरू में पुर्तगालियों की हिन्दोस्तानी तिजारत बढ़ने से पुर्तगाल की राजधानी लिसबन का महत्व और उसका वैभव यूरोप में दिनों दिन बढ़ता जा रहा था। इङ्गलिस्तान के रहने वालों को इससे ईर्षा होना स्वाभाविक था। इङ्गलिस्तान में उस समय ब्रिस्टल का बंदरगाह तिजारत की दृष्टि से सबसे आगे था। हर यूरोपियन क़ौम के लोग उन दिनों दूसरी क़ौम के माल से लदे जहाज़ों को पकड़ कर लूट लेना अपने लिये एक जायज़ व्यापार समझते थे। भारत और एशियाई समुद्रों में भी इन लोगों ने इस तरह की लूट का बाज़ार ख़ूब गरम कर रक्खा था। ब्रिस्टल के नाविक अनेक पुश्तों से बड़े मशहूर समुद्री डाकू गिने जाते थे। सबसे पहले

ब्रिस्टल ही के एक सौदागर ने इङ्गलिस्तान के बादशाह आठवें हेनरी को भारत के मार्ग की खोज कराने की सलाह दी।

पचास साल से कुछ ऊपर तक इङ्गलिस्तान के बड़े बड़े नाविक उत्तर-पच्छिम से होकर भारत पहुँचने के निष्फल प्रयत्न करते रहे। सन् १५७८ में जब कि इङ्गलिस्तान का एक मशहूर नाविक सर फ्रैंसिस ड्रेक भारत से लिसबन जाने वाले एक पुर्तगाली जहाज़ को पकड़ कर लूट रहा था, उस लूट में उसे कुछ नक़शे मिले जिनसे अंगरेज़ों को पहली बार भारत के उस समय के जल-मार्ग का कुछ पता चला।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी

सन् १६०० ई० में इङ्गलिस्तान की रानी एलिज़ेबेथ ने सुप्रसिद्ध "ईस्ट इण्डिया कम्पनी" की रचना की। यह कम्पनी उन अंगरेज़ व्यापारियों की एक मंडली थी, जो हिन्दोस्तान के साथ तिजारत करने की इच्छा रखते थे। यह बात याद रखने योग्य है कि जो फ़रमान रानी एलिज़ेबेथ ने इस मौक़े पर जारी किया, उसमें इस कम्पनी को इस तरह के साहसी लोगों की मंडली (Society of Adventurers) कहा गया है जो लूट, सट्टे आदि के लिये निकलते हैं और जो अपने धन कमाने के उपायों में सच झूठ, ईमानदारी बेईमानी अथवा न्याय अन्याय का अधिक ख़याल नहीं रखते। कम्पनी के डाइरेक्टरों ने शुरू ही में इस बात का फ़ैसला कर लिया था कि हम "किसी ज़िम्मेदारी की जगह किसी शरीफ़ आदमी को नियुक्त न करेंगे*।"

* "Not to employ any gentleman in any place of charge"—Bruce's *Annals of the Hon'ble East India Company, vol. 1, p 128.*

श्रौर मलका के नाम अपनी दरख़्वास्त में लिख दिया था कि—"हमें अपना व्यापार अपने ही जैसे आदमियों द्वारा चलाने की इजाज़त होनी चाहिये, क्योंकि यदि लोगों को इस बात का संदेह भी हो गया कि हम शरीफ़ आदमियों को अपने यहाँ नौकर रक्खेंगे, तो मुमकिन है हमारे बहुत से साहसिक पत्तीदार अपनी पत्तियाँ वापस ले लें *।" यही भारत के अंदर इस अंगरेज़ कम्पनी के ढाई सौ साल के कारनामों और उसकी समस्त नीति की कुंजी है। इन ढाई सौ साल के अंदर कम्पनी के मेम्बरों, मुलाज़िमों आदि में बिरले ही ऐसे हुए होंगे, जिन्हें 'शरीफ़' कहा जा सके।

भारत में पहला अंगरेज़

नक़शे मिलने के तीस साल बाद यानी सन् १६०८ ईसवी में पहला अंगरेज़ी जहाज़ हिन्दोस्तान पहुँचा। इस जहाज़ का नाम 'हेक्टर' था। 'हेक्टर' प्राचीन यूनान के एक वीर योद्धा का नाम था। अंगरेज़ी में हेक्टर शब्द का अर्थ 'हेकड़ीबाज़' या 'झगड़ालू' है। यह जहाज़ सूरत के बन्दरगाह में आकर लगा। सूरत उस समय भारतीय व्यापार का एक विशेष केन्द्र था। जहाज़ का कप्तान हॉकिन्स पहला अंगरेज़ था जिसने समुद्र के रास्ते आकर भारत की भूमि पर क़दम रखा। इङ्गलिस्तान के बादशाह जेम्स अव्वल की ओर से दिल्ली के मुग़ल सम्राट के नाम हॉकिन्स अपने साथ एक पत्र लाया, जो उसने आगरे पहुँच कर सम्राट जहाँगीर के सामने पेश किया। यह बात केवल तीन सौ साल पहले

---

* *Ibid*

की है। उस समय के इङ्गलिस्तान के बादशाह जेम्स अव्वल के राज और भारत के मुग़ल साम्राज्य की—क्षेत्रफल, आबादी, धन, वैभव, तिजारत, कला कौशल, दस्तकारी, ख़ुशहाली, शासन-प्रबन्ध, विद्या, बल—किसी बात में भी किसी प्रकार की तुलना नहीं की जा सकती। जहाँगीर के दरबार में उस समय किसी को इस बात का गुमान भी न हो सकता था कि दूरवर्ती पच्छिम की एक छोटी सी निर्बल, असभ्य या अर्द्धसभ्य जाति का जो दूत उस समय दरबार में दोज़ानू होकर ज़मीन चूम रहा था उसी के वंशज एक रोज़ मुग़ल साम्राज्य के अङ्ग भङ्ग हो जाने पर हिन्दोस्तान के ऊपर शासन करने लगेंगे। जहाँगीर ने हॉकिन्स की खूब ख़ातिर की। किन्तु पुर्तगाली पहले से दरबार में मौजूद थे, उन्होंने जहाँगीर से अंगरेज़ों की ख़ूब बुराइयाँ कीं। सन् १६१२ ईसवी में अंगरेज़ों ने सूरत के पास कुछ पुर्तगाली जहाज़ों पर हमला करके उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। उसी समय से सूरत में पुर्तगालियों का प्रभाव घटने और अंगरेज़ों का प्रभाव बढ़ने लगा।

जहाँगीर और अंगरेज़

६ फ़रवरी सन् १६१३ को जहाँगीर ने एक शाही फ़रमान के ज़रिये अंगरेज़ों को अपनी तिजारत के लिये सूरत में एक कोठी बनाने की इजाज़त दे दी और यह भी इजाज़त दे दी कि मुग़ल दरबार में इङ्गलिस्तान का एक एलची रहा करे।

इङ्गलिस्तान के बादशाह ने सर टॉमस रो को मुग़ल दरबार में अपना पहला एलची नियुक्त करके भेजा। सर टॉमस रो सन् १६१५

ईसवी में भारत पहुँचा और अपनी नम्रता और सौजन्य द्वारा उसने अंगरेज़ी तिजारत के लिये सम्राट से अनेक नई रिआयतें हासिल कर लीं।

मिसाल के तौर पर सन् १६१६ में अंगरेज़ों को कालीकट और मछलीपट्टन में कोठियाँ बनाने की इजाज़त मिल गई। उस समय भारत में रहने वाले अंगरेज़ चूंकि भारत सम्राट की प्रजा थे, इसलिये यदि उनमें कोई झगड़ा होता था तो देशी अदालतों में ही उसकी सुनाई होती थी और वहीं से उन्हें दंड आदि दिये जाते थे। सन् १६२४ ईसवी में अंगरेज़ों की प्रार्थना पर जहाँगीर ने एक शाही फ़रमान इस मज़मून का जारी कर दिया कि आइन्दा अपनी कोठी के अंदर रहने वाले कम्पनी के किसी मुलाज़िम के क़सूर करने पर अंगरेज़ उसे स्वयं दंड दे सकते हैं। इस घटना की आलोचना करते हुए एक विद्वान अंगरेज़ इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है :—

"बादशाह न्यायशील और बुद्धिमान था। वह उनकी आवश्यकताओं को समझता था। जो उन्होंने माँगा उसने मंज़ूर कर लिया। उसे यह स्वप्न में भी नज़र न आ सकता था कि एक दिन अंगरेज़ इसी छोटी सी जड़ से बढ़ते बढ़ते बादशाह की प्रजा और उसके उत्तराधिकारियों तक को दंड देने का दावा करने लगेंगे और यदि उनका विरोध किया जायगा तो प्रजा का संहार कर डालेंगे और बादशाह के उत्तराधिकारी को बाग़ी कह कर आजीवन क़ैद कर लेंगे*।"

* "The Padishah, being a just man and wise, understood their needs, and yielded what they asked, little dreaming that the time would come, when, from such root of title, they would claim jurisdiction over his subjects and succes-

इसके बाद शाहजहाँ का समय आया। सन् १६३४ ई० में पुर्तगालियों को बंगाल से निकालने के बाद शाहजहाँ ने अंगरेज़ों को बंगाल में तिजारत करने की इजाज़त दे दी। सन् १६३९ ई० में अंगरेज़ों ने मद्रास में अपनी एक कोठी क़ायम की। उन दिनों बंगाल में अंगरेज़ों को अन्य देशी व्यापारियों की तरह अपने माल पर चुंगी देनी पड़ती थी और उनके जहाज़ शाही फ़रमान के अनुसार हुगली के बहुत नीचे पिपली नामक स्थान पर रुक जाते थे। हुगली तक जहाज़ लाने की उन्हें इजाज़त न थी।

शाहजहाँ और अंगरेज़

सन् १६४० ई० में शाहजहाँ की एक लड़की किसी तरह जल गई। उसके इलाज करने वालों में एक अंगरेज़ डॉक्टर भी था। शाहज़ादी अच्छी हो गई। जब इलाज करने वालों को इनाम व इकराम देने का समय आया, तो अंगरेज़ डॉक्टर की प्रार्थना पर शाहजहाँ ने बंगाल भर के अंदर अंगरेज़ों के माल पर चुंगी माफ़ कर दी और उन्हें उस प्रान्त में कोठियाँ बनाने तथा उनके जहाज़ों को हुगली तक आने की इजाज़त दे दी। इसी फ़रमान के अनुसार १६४० ई० में कलकत्ते की कोठी बनी। शाहशुजा उस समय बंगाल का सूबेदार था, उसने सम्राट के फ़रमान के अनुसार 'परदेसी' अंगरेज़ों को अपना कारबार जमाने में हर तरह की मदद दी।

---

sors, and, as the penalty of resistance, decimate the one, and imprison the other for life as guilty of rebellion "—Torrens' *Empire in Asia, pp. 10, 11. Allahabad*

इसके बाद औरंगज़ेब का समय आया। बम्बई का टापू, जहाँ पर उस समय केवल एक छोटी सी पुर्तगाली बस्ती थी, सन् १६६१ ई० में इङ्गलिस्तान के बादशाह को पुर्तगालियों से दहेज़ में मिला और सन् १६८८ ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने उसे अपने बादशाह से ख़रीद लिया। सन् १६६४ ईसवी के निकट शिवाजी का बल बढ़ने लगा। सूरत के अंगरेज़ कोठीवालों ने औरंगज़ेब से वादा किया कि हम शिवाजी के खिलाफ़ आपको मदद देंगे और मुग़ल साम्राज्य की ओर से सूरत की रक्षा करेंगे। इससे खुश होकर औरंगज़ेब ने उनके साथ कई तरह की नई रिआयतें कर दीं।

बम्बई का टापू

किन्तु शुरू के इन अंगरेज़ व्यापारियों का सदाचार और व्यवहार अत्यन्त गिरा हुआ था। किसी भी दूसरी क़ौम के माल से लदे जहाज़ को पकड़ कर लूट लेना इनके लिये एक मामूली बात थी। स्वयं अपने अंगरेज़ भाइयों और अन्य यूरोपियनों के साथ इनके सुलूक की यह हालत थी कि जो मनुष्य इनसे सस्ता माल बेचता था या किसी और तरह उससे इनके व्यापार में बाधा पड़ती थी, उसे ये मौक़ा पाकर पकड़ लेते थे और या तो कोड़े मार मार कर मार डालते थे और या अपनी कोठी में बंद करके भूखों मार देते थे।*

अंगरेज़ व्यापारियों का चरित्र

* " . . . they made it a rule to whip to death or starve to death those of whom they wished to get rid, . . to murder private traders "—*Mill, Wilson's note, vol. 1, Chap 11.*

भारतवासियों के साथ इनका व्यवहार हद दर्जे की ज़्यादती और बेईमानी का था। सूरत की कोठी के अंगरेज़ों की बाबत एक विद्वान् अंगरेज़ पादरी फ़िलिप एण्डरसन लिखता है :—

"ज्यों ज्यों इन साहसिक आगन्तुकों की तादाद बढ़ती गई, उनसे अंगरेज़ क़ौम की नेकनामी नहीं बढ़ी। इनमें से बहुत ज़्यादा लोग ज़बरदस्तियाँ और बेईमानियाँ करते थे × × × हिन्दू और मुसलमान दोनों अंगरेज़ों को गाय खाने वाले और आग पीने वाले नीच दरिन्दे समझते थे और कहते थे कि ये लोग उन बड़े बड़े कुत्तों से भी ज़्यादा जंगली हैं जिन्हें ये अपने साथ लाते हैं। ये शैतान की तरह लड़ते हैं और अपने बाप को भी दग़ा दे लेते हैं और दूसरों से अपना काम निकालने या उनकी चीज़ ले लेने में गोलियों की बौछार या भालों की मार और माल की गठरी या रुपयों की थैली चारों में से किसी का भी उपयोग करने के लिये हरदम तय्यार रहते हैं।" *

अंगरेज़ों के इस व्यवहार को देख कर भारतवासियों का ख़याल ईसाई धर्म के विषय में भी उन दिनों बहुत ख़राब हो गया था। वही विद्वान आगे चल कर लिखता है :—

"किन्तु टेरी साहब का बयान है कि भारतवासी ईसाई धर्म को बहुत

* "As the number of adventurers increased the reputation of the English was not improved. Too many committed deeds of violence and dishonesty. . . . Hindus and Musalmans considered the English a set of cow-eaters and fire-drinkers, vile brutes, fiercer than the mastiffs which they brought with them, who would fight like Eblis, cheat their own fathers, and exchange with the same readiness a broadside of shot and thrusts of boarding pikes, or a bale of goods and a bag of rupees"—*The English in Western India, by Rev. Philip Anderson, p 22.*

गिरी हुई चीज़ ख़याल करते थे। सूरत में लोगों के मुँह से इस प्रकार के वाक्य प्रायः सुनने मे आते थे—'ईसाई मज़हब शैतान का मज़हब है, ईसाई बहुत शराब पीते हैं, ईसाई बहुत बदमाशी करते हैं, और बहुत मार पीट करते हैं, दूसरों को बहुत गालियाँ देते हैं।' टेरी ने इस बात को स्वीकार किया है कि भारतवासी स्वयं बड़े सच्चे और ईमानदार थे और अपने तमाम वादों को पूरा करने में पक्के थे, किन्तु यदि कोई हिन्दोस्तानी सौदागर अपने माल की कुछ क़ीमत बताता था और उस क़ीमत से बहुत कम ले लेने के लिए उससे कहा जाता था तो वह प्रायः जवाब में कह पड़ता था—'क्या तुम मुझे ईसाई समझे हो, जो मैं तुम्हें धोखा देता फिरूँगा ?"*

अंगरेज़ सब से पहले सूरत में पहुँचे और सब से अंत में बंगाल पहुँचे, किन्तु वहाँ भी उनका व्यवहार वैसा ही रहा। इतिहास लेखक सी० आर० विलसन लिखता है :—

"बंगाल में भी अंगरेज़ अपने झगड़ालूपन के लिये उतने ही बदनाम थे × × × वहाँ का बूढ़ा सूबेदार नवाब शाइस्ता ख़ाँ उन्हें 'नीच, झगड़ालू लोगों और जुआचोरों की कम्पनी' कहा करता था और आजकल का कोई ज़बरदस्त प्रामाणिक इतिहासज्ञ इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि नवाब के

* "But, according to Terry, the natives had formed a mean estimate of Christianity. It was not uncommon to hear them at Surat giving utterance to such remarks as—Christian religion, devil religion, Christian much drunk, Christian much do wrong, much beat, much abuse others. Terry admitted that the natives themselves were 'very square' and exact to make good all their engagements, but if a dealer was offered much less for his articles than the price which he had named, he would be apt to say, 'What! dost thou think me a Christian, that I would go about to deceive thee?'"—*Ibid, p. 32*

पास अपने इस कथन के लिये काफ़ी अच्छे प्रमाण थे। उस समय के तमाम उल्लेखों को पूरी तरह छान बीन करने के बाद सर हेनरी यूल के दिल पर यह असर पड़ा कि बंगाल की खाड़ी के अंदर कम्पनी के मुलाज़िमों की नैतिक और सामाजिक अवस्था 'निस्सन्देह भयंकर' थी।"*

औरंगज़ेब और अंगरेज़

थोड़े ही दिनों में ख़ास कर बम्बई के अन्दर अंगरेज़ सौदागरों के अत्याचार इतने बढ़ गए कि उनकी शिकायत औरंगज़ेब के कानों तक पहुँची। फ़ौरन औरंगज़ेब ने हुकुम जारी कर दिया कि इन लोगों की कोठियाँ ज़ब्त कर ली जायँ और इन्हें मार कर हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दिया जाय। सूरत, विशाखपट्टन आदि कई स्थानों की अंगरेज़ी कोठियाँ ज़ब्त कर ली गईं और वहाँ से अगरेज़ों को निकालकर बाहर कर दिया गया। बम्बई को घेर लिया गया। किन्तु ये लोग काफ़ी चालाक थे, वे फ़ौरन औरंगज़ेब के क़दमों पर गिर पड़े। उन्होंने कान पकड़ कर अपनी पिछली ख़ताओं के लिये माफ़ी चाही। आइन्दा के लिये नेक चलनी का वादा किया और मुग़ल सम्राट से जाँबख़्शी की प्रार्थना की†।

* "The English in Bengal were equally notorious for their quarrels . . . The old Viceroy, Shayista Khan, called them 'a company of base, quarrelling people and foul dealers,' and our great modern authority will not gainsay that the noble had good grounds for his assertion The impression of the moral and social tone of the Company's servants in the Bay which has been left on the mind of Sir Henry Yule by his exhaustive study of the records of the time is 'certainly a dismal one' "—*Dr C R Wilson's Early Annals of the English in Bengal, vol 1 p 66*

† "Stooped to the most abject submission "—*Mill, book 1, chap v*

औरंगज़ेब ने उदारता में आकर और उन पर विश्वास करके उन्हें बख़्श दिया और सूरत आदि की कोठियाँ उन्हें वापस दे दीं। सन् १६६६ में औरंगज़ेब ने उन्हें कई नई कोठियाँ क़ायम करने और वहाँ पर अपनी हिफ़ाज़त के लिये क़िलेबंदी करने तक की इजाज़त दे दी।

औरंगज़ेब ही के समय में उसके पौत्र अज़ीमशाह ने बंगाल के सूबेदार की हैसियत से हुगली नदी के ऊपर छूतानटी, कलकत्ता और गोबिन्दपुर नाम के तीन गाँव बतौर जागीर कम्पनी को दे दिये। उसी समय फ़ोर्ट विलियम क़िले की बुनियाद डाली गई। जिस समय पहले पहल यह क़िलेबंदी की जा रही थी, औरंगज़ेब के पास इसकी ख़बर पहुँची। औरंगज़ेब को सलाह दी गई कि इस क़िलेबंदी को रोका जावे, किन्तु दिल्ली सम्राट की नज़रों में अंगरेज़ उस समय एक इतनी तुच्छ चीज़ थे कि उनकी इन कार्रवाइयों में दख़ल देना उसे ग़ैर ज़रूरी मालूम हुआ। इन ग़रीब परदेसियों के साथ वह हर तरह दया और उदारता का ही व्यवहार करना चाहता था। औरंगज़ेब ने उत्तर दिया :—

"मैं इन चीज़ों में क्यों दख़ल दूं ? बहुत मुमकिन है कि आसपास की मेरी देशी रिआया उनसे ईर्षा रखती हो और झगड़े करती हो, फ़िरंगी लोग अपनी शक्ति भर अपनी हिफ़ाज़त का इन्तज़ाम क्यों न करें ? ये ग़रीब लोग इतनी दूर से आये हैं और अपनी रोज़ी के लिये इतनी मेहनत करते हैं। मैं उन्हें क्यों रोकूं ?"*

* "If he (The Mogul) was told of their planting stockade and putting a sort of fortification there, why should he trouble himself regarding it ?

औरंगज़ेब के बाद मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता का समय आया। अंगरेज़ों को मौक़ा मिला, उनके अत्याचारों ने और अधिक गम्भीर तथा भयंकर रूप धारण किया। इस बीच धीरे धीरे भारत के पूर्वी तथा पच्छिमी तटों पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी की अनेक नई कोठियाँ बन गईं। अंगरेज़ी व्यापार भारत में बढ़ता गया। कम्पनी के पत्तीदार और छोटे बड़े मुलाज़िम सभी भारत के धन से मालामाल हो गए। औरंगज़ेब की मृत्यु के ठीक पचास साल बाद बंगाल में अंगरेज़ी राज की नींव रक्खी गई, जिसकी कहानी एक दूसरे स्थान पर बयान की जायगी।

फ्रांसीसियों का प्रवेश

अन्तिम यूरोपियन क़ौम, जो इस सिलसिले में भारत आई, फ्रांसीसी थी। फ्रांसीसी या फ्रेञ्च फ्रांस देश के रहने वालों को कहते हैं। ईस्ट इण्डिया कंपनी के मुक़ाबले की एक फ्रांसीसी कंपनी ठीक उसी उद्देश से सन् १६६४ ईसवी में क़ायम हुई। फ्रांसीसियों ने सन् १६६८ में सूरत, सन् १६६६ में मछलीपट्टन और सन् १६७४ में पुदुदुचरी (पाण्डिचेरी) में अपनी कोठियाँ बनाईं।

फ्रांसीसियों की नीति आरम्भ से यह थी कि वे भारतीय शासकों की खुशामद करके जिस तरह हो उन्हें अपने पक्ष में रखने की कोशिश करते थे। पुदुदुचरी का नगर उस समय करनाटक

Likely enough his native subjects around them were jealous and disposed to be quarrelsome Why should not Firanghees defend themselves as best they might ? Poor people ! they had come a long way, and seemed to work hard—he would not interfere "—*Torrens' Empire in Asia, pp 4, 5.*

के राज में था। दिल्ली सम्राट का एक सूबेदार दक्खिन में रहता था। करनाटक का नवाब और कई अन्य राजा व नवाब, इस सूबेदार के मातहत थे। पुद्दुचरी के फ़्रांसीसी मुखिया दूमास ने करनाटक के नवाब दोस्तअली ख़ाँ को ख़ूब ख़ुश कर रक्खा था। यह समय १८ वीं सदी के शुरू का समय था, जब कि औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य का बल घटना शुरू हो गया था।

इस बीच मराठों ने करनाटक पर हमला किया। दूमास ने मौक़ा पाकर नवाब को सहायता देने का वादा किया। नवाब से इजाज़त लेकर उसने पुद्दुचरी में क़िलेबंदी कर ली और १२०० यूरोपियन तथा ५००० हिन्दोस्तानियों की सेना उसमें जमा करली। यूरोप निवासियों के हाथों में यह पहली हिन्दोस्तानी सेना थी। दूमास की सहायता काम कर गई। मराठों का करनाटक विजय करने का प्रयत्न निष्फल गया। करनाटक का नवाब और दिल्ली का सम्राट दोनों दूमास से ख़ुश हो गए। सम्राट ने प्रसन्न होकर दूमास को 'नवाब' की उपाधि प्रदान की और मुग़ल साम्राज्य के अधीन उसे दो हज़ार सवारों का सेनापति नियुक्त कर दिया। पुद्दुचरी के इलाक़े पर अब फ़्रांसीसियों का पूरा क़ब्ज़ा हो गया।

सन् १७४१ में दूमास की जगह दूप्ले फ़्रांसीसी कंपनी की ओर से पुद्दुचरी का हाकिम नियुक्त हुआ। दूप्ले एक अत्यंत योग्य और चतुर सेनापति था, उसके पूर्वाधिकारी दूमास को दिल्ली से नवाब का ख़िताब मिल चुका था। दूप्ले ने ख़ुद अपने तई 'नवाब दूप्ले' कहना शुरू कर दिया। दूप्ले पहला यूरोपनिवासी था जिसके मन

में भारत के अंदर यूरोपियन साम्राज्य क़ायम करने की आकांक्षा उत्पन्न हुई। डूप्ले को भारतवासियों में दो ख़ास कमज़ोरियां नज़र आईं, जिनसे उसने पूरा पूरा फ़ायदा उठाया। एक यह कि भारत के विविध नरेशों की उस समय की आपस की ईर्षा और प्रतिस्पर्धा के दिनों में विदेशियों के लिये कभी एक और कभी दूसरे का पक्ष लेकर धीरे धीरे अपना बल बढ़ा लेना कुछ कठिन न था, और दूसरे यह कि इस कार्य के लिये यूरोप से सेनाएं लाने की आवश्यकता न थी। बल, वीरता अथवा सहनशक्ति में भारतवासी यूरोपनिवासियों से कहीं बढ़ कर थे। अपने सामयिक अफ़सरों की वफ़ादारी का भाव भी भारतीय सिपाहियों में ज़बरदस्त था। किन्तु राष्ट्रीयता के भाव या 'स्वदेश' के विचार तक का उनमें अभाव था। उन्हें बहुत आसानी से यूरोपियन ढंग की सैनिक शिक्षा दी जा सकती थी और यूरोपियन अफ़सरों के अधीन रक्खा जा सकता था। इसलिये विदेशियों का यह सारा कार्य बड़ी सुन्दरता के साथ हिन्दोस्तानी सिपाहियों से चल सकता था। डूप्ले को अपनी इस महत्वाकांक्षा की पूर्ति में केवल एक बाधा नज़र आती थी, और वह थी अंगरेज़ों की प्रतिस्पर्धा।

फ़्रांसीसी और अंगरेज़

यूरोप के अंदर भी उन दिनों फ़्रांस और इंगलिस्तान एक दूसरे के शत्रु थे। थोड़े दिनों के बाद वहाँ फ़्रांस और इंगलिस्तान के बीच युद्ध शुरू हो गया। करनाटक में क़रीब सौ साल से मद्रास की बस्ती अंगरेज़ों के अधिकार में थी और यही उस समय उनके भारतीय व्यापार का मुख्य

केन्द्र था। दूप्ले ने मद्रास अंगरेज़ों से छीन लेने का विचार किया। दोस्तअली ख़ाँ का उत्तराधिकारी अनवरुद्दीन इस समय करनाटक का नवाब था। दूप्ले ने अंगरेज़ों के विरुद्ध नवाब के ख़ूब कान भरे। लाबूरदौने नामक एक फ़ांसीसी के अधीन उसने कुछ जल सेना मद्रास विजय करने के लिये भेजी और नवाब से यह वादा किया कि अंगरेज़ों को मद्रास से निकाल कर मैं नगर आपके हवाले कर दूँगा। लाबूरदौने ने मद्रास विजय कर लिया, किन्तु इसके साथ ही अंगरेज़ों से चालीस हज़ार पाउण्ड नक़द लेकर मद्रास फिर उनके हवाले कर देने का वादा कर लिया। इसके बाद दूप्ले ने अपने वादे के अनुसार मद्रास नवाब के हवाले कर देने की कोई कोशिश न की और न लाबूरदौने के वादे के अनुसार उसे अंगरेज़ों ही को वापस किया। नवाब को जब इस छल का पता चला, वह फ़ौरन सेना लेकर मद्रास की ओर रवाना हुआ। दूप्ले भी अपनी सेना सहित नवाब को रोकने के लिये बढ़ा। ४ नवम्बर सन् १७४६ को मद्रास के निकट दूप्ले की सेना और नवाब करनाटक की सेना में संग्राम हुआ। दूप्ले की सेना में भी अधिकतर भारतीय सिपाही ही थे। इस भारतीय सेना और अपने तोपख़ाने के बल दूप्ले ने विजय प्राप्त की। इतिहास में यह पहली विजय थी जो किसी यूरोपियन ने किसी भारतीय शासक के विरुद्ध प्राप्त की। विदेशियों के हौसले और अधिक बढ़ गये।

अंगरेज़ों और नवाब करनाटक दोनों को फ़ांसीसी धोखा दे चुके थे, इसलिए ये दोनों अब फ़ांसीसियों के विरुद्ध मिल गए।

सन् १७४८ ईसवी में अंगरेज़ी सेना ने पुद्दुचरी पर हमला किया, किन्तु डूप्ले की सेना ने इस बार भी अंगरेज़ों को हरा दिया। इसी समय यूरोप के अन्दर फ्रांस और इंगलिस्तान के बीच संधि हो गई, जिसमें एक शर्त यह तय हुई कि मद्रास फिर से अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया जाय। इस प्रकार करनाटक से अंगरेज़ों को निकाल देने के विषय में डूप्ले की आशा को एक ज़बरदस्त धक्का पहुंचा और फ्रांसीसियों की बरसों की मेहनत पर पानी फिर गया।

किन्तु डूप्ले का हौसला इतनी जल्दी टूटने वाला न था। फ्रांसीसी और अंगरेज़ी कंपनियों में प्रतिस्पर्धा बराबर जारी रही। ये दोनों कंपनियाँ इस देश में अपनी अपनी सेनाएं रखती थीं और जहाँ कहीं किसी दो भारतीय नरेशों में लड़ाई होती थी तो एक एक का और दूसरी दूसरे का पक्ष लेकर लड़ाई में शामिल हो जाती थी। भारतीय नरेशों की सहायता के बहाने इनका उद्देश अपने यूरोपियन दुशमन को समाप्त करना होता था।

दक्खिन भारत में मोरचे

दक्खिन भारत की राजनैतिक अवस्था इस समय बहुत बिगड़ी हुई थी। मुग़ल सम्राट की ओर से नाज़िरजंग वहां का सूबेदार था। नाज़िरजंग का एक भतीजा मुज़फ़्फ़रजंग अपने चचा को मसनद से उतारकर ख़ुद सूबेदार बनना चाहता था। इसीलिये नाज़िरजंग ने मुज़फ़्फ़रजंग को क़ैद कर रक्खा था। उधर अनवरुद्दीन करनाटक का नवाब था। किन्तु उससे पहले नवाब दोस्तअली ख़ाँ का दामाद चंदासाहब अनवरुद्दीन को गद्दी

से उतार कर खुद करनाटक का नवाब बनना चाहता था। साहूजी तञ्जोर का राजा था, और एक दूसरा हक़दार प्रतापसिंह साहूजी को हटाकर तञ्जोर का राज लेना चाहता था। इनमें करनाटक का नवाब सूबेदार के अधीन था और तञ्जोर का राजा करनाटक के नवाब का बाजगुज़ार था। इन तीनों शाही घरानों की इस आपसी फूट से अंगरेज़, फ्रांसीसी और मराठे तीनों फ़ायदा उठाने की कोशिशें कर रहे थे। दिल्ली के मुग़ल दरबार में इतना बल न रह गया था कि साम्राज्य के एक कोने में इस तरह के झगड़ों को दबाकर सच्चे हक़दारों के हक़ की हिफ़ाज़त कर सके। इस सम्बन्ध में अनेक साज़िशें और लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें अंगरेज़ों ने नाज़िरजंग और अनवरुद्दीन का पक्ष लिया और फ्रांसीसियों ने मुज़फ़्फ़रजंग तथा चंदासाहब का, किन्तु इन झगड़ों का सूत्रपात तञ्जोर से हुआ।

सबसे पहले चंदासाहब ने तञ्जोर के राजा साहूजी को गद्दी से उतार कर उस पर अपना क़ब्ज़ा कर लिया। मराठों ने तञ्जोर पर चढ़ाई करके चंदासाहब को क़ैद कर लिया और प्रतापसिंह को वहाँ की गद्दी पर बैठा दिया। कहते हैं कि तञ्जोर की प्रजा साहूजी की अपेक्षा प्रतापसिंह से खुश थी। अंगरेज़ों ने अब साहूजी का पक्ष लिया और साहूजी को फिर से गद्दी पर बैठाने के बहाने कंपनी की सेना फ़ौरन मौक़े पर पहुंच गई। वहाँ पहुँच कर अंगरेज़ों ने देखा कि प्रतापसिंह का पक्ष अधिक मज़बूत है, इसलिये ऐन मौके पर साहूजी के साथ दग़ा कर वे प्रतापसिंह से मिल

गए। देवीकोट का नगर और क़िला प्रतापसिंह ने इस कृपा के बदले में अंगरेज़ों को दे दिया। साहूजी को सदा के लिये पेन्शन देकर अलग कर दिया गया और प्रतापसिंह तञ्जोर का राजा बना रहा। करनाटक में नवाब अनवरुद्दीन अंगरेज़ों पर मेहरबान था ही, इसीलिये फ्रांसीसी अनवरुद्दीन की जगह चंदासाहब को नवाब बनाना चाहते थे। डूप्ले ने मराठों को नक़द धन देकर चंदासाहब को क़ैद से छुड़वा लिया और फिर उसे करनाटक की गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया। ३ अगस्त सन् १७४९ को आम्बूर की लड़ाई में फ्रांसीसियों की सहायता से अनवरुद्दीन का काम तमाम कर चंदासाहब करनाटक का नवाब बन गया। यहाँ तक डूप्ले को ख़ासी सफलता हुई।

किन्तु तञ्जोर अभी तक प्रतापसिंह के अधिकार में था और प्रतापसिंह अंगरेज़ों के पक्ष में था। डूप्ले ने इसके लिए दक्खिन के सूबेदार ही को बदलना चाहा। उसने नाज़िरजंग के विरुद्ध मुज़फ़्फ़र-जंग के साथ साज़िश की। चचा की क़ैद से भागकर मुज़फ़्फ़रजंग ने फ्रांसीसियों की सहायता से अपने तईं दक्खिन का सूबेदार एलान कर दिया और चंदासाहब के साथ मिलकर सबसे पहले तञ्जोर पर चढ़ाई की। सूबेदार नाज़िरजंग ने तञ्जोर के राजा प्रतापसिंह की सहायता के लिए सेना भेजी। दोनों पक्षों के बीच एक गहरा संग्राम हुआ जिसमें मुज़फ़्फ़रजंग फिर से क़ैद कर लिया गया। चंदा-साहब की जगह अनवरुद्दीन का बेटा मोहम्मद अली करनाटक का नवाब बना दिया गया और नाज़िरजंग सूबेदारी की मसनद पर

क़ायम रहा। डूप्ले की सब कार्रवाई निष्फल गई। इस पर भी उसके प्रयत्न जारी रहे। जब खुले संग्राम में न जीत सका तो उसने अपने गुप्त अनुचरों द्वारा सूबेदार नाज़िरजंग को क़त्ल करवा दिया और एक बार फिर मुज़फ़्फ़रजंग को दक्खिन का सूबेदार और चंदासाहब को करनाटक का नवाब एलान करवा दिया।

किन्तु त्रिचनापल्ली का मजबूत क़िला मोहम्मद अली के हाथों में था। त्रिचनापल्ली पर ही वह ज़बरदस्त और अंतिम संग्राम हुआ जिसमें दक्खिन के इन तीनों राजकुलों और अंगरेज़ों तथा फ़्रांसीसियों—सब की क़िस्मत का फ़ैसला हो गया। त्रिचनापल्ली ही वह चट्टान मानो जाती है जिससे टकराकर इस देश के अन्दर डूप्ले और फ़्रांसीसियों की समस्त आकांक्षाएँ चूर चूर हो गई। चंदासाहब और फ़्रांसीसियों की सेनाएं एक ओर थीं, मोहम्मद-अली और अंगरेज़ों की सेनाएं दूसरी ओर। एक फ़्रांसीसी सेना यूरोप से डूप्ले की सहायता के लिए भेजी गई, किन्तु वह भी अंगरेज़ों के इक़बाल से कहीं मार्ग ही में डूबकर ख़तम होगई। त्रिचनापल्ली के संग्राम में फ़्रांसीसियों के पक्ष की हार रही। मजबूर होकर सन् १७५४ ईसवी में फ़्रांस की सरकार ने डूप्ले को फ़्रांस वापस बुला लिया। फ़्रांस ने इसके बाद भारत के राजनैतिक झगड़ों से तटस्थ रहना ही अपने लिए हितकर समझा। दोनों यूरोपियन कम्पनियों में संधि हो गई कि आइन्दा भारत की "देशी रियासतों के आपसी झगड़ों में दोनों में से कोई कभी दख़ल न दे।" फ़्रांस ने इस शर्त पर अमल किया, किन्तु अंगरेज़ों

ने बारबार उसे उल्लघंन करना ही अपने लिए अधिक लाभदायक पाया। सन् १७६६ ईसवी में फ़ांसीसी कम्पनी तोड़ दी गई। आज भारत में केवल पुद्दुचरी, चंदरनगर और एक दो और छोटे छोटे स्थान फ्रांस के क़ब्ज़े में बाक़ी हैं।

अंगरेज़ी राज की नींव

अब हम १८ वीं सदी के मध्य तक पहुँच चुके। पुर्तगालियों, डच और फ़्रांसीसियों तीनों में से किसी की भी सत्ता भारत में क़ायम न रह सकी। इसके बाद केवल अंगरेज़ों की कहानी बाक़ी रह जाती है। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ सौदागरों के राजनैतिक प्रभुत्व की नींव सन् १७५७ में प्लासी के प्रसिद्ध संग्राम में रक्खो गई, जिसका विस्तृत वृत्तांत अगले अध्याय में दिया जायगा।

दूसरा अध्याय

सिराजुद्दौला

सन् १७०७ ई० में सम्राट औरंगज़ेब की मृत्यु हुई। मुग़ल साम्राज्य का बल और विस्तार उस समय अपनी पराकाष्ठा पर था, किन्तु साम्राज्य के नाश के बीच बोए जा चुके थे। औरंगज़ेब के बाद ही दिल्ली के शाही दरबार का दबदबा घटना शुरू हो गया। चारों ओर छोटी छोटी बादशाहतें साम्राज्य से टूट टूट कर अलग होने लगीं और अलग अलग सूबों के सूबेदार नाम मात्र को साम्राज्य के अधीन रहे, किन्तु वास्तव में अपने अपने विशाल राज्यों के स्वच्छंद शासक बन गए।

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ मुग़ल सम्राट के अधीन बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीन प्रांतों का सूबेदार था। मराठों की शक्ति बढ़ रही थी,

मराठों ने बंगाल पर हमले शुरू किये। इन हमलों से अपनी रक्षा करने के लिये अलीवर्दी ख़ाँ ने दिल्ली से मदद की प्रार्थना की, किन्तु दिल्ली दरबार से उसे किसी तरह की सहायता न मिल सकी। मजबूर होकर नवाब अलीवर्दी ख़ाँ ने दिल्ली को सालाना मालगुज़ारी भेजना बंद कर दिया, किन्तु इस पर भी वह अपने तईं सम्राट का एक सेवक और उसकी प्रजा मानता रहा और सम्राट के अधीन केवल एक सूबेदार की हैसियत से शासन करता रहा।

उस समय का बंगाल

इसमें संदेह नहीं कि बंगाल की तमाम रिआया अलीवर्दी ख़ाँ और उसके पूर्वजों के शासन में अत्यंत सुखी और ख़ुशहाल थी। अंगरेज़ इतिहास लेखक एस० सी० हिल उस समय के किसानों की हालत के विषय में लिखता है :—

"मैं समझता हूँ सामाजिक इतिहास के हर विद्यार्थी को स्वीकार करना होगा कि अठारवीं सदी के मध्य में बंगाल के किसानों की हालत उस समय के फ़्रांस या जर्मनी के किसानों की हालत से बढ़कर थी।"*

यह उस समय के ग्रामों की हालत थी। अब यदि उस समय के शहरों की हालत पर नज़र डाली जाय तो बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद के विषय में स्वयं प्रसिद्ध अंगरेज़ सेनापति क्लाइव लिखता है :—

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लंदन का शहर। अंतर इतना है कि लंदन के धनाढ्य से धनाढ्य

---

* Bengal in 1756-57, by S. C. Hill, vol i p xxiii

मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है उससे बेइंतहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेक के पास है।"*

हिन्दुओं और मुसलमानों के साथ सूबेदार के व्यवहार में किसी तरह का भेदभाव न था। सूबेदार के अधीन तीनों प्रान्तों में अधिकांश रियासतों का शासन हिंदू राजाओं के हाथों में था। मुर्शिदाबाद के दरबार में अनेक उच्च से उच्च पद हिन्दुओं को मिले हुए थे। एस० सी० हिल लिखता है कि "देश का व्यापार और दस्तकारियाँ क़रीब क़रीब सब हिन्दुओं ही के हाथों में थीं।"†

बंगाल को लूटने की योजना

अंगरेज़ जाति के लोग सब से पहिले भारत के पच्छिमी तट पर उतरे, किन्तु उनकी राजनैतिक सत्ता की नींव पहले पहल बंगाल में पड़ी। इसके दो सबब बताए जा सकते हैं। सब से पहला और मुख्य सबब यह था कि जब कि पच्छिमी तट पर मराठों की ज़बरदस्त जल सेना उस समय मौजूद थी, जो अपने समय में संसार की सब से ज़बरदस्त जल सेना मानी जाती थी, मुग़लों के पास कोई जल सेना थी ही नहीं और बंगाल का दरवाज़ा समुद्र से आने वालों के लिए चौपट खुला हुआ था। दूसरा सबब यह था कि पच्छिमी प्रान्तों की निस्बत बंगाल कहीं अधिक उपजाऊ

---

* "The city of Murshidabad is as extensive, populous and rich as the city of London, with this difference that there are individuals in the first possessing infinitely greater property than any of the last city"—*Clive*

† Bengal in 1756-57, *Introduction*

और मालामाल था। सम्भव है, एक तीसरा सबब यह भी रहा हो कि बंगाल के लोग ज़्यादा भोले थे और ज़्यादा आसानी से विदेशियों की चालों में आ सके।

सब से पहले सन् १७४६ ई० में एक अंगरेज़ करनल मिल ने जर्मनी के साथ मिलकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा विजय करने और उन्हें लूटने की एक योजना तैयार करके यूरोप भेजी, जिसमें उसने लिखा :—

"मुग़ल साम्राज्य सोने और चाँदी से लबालब भरा हुआ है। यह साम्राज्य सदा से निर्बल और अरक्षित रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है कि आज तक यूरोप के किसी बादशाह ने, जिसके पास जल सेना हो, बंगाल फ़तह करने की कोशिश नहीं की। एक ही हमले में अनन्त धन प्राप्त किया जा सकता है जितना कि ब्रेज़ील और पेरू (दक्खिन अमरीका) की सोने की खानों से भी न मिल सके।

"मुग़लों को राजनीति नहीं आती। उनकी सेना और अधिक ख़राब है। जल सेना उनके पास है ही नहीं। साम्राज्य के अंदर लगातार विद्रोह होते रहते हैं। यहाँ की नदियाँ और यहाँ के बंदरगाह दोनों विदेशियों के लिए खुले हुए हैं। यह देश इतनी आसानी से फ़तह किया जा सकता है, या बाजगुज़ार बनाया जा सकता है, जितनी आसानी से कि स्पेन वालों ने अमरीका के नंगे बाशिंदों को अपने अधीन कर लिया।

"× × × अलीवर्दी ख़ाँ के पास तीन करोड़ पाउण्ड (क़रीब ३० करोड़ रुपये) का ख़ज़ाना मौजूद है। उसकी सालाना आमदनी कम से कम बीस लाख पाउण्ड होगी। उसके प्रांत समुद्र की ओर से खुले हैं। तीन

जहाज़ों में डेढ़ हज़ार या दो हज़ार सैनिक इस काम के लिये काफ़ी होंगे × × ×।"*

करनल मिल इस सारे कुचक्र को ईस्ट इंडिया कम्पनी से छिपाकर पूरा करना चाहता था। क्योंकि उसके अनुसार "कोई कम्पनी बात को गुप्त नहीं रख सकती।"

ईस्ट इंडिया कम्पनी की ग़द्दारी

मिल जिस ढंग से चाहता था, उस ढंग से बंगाल विजय नहीं किया गया और शायद हो भी न सकता था, किन्तु लक्ष्य अंगरेज़ कम्पनी का भी यही था। कम्पनी के अंगरेज़ों ने अपनी कोशिशें बराबर जारी रक्खीं। तिजारत के काम में इन लोगों का हिन्दुओं से अधिक वास्ता पड़ता था। दोनों बनिये थे। इसलिए अठारवीं

* The Mogul Empire is overflowing with gold and silver She has always been feeble and defenceless It is a miracle that no European prince with a maritime power has ever attempted the conquest of Bengal By a single stroke infinite wealth might be acquired, which would counterbalance the mines of Brazil and Peru

"The policy of the Moguls is bad, their army is worse, they are without a navy The Empire is exposed to perpetual revolts Their ports and rivers are open to foreigners The country might be conquered, or laid under contribution as easily as the Spaniards overwhelmed the naked Indians of America

" Ali Verdi Khan his treasure to the value of thirty millions sterling His yearly revenue must be at least two millions The provinces are open to the sea Three ships with fifteen hundred or two thousand regulars would suffice for the undertaking The East India Company should be left alone No Company can keep a secret "

Colonel Mill's letter to Francis of Lorraine in 1746 Quoted from Bolt's *Considerations of the Affairs of Bengal,* Appendix

सदी के मध्य में बंगाल के अन्दर हमें यह लज्जाजनक दृश्य देखने को मिलता है कि उस समय के विदेशी ईसाई कुछ हिन्दुओं के साथ मिलकर देश के मुसलमान राज के ख़िलाफ़ ग़दर करने और उस राज को नष्ट करने के षड्यंत्र रच रहे थे। अंगरेज़ कंपनी के गुप्त मददगारों में मुख्य कलकत्ते का एक मालदार पंजाबी व्यापारी अमींचंद था। उसे इस बात का लालच दिया गया कि नवाब को ख़तम कर मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने का एक बड़ा हिस्सा इन सेवाओं के बदले में तुम्हें दे दिया जायगा और "इंगलिस्तान में तुम्हारा नाम इतना अधिक होगा जितना भारत में कभी न हुआ था।" कम्पनी के मुलाज़िमों को आदेश था कि "अमींचंद की ख़ूब ख़ुशामद करते रहो।"*

अंगरेज़ षड्यंत्रकारियों में एक ख़ास नाम इस समय करनल स्कॉट का मिलता है। करनल स्कॉट ने बहुत दिनों बंगाल में रह कर खूब मेल जोल बढ़ाया और अमींचंद की मदद से चुपके चुपके कई बड़े बड़े हिन्दू राजाओं और रईसों को अपनी ओर मिला लिया। अमींचंद के धन और अंगरेज़ कंपनी के झूठे सच्चे वादों ने मिलकर नवाब के अनेक दरबारियों और सम्बंधियों की नियत को डाँवा डोल कर दिया।

उधर कलकत्ते में अंगरेज़ों और चंदरनगर में फ्रांसीसियों की क़िलेबंदियाँ बराबर जारी थीं।

नवाब अलीवर्दी ख़ाँ को इन सब बातों का थोड़ा बहुत पता चल गया। उसे इस बात का भी पता चल गया कि दक्खिन में

---

* Clive's letter to Watts

श्रौर करमंडल तट पर किस तरह के कुचक्रों द्वारा ठीक उसी समय अंगरेज़ और फ्रांसीसी दोनों अपने पैर फैलाते जा रहे थे। नवाब ने अपना सन्देह दूर करने के लिए करनल स्कॉट को अपने दरबार में बुलाया। करनल स्कॉट ने आने का वादा किया और फिर टालकर मद्रास की ओर चला गया। नवाब ने अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों दोनों को हुकुम दिया कि आप लोग फ़ौरन क़िलेबंदियाँ करना बंद कर दें। उसने अंगरेज़ और फ्रांसीसी कम्पनियों के वकीलों को दरबार में बुलाकर उनसे कहा :—

"तुम लोग सौदागर हो, तुम्हें क़िलों की क्या ज़रूरत? जब तुम मेरी हिफ़ाज़त में हो तो तुम्हें किसी दुश्मन का डर नहीं हो सकता।"

सिराजुद्दौला को अलीवर्दी ख़ाँ की आख़री नसीहत

बहुत सम्भव है, अलीवर्दी ख़ाँ इस विषय में अपनी इच्छा पूरी कर पाता, किन्तु वह इस समय बूढ़ा था। उसकी उम्र ने अधिक वफ़ा न की। अंत समय निकट आने पर एक दूरदर्शी नीतिज्ञ के समान उसने अपने नवासे और उत्तराधिकारी सिराजुद्दौला को पास बुलाकर इस प्रकार नसीहत की—

"मुल्क के अंदर यूरोपियन क़ौमों की ताक़त पर नज़र रखना। यदि ख़ुदा मेरी उम्र बढ़ा देता तो मैं तुम्हें इस डर से भी आज़ाद कर देता—अब मेरे बेटा, यह काम तुम्हें करना होगा। तैलंग देश में उनकी लड़ाइयों और उनकी कूटनीति की ओर से तुम्हें होशियार रहना चाहिये। अपने अपने बादशाहों के बीच के घरेलू झगड़ों के बहाने इन लोगों ने शहनशाह (मुग़ल सम्राट) का मुल्क और शहनशाह की रिआया का धन माल छीन कर आपस

में बाँट लिया है। इन तीनों यूरोपियन क़ौमों को एक साथ निर्बल करने का ख़याल न करना। अंगरेज़ों की ताक़त बढ़ गई है × × × पहले उन्हें ज़ेर करना। जब तुम अंगरेज़ों को ज़ेर कर लोगे तो बाक़ी दोनों क़ौमें तुम्हें अधिक कष्ट न देंगी। मेरे बेटा, उन्हें क़िले बनाने या फ़ौजें रखने की इजाज़त न देना। यदि तुमने यह ग़लती की तो मुल्क तुम्हारे हाथ से निकल जायगा।"*

१० अप्रैल सन् १७५६ ई० को नवाब अलीवर्दी ख़ाँ की मृत्यु हुई और सिराजुद्दौला अपने नाना की मसनद पर बैठा।

सिराजुद्दौला और बंगाल की मसनद

सिराजुद्दौला की आयु इस समय २४ साल से ऊपर न थी। मुग़ल साम्राज्य की जड़ें काफ़ी खोखली हो चुकी थीं। ईस्ट इंडिया कम्पनी की साज़िशें भीतर ही भीतर काफ़ी फैल चुकी थीं और अंगरेज़ों के हौसले बढ़े हुए थे। हिन्दोस्तान में अंगरेज़ी सत्ता का क़ायम होना और सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों की साज़िशें इन दोनों में अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। एक दिन भी बंगाल की मसनद अभागे सिराजुद्दौला के लिए फूलों की सेज साबित न हुई। इंगलिस्तान के व्यापारी आरम्भ से ही उसके पहलू में काँटे की तरह चुभते रहे।

उन अंगरेज़ व्यापारियों ने, जो इससे पहले अपने तई प्रत्येक भारतीय नरेश की "विनीत और आज्ञाकारी प्रजा" कहा करते थे और एक एक रिआयत के लिये "अर्ज़ियाँ" दिया करते थे, अब अपने गुप्त प्रयत्नों के बल जान बूझ कर नवाब सिराजुद्दौला का

* Bengal in 1756-1757, vol ii p 16

अलीवर्दी ख़ाँ

[द० ब० पारसनीस कृत "इतिहास संग्रह" से]

तरह तरह से अपमान करना शुरू कर दिया। निस्सन्देह वे अब छेड़ छाड़ का बहाना ढूंढ़ रहे थे।

सिराजुद्दौला के साथ अंगरेज़ों का व्यवहार

सब से पहला अपमान जो इन लोगों ने सिराजुद्दौला का किया वह यह था। प्राचीन प्रथा के अनुसार हर नए सूबेदार के मसनद पर बैठने के समय तमाम मातहत राजाओं, अमीरों और विदेशी क़ौमों के वकीलों का दरबार में हाज़िर होकर नज़रें पेश करना ज़रूरी था। इसका एक मात्र अर्थ यह होता था कि वे नए नवाब को नवाब स्वीकार करते हैं। सिराजुद्दौला के मसनद पर बैठने के समय अंगरेज़ कम्पनी की ओर से कोई नज़र पेश नहीं की गई। इसके बाद जब कभी अंगरेज़ों को मुर्शिदाबाद के दरबार से कोई काम पड़ता था, तो वे कभी सिराजुद्दौला से बात न करते थे, बल्कि ऊपर ही ऊपर ले देकर दरबारियों से अपना काम चला लेते थे। वे सिराजुद्दौला के साथ पत्र व्यवहार करने से भी बचते थे। उन्होंने एक बार अपनी क़ासिमबाज़ार की कोठी में सिराजुद्दौला को आने तक से रोक दिया। निस्संदेह कोई शासक या नरेश इस तरह के अपमान को गवारा न कर सकता था। किन्तु इस व्यक्तिगत अपमान के अलावा और भी कई ज़बरदस्त सबब थे, जिन्होंने अंत में सिराजुद्दौला को अंगरेज़ कम्पनी की बढ़ती हुई ताक़त को रोकने के लिए मजबूर कर दिया। इनमें तीन मुख्य सबब ये थे :—

(१) साम्राज्य के क़ानून और नवाब की आज्ञाओं, दोनों के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों ने उस सूबे के अन्दर कलकत्ते में और दूसरी जगह

भी क़िलेबंदी कर ली और कलकत्ते के क़िले के चारों तरफ़ एक बड़ी ख़ंदक़ खोद डाली।

(२) दिल्ली के सम्राट ने इन परदेसियों पर दया करके बंगाल के अंदर उनके माल पर हर तरह की चुंगी माफ़ कर दी थी। कम्पनी के दस्तख़ती पास से जिसे 'दस्तक' कहते थे, कम्पनी का माल प्रान्त में जहाँ चाहे बिना महसूल आ जा सकता था। अब इन लोगों ने इस अधिकार का दुरुपयोग शुरू किया और अनेक हिन्दोस्तानी व्यापारियों से रुपए लेकर उनके हाथ अपने दस्तक बेचने शुरू कर दिए, जिससे राज की आमदनी को ज़बरदस्त धक्का पहुंचा। इसके अलावा जिस सम्राट ने इन विदेशियों के माल पर महसूल माफ़ कर दिया था, उसी की देशी प्रजा का माल जब इन विदेशियों की कोठियों में या उनकी बस्तियों में जाता था, तो कम्पनी ने उस पर ज़बरदस्त चुंगी वसूल करना शुरू कर दिया जिसका क़ानूनन् उन्हें कोई अधिकार न था।

(३) नवाब के जो मुलाज़िम या दरबारी किसी तरह का जुर्म करते थे, या नवाब के ख़िलाफ़ बग़ावत करते थे, उन्हें अंगरेज़ कलकत्ते में बुलाकर अपनी कोठी में आश्रय देने लगे।

इन सब बातों की शिकायतें सिराजुद्दौला के कानों तक लगातार और बाज़ाब्ता पहुँचती रहीं, फिर भी वह बरदाश्त करता रहा।

इतने में सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि अंगरेज़ पूर्निया के नवाब शौकतजंग को सिराजुद्दौला से लड़ाकर उसे मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाने की तजवीज़ें कर रहे हैं। शौकतजंग सिराजुद्दौला

का एक रिश्तेदार और मुर्शिदाबाद के सूबेदार के अधीन उसका एक सामंत था। सिराजुद्दौला सेना लेकर पूर्निया की ओर रवाना हुआ। ख़बर सुनते ही शौकतजंग नज़राने लेकर स्वागत के लिये आगे बढ़ा। शौकतजंग ने अपने तईं बेक़सूर बतलाया और अंगरेज़ों के वे सब पत्र सिराजुद्दौला के सामने रख दिए, जिनमें अंगरेज़ों ने शौकतजंग को सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ भड़काया था।*

सिराजुद्दौला के मातहतों को फोड़ना

किन्तु सिराजुद्दौला की उदारता असीम थी, उसने शौकतजंग को बहाल रक्खा और अंगरेज़ों के साथ भी दया और क्षमा का बर्ताव जारी रक्खा। अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों दोनों के नाम उसने केवल यह आज्ञा जारी कर दी कि आप लोग आइंदा न कोई नया क़िला बनाएँ और न किसी पुराने क़िले की मरम्मत करें। फ्रांसीसियों ने नवाब की आज्ञा मान ली, किन्तु अंगरेज़ों ने इस आज्ञा का और आज्ञापत्र कलकत्ते ले जाने वाले हरकारों का दोनों का खुले अपमान किया।

नवाब मुर्शिदाबाद का एक दीवान उन दिनों ढाका में रहा करता था। उस समय के दीवान राजा राजवल्लभ को अंगरेज़ों ने अपनी ओर मिला लिया। सिराजुद्दौला राजवल्लभ से नाराज़ हुआ। अंगरेज़ों ने राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास को कलकत्ते बुलाकर अमींचंद के मकान के अन्दर आश्रय दिया। राजवल्लभ की तमाम धन सम्पति भी किशनदास के साथ कलकत्ते आ गई। सिराजुद्दौला

* Bengal in 1756-1757, vol iii, p 164

ने अंगरेज़ों को आज्ञा दी कि किशनदास को वापस भेज दो, किन्तु अंगरेज़ों ने साफ़ इन्कार कर दिया।

इतने पर भी सिराजुद्दौला ने शांति से ही सब मामले का निबटारा करना चाहा और क़ासिमबाज़ार की अंगरेज़ी कोठी के मुखिया वाट्स को बुला कर समझाया कि "यदि अंगरेज़ शान्त व्यापारियों की तरह देश में रहना चाहते हैं तो अब भी बड़ी ख़ुशी के साथ रहें, किन्तु सूबे के शासक की हैसियत से मेरा यह हुकुम है कि वे फ़ौरन उन सब क़िलों को ज़मीन के बराबर कर दें, जो उन्होंने हाल में बिना मेरी इजाज़त बना डाले हैं।" *

किन्तु अंगरेज़ व्यापारियों ने जिनकी आकांक्षाएं बहुत बढ़ी हुई थीं और जिनके षड्यंत्र इस समय दूर दूर तक पहुँच चुके थे, ज़रा भी परवाह न की। उनकी क़िलेबंदियाँ और अधिक ज़ोरों के साथ चलती रहीं। सिराजुद्दौला के पास अब सिवाय उन्हें दंड देने और रोकने के और कोई चारा न था।

सिराजुद्दौला की अंगरेज़ों पर चढ़ाई

लाचार होकर सिराजुद्दौला ने २४ मई सन् १७५६ ई० को अंगरेज़ी कोठी को घेर लेने के लिए कुछ सेना क़ासिमबाज़ार भेजी। बावजूद क़िलेबंदियों और तोपों के क़ासिमबाज़ार की कोठी सिराजुद्दौला की सेना के सामने अधिक देर तक न ठहर सकी। अंगरेज़ मुखिया वाट्स ने हार मान ली और कोठी सिराजुद्दौला के सुपुर्द कर दी। वाट्स और कोठी के दूसरे अंगरेज़

* Hastings' MSS in the British Museum, vol 29, p 209

विद्रोही इस समय सिराजुद्दौला के हाथों में थे। वह चाहता तो वहीं उनका काम तमाम कर सकता था। किन्तु उसने उनकी जानें बख़्श दीं और उन्हें अपने साथ ले लिया। क़ासिमबाज़ार की कोठी के तिजारती माल को भी उसने बिलकुल हाथ न लगाया। केवल वहाँ के हथियारों और गोला बारूद को वहाँ से हटा लिया।

वाट्स और दूसरे अंगरेज़ों को साथ लेकर ५ जून १७५६ को सिराजुद्दौला कलकत्ते की ओर बढ़ा। उन दिनों की सैन्ययात्रा निस्संदेह कुछ और ही थी। रेलों का उस समय संसार में कहीं निशान न था, सड़कें भी हर जगह मौजूद न थीं। बंगाल की सख़्त से सख़्त धूप और गरमी का महीना, उस पर रमज़ान के दिन, जब कि सेना के अधिकांश मुसलमान अफ़सर और सिपाही दिन दिन भर रोज़ा रखते थे। भारी भारी तोपें और अन्य सब सामान जिसके बिना उन दिनों यात्रा असम्भव थी और जिसे हाथियों और बैलों से खिंचवाकर ले जाना होता था। इन सब हालतों में सिराजुद्दौला की सेना ने ११ दिन के अन्दर १६० मील का सफ़र तय किया।

तान्नाह में अंगरेज़ों की हार

अंगरेज़ों के काफ़ी युद्ध के जहाज़ कलकत्ते पहुँच चुके थे और इन लोगों ने अपनी ओर से सिराजुद्दौला के विरुद्ध खुली बग़ावत शुरू कर दी थी। इस बीच १३ जून को अंगरेज़ी सेना ने कलकत्ते से पाँच मील नीचे हुगली के इस पार तान्नाह का क़िला वहाँ के मुट्ठी भर भारतीय संरक्षकों के हाथों से छीन लिया। सिराजुद्दौला ने

कलकत्ते जाने से पहले इस क़िले को फिर से विजय किया। इस छोटे से संग्राम में नदी के ऊपर अंगरेज़ों की जहाज़ी तोपें और किनारे पर से सिराजुद्दौला की तोपें दोनों में कुछ देर तक ख़ासा मुक़ाबला रहा। किन्तु आख़िरकार अंगरेज़ी सेना को हारकर अपने जहाज़ों सहित पीछे हट जाना पड़ा।

सिराजुद्दौला की शान्ति प्रियता

सिराजुद्दौला उस समय भी वृथा रक्त बहाने के विरुद्ध था। अब भी वह इन अंगरेज़ व्यापारियों के साथ अमन से रहने के लिए तैयार था। इस यात्रा में उसके एक दीवान ने कई बार वाट्स को अपने पास बुलाकर समझाया कि यदि अंगरेज़ अपने इस समय तक के अपराधों के बदले में बतौर जुरमाने या हरजाने के थोड़ा बहुत भी धन पेश करने को तैयार हों और आइन्दा अमन से रहने का वादा करें, तो सुलह की जा सकती है और व्यापार सम्बन्धी समस्त अधिकार उन्हें फिर से मिल सकते हैं। कलकत्ते के अंगरेज़ अफ़सरों को भी इसकी सूचना दे दी गई। यदि वे चाहते तो उस समय भी सिराजुद्दौला के साथ सुलह कर सकते थे। किन्तु ये लोग अपने षडयन्त्रों के बल सिराजुद्दौला का नाश करने की आशा में थे।

अंगरेज़ों की रिशवतें और भेद नीति

ईमानदारी की लड़ाई में वे सिराजुद्दौला का किसी तरह मुक़ाबला न कर सकते थे। फ़ौज और सामान दोनों की उनके पास बेहद कमी थी। उनका सबसे बड़ा हथियार था—रिशवतें देकर, लालच देकर और झूठे वादे करके सिराजुद्दौला के आदमियों और सैनिकों को

अपनी ओर फोड़ लेना। वही वाट्स और उसके अंगरेज़ साथी, जिनकी सिराजुद्दौला ने जानें बख़्शी थीं, इस समय सिराजुद्दौला की सेना के अन्दर इस प्रकार की साज़िशों के जाल पूर रहे थे।

ईसाई पादरियों के फ़तवे

सिराजुद्दौला की सेना में और ख़ासकर उसके तोपख़ाने में अनेक यूरोपियन और अन्य ईसाई नौकर थे। ईसाई पादरियों के दस्तख़तों से एक दूसरे के बाद तीन व्यवस्थापत्र यानी फ़तवे निकाले गए, जिनमें लिखा था कि किसी भी ईसाई धर्मावलम्बी के लिए मुसलमानों का पक्ष लेकर अपने सहधर्मियों के ख़िलाफ़ लड़ना ईसाई धर्म के विरुद्ध और महापाप है। ये फ़तवे गुप्त ढंग से सिराजुद्दौला के ईसाई मुलाज़िमों में बाँटे गये। इन्हीं फ़तवों में सिराजुद्दौला के मुलाज़िमों को यह भी लालच दिया गया कि यदि तुम नवाब की सेना से भाग कर अंगरेज़ों की ओर चले आओगे, तो तुम्हें फ़ौरन अंगरेज़ी सेना में नौकर रख लिया जायगा। इस तरह की चालों द्वारा काफ़ी नमकहराम सिराजुद्दौला की सेना में पैदा कर दिए गए।

अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ व्यवहार

कलकत्ते के अंगरेज़ों का व्यवहार इस अवसर पर अपने हिंदोस्तानी मददगारों के साथ अत्यन्त ख़राब था। सिराजुद्दौला के आने की ख़बर पाते ही इन लोगों ने कलकत्ते के तमाम हिन्दू और मुसलमानों को, जिनमें अधिकतर कम्पनी के मुलाज़िम, गुमाश्ते, व्यापारी और मज़दूर थे अरक्षित छोड़ दिया और उनसे कह दिया कि अंगरेज़ तुम्हारी रक्षा न करेंगे। किन्तु यूरोपियनों, हिन्दोस्तानी

ईसाइयों, मर्द, औरत और बच्चों, यहाँ तक कि उनके ईसाई गुलामों तक को उन्होंने अपनी कोठी के आस पास मकानों में जमा कर लिया और बाहर चारों ओर के हिन्दोस्तानी मकानों को आग लगा दी, ताकि सिराजुद्दौला से लड़ने के लिए मैदान साफ़ हो जाय।

इतना ही नहीं, मालूम होता है कि ये लोग उस समय किसी भी हिन्दोस्तानी पर विश्वास न कर सकते थे। सुप्रसिद्ध अमीचंद, उसके साले हज़ारीमल और दीवान राजवल्लभ के बेटे राजा किशनदास, इन तीनों को अंगरेज़ों ने क़ैद करके रखना आवश्यक समझा। यह वही अमीचंद था जिसकी सहायता के बिना अंगरेज़ी व्यापार या अगरेज़ी सत्ता दोनों में से किसी के भी पैर बंगाल के अन्दर हरगिज़ न जम सकते थे और राजा किशनदास अंगरेज़ कम्पनी का वह शरणागत था, जिसे उन्होंने सिराजुद्दौला के हवाले करने तक से इनकार कर दिया था।

ज़नानख़ाने पर हमला

जिस समय अंगरेज़ सिपाही अमीचंद को पकड़ने के लिए उसके मकान पर पहुँचे, अमीचंद ने फ़ौरन अपने को उनके हवाले कर दिया। किन्तु हज़ारीमल और राजा किशनदास से यह अपमान न सहा गया। उन दोनों ने अपने आदमियों को अंगरेज़ सिपाहियों पर गोली चलाने का हुकुम दिया। लड़ाई में हज़ारीमल वीरता के साथ लड़ा। उसका बायाँ हाथ उड़ गया और अंत में तीनों गिरफ़्तार कर लिए गए। इसके बाद जब अंगरेज़ अफ़सरों ने अपने उन्मत्त गोरे सैनिकों को अमीचंद के ज़नानख़ाने की ओर बढ़ने का

हुकुम दिया, तो अमीचंद के वफ़ादार हिन्दोस्तानी जमादार का रक्त खौलने लगा। गोरे सिपाहियों की नियत ज़ाहिर थी। ओर्म नामक यूरोपियन इतिहास लेखक इस घटना के विषय में लिखता है :—

"अमीचंद के जमादार ने जो एक ऊँची ज़ात का हिन्दोस्तानी था, मकान को आग लगा दी और फिर कहा जाता है इसलिए ताकि विदेशी लोग घर की स्त्रियों की बेइज़्ज़ती न कर सकें, उसने ज़नानख़ाने में घुसकर अपने हाथ से तेरह स्त्रियों का काम तमाम किया और फिर अंत में अपने भी ख़ञ्जर घोंप लिया। किन्तु उसका अपना ज़ख़्म कारगर न हो सका।"*

अनेक अंगरेज़ इतिहास लेखक शिकायत करते हैं कि बहुत से भारतीय कुलियों, मल्लाहों और नौकरों ने उस समय अंगरेज़ व्यापारियों का साथ छोड़ दिया। यदि यह बात सच है तो ऊपर के अत्याचारों में इसके लिए काफ़ी वजह मौजूद थी।

विजयी सिराजुद्दौला का कलकत्ता प्रवेश

१६ जून को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुंचा। १६ और १७ को कई छोटी मोटी लड़ाइयाँ हुईं। १८ को शुक्रवार के दिन कम्पनी की ओर से साफ़ आज्ञा निकली कि यदि शत्रु का कोई आदमी ज़ख़्मी होकर या किसी और वजह से पनाह की प्रार्थना करे तो उस पर कोई किसी तरह की दया न दिखावे। उसी दिन सिराजुद्दौला की सेना ने कम्पनी की सेना पर बाज़ाब्ता चढ़ाई की और बावजूद सिराजुद्दौला के अनेक ईसाई नौकरों की नमकहरामी के कम्पनी की

* Orme, vol ii, p 60

सेना देर तक सिराजुद्दौला के गोलों का सामना न कर सकी। अंत में अंगरेज़ों को हार स्वीकार करनी पड़ी।

रविवार २० जून सन् १७५६ को सिराजुद्दौला की विजयी सेना ने कलकत्ते की अंगरेज़ी कोठी में प्रवेश किया। कोठी के तमाम अंगरेज़ क़ैद कर लिए गए। सिराजुद्दौला के लिए इस समय कलकत्ते के इन बाग़ी विदेशी व्यापारियों का वहीं एक एक कर काम तमाम कर देना और उनकी कोठी को नेस्त नाबूद कर देना एक बहुत आसान काम था, किन्तु उदार सिराजुद्दौला इन लोगों के छलों से अभी तक पूरी तरह परिचित न हुआ था।

सिराजुद्दौला की उदारता

सिराजुद्दौला के हुकुम से क़िले के अन्दर एक दरबार लगा, जिसमें तमाम यूरोपियन क़ैदी नवाब के सामने पेश किए गए। क़ैदियों ने नवाब से क्षमा की प्रार्थना की। उदार भारतीय नवाब ने उन सब की जानें बख़्श दीं।* अंगरेज़ इतिहास लेखक जेम्स मिल लिखता है :—

"जब मिस्टर हॉलवेल (कलकत्ते की कोठी का मुखिया) हथकड़ी पहने हुए नवाब के सामने पेश किया गया, तो नवाब ने फ़ौरन हुकुम दिया कि हथकड़ी खोल दी जाय और स्वयं अपनी सिपहगरी की शपथ खाकर हॉलवेल को विश्वास दिलाया कि 'तुम्हारे या तुम्हारे किसी साथी के सर का एक बाल भी किसी को छूने न दिया जायगा।'"†

यही इतिहास लेखक स्वीकार करता है कि विजयी हिन्दोस्तानी

---

* Talboys Wheeler's *Early Records of British India*, vol i p 160

† *History of India*, by James Mill, vol, iii p 1179

सिराजुद्दौला

['बँगलार इतिहास,' नामक बँगला ग्रन्थ से]

सैनिकों ने "पराजित अंगरेज़ों के साथ कोई बुरा बर्ताव नहीं किया।" और उनके साथ के "मुसलमान मुल्ला ख़ुदा की बंदगी में लगे रहे।" क़िले और कोठी के अंदर का गोला बारूद सब नवाब ने हटवा लिया, किन्तु जितना तिजारती माल कोठी के अंदर भरा हुआ था उसे सिराजुद्दौला या उसके सैनिकों ने हाथ तक नहीं लगाया, सिराजुद्दौला की आज्ञा से उसे हिफ़ाज़त के साथ ज्यों का त्यों रहने दिया गया। यही व्यवहार सिराजुद्दौला ने अंगरेज़ों की दूसरी कोठियों में किया।

कलकत्ते के बहुत से अंगरेज़ सिराजुद्दौला की सेना के क़िले में दाखिल होने से पहले ही पीछे की ओर से अपने जहाज़ों में बैठकर भाग गए थे। जो रह गए थे उन्होंने अब सिराजुद्दौला से प्रार्थना की कि हमारी जान बख़्शी जाय और हमें बंगाल छोड़ कर अपने साथियों के पास मद्रास चले जाने की इजाज़त दी जाय। सिराजुद्दौला ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। अनेक यूरोपियन इतिहास लेखक इस बात की शहादत देते हैं कि इस अवसर पर सिराजुद्दौला की शक्ति को देख कर अधिकांश यूरोपियन चकित और भयभीत हो गए।

जॉन कुक लिखता है कि सिराजुद्दौला की मुसलमान सेना का नियम था कि वे रात को कभी न लड़ते थे और शाम होते ही गोलाबारी बंद कर देते थे। कुक यह भी लिखता है कि यदि ऐसा न होता तो २० तारीख़ से पहले ही अंगरेज़ों की बुरी हालत हो गई होती।

इस प्रकार कम्पनी के अंगरेज़ व्यापारी सन् १७५६ में भारत के सब से अधिक उपजाऊ और समृद्ध प्रान्त बंगाल से निकाल बाहर किए गए। हॉलवेल ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम अपनी ३० नवम्बर १७५६ की चिट्ठी में लिखा :—

अंगरेज़ों का बंगाल से निकाला जाना

"इतनी घातक और शोकजनक आपत्ति बाबा आदम के समय से लेकर आज तक किसी भी क़ौम या उसके उपनिवेश के इतिहास में न आई होगी।"

सिराजुद्दौला ने 'कलकत्ते' का नाम बदलकर 'अलीनगर' रक्खा और अपने एक दीवान राजा मानिकचंद को अलीनगर और उसके आसपास के इलाक़े का हाकिम नियुक्त किया।

प्रायः समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखक अपनी क़ौम की इस हार के साथ एक भयंकर हत्याकाण्ड का ज़िक्र करते हैं, जिसे "ब्लैक होल" हत्याकाण्ड, या बंगाल में "अंधकूप हत्या", कहा जाता है। ब्लैक होल कलकत्ते की अंगरेज़ी कोठी के अंदर एक अँधेरी कोठरी या काल-कोठरी थी, जो अंगरेज़ व्यापारियों ही की बनाई हुई थी और जिसमें कम्पनी के अफ़सर अपने हिन्दोस्तानी अपराधियों या क़र्ज़दारों को बंद कर दिया करते थे। इन अंगरेज़ लेखकों का बयान है कि २० जून की रात को इस १८ फ़ुट लम्बी और कुछ कम चौड़ी कोठरी में सिराजुद्दौला के हुकुम से १४६ यूरोपियन क़ैदी बंद कर दिए गए। जून का महीना, जगह की तंगी और ताज़ी हवा न मिल सकने के कारण अनेक तीव्र यातनाओं के बाद सुबह तक इन १४६

"ब्लैक होल" का क़िस्सा

में से केवल २३ ज़िन्दा बचे, और वह भी भयंकर अधमरी हालत में।

किन्तु उस समय के इतिहास की खोज करने वालों पर अब यह बात अच्छी तरह प्रकट हो चुकी है कि ब्लैक होल का यह सारा क़िस्सा बिलकुल झूठा है और केवल सिराजुद्दौला के चरित्र को कलंकित करने और अंगरेज़ों के बाद के कुचक्रों को जायज़ क़रार देने के लिए गढ़ा गया था।

विद्वान इतिहासलेखक अक्षयकुमार मैत्र ने अपने बंगला ग्रंथ "सिराजुद्दौला" में इस क़िस्से के विरुद्ध अनेक अकाट्य युक्तियाँ संग्रह की हैं। अव्वल तो इतनी छोटी (२६७ वर्ग फ़ुट) जगह में १४६ मनुष्य चावलों के बोरों की तरह भी नहीं भरे जा सकते। इसके अलावा सैयद गुलाम हुसेन की "सियरउल-मुताख़रीन" में या उस समय के किसी भी प्रामाणिक इतिहास में, या कम्पनी के रोज़नामचों, "काररवाई के रजिस्टरों" या मद्रास कौन्सिल की बहसों में इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता। क्लाइव और वाट्सन ने कुछ समय बाद नवाब की ज़्यादतियों और कम्पनी की हानियों को दर्शाते हुए नवाब के नाम जो पत्र लिखे, उनमें इस घटना का कहीं ज़िक्र नहीं आता, न अलीनगर के संधिपत्र में उसका कहीं नाम है। बहुत समय बाद क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें उसने सिराजुद्दौला के साथ कम्पनी के क्रूर व्यवहार के अनेक सबब गिनवाए हैं। उनमें इस घटना का कहीं इशारा भी नहीं मिलता। अंगरेज़ों ने अंत में मीर

जाफ़र के साथ जो संधि की, उसमें कम्पनी के हर तरह के हरजाने का हिसाब लगाया गया है, किन्तु इन १२३ मनुष्यों के कुटुम्बियों को मुआवज़ा दिलवाने का कहीं ज़िक्र नहीं। जो विदेशी लोग जहाज़ों में बैठकर भाग निकले थे, उनके बाद १२३ शायद क़िले के अन्दर बचे भी न थे। कुछ लोगों ने बाद में कुल ऐसे यूरोपनिवासियों की सूची तैयार करने की कोशिश की, जो उस समय कलकत्ते के क़िले के अन्दर मरे और उसे १२३ तक लाने का प्रयत्न भी किया, फिर भी यह सूची ५६ से ऊपर न पहुंच सकी और ये ५६ भी किसी कोठरी में दम घुटकर नहीं मरे, बल्कि लड़ाई के ज़ख़्मों और मामूली रोगों के शिकार हुए। फिर बाक़ी ६७ कौन थे ? इत्यादि।

वास्तव में इस झूठे क़िस्से को फ़रवरी सन् १७५७ ई० में कलकत्ते के अंगरेज़ मुखिया हॉलवेल ने भारत से विलायत जाते समय जहाज़ के ऊपर बैठकर गढ़ा था। यह वही हॉलवेल है जिसकी सिराजुद्दौला ने हथकड़ी खुलवा दी थी। अपने झूठों और जाल-साज़ियों के लिए यह अंगरेज़ काफ़ी मशहूर था।

मिसाल के तौर पर हॉलवेल के अन्य कारनामों में से केवल एक को यहाँ बयान कर देना काफ़ी होगा। यह घटना कुछ दिनों बाद की है, किन्तु इस स्थान पर बेमौक़े न होगी। सिराजुद्दौला के बाद मीर जाफ़र को मसनद पर बैठाने के लिए उसने मीर जाफ़र से एक लाख रुपए रिशवत के ले लिए और मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ की। बाद में जब मीर क़ासिम को मसनद पर बैठाने की ज़रूरत हुई तो उसने तीन लाख रुपए मीर क़ासिम से लेकर

चट कर लिए। अब मीर जाफ़र को बदनाम करना उसके लिए ज़रूरी हो गया। इसलिए कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम उसने एक लम्बा पत्र लिखा, जिसमें मीर जाफ़र को उसने घोर अन्यायी और हत्यारा बयान किया और अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की एक सूची साथ में दी, जिन्हें वह लिखता है कि मीर जाफ़र ने बेक़सूर मार डाला। प्रत्येक पुरुष के पिता का नाम और प्रत्येक स्त्री के पति का नाम सूची में दिया गया। छोटी से छोटी तफ़सील तक इन हत्याओं की हॉलवेल के पत्र में मौजूद है। इसके कई साल बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों को एक और पत्र भेजा जिसमें उन्होंने बताया कि मीर जाफ़र पर जितने इलज़ाम हॉलवेल ने लगाए हैं वे सब सर से पाँव तक झूठे हैं और जिन पुरुष स्त्रियों की सूची हॉलवेल ने अपने पत्र में दी है यह कह कर कि मीर जाफ़र ने इन लोगों को बेक़सूर मारडाला उनमें से दो को छोड़कर बाक़ी सब अभी तक ज़िंदा हैं।*

फिर भी सिराजुद्दौला को बदनाम करने और अपने देशवासियों के काले कारनामों पर मुलम्मा फेरने के लिए उस समय से आज तक अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने हॉलवेल की ब्लैक होल नामक कल्पना से पूरा फ़ायदा उठाया है। अंगरेज़ी स्कूलों की समस्त पाठ्य पुस्तकों में, जिनमें कि अंगरेज़ों के ऊपर सिराजुद्दौला के बेशुमार अहसानों का कहीं ज़िक्र नहीं, उनमें यह क़िस्सा सच्चा कह कर बयान किया जाता है।

* Letter to the Directors, dated 1st October, 1765, by Clive and others.

अपनी वीरता और उदारता दोनों का सबूत देने के बाद विजयी सिराजुद्दौला २४ जून को कलकत्ते से अपनी राजधानी की ओर लौटा। मार्ग में हुगली के ऊपर उसने एक दरबार किया, जिसमें फ्रांसीसी कोठी के वकील ने साढ़े तीन लाख रुपए और डच कोठी के वकील ने साढ़े चार लाख रुपए अपनी अपनी राजभक्ति दर्शाने के लिए सिराजुद्दौला की नज़र किए। सिराजुद्दौला ने उन्हें अपना व्यापार जारी रखने की इजाज़त दे दी। सिराजुद्दौला को अभी तक आशा थी कि इसी तरह का समझौता अङ्गरेज़ों के साथ भी हो जायगा। ११ जुलाई सन् १७५६ ई० को सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुँच गया।

सिराजुद्दौला की कलकत्ते से वापसी

थोड़े ही दिनों बाद पूर्निया के नवाब शौकतजंग ने फिर बग़ावत का झंडा ऊँचा किया। १६ अक्तूबर सन् १७५६ को राज-महल नामक स्थान पर सिराजुद्दौला और शौकतजंग की सेनाओं में मुक़ाबला हुआ, जिसमें शौकतजंग काम आया और सिराजुद्दौला ने विजय प्राप्त की। सिराजुद्दौला अब शौकतजंग की जगह राजा युगलसिंह नामक एक हिन्दू को पूर्निया की गद्दी पर बैठाकर मुर्शिदाबाद लौट आया। इस बार सिराजुद्दौला की प्रजा ने उसे बधाइयाँ दीं और दिल्ली के सम्राट ने एक नए फ़रमान के ज़रिये उसे बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की सूबेदारी की मसनद पर फिर से पक्का किया। यह बात याद रखने योग्य है कि सिराजुद्दौला आरम्भ से जो कुछ करता था दिल्ली सम्राट के नाम पर और सम्राट एक सेवक की हैसियत से ही करता था।

कलकत्ते से भागे हुए अंगरेज़ कलकत्ते से कुछ नीचे बंगाल की खाड़ी के ऊपर फल्ता नामक स्थान पर जाकर ठहर गए और करीब छै महीने वहीं ठहरे रहे। कम्पनी के कारबार की दृष्टि से उस ज़माने में कलकत्ते की निस्बत मद्रास अधिक महत्व की जगह थी। फल्ता से इन अंगरेज़ों ने एक ओर तो मद्रास की कोठी के अंगरेज़ों को यह लिखा कि मद्रास से नई सेना जमा करके बंगाल भेजी जाय और दूसरी ओर—क्योंकि केवल सेना के बल सिराजुद्दौला से जीतना वे असम्भव समझ चुके थे—उन्होंने अपने गुप्तचरों के ज़रिये झूठे सच्चे लोभ दिखलाकर कलकत्ते के राजा मानिकचंद को और सिराजुद्दौला के अन्य सेनापतियों, दरबारियों और सामन्तों को अपनी ओर फोड़ने के प्रयत्न शुरू किए। निस्संदेह भेद नीति का यह विस्तृत जाल ही वह मुख्य उपाय था जिसके द्वारा ये मुट्ठी भर निर्बल किन्तु चालाक विदेशी बलवान किन्तु अनुभवशून्य भारतीय नवाब को गिराने की आशा कर रहे थे। स्क्रैफ़टन नामक अंगरेज़ लिखता है :—

फल्ता में अंगरेज़

"यह एक बड़े भारी आश्चर्य की बात मालूम होगी कि सूबेदार (नवाब) ने इतने दिनों इतनी शान्ति से हमें फल्ता में क्यों पड़े रहने दिया। × × × इसकी वजह मैं केवल यह बता सकता हूँ कि वह हमें एक बहुत ही तुच्छ चीज़ समझता था। × × × और उसे इस बात का गुमान भी न था कि हम सैन्यबल के सहारे फिर बंगाल लौटने की हिम्मत करेंगे।"*

* "*Reflections*" by Scrafton p 58

इस पर जीन लॉ लिखता है :—

"सिराजुद्दौला यूरोपनिवासियों को बहुत ही ज़्यादा हक़ीर और तुच्छ समझता था। वह कहा करता था कि इन्हें ठिकाने रखने के लिये केवल एक जोड़ी चप्पल की ज़रूरत है। × × × इसलिए वह यह सोच ही न सकता था कि अंगरेज़ सैन्यबल द्वारा फिर से बंगाल में पैर जमाने का विचार कर सकते हैं। यदि वह यह अनुमान भी कर सकता था कि अंगरेज़ कोई नई तरकीब सोच रहे होंगे तो केवल यह अनुमान कर सकता था कि वे विनम्र होकर एक हाथ से मेरे सामने नज़र पेश करेंगे और दूसरे हाथ से फिर अपनी तिजारत शुरू करने के लिए ख़ुशी के साथ मेरा फ़रमान हासिल करेंगे। निस्संदेह इसी ख़याल से सिराजुद्दौला ने अंगरेज़ों को शांतिपूर्वक फल्ता में पड़े रहने दिया।"*

सिराजुद्दौला के साथ छल

फल्ता में अंगरेज़ों ने नवाब के अफ़सरों से यह कहा कि हमें मौसम ख़राब होने की वजह से यहाँ रुकना पड़ रहा है और ज्योंही मौसम समुद्र यात्रा के क़ाबिल हुआ हम मद्रास चले जायँगे। दूसरी ओर उन्होंने "नवाब को धोखा देने के स्पष्ट उद्देश से"† अत्यन्त दीन और नम्र शब्दों में इस मज़मून की अर्ज़ियाँ सिराजुद्दौला के पास भेजनी शुरू कर दीं कि हमें फिर से बंगाल में व्यापार करने की इजाज़त दी जाय।

---

* *Bengal in 1750—57*, vol III p 176

† "To deceive the Nawab " S C Hill in *Bengal in 1756—57*, vol I, pp cxi, cxv

सिराजुद्दौला ने बजाय किसी तरह की सख़्ती के इस समय भी उनके साथ दया का व्यवहार किया। जब उसे यह मालूम हुआ कि अंगरेज़ों के फल्ता पहुँचने पर वहाँ के लोगों ने बाज़ार बंद कर दिए थे जिसकी वजह से अंगरेज़ों को रसद की दिक़्त हो रही थी, तो उसने फ़ौरन हुकुम भेज दिया कि बाज़ार खोल दिए जायँ और "बेचारे परदेसियों को खाने पीने के सामान की कोई दिक़्त न होने पाए।" सिराजुद्दौला दिल से चाहता था कि अंगरेज़ अपनी शरारतें छोड़कर फिर से बंगाल में तिजारत करने लगें। इसीलिए उसने अपनी विजय के बाद भी क़ासिमबाज़ार, कलकत्ते इत्यादि की कोठियों में उनके तिजारती माल को हाथ न लगाया था।

सिराजुद्दौला की दयालुता

सिराजुद्दौला की नीयत यदि कुछ और होती तो कलकत्ते या फल्ता में से कहीं भी इन विदेशी व्यापारियों का एक एक कर ख़ात्मा कर डालना और साथ ही उनके समस्त षड्यंत्रों का अंत कर देना उसके लिए एक बहुत ही आसान काम था। यदि वह ऐसा कर डालता तो कोई निष्पक्ष इतिहास लेखक उसे दोषी भी न ठहरा सकता था। किन्तु उस भोले एशियाई नरेश को इन विदेशियों के चरित्र और उनकी चालों का अभी तक भी पता न था। इस भोलेपन का मूल्य सिराजुद्दौला और उसके देश दोनों को बहुत ज़बरदस्त चुकाना पड़ा।

२० जून सन् १७५६ को अंगरेज़ कलकत्ते से निकाले गए। १६ अगस्त को कलकत्ते के छिन जाने का समाचार मद्रास पहुँचा।

अक्तूबर के मध्य में ८०० यूरोपियन और १३०० हिन्दोस्तानी सिपाही मद्रास से रवाना किए गए। जल सेना का अधिकार ऐडमिरल वाट्सन को और स्थल सेना का सुप्रसिद्ध करनल क्लाइव को दिया गया। मद्रास की अंगरेज़ कौंसिल के मेम्बरों ने १३ अक्तूबर के एक पत्र में इस सेना के अफ़सरों को खुले आदेश दिया कि आप लोग बंगाल पहुँच कर नवाब के आदमियों को अपनी ओर फोड़कर किसी दूसरे को नवाबी का हक़दार खड़ा करके और अन्य हर तरह के उपायों और षड्यन्त्रों द्वारा नवाबी को पलट देने का प्रयत्न करें।* इस प्रकार बंगाल में ग़दर करवाने के इरादे से दिसम्बर सन् १७५६ के मध्य में यह सेना फल्ता पहुँच गई।

बंगाल में अंगरेज़ों का फिर से प्रवेश

यह सैन्यबल भी बहुत दरजे तक केवल एक दिखावे की चीज़ थी। असली चीज़ साज़िशों का वह जाल था जो बंगाल में पूरी तरह फैल चुका था। कलकत्ते का राजा मानिकचंद भी किसी न किसी लालच में फंस कर अपने स्वामी और देश दोनों के साथ विश्वासघात करने को राज़ी हो गया। फल्ता पहुँचते ही क्लाइव और वाट्सन दोनों ने नवाब के नाम अलग अलग दो लम्बे पत्र लिखे, जिनमें सिवाय धमकियों, छल और बदतमीज़ी के और कुछ न था। सिराजुद्दौला इन पत्रों का क्या उत्तर दे सकता था? और अंगरेज़ों को भी सिराजुद्दौला के जवाब का कहाँ इन्तज़ार था?

साज़िशों का जाल

---

* Letter dated 13th October 1756 *Bengal in 1756-57*, vol 1, pp 239, 240.

बजबज में दिखावटी लड़ाई

कलकत्ते से कुछ नीचे बजबज में एक अत्यंत मज़बूत पुराना क़िला था, जिसके चारों ओर एक गहरी खाई थी। यह क़िला राजा मानिकचंद के सुपुर्द था। २६ दिसम्बर को क्लाइव के अधीन थोड़ी सी अंगरेज़ी सेना जहाज़ से उतर कर बजबज पहुँची। अंगरेज़ों और मानिकचंद के बीच पहले से तय हो चुका था कि मानिकचंद केवल दिखाने के लिए एक बार अंगरेज़ों का मुक़ाबला करे। चुनाँचे मानिकचंद दो हज़ार सैनिक लेकर क्लाइव के २६० सैनिकों का मुक़ाबला करने के लिए क़िले से बाहर निकला। केवल आध घंटे की झूठी फटफट के बाद मानिकचंद ने क़िले के दरवाज़े खोल दिए और बिना किसी रुकावट के २६ दिसम्बर की रात को अंगरेज़ी सेना ने बजबज के ज़बरदस्त क़िले में प्रवेश किया। मानिकचंद अपनी सेना लिए पीछे की ओर हटता चला गया। मानिकचंद कायर न था। छै साल बाद कम्पनी ने राजा मानिकचंद के एक बेटे को अपने यहाँ तनख़्वाह देकर नौकर रखा, जिसकी वजह सरकारी काग़ज़ात में इन साफ़ शब्दों में दी हुई है—"क्योंकि पिछले ३० साल के अंदर मानिकचंद कई तरह से हमारे लिए उपयोगी साबित हो चुका था।"*

बजबज के क़िले के अंदर जितने मामूली ग़ैर फ़ौजी हिन्दुस्तानी थे, उनमें से कुछ भाग निकले और जो रहे उनको अंगरेज़ों ने क़त्ल कर दिया?

---

* Rev. Long's *Selections from the Government Records*

कलकत्ते पर अंगरेज़ों का फिर से क़ब्ज़ा

इसके बाद दूसरी जगह, जहाँ मानिकचंद अंगरेज़ों का मुक़ाबला कर सकता था, कलकत्ता थी। किन्तु यहाँ पर उसने या उसके विदेशी दोस्तों ने दिखावे की भी ज़रूरत न समझी। बजबज से भागकर मानिकचंद सीधा हुगली पहुँचा। वहाँ से उसने सिराजुद्दौला को कहला भेजा कि "अंगरेज़ों की विशाल (?) सेना के सामने मैं ठहर न सका।" २ जनवरी सन् १७५७ को मानिकचंद की ग़ैरहाज़िरी में बहुत आसानी से कलकत्ता फिर से अंगरेज़ों के हाथों में आगया। इसके बाद तान्नाह का किला भी अंगरेज़ी सेना को पहले ही से खुला हुआ और ख़ाली मिला। ३ जनवरी सन् १७५७ को कलकत्ते का क़िला ड्रेक और उसकी एक कौंसिल के हवाले कर दिया गया।

अंगरेज़ इतिहास लेखक एस० सी० हिल लिखता है कि इस समय सिराजुद्दौला पर हमला करने से पहले अंगरेज़ों के सामने एक ख़ास सवाल यह था कि सिराजुद्दौला की जगह सूबेदारी का हक़दार किसको खड़ा किया जाय। कुछ की सलाह थी कि "सरफ़राज़ ख़ाँ के उन बेटों में से एक को, जो इस समय ढाका में क़ैद थे, सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ सूबेदारी का हक़दार खड़ा कर दिया जाय।"* किन्तु यह मामला अभी तय नहीं किया गया। कलकत्ते के आस पास केवल एक हुगली का क़िला और बाक़ी रह

---

* *Bengal in 1756–57*, vol 1 p cxxxviii

गया था। अंगरेज़ों को मालूम था कि सिराजुद्दौला ने हुगली के पास नाज की बड़ी बड़ी कोठियाँ भर रक्खी हैं। तय हुआ कि सब से पहले इन तमाम कोठियों को जाकर आग लगा दी जाय। †

हुगली की लूट और क़त्ले आम

हुगली का क़िला अरक्षित पड़ा हुआ था और माल भी वहाँ बहुत था। क़िला आसानी से अंगरेज़ों के हाथों में आगया। ११ जनवरी का दिन क़िले के नज़दीक के मकानों को लूटने में ख़र्च हुआ। इसके बाद फिर १२ से १८ तक पूरे सात दिन हुगली नगर और उसके आस पास की तमाम हिन्दोस्तानी रिआया के घरों को लूटने में ख़र्च किए गए। इस लूट के साथ साथ हुगली के बेशुमार निहत्थे और निरपराध हिन्दोस्तानी बाशिन्दे क़त्ल कर डाले गए।

सिराजुद्दौला का आगे बढ़ना और वाट्सन के नाम पत्र

सिराजुद्दौला को मालूम हो गया कि मेरे आदमियों में विश्वास घात के बीज बोकर अंगरेज़ों ने बजबज, तान्नाह, कलकत्ता और हुगली के क़िले मुफ़्त ही में ले लिए हैं। एस० सी० हिल लिखता है कि मुर्शिदाबाद के मुख्य मुख्य दरबारियों को अपनी ओर मिलाने के लिए उनके साथ क्लाइव का गुप्त पत्र व्यवहार बराबर जारी था। बहुत सम्भव है इस पत्र व्यवहार की भी कुछ भनक सिराजुद्दौला के कानों तक पहुँच गई हो। इसके बाद हुगली की निरपराध प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के ज़ुल्मों की ख़बर सिराजुद्दौला

† *Bengal in 1756—57*, vol i. p. cxxxviii

को मिली। सिराजुद्दौला सेना लेकर मुर्शिदाबाद से बढ़ा और हुगली के निकट आकर उसने अंगरेज़ सेनापति वाट्सन को इस मज़मून का एक पत्र लिखा :—

"तुम लोगों ने हुगली का नगर ले लिया, उसे लूटा और मेरी प्रजा के साथ युद्ध किया, इस तरह के काम व्यापारियों को शोभा नहीं देते, इसलिए मैं मुर्शिदाबाद से चलकर हुगली के निकट आ गया हूँ। इसी तरह मैं अपनी सेना सहित नदी को पार कर रहा हूँ और मेरी सेना का एक भाग तुम्हारे पड़ाव की ओर बढ़ रहा है। फिर भी यदि तुम चाहते हो कि कम्पनी का कारबार पहले की तरह फिर से जम जाय और कम्पनी का व्यापार चलने लगे, तो किसी बाअख़्तियार आदमी को मेरे पास भेज दो। जो अपनी इच्छाएं और आवश्यकताएं मुझे बता सके और इस मामले में मुझसे पूरी तरह बातचीत कर सके। इस बात का परवाना जारी करने में मुझे कोई संकोच न होगा कि कम्पनी की तमाम कोठियाँ उन्हें वापस दे दी जायँ और जिन शर्तों पर वे इस मुल्क में पहले तिजारत करते थे उन्हीं शर्तों पर आइन्दा करते रहें। जो अंगरेज़ इन सूबों मे बसे हुए हैं वे यदि व्यापारियों का सा बर्ताव करेंगे, मेरी आज्ञाओं का पालन करेंगे और मुझे किसी तरह दिक़ न करेंगे, तो तुम विश्वास रखो मैं उनके नुक़सानों का ख़याल करूँगा और इस बारे में उनकी तसल्ली कर दूँगा।

"तुम जानते हो, जंग मे सिपाहियों को लूटने से रोकना कितना मुशकिल काम है। इसलिए यदि मेरी सेना की लूट द्वारा तुम लोगों का कुछ नुक़सान हुआ है और उसमें से कुछ यदि तुम लोग अपनी ओर से छोड़ दोगे तो तुम्हारी दोस्ती लाभ करने के लिए और भविष्य में तुम्हारी क़ौम के साथ

अच्छा सम्बंध क़ायम रखने के लिए मैं इस ख़ास विषय में भी तुम लोगों की तसल्ली कर देने की कोशिश करूँगा।

"तुम ईसाई हो और जानते हो कि किसी झगड़े को बनाए रखने की निस्बत उसे आपस में तय कर डालना कितना ज़्यादा अच्छा है। किन्तु यदि तुम यह सङ्कल्प ही कर चुके हो कि अपनी लड़ाई की इच्छा के सामने अपनी कम्पनी के हित और अलग अलग व्यापारियों के फ़ायदे दोनों को क़ुरबान कर दो, तो इसमें मेरी कोई ज़िम्मेदारी न होगी। इस तरह की लड़ाई बरबाद कर देने वाली होती है, उसके नतीजे घातक होते हैं, इन घातक नतीजों को रोकने के लिए ही मैं यह पत्र लिख रहा हूँ।"*

निस्संदेह यह पत्र सिराजुद्दौला की दूरदर्शिता, उसकी शांति-प्रियता, उसकी बरदाश्त, उसकी उदारता और उसकी प्रजापालकता, इन सब का पूरी तरह द्योतक है। किन्तु अभी तक उसे इस बात का काफ़ी तजरुबा न हुआ था कि इन विदेशी व्यापारियों के साथ किसी तरह का भी समझौता कहाँ तक टिक सकता है।

अंगरेज़ों ने जब नवाब को सुलह के लिए उत्सुक पाया तो नीचे लिखी शर्तें पेश कीं :—

छल से सिराजुद्दौला का कलकत्ते बुलाया जाना

(१) अंगरेज़ों का जितना नुक़सान हुआ है उस सब का पूरा पूरा हरजाना दिया जाय।

(२) कम्पनी को बंगाल में जितनी रिआयतें मिली हुई थीं वे सब पूरी तरह फिर से दे दी जावें।

---

* Ives *Voyages*, p 109

(३) अंगरेज़ों को अधिकार हो कि जिस तरह वे चाहें अपनी आबादियों की क़िलेबंदी कर सकें ।

(४) कलकत्ते में कम्पनी की एक अपनी टकसाल क़ायम हो ।

चौथी शर्त को स्वीकार करना सिराजुद्दौला के अधिकार से बाहर था । साम्राज्य भर में कहीं भी टकसाल क़ायम करना या किसी को टकसाल क़ायम करने की इजाज़त देना केवल दिल्ली सम्राट के अधिकार में था । पहली तीनों शर्तें सिराजुद्दौला ने मंज़ूर कर लीं और चौथी के विषय में पत्र व्यवहार होता रहा । इस पत्र व्यवहार में अंगरेज़ों ने और नई नई शर्तें नवाब के सामने पेश करनी शुरू कीं । उनका असली उद्देश सिराजुद्दौला के साथ सुलह करना नहीं था । उनका उद्देश सिराजुद्दौला को धोखा देकर बंगाल में एक ज़बरस्त बग़ावत खड़ी करना था । इन लोगों ने सिराजुद्दौला से कलकत्ते चलने की प्रार्थना की और उसे यह आशा दिलाई कि कलकत्ते पहुँच कर सुलह की शर्तें तय हो जायँगी ।

विश्वासघात

अंगरेज़ इस समय सिराजुद्दौला को धोखे से कलकत्ते लाकर अचानक उस पर हमला करना चाहते थे । सुप्रसिद्ध मीर जाफ़र इस समय सिराजुद्दौला के साथ और उसके मुख्य सेनापतियों में से था । एस० सी० हिल लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपनी इस यात्रा में मालूम हो गया था कि मेरे अनेक सिपाही और कई अफ़सर तक मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं हैं ।"*

* Ibid, vol 1 p cxlvii

इतिहास लेखक स्कैफ़टन लिखता है कि सिराजुद्दौला को "अपने मुख्य मुख्य अफ़सरों और ख़ासकर मीरजाफ़र में, जिसका व्यवहार इस मामले में बड़ा रहस्यपूर्ण मालूम होता था, विद्रोह के लच्छन दिखाई दे गए थे।"*

४ फ़रवरी सन् १७५७ ई० को सिराजुद्दौला कलकत्ते पहुंचा। कलकत्ते में अंगरेज़ों ने उसे बड़े आदर के साथ अमींचंद के बाग़ में ठहराया। सुलह की बातचीत बराबर जारी रही। अंगरेज़ों की गुप्त तजवीज़ थी कि ५ को सवेरे सूर्योदय से पहले सिराजुद्दौला पर चुपके से हमला कर दिया जाय। इतिहास लेखक जीन लॉ लिखता है :—

"जिस दिन अंगरेज़ हमला करने वाले थे उससे एक दिन पहले सिराजुद्दौला को और अधिक पूरी तरह धोखे में रखने की ग़रज़ से और उसके ख़ेमे की जगह को अच्छी तरह देख लेने के लिए उन्होंने उसके पास अपने दो वकील भेजे। इन वकीलों को हुकुम था कि वे नवाब से सुलह की तजवीज़ें करें, किन्तु सुलह की जो शर्तें उन्होंने पेश कीं उन्हीं से नवाब को ज़ाहिर हो जाना चाहिये था कि यह सब उसके शत्रुओं की केवल एक चाल थी।"†

---

* Sirajuddaula "discovered some appearance of disaffection in some of his principal officers, particularly in Mir Jaffar, whose conduct in this affair had been very mysterious."—*Reflections* p 66

† "To deceive him (Siraj) more completely and examine the position of his camp the English sent deputies the day before the attack they meditated These deputies were ordered to propose an accommodation, but the very conditions must have shown the Nawab this was only a ruse on the part of his enemy"—Jean Law, Ibid vol iii p 182

जो दो अंगरेज़ वकील क्लाइव ने इस अवसर पर नवाब के पास भेजे और जो वास्तव में जासूसों का काम कर रहे थे, उनके नाम वालश और स्क्रैफ़टन थे। एक और हिन्दोस्तानी देशद्रोही राजा नवकृष्ण इस समय सिराजुद्दौला के दल में अंगरेज़ों के जासूस का काम कर रहा था और उन्हें पल पल पर नवाब की सब काररवाइयों की ख़बर देता रहता था।

नवाब के ख़ेमे के पास ही अंगरेज़ वकीलों के ख़ेमे डाल दिए गए। पहले से जो हिदायतें उन्हें दे दी गई थीं उनके अनुसार ४ तारीख़ की रात को ये दोनों दूत सिराजुद्दौला से बातचीत करके अपने ख़ेमे में आगए, इसके बाद सोने के बहाने उन्होंने ख़ेमों की रोशनी बुझा दी और फिर अँधेरे में वहाँ से निकल कर ये लोग अंगरेज़ों की ओर भाग आए। इसके बाद की घटना के विषय में जीन लॉ लिखता है:—

"अगले दिन ५ फ़रवरी को सुबह ४ या ५ बजे गहरे कोहरे में करनल क्लाइव ने अपनी सेना सहित नवाब के दल पर हमला किया और ये लोग ठीक उस ख़ेमे पर आकर गिरे जिसमें पहले दिन शाम को अंगरेज़ वकील नवाब से मुलाक़ात कर चुके थे। × × × सौभाग्य से नवाब उस समय उस ख़ेमे में मौजूद न था। उसके एक दीवान को अंगरेज़ वकीलों पर पहले ही कुछ संदेह हो चुका था और उसने नवाब को सलाह दी थी कि आप ज़रा दूर एक दूसरे ख़ेमे में रात गुज़ारें।"

सिराजुद्दौला को, ऐसे समय में जब कि सुलह की बातचीत जारी थी, इस विश्वासघात की कोई आशा न थी। जो लड़ाई इस

समय सिराजुद्दौला और अंगरेज़ों के बीच हुई उसके विषय में रेनाल्ट अपने ४ सितम्बर के एक पत्र में लिखता है :—

"अंगरेज़ों ने अपनी सारी स्थल सेना और उसके साथ अपने जहाज़ों के तमाम सिपाही लड़ने को भेज दिए। वे सोते हुए मुसलमानों के ऊपर धोखा देकर अचानक टूट पड़े, फिर भी इस लड़ाई से जितने लाभ की उन्हें आशा थी उतना न हो सका। शुरू में वे शत्रु को थोड़ा सा पीछे हटा पाए, किन्तु फिर ज्योंही सिराजुद्दौला ने अपनी सेना का एक भाग जमा कर लिया, त्योंही अंगरेज़ों को ख़ुद पीछे हट जाना पड़ा। अँगरेज़ी सेना बेतरतीबी के साथ पीछे को भागी और यह उनकी बड़ी ख़ुशक़िस्मती थी कि वे अपने क़िले की दीवारों के नीचे तोपों के सुरक्षित साए में पहुँच सके। इस लड़ाई में अँगरेज़ों के क़रीब २०० आदमी काम आए।"*

निस्संदेह अंगरेज़ों को इस विश्वासघात का बदला देने के योग्य नवाब के पास अब भी काफ़ी सेना थी, किन्तु और आगे चल कर रेनाल्ट लिखता है :—

"नवाब के मंत्रियों ने जो प्रायः सभी अंगरेज़ों के तरफ़दार थे और केवल सुलह कर लेना चाहते थे, इस मौक़े से फ़ायदा उठाकर नवाब को सुलह के लिए मजबूर किया। दूसरी तरफ़ अपने सेनापतियों की बग़ावत से लाचार होकर × × × नवाब ने देखा कि सुलह के लिए राज़ी हो जाने के सिवा उसके पास और कोई चारा न था। उसे अत्यन्त कड़ी शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।"

---

* Ibid, vol iii p 246

इस हालत में नवाब सिराजुद्दौला ने ६ फ़रवरी सन् १७५७ ई० को अंगरेज़ों के साथ वह सन्धि स्वीकार की जो 'अलीनगर की सन्धि' के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि की सात शर्तें ये थीं :—

अलीनगर की सन्धि

(१) जितनी रिआयतें दिल्ली सम्राट ने अंगरेज़ों के साथ कर रक्खी थीं वे सब फिर से मंज़ूर कर ली जावें।

(२) बंगाल, बिहार और उड़ीसा भर में जिस किसी माल के साथ अंगरेज़ों का 'दस्तक' हो वह सब बिना महसूल आने जाने दिया जावे।

(३) कम्पनी की कोठियाँ और कम्पनी या उसके नौकरों या असामियों का वह तमाम माल असबाब, जो नवाब ने ज़ब्त कर लिया था वापस दे दिया जावे, और नवाब के आदमियों ने जो कुछ माल लूट लिया था उसके बदले में एक नक़द रक़म दी जावे।

(४) अंगरेज़ जिस तरह उचित समझें उस तरह कलकत्ते की किलेबंदी कर लें।

(५) अंगरेज़ों को सिक्के ढालने का अधिकार रहे।

(६) नवाब और उसके मुख्य पदाधिकारी और मंत्री इस सुलहनामे पर दस्तख़त करें।

(७) अंगरेज़ कौम और अंगरेज़ कम्पनी की तरफ़ से ऐडमिरल वाट्सन और करनल क्लाइव दोनों इस बात का वादा करें कि जब तक नवाब की ओर से सन्धि का उल्लंघन न हो, तब तक हम नवाब के राज में अमन से रहेंगे।

भारत में अंगरेज़ों और फ़ांसीसियों के दरमियान प्रतिस्पर्धा इस समय ज़ोरों पर थी। इसलिए अंगरेज़ों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि सुलहनामे में एक शर्त यह भी रक्खी जावे कि सिराजुद्दौला निरपराध फ़ांसीसियों पर चढ़ाई करके उन्हें इस मुल्क से बाहर निकाल दे। किन्तु सिराजुद्दौला ने इस शर्त को मानने से इनकार कर दिया।

इस सन्धि के साथ साथ अंगरेज़ों ने नवाब से यह इजाज़त ले ली कि मुर्शिदाबाद के दरबार में अंगरेज़ों का एक एलची रहा करे। यह भी तय हो गया कि जब कभी युद्ध इत्यादि के समय नवाब को ज़रूरत हो और नवाब आज्ञा दे तो अंगरेज़ अपनी सेना और धन दोनों से नवाब की मदद करें।

सन्धि तोड़ने के प्रयत्न

इस सुलहनामे की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि अंगरेज़ों ने, जिनका असली उद्देश बग़ावत था, फ़ौरन उसे तोड़ने के उपाय सोचने शुरू किए। दरबार में एक अंगरेज़ एलची को रहने की इजाज़त देकर सिराजुद्दौला ने एक नई बला अपने सर ले ली। ६ फ़रवरी को सुलहनामे पर दस्तख़त हुए और १२ को क्लाइव और उसके साथियों ने सिलेक्ट कमेटी के नाम अपने एक पत्र में खुले तौर पर यह राय प्रकट की :—

"और भी नई रिआयतें नवाब से माँगी जा सकती हैं × × × और यदि एक ऐसा आदमी नवाब के दरबार में एलची नियुक्त करके भेजा जाय जो

देश की ज़बान और रिवाजों को समझता हो, तो न केवल उसके ज़रिए ये नई शर्तें ही मंज़ूर कराई जा सकती हैं, बल्कि और बहुत से इस तरह के प्रकट या गुप्त कामों में भी, जो पत्र व्यवहार द्वारा इतनी अच्छी तरह नहीं हो सकते, वह मनुष्य बहुत उपयोगी साबित हो सकता है।"

मुर्शिदाबाद के दरबार में साज़िशों का जाल पूरना अंगरेज़ों के लिए अब और अधिक आसान हो गया और इन कामों के लिए क़ासिम बाज़ार की कोठी का अंगरेज़ अफ़सर वाट्स, जिसकी एक बार सिराजुद्दौला जान बख़्श चुका था एलची नियुक्त करके भेजा गया। १६ फ़रवरी के एक पत्र में वाट्स को कम्पनी की ओर से यह हिदायत की गई कि तुम ६ तारीख़ के सुलहनामे से बाहर दस और नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश करो। इन नई शर्तों में इस तरह की शर्तें भी शामिल थीं, मसलन :—

नवाब के महकमें चुंगी का कोई मुलाज़िम अंगरेज़ों के किसी दस्तख़ती माल पर यदि किसी तरह का महसूल माँग बैठे तो बिना नवाब से शिकायत किए या सरकारी अदालतों तक पहुँचे अंगरेज़ों को उसे स्वयं दंड देने का अधिकार हो। कम्पनी के ज़िम्मे या किसी भी अंगरेज़ के ज़िम्मे यदि किसी भारतवासी का कोई क़र्ज़ निकलता हो तो नवाब उसे अपने पास से अदा कर दे। जो अदालतें अंगरेज़ अपनी ओर से क़ायम करें उन्हें भारतवासियों को मुजरिम क़रार देने और उन्हें फाँसी देने तक का अधिकार मिल जावे। नवाब से भेंट करने के समय अंगरेज़ों को रिवाज के अनुसार किसी तरह की नज़र पेश न करनी पड़े।

कलकत्ते के नीचे नदी से एक मील के अंदर नवाब कभी किसी तरह की क़िलेबंदी न करे। इत्यादि, इत्यादि।

अंगरेज़ ख़ूब जानते थे कि सिराजुद्दौला इस तरह की नई शर्तें, जिनका साफ़ मतलब उससे शासन अधिकार छीनना था, स्वीकार न कर सकता था। असली मतलब सिद्ध करने के लिए सुप्रसिद्ध अमीचंद अपनी थैलियों सहित वाट्स का सलाहकार नियुक्त होकर उसके साथ मुर्शिदाबाद भेजा गया। वाट्स अपने "मैमॉयर्स आफ़ दी रेवोल्युशन" में स्वीकार करता है कि अपनी साज़िशों को सफल बनाने के लिए उसने मुर्शिदाबाद के दरबार में रिशवतों का बाज़ार ख़ूब गरम कर रक्खा था।

सिराजुद्दौला और वाटसन में पत्र-व्यवहार

दूसरी ओर अलीनगर की सन्धि के विरुद्ध और उसकी ख़ाक परवा न करते हुए अंगरेज़ों ने फ़ौरन सबसे पहले फ्रांसीसियों की चन्दरनगर वाली कोठी पर हमला करने की ठानी। सिराजुद्दौला अभी कलकत्ते से लौटकर अपनी राजधानी तक पहुँचा भी न था कि मार्ग ही में उसे अंगरेज़ों के इस इरादे का समाचार मिला। उसने तुरन्त १६ फ़रवरी को ऐडमिरल वाट्सन के नाम इस मज़मून का एक पत्र लिखा:—

"अपने देश और अपने राज के अंदर लड़ाइयाँ बंद करने के उद्देश से मैंने अंगरेज़ों के साथ सुलह मंजूर की थी, ताकि तिजारत पहले की तरह जारी रह सके × × × इसी तरह तुम ने भी अपने दस्तख़त से और अपनी मोहर लगाकर इस मज़मून का इक़रारनामा मेरे पास भेज दिया है कि तुम मेरे देश

की शांति भंग न करोगे; किन्तु अब मालूम होता है कि तुम हुगली के पास की फ्रांसीसी कोठी का मोहासरा करने और फ्रांसीसियों से लड़ाई शुरू करने की तजवीज़ कर रहे हो। यह बात हर क़ायदे और रिवाज के ख़िलाफ़ है कि तुम लोग अपने यहाँ के आपसी झगड़ों और दुश्मनियों को मेरे देश में लाओ × × × अगर तुमने फ्रांसीसी कोठियों का मोहासरा करने की ठान ही ली है, तो मेरी अपनी आन और अपने बादशाह की ओर मेरा फ़र्ज़ दोनों मुझे मजबूर करेंगे कि मैं अपनी फ़ौज से फ्रांसीसियों की मदद करूँ। मालूम होता है अभी हाल में जो सन्धि मेरे तुम्हारे बीच हुई है उसे तुम तोड़ना चाहते हो। इससे पहले मराठों ने इस राज पर हमला किया था और बरसों इस देश में लड़ाइयाँ जारी रक्खीं। किन्तु जब एक बार झगड़ा तय हो गया और उनके साथ संधि हो गई, तो उन्होंने कभी सन्धि की शर्तों का उल्लङ्घन नहीं किया और न वे कभी आइन्दा उन शर्तों से हटेंगे। जो सन्धियाँ निहायत सञ्जीदगी के साथ की जाती हैं उनकी क़तई परवा न करना और उन्हें तोड़ देना ग़लत और बुरा तरीक़ा है। निस्सन्देह तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम अपनी ओर की शर्तों पर ठीक ठीक क़ायम रहो और आइन्दा मेरे मातहत सूबों में न कभी किसी तरह के झगड़ों या छेड़ छाड़ को अपनी तरफ़ से कोशिश करो और न अपने सबब कोई झगड़ा खड़ा होने का मौक़ा दो। दूसरी ओर से जो कुछ मैंने वादा किया है और मंजूर कर लिया है उसे मैं बिलकुल ठीक ठीक समय पर पूरा करूँगा × × ×।"*

इस पत्र की भाषा बिलकुल सरल और निष्कपट है, किन्तु दूसरे ही दिन सिराजुद्दौला को फिर एक पत्र इस मज़मून का लिखना पड़ा:—

* Ive's *Voyages*, pp 119, 120

"मैं अनुमान करता हूं कि जो पत्र कल मैंने तुम्हें लिखा है वह मिला होगा। उसके बाद फ़्रांसीसी वकील ने मुझे इत्तला दी है कि तुम्हारे पाँच या छै नए जंगी जहाज़ हुगली मे आ गए हैं और औरों के आने की आशा है। फ़्रांसीसी वकील यह भी कहता है कि बारिश ख़तम होते ही तुम मेरे और मेरी प्रजा के साथ फिर से लड़ाई शुरू करने की तजवीज़ें कर रहे हो। यह व्यवहार एक सच्चे सिपाही को और एक ऐसे आन वाले मनुष्य को जो अपने वादे का पक्का है शोभा नहीं देता। यदि तुम उस सन्धि की ओर सच्चे हो जो तुमने मेरे साथ की है, तो अपने जंगी जहाज़ नदी से बाहर भेज दो और अपने अहदनामे पर पूरी तरह क़ायम रहो, मैं अपनी ओर से सन्धि का पालन करने में न चूकूँगा। इतनी सञ्जीदगी के साथ सन्धि करने के फ़ौरन ही बाद फिर जंग शुरू कर देना क्या उचित या ईमानदारी है? मराठे किसी इलहामी किताब से बँधे हुए नहीं हैं, तो भी वे अपनी सन्धियों का बिलकुल ठीक ठीक पालन करते हैं। इसलिए यह बड़े आश्चर्य की और विश्वास के अयोग्य बात होगी, यदि ईसाई लोग जिन्हें इञ्जील की रोशनी हासिल है, उस सन्धि पर क़ायम और पक्के न रहें जिसे उन्होंने ख़ुदा और ईसामसीह के सामने क़बूल किया है।"

२३ फ़रवरी को यह पत्र वाट्सन को मिला। २५ को उसने सिराजुद्दौला के नाम इस प्रकार उत्तर लिखा :—

"× × × मैं नहीं जानता कि आप पर उस हैरानी को किस तरह ज़ाहिर करूँ जो मुझे यह देखकर हुई है कि महज़ इस हलकी सी बिना पर कि किसी कमीने शख़्स ने आपसे यह कह देने का साहस किया कि मैं शान्ति भंग करने की तजवीज़ में हूँ, आपने सचमुच मुझ पर यह इलज़ाम

लगा दिया। × × × जनाब, आपसे मैं यह उम्मीद करता हूँ कि आप उस कमीने शख़्स को जिसने मुझ पर झूठा इलज़ाम लगाने और आपको धोखा देने का साहस किया मुनासिब दंड देंगे। इस बीच मैंने फ़ांसीसियों से उनके वकील के व्यवहार की शिकायत की है और उन्होंने मुझसे वादा किया है कि 'हम ख़ुद नवाब को लिखेंगे कि जो इलज़ाम हमारे वकील ने आप पर लगाया है वह हमें मालूम है कि झूठा है।' आप विश्वास रखिए कि मैं सदा अपना धर्म समझ कर सुलह पर क़ायम रहूँगा × × × ।"

निस्सन्देह यह पत्र कपट और झूठ दोनों से भरा हुआ था। सिराजुद्दौला की इस सीधी सी बात का कि "पाँच या छै नए जंगी जहाज़ हुगली में पहुँच चुके हैं" पत्र भर में कहीं उत्तर देने की चेष्टा नहीं की गई। सच यह है कि अंगरेज़ इस समय फ़्रांसीसियों और सिराजुद्दौला दोनों के साथ लड़ने का निश्चय कर चुके थे, चुपचाप तैयारियाँ हो रही थीं और केवल मौक़े का इन्तज़ार था। सिराजुद्दौला को वे अंत तक धोखे में रखना चाहते थे।

दिल्ली सम्राट और सिराजुद्दौला

इसी समय के निकट कहा जाता है कि दिल्ली सम्राट के दरबार और सिराजुद्दौला के बीच कुछ अनबन हो गई। ख़बर मिली कि सम्राट की सेना बंगाल की ओर बढ़ी चली आ रही है। सिराजुद्दौला ने उसके मुक़ाबले के लिए पटने की ओर बढ़ने का निश्चय किया। ९ फ़रवरी की सन्धि में यह तय हो चुका था कि इस तरह की कोई आवश्यकता पड़ने पर अंगरेज़ धन और फ़ौज दोनों से नवाब की सहायता करेंगे। सिराजुद्दौला ने वाट्सन को

सेना भेजने के लिए लिखा और उसी पत्र में यह भी लिख दिया कि जब तक अंगरेज़ी सेना मेरे पास रहेगी तब तक मैं एक लाख रुपए माहवार उसके ख़र्च के लिए दूंगा। सम्भव है इस प्रकार सेना माँगने में सिराजुद्दौला का एक उद्देश यह भी रहा हो कि इस बहाने अंगरेज़ कोई और शरारत करने से रुके रहें। इसी बीच सिराजुद्दौला ने फ़्रान्सीसियों को भी एक पत्र लिखा कि आप लोग अंगरेज़ों के साथ सुलह करके मेरे राज में शांति और अमन से रहें।

किन्तु अंगरेज़ों से फ़ौज की मदद माँगना सिराजुद्दौला के लिए एक घातक भूल साबित हुई। वाट्सन ने सिराजुद्दौला के पत्र का अत्यन्त गोलमोल जवाब दिया। उधर इस पत्र ने अंगरेज़ी सेना को कलकत्ते से बढ़ने का पूरा मौक़ा दे दिया। सेना कलकत्ते से बढ़ी, किन्तु सिराजुद्दौला की मदद के लिए नहीं, वरन् पहले चन्दरनगर की फ़्रांसीसी कोठी को विजय करने और फिर सिराजुद्दौला पर हमला करने के गुप्त उद्देश से।

चन्दरनगर पर हमले का इरादा

इस समय अंगरेज़ों का सब से पहला उद्देश बंगाल के अंदर अपने यूरोपियन प्रतिस्पर्धी फ़्रांसीसियों की ताक़त को ख़त्म करना था। क्लाइव और वाट्सन दोनों इरादा कर चुके थे कि सिराजुद्दौला के साथ लड़ने से पहले कोई न कोई बहाना निकाल कर फ़्रांसीसियों की चन्दरनगर वाली कोठी पर हमला करके उस पर क़ब्ज़ा कर लिया जाय, किन्तु ऐसा करना ९ फ़रवरी वाली सन्धि का उल्लंघन करना होता। सिराजुद्दौला भी इस विषय में उन्हें आगाह कर चुका था।

इसके अलावा फ्रांसीसी भी अंगरेज़ों से लड़ना न चाहते थे। उन्होंने सिराजुद्दौला का पत्र पाते ही सिराजुद्दौला की इच्छा के अनुसार आपसी समझौते के लिए अपने वकील अंगरेज़ों के पास भेजे। यहाँ तक कि समझौते की शर्तें भी लिखी गईं, जो दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लीं। नवाब भी समझौते को पालन कराने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने के लिए राज़ी हो गया। केवल समझौते के काग़ज़ पर वाट्सन के हस्ताक्षर होना बाक़ी रह गया था।

किन्तु अंगरेज़ों का असली मतलब इस तरह के समझौते से सिद्ध न हो सकता था। क्लाइव और वाट्सन दोनों ने फ्रांसीसियों पर हमला करने का निश्चय कर लिया था और ऐन मौक़े पर वाट्सन ने समझौते के काग़ज़ पर दस्तख़त करने से इनकार कर दिया। चन्द्रनगर पर हमला क्लाइव और वाट्सन दोनों करना चाहते थे, किन्तु हमले के ढंग के विषय में इन दोनों में एक ख़ास मतभेद हो गया। वाट्सन की राय थी कि बिना सिराजुद्दौला से पूछे या बिना उसे सूचना दिए ही चन्द्रनगर पर हमला कर दिया जावे, किन्तु क्लाइव इसके विरुद्ध था। क्लाइव चाहता था कि पहले रिशवतें देकर या जालसाज़ी करके किसी तरह सिराजुद्दौला की ओर से इस मज़मून का एक पत्र, जिससे मालूम हो कि सिराजुद्दौला हमारे चन्द्रनगर पर हमला करने में सहमत है, अपने पास रख लिया जावे और फिर चन्द्रनगर पर हमला किया जावे। इस सम्बन्ध में क्लाइव ने ४ मार्च सन् १७५७ को सिलेक्ट

कमेटी के मेम्बरों के नाम जो पत्र लिखा उससे इस मामले के स्वरूप का ख़ासा पता चल सकता है। क्लाइव ने लिखा :—

"महाशय ! ज़रा सोचिये कि हमारी इन हाल की काररवाइयों के विषय में दुनियां क्या राय क़ायम करेगी। चन्दरनगर के (फ़्रांसीसी) गवरनर और उसकी कौंसिल की तरफ़ से हमारे पास इस मज़मून का पत्र आया कि हम गङ्गा प्रांत में आपके साथ सुलह से रहने के लिए राज़ी हैं। हमने इसके जवाब में यह इच्छा प्रकट की कि आप अपने वकील भेजें और उन्हें लिख दिया कि हम ख़ुशी से आपके साथ समझौता करने को तैयार हैं। तो क्या हमने इस उत्तर द्वारा एक प्रकार से सुलह स्वीकार नहीं कर ली? इसके अलावा फ़्रांसीसी वकीलों के आने के बाद क्या हमने सुलह की इस तरह की शर्तें तैयार नहीं कीं, जो दोनों पक्षों के लिए सन्तोषजनक हैं और क्या हम इस बात को मंज़ूर नहीं कर चुके हैं कि हर शर्त पर दोनों पक्षों के दस्तख़त हों, दोनों की मोहरें लगें और दोनों उसके पालन की प्रतिज्ञा करें? फिर अब नवाब क्या सोचेगा? जब हम अपनी ओर से नवाब से वादे कर चुके हैं और वह इस सन्धि को पालन कराने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेने की रज़ामन्दी तक ज़ाहिर कर चुका है तो इसके बाद निस्संदेह नवाब और सारी दुनियां यही समझेगी कि हम हलकी और ओछी तबीयत के आदमी हैं या हमारा कोई भी सिद्धांत नहीं × × ×।"

क्लाइव की धूर्तता

वास्तव में क्लाइव वाट्सन की अपेक्षा कहीं अधिक पक्का धूर्त्त था। वह उस समय चुपचाप वाट्स के ज़रिये, जो मुर्शिदाबाद के दरबार में एलची था, जालसाज़ी करवाकर नवाब की अनुमति का परवाना प्राप्त कर लेने की कोशिश में लगा हुआ था।

वाट्स ने १० मार्च को नवाब के मंत्रियों को रिशवत देकर नवाब की ओर से वाट्सन के नाम एक पत्र भिजवाया जिसके अंत में यह वाक्य था :—

"आप समझदार और उदार हैं, यदि आपका शत्रु शुद्ध हृदय से आपकी शरण चाहे तो आप उसकी जान बख़्श दें, किन्तु आपको उसके इरादों की पवित्रता के विषय में पूरी तसल्ली होनी चाहिये, यदि ऐसा न हो तो जो कुछ आप ठीक समझें करें।"

इस पत्र की मूल फ़ारसी प्रति कहीं नहीं मिलती और अंगरेज़ी तरजुमा जिसका ऊपर हिन्दी तरजुमा दिया गया है वाट्स का किया हुआ है।

वाट्स का दूसरा साथी स्क्रैफ़टन साफ़ लिखता है कि इस पत्र को लिखाने के लिए अंगरेज़ों ने नवाब के मंत्रियों को रिशवतें देने में काफ़ी रुपया ख़र्च किया।* इतिहास लेखक जीन लॉ लिखता है कि वाट्स ने मुर्शिदाबाद में रिशवतों और झूठे वादों का बाज़ार इतना गरम कर रक्खा था कि :—

"नवाब की सेना के सब मुख्य मुख्य अफ़सर मीर जाफ़रअली ख़ाँ, खुदादाद ख़ाँ लट्टी और कई और × × × पुराने दरबार के सब वज़ीर × × × क़रीब क़रीब सब मंत्री, दरबार के मुहर्रिर, यहाँ तक कि हरमसरा के ख़ोजे तक अंगरेज़ों की ओर थे। × × ×"†

इस पत्र के सम्बन्ध में जीन लॉ को विश्वास है कि वाट्स ने

* *Reflections*, p. 70

† *Bengal Records*, vol. III, p. 191

उसे लिखाने के लिए नवाब के मंत्री को रिशवत दी।* वह यह भी लिखता है कि :—

"नवाब जिन पत्रों को अपने हुकुम से लिखवाता था उन्हें कभी पढ़ता न था, इसके अलावा मुसलमान (शासक) कभी अपने हाथ से दस्तख़त नहीं करते। जब लिफ़ाफ़ा बंद करके अच्छी तरह कस दिया जाता है तब मंत्री नवाब से उसकी मोहर माँगता है और नवाब के सामने लिफ़ाफ़े पर मोहर लगाता है, कभी कभी एक नक़ली मोहर भी होती है।"†

इन सब कामों में मुर्शिदाबाद के दो जैन जगतसेठों का प्रभाव और अमींचंद का धन, इन दोनों से अंगरेज़ों को काफ़ी मदद मिल रही थी।

चन्दरनगर पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

३ मार्च को क्लाइव ने सिराजुद्दौला को सहायता पहुँचाने के बहाने अपनी सेना की बाग सँभाली। ७ मार्च को उसने सिराजुद्दौला को लिख भेजा कि मैं सहायता के लिए आता हूँ। अंगरेज़ों की तैयारी पूरी थी। इस बीच बम्बई से भी कुछ सेना क्लाइव की सहायता के लिए पहुँच चुकी थी। क्लाइव चन्दरनगर की ओर बढ़ा, उसे इस तरह सेना सहित अपनी ओर बढ़ते हुए देखकर फ्रांसीसियों ने इसकी वजह पूछी। छली क्लाइव ने ६ मार्च को फ्रांसीसियों को पत्र द्वारा विश्वास दिलाया कि—"आपकी क़ौम से लड़ने का मेरा इस समय बिलकुल इरादा नहीं है।" १० मार्च को सिराजुद्दौला

* "The Secretary must have been bribed to write in a way suitable to the views of Mr Watts —M Jean Law, in his *Memoirs*

† Ibid

का वह जाली ख़त मुर्शिदाबाद से चला, जिसमें कहा जाता है कि नवाब ने अंगरेज़ों को चन्दरनगर का मोहासरा करने की इजाज़त दे दी। ११ को एक दूसरे पत्र द्वारा क्लाइव ने फ़्रांसीसियों पर यह एक नया इलज़ाम लगाया कि आप लोगों ने अंगरेज़ी सेना से भागे हुए कुछ बाग़ियों को अपने यहाँ छिपा रक्खा है। युद्ध के लिए बस यह बहाना काफ़ी था। १२ को चन्दरनगर से दो मील की दूरी पर क्लाइव की सेना आ पहुँची। इसी समय वाट्सन भी अपनी सेना लेकर पहुँच गया। १४ मार्च को चन्दरनगर का मोहासरा शुरू हुआ और २३ मार्च को चन्दरनगर अंगरेज़ों के हाथों में आ गया। बंगाल के अंदर फ़्रांसीसियों की दूसरी कोठियों के विषय में अंगरेज़ों और फ़्रांसीसियों के दरमियान एक सन्धि हो गई।

चन्दरनगर के दो मुख्य विश्वासघातक

चन्दरनगर की इस सरल विजय में भी युद्ध कौशल या वीरता ने अंगरेज़ों का इतना साथ नहीं दिया जितना कूट नीति ने। दो बड़े विश्वासघातकों के नाम इस मोहासरे के इतिहास में मिलते हैं। पहला एक फ़्रांसीसी अफ़सर लैफ़्टैनेन्ट दी तेरानो, जिसने रुपए लेकर दरिया की ओर का मार्ग अंगरेज़ों के लिए खोल दिया और दूसरा हुगली का हिन्दुस्तानी फ़ौजदार, महाराजा नन्दकुमार, जिसे सिराजुद्दौला ने समाचार पाते ही एक बहुत बड़ी सेना सहित फ़्रांसीसियों की सहायता और चन्दरनगर की भारतीय प्रजा की रक्षा के लिए पहले से चन्दरनगर भेज दिया था, किन्तु जिसे ऐन मौक़े पर अमीचंद के धन ने अंगरेज़ों की ओर खींच लिया।

फ्रांसीसी विश्वास घातक के विषय में एक यूरोपियन लेखक ब्लॉकमैन लिखता है :—

"तेरानो को, जोकि इस विश्वासघात के सबब बदनाम और 'रू-स्याह' हो गया था, अपनी कृतघ्नता के बदले में अंगरेज़ों से बहुत बड़ी रक़म प्राप्त हुई। उसने इस धन का एक भाग अपने घर फ्रांस में अपने बूढ़े कमज़ोर बाप के पास भेजा, किन्तु बाप ने जब अपने बेटे के इस लज्जास्पद व्यवहार का हाल सुना तो उसने धन वापस कर दिया। इस पर तेरानो को बड़ी ग़ैरत आई। शर्म ने 'उसका पल्ला पकड़ लिया', उसने अपने तईं मकान के अंदर बन्द कर लिया; चन्द रोज़ के बाद उसका शरीर मकान के दरवाज़े पर एक तौलिए से लटका हुआ मिला। ज़ाहिर था कि उसने आत्महत्या कर ली है।"*

दूसरे यानी भारतीय विश्वासघातक के विषय में स्क्रैफ़टन और थॉर्नटन दोनों ने अपने ग्रन्थों में साफ़ लिखा है कि अंगरेज़ों ने अमीचन्द की मार्फ़त नन्दकुमार को रिशवत दी और अंगरेज़ी सेना के पहुँचने पर फ्रांसीसियों और भारतीय प्रजा दोनों को अरक्षित छोड़ कर नन्दकुमार अपनी तमाम सेना सहित चन्दर-नगर से हट गया। सिलेक्ट कमेटी की १० अप्रैल सन् १७५७ की रिपोर्ट में अमीचन्द और नन्दकुमार दोनों को धन्यवाद देते हुए यह भी साफ़ लिखा है कि—"यदि दीवान नन्दकुमार की सेना न हटा ली गई होती तो हमारे लिए विजय प्राप्त कर सकना असम्भव ही होता।"

* Notes on Sirajuddowla, Journal of the Asiatic Society, 1867

चन्दरनगर की विजय अंगरेज़ों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुई। इससे बंगाल के अंदर फ़्रांसीसियों का बल टूट गया और नवाब से अंतिम निबटारा करने के लिए अंगरेज़ों के सामने का मार्ग अधिक साफ़ हो गया।

सिराजुद्दौला को धमकी

वाट्सन ने अपने २५ फ़रवरी के उस पत्र में जिसका ऊपर ज़िक्र आ चुका है, सिराजुद्दौला को लिखा था कि—"आप ख़ातिरजमा रखिए, मैं सदा अपना धर्म समझ कर शान्ति क़ायम रक्खूँगा।" इसी पत्र में उसने लिखा था कि यह अफ़वाह कि अंगरेज़ फ़्रांसीसियों पर हमला करने वाले हैं बिलकुल झूठ है। किन्तु इसके चंद रोज़ बाद ही जब सिराजुद्दौला ने ६ फ़रवरी की सन्धि के अनुसार वाट्सन से सेना की सहायता माँगी तो उत्तर में वाट्सन ने तैयारी करके और मौक़ा देखकर सिराजुद्दौला को लिखा कि :—

"कुछ दिन हुए मैंने पिछले महीने की २० तारीख़ को आपके पत्र का उत्तर दे दिया है। मैं समझता हूँ वह अब तक आपको मिल गया होगा। *उसे पढ़कर आपको पूरी तरह विश्वास हो गया होगा कि फ़्रांसीसी वकील का* यह कहना, कि मेरा इरादा शान्ति भंग करने का है झूठ है × × × ।

"× × × किन्तु अब साफ़ कहने का समय आगया है। यदि आप वास्तव में अपने देश में शान्ति बनाए रखना चाहते हैं और अपनी प्रजा को आपत्ति और बरबादी से बचाना चाहते हैं, तो आज से दस दिन के अंदर अपनी ओर से सन्धि की हरेक शर्त को पूरा कर दीजिये, ताकि मुझे शिकायत का ज़रा भी मौक़ा न मिल सके, नहीं तो याद रहे नतीजों के लिए आप

ज़िम्मेदार होंगे; × × × चंद रोज़ के अंदर मैं × × × और अधिक जहाज़ और सेना मँगा लूँगा और आपके मुल्क में ऐसी आग लगा दूँगा कि गंगा का तमाम जल भी उसे बुझा न सकेगा। × × ×"

वाट्सन ने अब अपना असली रूप धारण कर लिया। ९ फ़रवरी के सुलहनामे में सिराजुद्दौला ने यह वादा किया था कि अंगरेज़ों की तमाम कोठियाँ और माल उन्हें वापस दे दिया जावेगा और जिन अंगरेज़ों का नुक़सान हुआ है उनको सरकार की तरफ़ से हरजाना दे दिया जावेगा। ये वह 'शर्तें' थीं जिन्हें वाट्सन ने 'दस दिन के अंदर' पूरा करने पर अब ज़ोर दिया। मामूली अदालतों की डिगरियों की काररवाई होने में भी काफ़ी देर लगती है। क्लाइव के नीचे लिखे पत्र से ज़ाहिर है कि सिराजुद्दौला पूरी ईमानदारी और काफ़ी जल्दी के साथ अपने शाही वादों को पूरा कर रहा था। ३० मार्च को चन्दरनगर से क्लाइव ने एक पत्र में लिखाः—

सिराजुद्दौला की सच्चाई

"सिराजुद्दौला ने जो सन्धि हमारे साथ की थी उसकी अधिकांश शर्तें वह पूरी कर चुका है। तीन लाख रुपए वह हमें अदा कर चुका है और बहुत सा माल और धन हमारी अनेक मातहत कोठियों में हमारे पास जमा कराया जा चुका है और मुझे कोई संदेह नहीं कि नवाब के तमाम वादे ठीक समय पर पूरे किए जावेंगे।"*

* "He (Sirajuddowlah) has fulfilled most of the articles of the treaty made with us The three lack of rupees are already paid and goods and money to a considerable amount delivered up to us at our several subordi-

इसके अलावा ९ फ़रवरी के सुलहनामे में कोई ऐसा वाक्य न था कि इतने समय के अंदर हरेक शर्त पूरी हो जानी चाहिये। इसलिए अब वाट्सन का सिराजुद्दौला को यह लिखना कि दस दिन के अंदर सब शर्तें पूरी हो जानी चाहियें, केवल फिर से लड़ाई शुरू करने का एक बहाना ढूंढ़ना था। उधर सिराजुद्दौला ने सेना की जो सहायता माँगी थी उसका जवाब तक नहीं दिया गया।

सिराजुद्दौला ने सच्ची गम्भीरता के साथ वाट्सन को उत्तर दिया :—

"कुछ दिन हुए आपने मुझे जो पत्र लिखा था उसका उत्तर मैं दे चुका हूं। जो कुछ मैंने (दिल्ली सम्राट के विषय में) लिखा है उस पर ग़ौर करके कृपा कर मुझे जल्दी जवाब भेजिये। मैं इस बात पर पक्का और जमा हुआ हूं कि जो सन्धि हमने आपस में की है उसकी शर्तों पर क़ायम रहूँ, किन्तु होली की छुट्टियों की वजह से, जिनमें मेरे बनिये (ख़ज़ांची आदि) और मंत्री दरबार में नहीं आते, मुझे उन शर्तों पर कारवाई मुतलवी करनी पड़ी। होली ख़तम होते ही जिन जिन बातों पर मैंने दस्तख़त किए हैं उन्हें ठीक ठीक पूरा कर दूँगा। आप समझ सकते हैं कि इस देरी का कोई इलाज नहीं × × × मैं जो सन्धि एक बार कर लेता हूँ उसे तोड़ना मेरे यहाँ का रिवाज नहीं है, इसलिए आप तसल्ली रखिए कि जो सन्धि मैंने अंगरेज़ों के साथ की है उसे टालने का मैं प्रयत्न न करूँगा × × ×।

---

nates and I make little doubt but that all his engagements will be duly executed' — Clive's letter to the Select Committee, dated 30th March 1757—*Bengal Records*, vol ii, p 308

"× × ×

"आप यक़ीन रखिये कि यदि कोई शख़्स या गिरोह आपसे लड़ने की कोशिश करेगा या आपसे दुश्मनी का व्यवहार करेगा तो मैं ख़ुदा की क़सम खा चुका हूँ कि मैं आपकी मदद करूँगा। फ्रांसीसियों को मैंने कभी एक कौड़ी भी नहीं दी और जो सेना मैंने हुगली भेजी है वह वहाँ के फ़ौजदार नन्दकुमार के पास भेजी गई है। फ्रांसीसी कभी आपसे लड़ाई छेड़ने का साहस न करेंगे और मैं विश्वास करता हूं कि पुराने रिवाज को क़ायम रखते हुए गंगा प्रांत के अंदर या उन प्रांतों में जिनका मैं सूबेदार हूँ, आप भी किसी तरह की लड़ाई न छेड़ेंगे।"*

अंगरेज़ी सेना के अत्याचार

इसके बाद ज्योंही सिराजुद्दौला को मालूम हुआ कि मुझे मदद देने के बहाने अंगरेज़ी सेना कलकत्ते से चलकर वास्तव में चन्द्रनगर पर हमला करने जा रही है, उसने फ़ौरन अंगरेज़ों को लिख भेजा—"मुझे अब आपकी मदद की ज़रूरत नहीं है।" किन्तु नवाब की इस आज्ञा और अलीनगर की सन्धि दोनों के ख़िलाफ़ अंगरेज़ी सेना नवाब के मुल्क और उसकी रिआया दोनों को रौंदती हुई चन्द्रनगर की ओर बढ़ी। मार्ग में स्थान स्थान पर उन्होंने सिराजुद्दौला की भारतीय प्रजा पर ख़ूब जी खोलकर अत्याचार किए। उधर अंगरेज़ एलची वाट्स मुर्शिदाबाद में बैठा हुआ नित्य नई शर्तें सिराजुद्दौला के सामने पेश कर रहा था। जब अंगरेज़ी सेना के अत्याचारों की ख़बर सिराजुद्दौला के कानों तक पहुँची तो

---

* Ives *Voyages*, pp 124-125

उसने दुखी होकर २२ मार्च सन् १७५७ को ऐडमिरल वाट्सन के नाम यह पत्र भेजा :—

सिराजुद्दौला की सद्आशाएं

"मैंने जो कुछ वादा किया है और दस्तख़त किए हैं उस पर मैं पक्का रहूंगा और किसी तरह भी उससे न हटूँगा। वाट्स साहब की सब इच्छाएँ और जो कुछ उन्होंने मुझसे कहा मैंने सब पूरा कर दिया और जो कुछ बाक़ी है वह भी इस चाँद की पन्द्रह तारीख़ तक दे दिया जायगा। वाट्स साहब ने ये सब बातें मुफ़स्सिल तौर पर आपको लिखी होंगी। किन्तु बावजूद इस सब के मुझे अनेक बातों से मालूम होता है कि आप मेरे साथ अपनी सन्धि को मिटा देना चाहते हैं। हुगली, हुंगली, बर्धमान और नदिया के इलाक़ों को आपकी सेना ने वीरान कर डाला है। यह क्यों? इसके अलावा गोविन्दराम मित्र ने रामदीन घोष के लड़के की मार्फ़त (हुगली के फ़ौजदार) नन्दकुमार को लिख भेजा है कि कालीघाट का इलाक़ा कलकत्ते के ज़िले में शामिल है इसलिए वह गोविन्दराम के हवाले कर दिया जाय। इसका क्या अर्थ है? × × × आपके वादों पर विश्वास करके मैंने सुलह की थी ताकि देश का भला हो और दोनों ओर की सेनाओं द्वारा शाही इलाक़ों की बरबादी न हो, न कि इसलिए कि प्रजा को पाँव तले कुचला जावे और सरकारी मालगुज़ारी में बाधा पड़े।

"आपकी कोशिश यह होनी चाहिये कि जो मित्रता हमारे आपके बीच जड़ पकड़ गई है वह दिन प्रतिदिन मज़बूत होती जावे × × ×।"

एक ओर भोला सिराजुद्दौला अभी तक इन विदेशियों के साथ अमन से रहने के स्वप्न देख रहा था, दूसरी ओर क्लाइव और

वाट्सन की सलाह से मुर्शिदाबाद के दरबार में बैठा हुआ वाट्स सिराजुद्दौला को बंगाल की मसनद से उतार कर किसी दूसरे को उसकी जगह बैठाने और देश में ग़दर करा देने की साज़िशों में लगा हुआ था। इतिहास लेखक एस० सी० हिल लिखता है :—

मुर्शिदाबाद में वाट्स की साज़िशें

"अंगरेज़ एलची की थैली अधिक लम्बी थी, इसलिए वह न केवल दरबार के ख़ास ख़ास आदमियों बल्कि नवाब के मंत्रियों पर भी प्रभाव जमा सका। चतुर तथा दूरअंदेश अमींचन्द से उसे ख़ूब सहायता मिली।"*

किन्तु वाट्स कोई थैली अपने साथ यूरोप से न लाया था। वास्तव में अमींचन्द की थैली ही इस समय अंगरेज़ों की थैली थी। जिन भारतीय देशद्रोहियों ने इस साज़िश में अंगरेज़ों का साथ दिया उनमें मुख्य राजा मानिकचन्द, राजा राजवल्लभ, राजा दुर्लभ-राम, मीर जाफ़र और दो जैन सेठ थे। इनमें से हरएक अपना अपना स्वार्थ पूरा करना चाहता था। जैन सेठ दो भाई थे जो शाही ख़ज़ाञ्ची, तमाम सूबे के सरकारी साहूकार और शाही टकसालों के ठेकेदार थे। ये लोग अपने किसी नीच स्वार्थ के लिए सिराजुद्दौला के एक मुलाज़िम यारलुत्फ़ ख़ाँ को मसनद पर बैठाना चाहते थे। किन्तु मीर जाफ़र सिराजुद्दौला के नाना अलीवर्दी ख़ाँ का बहनोई था, उसका प्रभाव अधिक था, इसलिए अंगरेज़ उसे नवाब बनाना

* "The British agent, having the deeper purse, was able to influence not only the leading men at court, but also the secretaries, and was much assisted by the foresighted cunning of Aminchand."—*Bengal Records*, vol i. p clxxvii

चाहते थे। २६ अप्रैल तक वाट्स ने मीर जाफ़र को राज़ी करके क्लाइव को पत्र लिखा कि—"मीर जाफ़र और उसके साथी नवाब को मसनद से उतारने में अंगरेज़ों को मदद देने के लिए तैयार हैं" और यह भी लिखा :—

"यदि आप इस दूसरी तरकीब को पसन्द करें जो उस तरकीब की निसबत जो मैं इससे पहले लिख चुका हूं ज़्यादा आसान है, तो मीर जाफ़र चाहता है कि आप अपनी तजवीज़ें लिख भेजें कि आप कितना धन और कितनी ज़मीन चाहते हैं और सन्धि की क्या शर्तें होंगी।"*

क्लाइव के दो रुख़े पत्र

क्लाइव ने इस समय फिर दोरुख़ी चाल चली। एक ओर उसने सिराजुद्दौला को धोखे में रखने के लिए उसे एक अत्यन्त प्रेम भरा पत्र लिखा और दूसरी ओर मीर जाफ़र के लिए वाट्स की असली बात का जवाब दिया। प्रसिद्ध इतिहास लेखक मैकॉले लिखता है :—

"क्लाइव ने सिराजुद्दौला को इतने प्रेमभरे शब्दों मे पत्र लिखा कि उन शब्दों के धोखे में आकर वह निर्बल नरेश फिर कुछ समय के लिए अपने तई पूरी तरह सुरक्षित समझने लगा। क्लाइव अपने इस पत्र को 'सान्त्वना देने वाला पत्र' कहता है। जो हरकारा इस पत्र को लेकर गया वही एक दूसरा पत्र वाट्स साहब के नाम लेकर गया, जिसमें लिखा था—'मीर जाफ़र से कह दो कि किसी बात से न डरे। मैं पाँच हज़ार ऐसे सिपाही लेकर जिन्होंने

---

* "If you approve of this scheme, which is more feasible than the other, I wrote about, he (Mir Jaffir) requests you will write your proposals of what money, what land you want or what treaties you will engage in"—Watts' letter to Calcutta dated 26th April, 1757

कभी पीठ नहीं दिखाई उससे जा मिलूँगा। उसे विश्वास दिला दो कि मैं दिन दिन भर और रात रात भर चल कर उसकी मदद के लिए पहुँचूँगा और जब तक मेरे पास एक आदमी भी बचेगा तब तक उसका साथ न छोडूँगा'।"†

फ्रांसीसियों के साथ सन्धि का उल्लंघन

किन्तु चन्दरनगर अंगरेज़ों के हाथों में जाने के समय से सिराजुद्दौला का हृदय बहुत कुछ सशंक हो गया था। चन्दरनगर की विजय के बाद अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसके विरुद्ध अंगरेज़ों ने सिराजुद्दौला के सामने अब यह एक और नई माँग पेश की कि कासिमबाज़ार, ढाका, पटना, जूदा, बालेश्वर इत्यादि में फ्रांसीसियों की जितनी कोठियाँ हैं और जितने फ्रांसीसी आपके राज में हैं उन सबको आप हमारे सुपुर्द कर दें। फ्रांसीसियों को बंगाल के अंदर कोठियाँ बनाने और व्यापार करने की इजाज़त ठीक उसी तरह दिल्ली सम्राट से मिली हुई थी जिस तरह अंगरेज़ों को। अभी तक फ्रांसीसियों ने न कभी सम्राट या उसके सूबेदार की किसी आज्ञा को भंग किया था और न उन्हें किसी तरह का कष्ट पहुँचाया था। इसलिए अंगरेज़ों की इस बेजा माँग के उत्तर में सिराजुद्दौला ने १४ अप्रैल को वाट्सन को लिख दिया:—

† "He (Clive) wrote to Surajuddowla in terms so affectionate that they for a time lulled that weak prince into perfect security. The same courier who carried this 'Soothing letter,' as Clive calls it, carried to Mr Watts a letter in the following terms 'Tell Mir Jaffir to fear nothing. I will join him with five thousand men who never turned their backs. Assure him, I will march night and day to his assistance, and stand by him as long as I have a man left.' "— Macaulay's *Essay on Clive*

"मैं पहले भी लिख चुका हूँ और फिर लिखता हूँ कि यदि अंगरेज़ कम्पनी अपना व्यापार क़ायम करना चाहती है तो मुझे कोई ऐसी बात न लिखी जावे जो हमारी सन्धि के अनुकूल न हो, × × × अगर आप मुझसे लड़ाई करना नहीं चाहते तो मेरी मोहर लगी हुई और मेरी दस्तख़ती सन्धि आप के पास है, जब कभी पत्र लिखना हो तो उसे देख कर उसके अनुसार लिखिए × × ×।

"यदि आप शान्ति क़ायम रखना चाहते हैं तो सन्धिपत्र के विरुद्ध कोई बात न लिखिए।"*

मीरजाफ़र के साथ गुप्त सन्धि

किन्तु इस दरमियान वाट्सन, क्लाइव, वाट्स और मीर जाफ़र के बीच साज़िश क़रीब क़रीब पक चुकी थी। ४ जून सन् १७५७ ई० को आधी रात के बाद एक ज़नानी पालकी में बैठ कर चोरी चोरी वाट्स ने मीर जाफ़र के महल में प्रवेश किया। उसी रात को मीर जाफ़र ने अंगरेज़ों के साथ एक गुप्त सन्धिपत्र पर दस्तख़त कर दिए।

इस सन्धिपत्र की १३ शर्तों का सार इस प्रकार है :—

जितने अधिकार सिराजुद्दौला ने अंगरेज़ों को दे रक्खे थे, मीर जाफ़र सूबेदार बनने पर उन सबको क़ायम रक्खे। अंगरेज़ और मीर जाफ़र दोनों में से किसी की जब कभी किसी तीसरे के साथ लड़ाई हो तो दूसरा उसकी मदद करे। तमाम फ़्रांसीसी और उनकी कोठियाँ अंगरेज़ों के हवाले कर दी जायँ और फ़्रांसीसियों को बंगाल में न रहने दिया जाय। कलकत्ते की तबाही के हरजाने

* Ive's *Voyages*, p 142

में और लड़ाई के ख़र्च के लिए मीर जाफ़र कम्पनी को एक करोड़ रुपए दे। इसके अलावा अलग अलग लोगों के नुकसानों के लिए कलकत्ते के अंगरेज़ बाशिंदों को ५० लाख, हिन्दू बाशिंदों को २० लाख और आरमीनियन बाशिंदों को ७ लाख रुपए दिए जायँ। कलकत्ते की ख़ंदक़ के अंदर और बाहर चारों ओर ६०० गज़ तक की ज़मीन अंगरेज़ों को दे दी जाय, साथ ही कलकत्ते के दक्खिन में हुगली नदी और नमक की झीलों के दरमियान कालपी (बंगाल) तक तमाम इलाक़े की ज़मींदारी अंगरेज़ों को दे दी जाय। जब कभी अपनी रक्षा के लिए नवाब को अंगरेज़ी सेना की ज़रूरत हो, नवाब उसका ख़र्च अदा करे। हुगली के नीचे दरिया के ऊपर नवाब किसी तरह की क़िले बंदी न करे। मसनद पर बैठने के तीस दिन के अंदर मीर जाफ़र इन शर्तों को पूरा कर दे और जब तक वह इस सन्धि के अनुसार चलता रहेगा, कम्पनी उसे उसके शत्रुओं को दमन करने में मदद देती रहेगी।

दोनों ओर से सेनाओं का कूच

साज़िश अब पूरी तरह पक चुकी थी, किन्तु वाट्स और कई अंगरेज़ अभी तक मुर्शिदाबाद में मौजूद थे। लड़ाई का खुला एलान करने से पहले उन्हें वहाँ से हटा लेना ज़रूरी था।

१२ जून की शाम को 'बाग़ों में हवा ख़ोरी करने'* के लिए वाट्स और उसके अंगरेज़ साथियों ने नवाब से इजाज़त ली और इस बहाने रातों रात वे मुर्शिदाबाद से भाग

* Ive's *Voyages*, p 143

निकले। अगले दिन जब सिराजुद्दौला को इस छल का पता चला, तो उसने क्लाइव और वाट्सन को इस घटना की सूचना देते हुए दुख के साथ लिखा :—

"× × × इससे साफ़ धोखा साबित होता है और सन्धि तोड़ने का इरादा ज़ाहिर होता है × × ×।

"ख़ुदा का शुक्र है कि सन्धि मेरी ओर से भंग नहीं की गई, ख़ुदा और रसूल के सामने हमने आपस में सुलह की थी और जो कोई पहले उसका उल्लङ्घन करेगा अपने किए की सज़ा पावेगा।"

निस्सन्देह सिराजुद्दौला और उसके विपक्षियों के चरित्र में आकाश पाताल का अंतर था। भोले सिराजुद्दौला ने क्लाइव के 'प्रेम भरे पत्रों' पर विश्वास करके हाल ही में अपनी आधी सेना तक बरख़ास्त कर दी थी।

१२ जून को मीर जाफ़र की ओर से कलकत्ते पत्र पहुँचा, जिसमें लिखा था कि "यहाँ सब काम तैयार है"। अगले दिन १३ जून को अंगरेज़ी सेना ने कलकत्ते से कूच किया।

सिराजुद्दौला को भी अब मजबूर होकर अपनी सेना मैदान में निकालनी पड़ी। सिराजुद्दौला की इतनी बेपरवाही और उसका आत्मविश्वास झूठा न था। सिराजुद्दौला की सेना अब भी क्लाइव और उसकी समस्त सेना को थोड़े से समय के अंदर निर्मूल कर देने के लिए काफ़ी थी। किन्तु वही मीर जाफ़र इस समय सिराजुद्दौला का प्रधान सेनापति था। पुराने हिन्दोस्तानी रिवाज के अनुसार सिराजुद्दौला स्वयं मीर जाफ़र के महल में

पहुँचा और उससे अपनी पिछली तमाम भूलों के लिए क्षमा माँग कर प्रेम की प्रार्थना की। मीर जाफ़र ने कुरान हाथ में लेकर सिराजुद्दौला के सामने वफ़ादारी की क़सम खाई। सिराजुद्दौला को अविश्वास का कोई सबब न हो सकता था।

मुर्शिदाबाद से २० मील दूर पलाश वृक्षों का एक बन था, जिसे पलाशी बाग़ भी कहते थे। उसी बन के पास प्लासी नामक गाँव में बृहस्पतिवार २३ जून सन् १७५७ ईसवी को दोनों सेनाओं का आमना सामना हुआ। प्रधान सेनापति मीर जाफ़र के अलावा सिराजुद्दौला की सेना में तीन और मुख्य सेनापति थे यारलुत्फ़ ख़ाँ, राजा दुर्लभराम और मीर मुइउद्दीन जिसे मीर मदन भी कहते थे। ४५००० सेना मीर जाफ़र, यारलुत्फ़ ख़ाँ और राजा दुर्लभराम के अधीन थी। १२००० मीर मदन के अधीन थी। सिराजुद्दौला का एक ख़ास प्रेमपात्र मोहनलाल भी मीर मदन के साथ था। थोड़ी ही देर के युद्ध में क्लाइव की कायरता और अकुशलता दोनों साफ़ चमकने लगीं। विजय साफ़ सिराजुद्दौला की ओर नज़र आती थी। ऐन मौक़े पर मीर जाफ़र का रुख़ बदलता हुआ दिखाई दिया। करनल मालेसन लिखता है कि ख़बर पाते ही सिराजुद्दौला ने अपना सन्देह दूर करने के लिए मीर जाफ़र को अपने पास बुलवाया। उसने मीर जाफ़र को अपने और मीर जाफ़र के सम्बन्ध और अपने नाना अलीवर्दी ख़ाँ की याद दिलाई। इसके बाद अपनी पगड़ी सर से उतार कर सिरा-

प्लासी की लड़ाई

जुद्दौला ने मीरजाफ़र के सामने ज़मीन पर फेंक दी और कहा— "मीर जाफ़र इस पगड़ी की लाज तुम्हारे हाथों में है !" मीर जाफ़र ने बड़े आदर के साथ पगड़ी उठाकर सिराजुद्दौला के हाथों में दी और अपने दोनों हाथ छाती पर रख कर बड़ी गम्भीरता के साथ फिर एक बार झुक कर सिराजुद्दौला की वफ़ादारी की क़सम खाई। निस्सन्देह मीर जाफ़र उस समय अपनी आत्मा और सिराजुद्दौला दोनों को जान बूझकर धोखा दे रहा था। वह विश्वासघात पर कमर कस चुका था। सिराजुद्दौला के सामने से हटते ही उसने फ़ौरन एक पत्र द्वारा क्लाइव को इस तमाम घटना की सूचना दी।

सिराजुद्दौला की सेना में मीर जाफ़र ही अकेला विश्वासघातक न था। वास्तव में उसकी अधिकांश सेना विश्वासघातकों से चलनी चलनी हो चुकी थी। राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ ख़ाँ भी अपने तईं शत्रु के हाथ बेच चुके थे। ऐन मौक़े पर जब कि विजय सिराजुद्दौला के पैरों के पास खेलती दिखाई देती थी। मीर जाफ़र, राजा दुर्लभराम और यारलुत्फ़ ख़ाँ तीनों अपनी ४५००० सेना सहित मुड़ कर अंगरेज़ों की ओर जा मिले। थोड़ी देर बाद सिराजुद्दौला का एक मात्र वफ़ादार सेनापति मीर मदन भी मैदान में काम आया। करनल मालेसन लिखता है कि जब तक वीर मीर मदन ज़िन्दा रहा वह अपनी केवल १२००० सेना से तीनों विश्वासघातकों के प्रयत्नों को निष्फल करता रहा। उसके जीते जी अंगरेज़ी सेना के लिए अपने पैर जमा सकना सर्वथा असम्भव था। किन्तु

मीर मदन की मृत्यु से सिराजुद्दौला लाचार हो गया। उसका दिल टूट गया। आज तक प्लासी गाँव के लोग मीर जाफ़र की दग़ा और मीर मदन की वफ़ादारी दोनों का अत्यन्त करुणा भरे शब्दों में ज़िक्र करते हैं।

थोड़े से रक्तपात के बाद २३ तारीख़ की शाम तक असहाय सिराजुद्दौला को अपने हाथी पर सवार होकर मुर्शिदाबाद की ओर भागना पड़ा। मैदान क्लाइव और मीर जाफ़र के हाथों में रहा।

सुप्रसिद्ध अंगरेज़ इतिहास लेखक करनल मालेसन उस दिन की लड़ाई के विषय में लिखता है :—

"केवल उस समय जब कि विश्वासघातकता अपना काम कर चुकी, जब कि विश्वासघातकता ने नवाब को मैदान से बाहर निकाल दिया, जबकि विश्वासघातकता नवाब की सेना को ऊँचे और दुर्जेय स्थान से हटा चुकी, केवल उस समय क्लाइव आगे बढ़ सका, इससे पहले क्लाइव के आगे बढ़ने में उसका (और उसकी सेना का) नेस्त नाबूद हो जाना असन्दिग्ध था।"*

मीर जाफ़र का पाप

क्लाइव ने अपनी सेना सहित पास के गाँव दादपुर में रात गुज़ारी। शुक्रवार २४ ता० को सवेरे क्लाइव ने मीर जाफ़र को अपने ख़ेमे में बुलाया। मीर जाफ़र अपने बेटे मीरन को लेकर क्लाइव के ख़ेमे में पहुँचा। मालूम होता है मीर जाफ़र का पाप इस समय

* "It was only when treason had done her work, when treason had driven the Nawab from the field, when treason had removed his army from its commanding position, that Clive was able to advance without the certainty of being annihilated"—Colonel Malleson in *Decisive Battles of India*, p 73

उसकी छाती पर सवार था। सम्भव है क्लाइव की ओर से भी मीर जाफ़र के दिल में दग़ा का डर रहा हो। क्लाइव के सामने पहुँचते ही ठीक उस समय जब कि गारद उसकी पेशवाई के लिए आगे बढ़ी, मीर जाफ़र घबराकर चौंक पड़ा। उसका चेहरा एक दम स्याह पड़ गया। क्लाइव ने फ़ौरन उसे गले लगाकर 'तीनों प्रान्तों का सूबा' कह कर सलाम किया। मीर जाफ़र सँभला। क्लाइव ने उसे विश्वास दिलाया कि अंगरेज़ धर्म समझ कर अपने वादों को पूरा करेंगे। इसके बाद क्लाइव ने उसे सिराजुद्दौला का पीछा करने की सलाह दी। फ़ौरन वहाँ से कूच कर २५ तारीख़ को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुँचा।

सिराजुद्दौला फ़क़ीरी बेष में

एक दिन पहले यानी २४ को सवेरे सिराजुद्दौला मुर्शिदाबाद पहुँच चुका था। सिराजुद्दौला का ख़ज़ाना लबालब भरा हुआ था। धन को पानी की तरह बहाकर उसने फिर एक बार फ़ौज खड़ी करने और अपनी क़िस्मत आज़माने का प्रयत्न किया। किन्तु प्लासी की पराजय की ख़बर सारे देश में बिजली की तरह फैल चुकी थी। सिराजुद्दौला के इक़बाल का सूर्य अब अस्त हो रहा था और अस्त होने वाले सूर्य की पूजा कोई नहीं करता। सिराजुद्दौला ने देख लिया कि अब कोई मेरा साथ देने के लिए तैयार नहीं है। उसके कुछ दरबारियों ने उसे सलाह दी कि आप हार मानकर विदेशियों के साथ सन्धि कर लें, किन्तु उस वीर ने अत्यन्त तिरस्कार के साथ इस सलाह को ठुकरा दिया। अंत में देशद्रोही मीर जाफ़र के आने

की ख़बर सुनकर और कोई चारा न देख २४ जून की आधी रात को सिराजुद्दौला केवल अपने तीन अनुचरों सहित महल की एक खिड़की से होकर फ़क़ीर के वेष में भगवान गोला नामक नगर की ओर निकल गया।

२५ जून को सवेरे मीर जाफ़र मुर्शिदाबाद पहुँचा, उसके पीछे पीछे २६ को क्लाइव अपनी सेना सहित मुर्शिदाबाद आया। किन्तु तीन दिन तक क्लाइव मुर्शिदाबाद से लगभग छै मील बाहर सय्यदाबाद की फ्रांसीसी कोठी में ठहरा रहा। उसके अपने पत्र से ज़ाहिर है कि वह इस समय एकाएक मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश करने से डरता था।

२६ ता० को मीर जाफ़र से समय निश्चित करके २०० गोरे और ५०० हिन्दोस्तानी सिपाहियों सहित विजयी क्लाइव ने मुर्शिदाबाद के शहर में प्रवेश किया। कुछ दिनों बाद क्लाइव ने पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा :—

"नगर के लोग, जो उस अवसर पर तमाशा देख रहे थे, कई लाख अवश्य रहे होंगे; और यदि वे चाहते तो लकड़ियों और पत्थरों से हम यूरोपियन लोगों को वहीं ख़तम कर सकते थे।"*

यह अनुमान करना अब निरर्थक है कि यदि मुर्शिदाबाद के बाशिन्दे उस समय ऐसा कर बैठते तो भारत के बाद के इतिहास

* "That the inhabitants, who were spectators upon that occasion, must have amounted to some hundred thousands, and if they had an inclination to have destroyed the Europeans they might have done it with sticks and stones"—Clive's Evidence Before the Parliamentary Committee

ने किस ओर पलटा खाया होता। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय क्लाइव ने नवाब मीर जाफ़र के एक पक्ष-समर्थक की हैसियत से मुर्शिदाबाद में प्रवेश किया। बहुत सम्भव है कि यदि नगर निवासियों को उस समय क्लाइव के वास्तविक रूप का पता होता, यदि उन्हें मालूम होता कि क्लाइव और उसके साथी इन चालों से अन्दर ही अन्दर भारत की आज़ादी छीनने की कोशिशें कर रहे हैं, तो बहुत सम्भव है नगर निवासियों का व्यवहार क्लाइव के साथ कुछ दूसरा ही होता। किन्तु अभी तो विश्वासघातक मीर जाफ़र की आँखें खुलने में भी कुछ समय बाक़ी था।

मुर्शिदाबाद की उस समय की अवस्था के विषय में क्लाइव लिखता है :—

मुर्शिदाबाद उस समय और आज

"मुर्शिदाबाद का शहर उतना ही लम्बा, चौड़ा, आबाद और धनवान है जितना कि लंदन शहर; फ़रक़ इतना है कि लंदन के धनाढ्य से धनाढ्य मनुष्य के पास जितनी सम्पत्ति हो सकती है, उससे बेइन्तहा ज़्यादा सम्पत्ति मुर्शिदाबाद में अनेकों के पास मौजूद है।"

आज मुर्शिदाबाद भागीरथी नदी के तट पर ३५००० मनुष्यों की एक छोटी सी बस्ती है, जिसकी आबादी प्रति वर्ष घटती जा रही है और जिसमें यात्रियों के देखने के लिए पुराने महलों के खंडहर और कुछ क़बरें मौजूद हैं। उद्योग धन्धों में वहाँ पर रेशमी वस्त्रों की बुनाई, हाथी दाँत का काम और कपड़े पर सोने चाँदी के काम अभी तक प्रसिद्ध हैं, किन्तु अब अर्से से ये सब धन्धे भी मृतप्राय हो रहे हैं।

२६ ता० का तीसरा पहर मीर जाफ़र के मसनद पर बैठाए जाने के लिए नियत था। मालूम होता है उसकी आत्मा भीतर से अशान्त थी। ऐन मौक़े पर उसने सिराजुद्दौला की मसनद पर बैठने से इनकार कर दिया। क्लाइव को उसका हाथ पकड़ कर उसे मसनद पर बैठाना पड़ा। पहले क्लाइव नए नवाब के सामने आकर आदाब बजा लाया और फिर बाक़ी दरबारियों ने दरजा बदरजा सलामियाँ दीं।*

मीर जाफ़र का मसनद पर बैठाया जाना

कम्पनी और उसके मददगारों के लिए अब मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने से अपनी अपनी जेबें भरने का समय आया। ख़ज़ाने की जाँच पड़ताल के लिए एक दिन नियत किया गया। यह कार्य दोनों जैन जगतसेठों के सुपुर्द किया गया। क्लाइव और उसके साथियों ने जब देखा कि मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की हालत, जो उन्होंने सुन रक्खी थी वह अब न थी, तो वे इस बात पर राज़ी होगए कि मीरजाफ़र ने जितना धन उन्हें देने का वादा किया था उसमें आधा फ़ौरन अदा कर दे और आधा तीन साल के अन्दर तीन क़िस्तों में दे दे। क्लाइव का परम मित्र अंगरेज़ इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है :—

मुर्शिदाबाद की लूट

"× × × ६ जुलाई सन् १७५७ ईसवी तक (कलकत्ते की अंगरेज़) कमेटी के पास चाँदी के सिक्कों में ७२,७१,६६६ रुपये पहुँच गए। यह ख़ज़ाना सात सौ सन्दूक़ों में भर कर सौ किश्तियों पर लादा गया। सैनिकों

* Clive's Letter to the Select Committee, dated 30th June 1757

की निगरानी में यह किश्तियाँ नदियां गई। वहां से (अंगरेज़ी) जंगी जहाज़ों की तमाम किश्तियों और अन्य किश्तियों को साथ लेकर, झंडे फहराते हुए और विजय का बाजा बजाते हुए आगे बढ़ीं × × × इससे पहले कभी भी अंगरेज़ क़ौम को एक साथ इतना अधिक नक़द धन कहीं किसी लड़ाई में न मिला था।"*

अमींचन्द के साथ दग़ा

बटवारे के समय छोटे से छोटे अंगरेज़ अफ़सर को कम से कम ४५,००० रु० दिए गए; किन्तु अपने हिन्दोस्तानी मददगारों के साथ क्लाइव और उसके साथियों ने फिर एक बार दग़ा की। इस तमाम साज़िश में आदि से अन्त तक मुख्यतम हिस्सा अमींचन्द का था। निस्सन्देह बिना अमींचन्द की सहायता के न बंगाल में अंगरेज़ों का व्यापार इतना बढ़ पाता, न वे चन्द्रनगर विजय कर सकते, और न सिराजुद्दौला सूबेदारी की मसनद से उतारा जा सकता। आज ही के दिन की आशा में अमींचन्द ने सिराजुद्दौला के भारतीय दरबारियों और मुलाज़िमों को विदेशी अंगरेज़ों की ओर से रिशवतें देने में अपने धन को पानी की तरह बहाया था। अमींचन्द ने

* "The committee by the 6th of July 1757 received, in coined silver 72 71 666 rupees This treasure was packed up in 700 chests and laden in 100 boats which proceeded under the care of soldiers to Nadiya, from whence they were escorted by all the boats of the squadron and many others, proceeding with banners displayed and music sounding, of a triumphal procession Never before did the English nation at one time obtain such a prize in solid money"—Orme's *History of Indostan*, vol ii pp 187, 188

अपनी आत्मा के साथ, अपने राजा और मालिक के साथ और अपनी क़ौम के साथ दग़ा की, किन्तु अंगरेज़ों के साथ उसका व्यवहार बराबर सच्चा रहा। कहते हैं कि चोर चोर आपस में एक दूसरे के साथ बड़ा सच्चा व्यवहार करते हैं; किन्तु क्लाइव, वाट्सन इत्यादि का व्यवहार अमींचन्द के साथ इसके विपरीत रहा।

जो सन्धि अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र के साथ की उसमें १३ शर्तें थीं। अमींचन्द का उनमें कहीं ज़िक्र न था। यह सन्धि सफ़ेद काग़ज़ पर लिखी हुई थी। उसी के साथ एक दूसरी जाली सन्धि १४ शर्तों की लाल काग़ज पर लिख कर अमींचन्द को दिखाई गई थी, जिसमें एक १४ वीं शर्त यह भी थी कि मीर जाफ़र को गद्दी दिए जाने के समय अमींचन्द को ३० लाख नक़द और उसके अलावा नवाब के तमाम ख़ज़ाने का पाँच फ़ी सैकड़ा दिया जायगा। वाट्सन ने इस जाली सन्धि पर दस्तख़त करने से इनकार कर दिया था, किन्तु क्लाइव ने लुशिङ्गटन नामक एक शख़्स के हाथ से वाट्सन के जाली दस्तख़त उस पर बनवा दिए थे।

मीर जाफ़र के नवाब बन जाने के बाद एक दिन जगतसेठ के मकान पर जब पहली बार सन्धिपत्र पढ़कर सुनाया गया तो अमींचन्द चकित होकर चिल्ला पड़ा—"यह वह सन्धि नहीं हो सकती, जो मैंने देखी थी— वह लाल काग़ज पर थी।" इस पर क्लाइव ने शान्ति के साथ उत्तर दिया—"ठीक है अमींचन्द, किन्तु यह सन्धि सफ़ेद काग़ज पर लिखी हुई है।"*

* Clive's evidence before the Parliamentary Committee

अमींचन्द के दिल पर इस का ज़बरदस्त सदमा हुआ। बाद में स्वास्थ्य ठीक करने के लिए क्लाइव ने उसे तीर्थयात्रा की सलाह दी। वह तीर्थयात्रा के लिए गया, किन्तु इसी सदमे से डेढ़ साल के अन्दर अमींचन्द की मृत्यु हो गई।

उन दिनों इंगलिस्तान में जालसाज़ी की सज़ा मौत थी। किन्तु क्लाइव ने पार्लिमेण्ट की कमेटी के सामने बड़े गर्व के साथ अपनी इस जालसाज़ी का ज़िक्र किया और उसके बदले में क्लाइव को "लॉर्ड" की उपाधि दी गई, इंगलिस्तान में क्लाइव का बुत खड़ा किया गया और उसके सम्मान तथा प्लासी की लड़ाई की यादगार में तमग़े ढाले गए।

सिराजुद्दौला की हत्या

चन्द रोज़ के अन्दर सिराजुद्दौला राजमहल नामक स्थान पर गिरफ़्तार कर लिया गया। अपने उस वीर तथा शाही शत्रु के साथ कम्पनी का व्यवहार अत्यन्त लज्जाजनक रहा। २ जुलाई को वह मुर्शिदाबाद लाया गया। कहा जाता है कि मीर जाफ़र उसे आदर के साथ मुर्शिदाबाद में नज़रबन्द रखना चाहता था। किन्तु उसी रात को एक मनुष्य मोहम्मद बेग ने सिराजुद्दौला को क़त्ल कर डाला। अगले दिन सिराजुद्दौला का कटा हुआ शरीर हाथी पर रखकर मुर्शिदाबाद की गलियों में घुमाया गया।

फ़ारसी पुस्तक "रियाज़ुस्सलातीन" का मुसलमान रचयिता लिखता है :—

"अंगरेज़ सरदारों और जगत सेठ की साज़िश से सिराजुद्दौला को क़त्ल किया गया।"

सिराजुद्दौला की हत्या के दो दिन बाद क्लाइव ने सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र में बड़े गर्व के साथ अपने अंगरेज़ मालिकों को सूचना दी—

"महाशयगण, सिराजुद्दौला ख़तम हो चुका। नवाब उसकी जान बख़्शना चाहता था, किन्तु नवाब के पुत्र मीरन और 'बड़े लोगों' ने देश के अमन के लिए उसे मार डालना ज़रूरी समझा, क्योंकि उसके शहर के पास आते ही ज़मींदार लोग बलवा करने लगे थे।"

निस्सन्देह इन 'बड़े लोगों' में सब से मुख्य क्लाइव था!

सिराजुद्दौला का चरित्र

क्लाइव और उसके साथियों के दुष्कृत्यों पर परदा डालने के लिए अंगरेज़ इतिहास लेखकों ने आमतौर पर झूठे इलज़ामों और नई नई जालसाज़ियों द्वारा सिराजुद्दौला के चरित्र को कलङ्कित करने का पूरा पूरा प्रयत्न किया है। किन्तु सिराजुद्दौला की सच्चाई, उसकी वीरता, उसके सौजन्य, उसकी योग्यता, उसकी दयानतदारी और उसकी ईमानदारी में किसी तरह का भी सन्देह नहीं हो सकता। वास्तव में उसकी योग्यता के कारण ही इंगलिस्तान के ईसाई 'व्यापारियों' ने अपने और अपनी क़ौम के भावी हित के लिए उसका नाश करना आवश्यक समझा। उसका वह ख़ज़ाना भी जो चाँदी, सोने और जवाहरात से लबरेज़ था, इन विदेशियों के लिए काफ़ी लालच की चीज़ थी। उसमें दोष भी थे और वे दोष थे—विदेशियों

की चालों को न समझ सकना, उन पर विश्वास और दया करना और बार बार उनके साथ अमन से रहने की आशा करना। एक ओर सिराजुद्दौला के ये व्यक्तिगत दोष, दूसरी ओर भारतीय जनता में राजनैतिक जागृति और उससे उत्पन्न होने वाले राष्ट्रीयता के भावों की कमी और तीसरी ओर उच्च श्रेणी के भारतवासियों के चरित्र की लज्जास्पद स्वार्थपरायणता और विश्वासघातकता—इन तीनों ने मिलकर न केवल सिराजुद्दौला का ही अंत कर दिया वरन् सिराजुद्दौला की लाश के साथ साथ भारत की आज़ादी को भी सदियों के लिए दफ़न कर दिया।

क़त्ल के समय सिराजुद्दौला की आयु २५ साल की भी न थी। समस्त अंगरेज़ इतिहास लेखकों में शायद करनल मालेसन ही एक ऐसा है जिसने सिराजुद्दौला के साथ इन्साफ़ करने की कोशिश की है। वह लिखता है :—

"सिराजुद्दौला में और चाहे कोई भी दोष क्यों न रहा हो, उसने न अपने मालिक के साथ विश्वासघात किया और न अपने मुल्क को बेचा। इतना ही नहीं, वरन् कोई निष्पक्ष अंगरेज़ ६ फ़रवरी और २३ जून के बीच की घटनाओं पर इन्साफ़ से राय क़ायम करते हुए इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि शराफ़त के पैमाने पर सिराजुद्दौला का नाम क्लाइव के नाम से ऊँचा नज़र आता है। उस शोकान्त नाटक के प्रधान पात्रों में अकेला एक सिराजुद्दौला ही ऐसा था जिसने किसी को धोखा देने की कोशिश नहीं की।"*

* 'Whatever may have been his faults, Sirajuddowla had neither

पलाशी बाग़ का अन्त

इस परिस्थिति में और इस तरह के उपायों द्वारा प्लासी के सुप्रसिद्ध मैदान में हिन्दोस्तान के अंदर अंगरेज़ी राज की नींव रक्खी गई, जिसका मुख्य श्रेय निस्सन्देह क्लाइव ही को मिलना चाहिये। सम्भवतः उस दिन की लज्जास्पद स्मृति को मिटाने के लिए कुछ दिनों बाद प्लासी "पलाशी बाग़" के एक एक वृक्ष का ठूंठ और उनकी जड़ें तक खोदकर इंगलिस्तान पहुँचा दी गईं।

betrayed his master nor sold his country. Nay more, no unbiassed Englishman sitting in Judgment on the events which passed in the interval between the 9th February and the 23rd June can deny that the name of Sirajuddowla stands higher in the scale of honor than does the name of Clive. He was the only one of the principal actors in that tragic drama who did not attempt to deceive."—*Decisive Battles of India*, p 71.

तीसरा अध्याय

मीर जाफ़र

हिन्दू-मुसलिम पक्षपात का प्रारम्भ

विश्वासघात करने वालों में किसी तरह की भी उच्च मानसिक या नैतिक ख़ूबियों का मिलना क़रीब क़रीब नामुमकिन है। इसलिए कोई अचरज नहीं कि शासक की हैसियत से मीर जाफ़र अयोग्य, कमज़ोर और अदूरदर्शी साबित हुआ। इसके अलावा वह इस समय क्लाइव और उसके अंगरेज़ साथियों के हाथों की कठपुतली था। क्लाइव की इच्छा के ख़िलाफ़ वह कोई काम न कर सकता था। मुर्शिदाबाद के एक हाज़िर तबीयत दरबारी ने मीर जाफ़र का नाम "करनल क्लाइव का गधा" रख रक्खा था और मीर जाफ़र की मृत्यु के समय तक यह उपाधि उसके साथ लगी रही। दिल्ली सम्राट का दरबार इस समय तक काफ़ी निर्बल हो चुका

था और मालूम होता है कि सिराजुद्दौला की मृत्यु के बाद सूबेदारी की बाज़ाब्ता सनद मीर जाफ़र को दिल्ली दरबार से अता हो गई।

सिराजुद्दौला का नाना अलीवर्दी ख़ाँ इस बात को समझता था कि प्रजा के सुख और उनकी ख़ुशहाली को बढ़ाना और बिना मज़हब इत्यादि का ख़याल किए योग्य आदमियों को राज के उच्च से उच्च और ज़िम्मेदार ओहदों पर नियुक्त करना राजा का धर्म है; और इस धर्म के पालन करने से ही राज की जड़ें चिरस्थाई हो सकती हैं। इसलिए अपनी सूबेदारी में क़रीब क़रीब सब ऊँचे ओहदों पर उसने हिन्दुओं को नियुक्त कर रक्खा था। सिराजुद्दौला भी अपने थोड़े से शासनकाल में और ऐसे कठिन समय में, जब कि उसे रात दिन षड्यंत्रों और साज़िशों का मुक़ाबला करना पड़ता था, अपने नाना की इस उदार नीति का ठीक ठीक पालन करता रहा। अलीवर्दी ख़ाँ और सिराजुद्दौला दोनों अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा को एक आँख से देखते थे और उनके साथ एक समान बर्ताव करते थे। किन्तु यह एक विचित्र बात है कि बंगाल के शासन में अंगरेज़ों का दख़ल शुरू होते ही मुसलमान सूबेदारों की यह नीति एकदम बदल गई। नवाब मीर जाफ़र अली ख़ाँ ने मसनद पर बैठते ही हिन्दुओं को तमाम ऊँचे ऊँचे ओहदों से हटा कर उनकी जगह अपने सहधर्मी भरने शुरू कर दिए। यह नीति मीर जाफ़र और उसकी प्रजा दोनों के लिए अहितकर, किन्तु अंगरेज़ों के लिए हितकर थी, और इतिहास से ज़ाहिर है कि मीर

जाफ़र इस मामले में क्लाइव और उसके साथियों के इशारे पर चल रहा था और उन्हीं की संगीनों के बल सब खेल खेल रहा था।

सब से पहले इन लोगों ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी के अधीन बड़े बड़े प्रान्तों से हिन्दू नरेशों को हटाकर उनकी जगह मुसलमानों को नियुक्त करने के प्रयत्न शुरू किए।

राजा रामनारायन पर हमला

पहला हिन्दू नरेश, जिसे क्लाइव और मीर जाफ़र ने मिलकर मिटाना चाहा, बिहार प्रान्त का शासक राजा रामनारायन था। रामनारायन अलीवर्दी खाँ के खास आदमियों में से था और अलीवर्दी खाँ ने ही उसे बढ़ाकर इस उच्च पद तक पहुंचाया था। अलीवर्दी खाँ और सिराजुद्दौला दोनों का रामनारायन सदा वफ़ादार रहा। सिराजुद्दौला के विरुद्ध जो साज़िश की गई उसमें वह शामिल न था, किन्तु जब उसने सिराजुद्दौला के मारे जाने और मीर जाफ़र के मसनद पर बैठने की ख़बर सुन ली तो अपने प्रान्त में भी मीर जाफ़र की सूबेदारी का बाज़ाब्ता एलान करा दिया।

राजा रामनारायन पर अब यह इलज़ाम लगाया गया कि तुमने फ़ान्सीसियों को अपने यहाँ पनाह दे रक्खी है और अवध के नवाब वज़ीर के साथ मिलकर तुम मीर जाफ़र के ख़िलाफ़ साज़िश कर रहे हो। निस्सन्देह यह सब क़िस्सा केवल उसे बिहार की गद्दी से हटाने के लिए गढ़ा गया था।

६ जुलाई सन् १७५७ को क्लाइव के हुकुम से मेजर कूट २३० गोरे और क़रीब ३०० हिन्दोस्तानी सिपाही लेकर मुर्शिदाबाद से

पटने की तरफ़ रवाना हुआ। पहले बहाना यह लिया गया कि यह सेना फ़ान्सीसियों का पीछे करने के लिए भेजी जा रही है। किन्तु १२ अगस्त को मेजर कूट के पास क्लाइव का एक पत्र पहुँचा जिसमें क्लाइव ने उसे यह हिदायत की कि तुम पटने पहुँच कर मीर जाफ़र के एक भाई महमूद अमीन ख़ाँ के साथ मिलकर रामनारायन को गद्दी से हटाने का प्रयत्न करो।

कूट पटने पहुँचा, किन्तु उस थोड़ी सी सेना से रामनारायन को परास्त कर सकना नामुमकिन था। राजा रामनारायन को भी मेजर कूट के नाम क्लाइव के पत्र की कुछ ख़बर मिल गई थी। उसने धीरज से काम लिया। समझौते की बातचीत शुरू हुई। २२ अगस्त को रामनारायन के महल में सभा हुई। जितने इलज़ाम रामनारायन पर लगाए गए थे, उन सब को उसने शान्ति के साथ झूठा साबित किया। कूट और महमूद अमीन के साथ मीर जाफ़र का दामाद मीर क़ासिम भी मौजूद था। अन्त में एक ब्राह्मण को बुलाकर सब की मौजूदगी में राजा रामनारायन ने मीर जाफ़र को सूबेदार स्वीकार किया और उसकी वफ़ादारी की क़सम खाई। मीर क़ासिम और महमूद अमीन ने कुरान उठाकर अपने दिलों की सफ़ाई का एलान किया और फिर वे तीनों तथा मेजर कूट सब एक दूसरे से गले मिले। मेजर कूट अपनी सेना सहित ७ सितम्बर को पटने से चल कर सात दिन में मुर्शिदाबाद वापस पहुँच गया। किन्तु क्लाइव की इच्छा अभी पूरी न हुई थी। राजा रामनारायन एक ख़ासा ज़बरदस्त नरेश था। क्लाइव का असली उद्देश उसके

बल को तोड़ना था। इसलिए रामनारायन पर अभी और मुसीबतों का आना बाक़ी था।

राजा रामरमसिंह पर हमला

दूसरा हिन्दू नरेश, जिस पर मीर जाफ़र और क्लाइव की नज़र गई, उड़ीसा का राजा रामरमसिंह था। उड़ीसा भी बिहार के समान बंगाल के सूबेदार के अधीन था। क्लाइव जिस समय मुर्शिदाबाद में था, मीर जाफ़र ने राजा रामरमसिंह को अपने प्रान्त की मालगुज़ारी का हिसाब समझाने के बहाने मुर्शिदाबाद बुलवा भेजा। रामरमसिंह को सन्देह हुआ, उसने खुद न आकर अपने एक भाई और एक भतीजे को हिसाब की किताबों सहित मुर्शिदाबाद भेज दिया। ये दोनों मुर्शिदाबाद पहुँचते ही क़ैद कर लिए गए। राजा रामरमसिंह का सन्देह सच्चा साबित हुआ। रामरमसिंह साहसी था, वह यह भी समझता था कि मुर्शिदाबाद के दरबार की असली बाग क्लाइव के हाथों में है। उसने फ़ौरन मीर जाफ़र के इस व्यवहार की शिकायत करते हुए क्लाइव को लिखा—"मैंने एक ज़बरदस्त सेना जमा कर ली है, जिसमें २,००० सवार और ५००० पैदल हैं और यदि नया नवाब मुझे गिरफ़ार करने या दबाने के लिए सेना भेजने की ग़लती करेगा, तो मैं उसके मुक़ाबले के लिए काफ़ी हूँ, किन्तु यदि आप मध्यस्थ होकर मेरी सलामती का ज़िम्मा लें तो मैं खुद आकर मीर जाफ़र से मिलने और एक लाख रुपए नज़राना पेश करने के लिए तैयार हूँ।"

क्लाइव समझ गया कि रामरमसिंह से भिड़ना अभी ठीक नहीं। क्लाइव के कहने पर रामरमसिंह के दोनों रिश्तेदार तुरन्त छोड़ दिए गए और उड़ीसा की गद्दी पर रामरमसिंह को बहाल रक्खा गया।

राजा युगलसिंह पर हमला

तीसरा हिन्दू नरेश, जिसके बल को क्लाइव और मीर जाफ़र ने तोड़ने का इरादा किया, पूर्निया का राजा युगलसिंह था। सिराजुद्दौला ने अपने रिश्तेदार शौकत जंग की मृत्यु पर युगलसिंह को उस प्रान्त का शासक नियुक्त किया था। मीर जाफ़र युगलसिंह को हटाकर उसकी जगह अपने एक आदमी खुद्दामहुसेन को वहाँ का नवाब बनाना चाहता था। युगलसिंह मुक़ाबले के लिए तैयार होगया। कम्पनी और सूबेदार की सेनाओं ने मिल कर पूर्निया पर चढ़ाई की। युगलसिंह गिरफ़ार कर लिया गया और खुद्दामहुसेन पूर्निया की गद्दी पर बैठा दिया गया।

राजा दुर्लभराम पर हमला

इसके बाद मीर जाफ़र ने अपने हाल के मददगार राजा दुर्लभराम को मिटाना चाहा। राजा दुर्लभराम मुर्शिदाबाद के दरबार में माल के महकमे का हाकिम था। मीर जाफ़र के ऊपर उसके अनेक अहसान थे। सिराजुद्दौला के ख़िलाफ़ साज़िश में उसने अंगरेज़ों और मीर जाफ़र को मदद दी थी। किन्तु उसका बल और प्रभाव दोनों खूब बढ़े हुए थे। इसीलिए उसके नाश की तदबीरें सोची गईं। वह कमर कस कर मुक़ाबले को तैयार हो गया। अंगरेज़

उसके असर को देख कर डर गए। तुरन्त स्वयं वाट्स ने बीच में पड़कर मीर जाफ़र और दुर्लभराम दोनों में सुलह करवा दी।

इस तमाम छेड़ छाड़ से क्लाइव का मुख्य उद्देश बंगाल के तमाम पुराने और बड़े बड़े घरानों के बल को तोड़ना, मीर जाफ़र को समस्त प्रजा में अप्रिय बना देना और सूबेदारी भर में अंगरेज़ों के बल और उनके प्रभाव की धाक जमा देना था।

राजा रामनारायन पर चढ़ाई

राजा रामनारायन पर एक विशाल सेना लेकर दोबारा चढ़ाई करने की तजवीज़ की गई। अफ़वाह उड़ी या उड़ाई गई कि अलवर्दी ख़ाँ की बूढ़ी बेवा ने अवध के नवाब वज़ीर को पत्र लिखा है कि आप आकर मीर जाफ़र के विरुद्ध रामनारायन को मदद दीजे। क्लाइव और मीर जाफ़र के लिए केवल चन्द महीने पहले की सन्धि और दोनों ओर की क़समों को मिट्टी में मिलाकर अब फिर बिहार प्रान्त पर चढ़ाई करना और रामनारायन को ज़ेर करना ज़रूरी हो गया। क्लाइव ने इस बहाने से ५०,००० सेना जमा कर ली। मीर जाफ़र को डर दिखलाकर उससे धन खींचने का भी क्लाइव को यह अपूर्व अवसर दिखाई दिया। किन्तु मीर जाफ़र की माली हालत इस समय बहुत ख़राब थी। अव्वल तो मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने की जो दशा उसने प्लासी से पहले समझ रक्खी थी वह प्लासी के बाद न निकली। इस ख़ज़ाने की आशा पर ही उसने अंगरेज़ कम्पनी को अलग और क्लाइव और उसके अनेक साथियों को व्यक्तिगत हैसियत से अलग बड़ी बड़ी रक़में देने के वादे कर रक्खे थे।

जिसमें से अधिकांश वह इस समय तक दे भी चुका था। दूसरे इन्हीं रक़मों के कारण उसकी स्थिति इतनी ख़राब हो गई थी कि फ़ौज की कई महीने को तनख़ाहें उसके ज़िम्मे चढ़ गई थीं जिससे फ़ौज में बदअमनी बढ़ती जा रही थी।

मीर जाफ़र से धन की वसूली

लाचार होकर मीर जाफ़र ने यह प्रार्थना की कि कम्पनी का जो देना मेरे ज़िम्मे बाक़ी रह गया है, उसमें कुछ कमी कर दी जावे। मालूम होता है कि क्लाइव ने उसे इसकी आशा भी दिला रक्खी थी। इसी उद्देश से मीर जाफ़र ने कई बार बड़ी बड़ी रक़में बतौर रिशवत क्लाइव की भेंट कीं। इन रक़मों के सम्बन्ध में सन् १७७२ ई० में पार्लिमेण्ट की एक कमेटी के सामने गवाही देते हुए क्लाइव ने कहा था कि—"नवाब की दरियादिली ने सहज ही में मुझे धनवान बना दिया है।"*

किन्तु कमी करना तो दूर रहा, ऐन उस मौक़े पर जब कि बिहार पर चढ़ाई करने की पूरी तैयारी होगई, क्लाइव ने कम्पनी की एक एक पाई चुकवाए बिना क़दम उठाने से इनकार कर दिया। पिछली रक़मों के अलावा और भी नई नई रक़में इस अवसर पर मीर जाफ़र से तलब की गईं। क्लाइव का बल इस समय तक ख़ूब बढ़ गया था। उसके पास पचास हज़ार सेना मीर जाफ़र को कुचलने के लिए मौजूद थी। मीर जाफ़र को तरह तरह के डर

---

* "The Nawab's generosity had made his fortune easy"—Clive before the Parliamentary Committee in 1777

दिखाए गए। उसे लाचार होकर झुकना पड़ा। इतिहास लेखक मैलकम लिखता है कि इस अवसर पर :—

'एक रक़म सेना के ग़ैरमामूली ख़र्च के लिए वसूल कर ली गई। जो ज़मीनें कम्पनी को दी गई थीं उनके परवाने बाक़ायदा जारी कराए गए। (दरबार से) हुकुम जारी कराए गए कि नवाब के पहले छै महीने के क़र्ज़े की तमाम बक़ाया तुरन्त चुका दी जावे। बाक़ी तमाम क़र्ज़ों को चुकाने के लिए उस समय तक, जब तक कि क़र्ज़ा पूरा न हो जावे, बर्धमान, नदिया और हुगली तीन ज़िलों की सरकारी मालगुज़ारी कम्पनी के नाम करा ली गई। क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम ८ फ़रवरी सन् १७५८ के पत्र में लिखा—'इससे अब हमारे क़र्ज़े का चुकाया जाना नवाब के हाथों से बिलकुल स्वतन्त्र हो गया है × × ×।'"*

हमें याद रखना चाहिये कि इस क़र्ज़े में एक कौड़ी ऐसी न थी जो कम्पनी ने या किसी अंगरेज़ ने कभी मीर जाफ़र को सचमुच क़र्ज़ दी हो। यह वह धन था जो मीर जाफ़र ने मसनद के बदले में अंगरेज़ों को देने का वादा कर लिया था।

क्लाइव और मीर जाफ़र अब ५०००० सेना के साथ पटने की

* 'A supply of money was procured for the extraordinary expenses of the army, the perwannah, or grant of lands yielded to the Company, was passed in all its forms, orders were issued for the immediate discharge of all arrears on the first six months of the Nawab's debt, and the revenues of Burdwan, Nuddea and Hugli assigned over for payment of the rest —'So that' says Clive, writing [8th February, 1758] to the Court of Directors, 'the discharge of the debt is now become independent of the Nawab ...'"
Malcolm's *Life of Clive* vol 1, 338

ओर बढ़े। चार महीने से ऊपर यह भारी सेना मैदान में रही, इसका सारा ख़र्च मीर जाफ़र पर पड़ा, किन्तु गोली एक भी न चलने पाई। क्लाइव इस समय मीर जाफ़र को ख़ासा चकमा दे रहा था।

राजा रामनारायन से समझौता

रामनारायन जैसे आदमी को सदा के लिए अपना शत्रु बना लेना अंगरेज़ों के लिए हितकर न था। क्लाइव का उद्देश इस समय रामनारायन पर कम्पनी के बल का सिक्का जमाना, उसे मीर जाफ़र की ओर से सशंक कर देना, उससे धन वसूल करना और अंत में स्वयं मध्यस्थ बनकर रामनारायन के हक़ में फ़ैसला करा देना मालूम होता था।

२३ फ़रवरी सन् १७५८ को पटने में दरबार हुआ। क्लाइव ने मध्यस्थ का आसन लिया। मीर जाफ़र का बेटा मीरन नाम के लिए बिहार का नवाब बनाया गया और शासन का तमाम अधिकार मीरन के नायब की हैसियत से ज्यों का त्यों राजा रामनारायन के हाथों में छोड़ दिया गया। इस अनुग्रह के बदले में रामनारायन से ७ लाख रुपए नक़द वसूल किए गए। इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है कि—"क्लाइव की जो मुराद थी, वह सब पूरी हो गई।"* कुछ दिनों बाद के एक पत्र में क्लाइव ने रामनारायन को "अंगरेज़ों का पक्का हितसाधक" लिखा है।

क्लाइव अपने मालिकों को भी नहीं भूला। उन दिनों जितना शोरा बंगाल में बिकता था, सब पटने से ऊपर के प्रदेश में तैयार

* Orme, vol II, p, 283

होता था। क्लाइव ने अब नवाब पर ज़ोर देकर शोरा तैयार कराने का ठेका कम्पनी के नाम हासिल कर लिया, जिससे कम्पनी का व्यापार और बढ़ गया।

मई सन् १७५८ ई० में क्लाइव मुर्शिदाबाद लौटा। कुछ दिनों बाद मीर जाफ़र भी अपनी राजधानी वापस पहुँच गया।

शाहज़ादे अली-गौहर की बिहार यात्रा

थोड़े दिनों बाद मीर जाफ़र और रामनारायन दोनों पर एक और नई आफ़त टूटी। जिस तरह मीरन केवल नाम के लिए बिहार का नवाब बना दिया गया था उसी तरह एक अर्से से दिल्ली सम्राट के ज्येष्ठ पुत्र को नाम मात्र के लिए बंगाल, बिहार और उड़ीसा का सूबेदार कहा जाता था। वास्तव में शहज़ादे का यह ख़िताब केवल एक मान सूचक ख़िताब था और मुर्शिदाबाद के क्रियात्मक सूबेदार सम्राट के अधीन सूबेदारी के सब फ़र्ज़ अदा करते थे। इस समय शहज़ादा अलीगौहर अपने ख़िताब को सार्थक करने के लिए सेना सहित बंगाल की ओर बढ़ा। इसमें सन्देह नहीं, बंगाल की हाल की बग़ावत, अंगरेज़ों और मीर जाफ़र के अन्याय और प्रजा की शोकजनक हालत इन सब की ख़बर सम्राट के दरबार तक पहुँच चुकी थी, और शहज़ादे के आने का इन बातों के साथ अवश्य कुछ न कुछ सम्बन्ध था। जो हो, मीर जाफ़र शहज़ादे के आने का समाचार पाते ही डर गया, उसने क्लाइव से मदद चाही। क्लाइव फ़ौरन एक ज़बरदस्त फ़ौज और मीरन को साथ लेकर मुर्शिदाबाद से पटने की ओर बढ़ा। शहज़ादा उस

समय तक पटने पहुँच चुका था और रामनारायन ने अपने विनम्र व्यवहार से शहज़ादे को प्रसन्न कर लिया था। क्लाइव और मीरन के पहुँचने पर कहते हैं, मुर्शिदाबाद की सेना और शहज़ादे की सेना में कुछ लड़ाई भी हुई। मालूम नहीं इस लड़ाई का होना कहाँ तक सच है। मुर्शिदाबाद की सेना का शहज़ादे की ज़बरदस्त सेना पर विजय प्राप्त कर सकना बिल्कुल नामुमकिन था। उस समय के उल्लेखों से ज़ाहिर है कि क्लाइव ने शहज़ादे के सामने अपनी राजभक्ति का पूरा प्रदर्शन कर शहज़ादे को अपनी ओर करने का भरसक प्रयत्न किया और अंत में कुछ समझौता हो गया। शहज़ादा मय अपनी सेना के दिल्ली की ओर लौट गया और मीर जाफ़र का डर कुछ समय के लिए दूर हो गया।

क्लाइव की जागीर

मुर्शिदाबाद पहुँच कर इस उपकार के बदले में क्लाइव ने मीर जाफ़र से अपने लिए साम्राज्य के 'उमरा' का ख़िताब और एक जागीर प्राप्त की। जो ज़मींदारी कलकत्ते के आस पास कम्पनी को मिली हुई थी उसके मालकाने के रूप में कम्पनी को हर साल तीन लाख रुपए नवाब की सरकार में जमा कराने पड़ते थे। अब से यह सब ज़मीदारी "क्लाइव की निजी जागीर" बन गई और बजाय मुर्शिदाबाद की सरकार के क्लाइव ख़ुद इस तीन लाख सालाना का कम्पनी से हक़दार हो गया। क्लाइव इस समय सचमुच एक हिन्दोस्तानी नवाब बना हुआ था।

क्लाइव की इस "जागीर" का जिसे अपने असहाय "गधे"

मीर जाफ़र से हथिया लेना उसके लिए कुछ भी कठिन न था, अंगरेज़ इतिहास लेखक बड़े अभिमान के साथ ज़िक्र करते हैं।

सब से धनवान अंगरेज़

बंगाल की मसनद के बदले में मीर जाफ़र ने जितना धन अंगरेज़ों को देने का वादा किया था उसकी एक एक पाई वसूल की जा चुकी थी। व्यापार के लिए बंगाल में अनेक नई रिआयतें कम्पनी को नवाब से मिल चुकी थीं और इन बाक़ायदा रिआयतों के अलावा अनेक चीज़ों की तिजारत का ठेका कम्पनी ने ज़बरदस्ती अपने हाथों में ले रक्खा था। तीनों प्रान्तों में अंगरेज़ों के छल और बल दोनों का सिक्का जम चुका था। क्लाइव जो कुछ साल पहले एक निर्धन क्लर्क की हैसियत से भारत आया था, इस समय शायद संसार में सब से अधिक धनवान अंगरेज़ था। इस तरह बहुत हद तक अपना मतलब पूरा कर फ़रवरी सन् १७६० में क्लाइव अपनी जन्मभूमि इंगलिस्तान के लिए रवाना हो गया।

भारत में अंगरेज़ी राज क़ायम करने की क्लाइव की योजना

किन्तु अपनी क़ौम के लिए क्लाइव की इच्छाएँ और उमगें अभी बेहद बढ़ी हुई थीं। उसके नीचे लिखे पत्र से मालूम होता है कि भारत में अंगरेज़ी राज क़ायम करने के विषय में उसका दिमाग़ किस तरह काम कर रहा था। ७ जनवरी सन् १७५९ को इंगलिस्तान के प्रधान मंत्री विलियम पिट के नाम क्लाइव ने यह पत्र लिखा :—

अंगरेज़ी फ़ौज की कामयाबी के ज़रिये एक महान क्रांति इस देश में की

जा चुकी है। उस क्रांति के बाद एक सन्धि की गई है जिससे कम्पनी को बड़े ज़बरदस्त फ़ायदे हुए हैं। मुझे मालूम है कि इन सब बातों की तरफ़ एक दर्जे तक (अंगरेज़) क़ौम का ध्यान आकर्षित हो चुका है। किन्तु मौक़ा मिलने पर अभी बहुत कुछ और किया जा सकता है, बशर्ते कि कम्पनी इस तरह के प्रयत्नों में लगी रहे जो उसके आज कल के इतने बड़े इलाक़े और आगे की ज़बरदस्त सम्भावनाओं दोनों के अनुरूप हों। मैंने कम्पनी को अत्यन्त ज़ोरदार शब्दों मे इस बात की ज़रूरत दर्शा दी है कि उन्हें इतनी सेना हिन्दोस्तान भेज देनी चाहिये और बराबर हिन्दोस्तान मे रखनी चाहिये, जिससे वे अपने धन और इलाक़े को बढ़ाने के सब से पहले मौक़े से फ़ायदा उठा सकें। दो साल की मेहनत और तजरुबे से मैंने इस देश की हुकूमत के विषय में और यहाँ के लोगों के स्वभाव के विषय में जो परिपक्व ज्ञान प्राप्त किया है उससे मैं साहस के साथ कह सकता हूँ कि इस तरह का मौक़ा जल्दी ही फिर आने वाला है। मौजूदा सूबेदार × × × बूढ़ा है और उसका नौजवान बेटा इतना ज़ालिम और निकम्मा है और अंगरेज़ों का इतना खुला दुशमन है कि इस नवाब के बाद उसे मसनद पर बैठने देना क़रीब क़रीब ख़तरनाक होगा। केवल दो हज़ार यूरोपियनों की छोटी सी सेना हमें इन दोनों की ओर से बेखटके कर देगी और यदि इनमें से कोई हमारे साथ झगड़ा करने की हिम्मत करेगा तो इस सेना द्वारा हुकूमत को बाग़ हम अपने हाथों में ले सकेंगे।

"हिन्दोस्तान के लोगों को अपने राजाओं के साथ किसी तरह का प्रेम नहीं है, इसलिए इस तरह का काम कर डालने में हमें और भी कम कठिनाई होगी × × ×

"किन्तु मुमकिन है, इतना बड़ा राज एक तिजारती कम्पनी के लिए बहुत

ज़्यादा हो जावे और मुझे डर है कि बिना अंगरेज़ क़ौम की सहायता के अकेली कम्पनी इतने बड़े राज को क़ायम नहीं रख सकती × × × ख़ूब सोचने की बात है कि यह तमाम नक़शा बिना अपनी मातृभूमि पर ख़र्च का बोझ डाले पूरा किया जा सकता है, जबकि अमरीका में अपना राज क़ायम करने के लिए इंगलिस्तान को बेहद ख़र्च बरदाश्त करना पड़ा था। इंगलिस्तान से एक छोटी सी सेना इसलिए काफ़ी होगी क्योंकि हम जब जितने काले सिपाही चाहें यहाँ जमा कर सकते हैं × × × मैं केवल इतना और कहूँगा कि मैंने सिवाय आपके और किसी को यह बात नहीं लिखी; और मैं आपको भी कष्ट न देता यदि मुझे इस बात का विश्वास न होता कि क़ौम के फ़ायदे की जो तजवीज़ भी आपके सामने रक्खी जायगी, आप उसका अच्छी तरह स्वागत करेंगे।"*

* "The great revolution that has been effected here by the success of the English arms, and the vast advantages gained to the Company by a treaty concluded in consequence thereof, have, I observe, in some measure engaged the public attention but more may yet in time be done if the Company will exert themselves in the manner the importance of their present possessions and future prospects deserves I have represented to them in the strongest terms the expediency of sending out and keeping up constantly such a force as will enable them to embrace the first opportunity of further aggrandising themselves, and I dare pronounce, from a through knowledge of the Country Government, and of the genius of the peoples acquired from two years application and experiences, that such an opportunity will soon occur The reigning Soubah is advanced in years, and his son is so cruel, worthless a young fellow, and so apparently an enemy to the English, that it will be almost unsafe trusting him with the succession So small a body as two thousand Europeans will secure us against any apprehensions from either the one or the other, and in case of their daring to be troublesome, enable the company to take the sovereignty upon themselves

"There will be less difficulty in bringing about such an event, as the natives themselves have no attachment whatever to particular princes

बंगाल के बल्कि आमतौर पर भारत के अन्दर अंगरेज़ों की उस समय की योजनाओं का यह ख़ासा सुन्दर और सच्चा चित्र है। इस पत्र से यह भी साबित है कि अंगरेज इस समय बंगाल में मीर जाफ़र और मीरन दोनों के ख़िलाफ़ दूसरी बग़ावत खड़ी करने का फ़ैसला कर चुके थे।

मीरन की दूरदर्शिता

मीरन एक समझदार युवक था। अंगरेज़ों की चालों और नीयत को वह इस समय तक ख़ासा पहचान गया था। मीर जाफ़र भी इन लोगों की दोस्ती से बेज़ार हो चला था। ख़ासकर मीरन अपने बाप को अकसर सलाह दिया करता था कि किसी तरह इन लोगों के पंजे से निकलने की कोशिश की जावे। यही वजह थी कि क्लाइव "मसनद पर मीरन को बैठने देना ख़तरनाक" समझता था।

क्लाइव के बाद "ब्लैक होल" के क़िस्से का गढ़ने वाला मशहूर गप्पी हॉलवेल कलकत्ते का गवरनर नियुक्त हुआ। पाँच महीने बाद जुलाई सन् १७६० में हेनरी वन्सीटार्ट ने उसकी जगह ली।

"But so large a sovereignty may possibly be an object too extensive for a mercantile company and it is to be feared they are not of themselves able, without the nation's assistance to maintain so wide a dominion It is well worthy consideration, that this *project may be brought about without* draining the mother country, as has been too much the case with our possessions in America A small force from home will be sufficient, as we always make sure of any number we please of black troops I shall only further remark, that I have communicated it to no other person but yourself, nor should I have troubled you, Sir but from a conviction that you will give a favourable reception to any proposal intended for the public good" —Malcolm's *Life of Clive*, vol ii, pp 119 et seq

केलो (Caillaud) बंगाल में कम्पनी की सेनाओं का प्रधान सेना-पति नियुक्त हुआ ।

सन् १७६६ के अन्त में शहज़ादे अलीगौहर ने दूसरी बार बिहार पर चढ़ाई की। इस बीच बंगाल की अफ़सोसनाक हालत की और अनेक शिकायतें मुग़ल दरबार तक पहुँच चुकी थीं। इसके सिवा नाम को तो बंगाल अभी तक सम्राट के अधीन था, किन्तु आए दिन की बग़ावतों के सबब बंगाल से दिल्ली ख़िराज जाना कई साल से बन्द था। इन शिकायतों को दूर करना और शाही ख़िराज वसूल करना शाहज़ादे की इस चढ़ाई का उद्देश था।

सम्राट शाह आलम की बंग यात्रा

शहज़ादे की सेना ने अभी बिहार प्रान्त में क़दम रक्खा ही था कि शहज़ादे को सम्राट आलमगीर दूसरे की मृत्यु का समाचार मिला। शाहज़ादा अलीगौहर अब दिल्ली से बाहर होते हुए भी, शाहआलम दूसरे के नाम से सम्राट ऐलान हुआ और भारत-सम्राट ही की हैसियत से उसने अब बिहार में प्रवेश किया। शाह आलम अब मुग़ल साम्राज्य का अनन्य अधिपति था। उसकी फ़रमांबरदारी हर सूबेदार, तमाम प्रजा और यूरोपियन व्यापारियों सब पर वाजिब थी। किन्तु अंगरेज़ों की नीति उसकी तरफ़ कुछ अजीब रही। एक तरफ़ उन्होंने मीर जाफ़र और मीरन दोनों पर इस बात के लिए ज़ोर दिया कि आप लोग अपनी सेना सहित पटने पहुँचकर सम्राट का मुक़ाबला कीजिए और सम्राट की सेना के बिहार में प्रवेश करते ही करनल केलो फ़ौरन अपनी सेना सहित

कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ा और वहाँ से मीरन के अधीन नवाब की कुछ सेना साथ लेकर १८ जनवरी सन् १७६० को सम्राट की सेना के मुक़ाबले के लिए पटने की ओर रवाना हुआ। दूसरी ओर अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र और मीरन दोनों से ऊपर ऊपर शाह आलम से गुप्त बातचीत शुरू कर दी।

अंगरेज़ों का शाह आलम से लड़ने के लिए तैयार हो जाना

सम्राट के ख़िलाफ़ खुली बग़ावत

इतिहास लेखक मिल के शब्दों में "खुली बग़ावत थी।"* गवरनर हॉलवेल यह भी लिखता है—"शाह आलम ने अंगरेज़ों की सब शर्तें मंज़ूर कर लेने की रज़ामन्दी प्रकट की।"† मालूम नहीं वे क्या शर्तें थीं और बाद को उनका क्या हुआ।

करनल केलो ने अपने पत्रों में इस बात की शिकायत की है कि मीरन ने सम्राट के विरुद्ध केलो का उस तरह साथ नहीं दिया जिस तरह केलो चाहता था। निस्सन्देह मीर जाफ़र और मीरन दोनों सम्राट से लड़ने के ख़िलाफ़ थे किन्तु केलो उन्हें लड़ाना चाहता था। इस पर अंगरेज़ों और उन दोनों में ख़ासा मतभेद हो गया। अंगरेज़ों और मीरन में पहले से भी भीतर ही भीतर वैमनस्य बढ़ रहा था।

मुर्शिदाबाद की सेना के पहुँचने से पहले ही "अंगरेज़ों का पक्का हितसाधक" रामनारायन अपनी सेना लेकर शाह आलम के मुक़ाबले के लिए पटने से बाहर निकला। इस मामले में वह पूरी तरह

* "To oppose him was undisguised rebellion" Mill, vol iii p 202
† Ibid

अंगरेज़ों के हाथों में खेल गया। सम्राट की सेना ने उसे हरा दिया। और ज़ख्मी करके पीछे हटा दिया और पटने का मोहासरा शुरू कर दिया। १५ फ़रवरी को केलो और मीरन की सेनाएँ पटने पहुँचीं सम्राट और अंगरेज़ों में गुप्त पत्र-व्यवहार जारी था। सम्राट की सेना मोहासरे से हट गई। २२ फ़रवरी को दिल्ली और बंगाल की सेनाओं में थोड़ी सी लड़ाई हुई जिसमें मीरन के कुछ चोट आई। न जाने अंगरेज़ों ने सम्राट को क्या समझाया कि सम्राट की सेना अब खुद बखुद वहाँ से मुड़कर मुर्शिदाबाद की ओर बढ़ी। मीरन सम्राट की सेना का पीछा करने के खिलाफ़ था, किन्तु केलो ने २६ फ़रवरी सन् १७६० को उसे पटना छोड़ने पर मजबूर किया। निस्सन्देह मीरन और मीर जाफ़र दोनों को एक दर्जे तक मजबूरन् अंगरेज़ों के इशारे पर चलना पड़ता था। चार अप्रैल को केलो और मीरन की सेना मीर जाफ़र की सेना से आ मिली। ६ अप्रैल को जब कि दिल्ली और बंगाल की सेनाएँ एक दूसरे के अत्यन्त निकट आ गई, केलो ने मीर जाफ़र पर फिर ज़ोर दिया कि आप सम्राट की सेना पर हमला कीजिए, किन्तु मीर जाफ़र और मीरन ने मंज़ूर न किया। तीन दिन के अन्दर सम्राट् की सेना फिर उसी रास्ते बिहार की ओर लौट गई।

कम्पनी के डाइरेक्टरों के एक सरकारी पत्र में लिखा है कि कुछ अंगरेज़ों ही ने करनल केलो पर यह इलज़ाम लगाया था कि इस मौक़े पर केलो ने गुप्त तरीक़े से सम्राट को मरवा डालने का भी उद्योग किया था, किन्तु वह सफल न हो सका।

करनल केलो स्वयं मीर जाफ़र और मीरन की सेनाओं के साथ उन्हीं के ख़ेमों में ठहरा रहा और कप्तान नॉक्स को उसने कुछ सेना सहित पटने की ओर भेजा। यह सब वृत्तान्त हम ने करनल केलो के बयान के आधार पर दिया है। मीरन और मीर जाफ़र दोनों को इस प्रकार नज़रबन्द रखने का एक सबब यह भी था कि अंगरेज़ों को डर था कि कहीं मीरन और मीर जाफ़र अंगरेज़ों के खिलाफ़ सम्राट से न मिल जावें, और सम्राट से अपनी बातचीत का अंगरेज़ उन्हें पता तक लगने देना न चाहते थे। सम्राट की सेना के सामने या तो पहले से कोई निश्चित कार्यक्रम न था और या शाह आलम को राजधानी के ख़ाली होने के कारण दिल्ली लौटने की जल्दी थी। जो कुछ रहा हो, दो बार पटने पर चढ़ाई करके कप्तान नॉक्स के पहुँचते ही न जाने सम्राट और अंगरेज़ों में क्या बातचीत हुई कि सम्राट की सेना शहर का मोहासरा छोड़कर दिल्ली की ओर लौट गई।

शाह आलम की अनिश्चितता

कहा जाता है कि पूर्निया का नबाब खुद्दामहुसेन, जिसे मीर जाफ़र ने दो साल पहले युगलसिंह की जगह वहाँ का नवाब नियुक्त किया था, अब अपनी सेना सहित मीर जाफ़र के ख़िलाफ़ सम्राट की सहायता के लिए आ रहा था। केलो और मीरन उसके मुक़ाबले के लिए बढ़े। मीरन पूर्निया के नवाब से लड़ना न चाहता था, किन्तु अंगरेज़ मीरन को पूर्निया के नवाब से लड़ाकर पूर्निया के नवाब का भी नाश करना चाहते थे। कम्पनी की सेना और पूर्निया की सेना में कुछ

मीरन की हत्या

लड़ाई हुई, किन्तु केलो का बयान है कि मीरन ने इस काम में अंगरेज़ों को मदद न दी, इसीलिए अंगरेज़ पूर्निया के नवाब पर विजय प्राप्त न कर सके। दो जुलाई तक केलो और मीरन की सेनाएँ साथ साथ नवाब पूर्निया की सेना के पीछे पीछे चलती रहीं। खुद्दामहुसेन पर दोबारा अकेले हमला करने की केलो की हिम्मत न थी और मीरन इस में केलो का साथ देने को किसी तरह राज़ी न था। केलो और मीरन में वैमनस्य बढ़ा। २ जुलाई की आधी रात को मीर जाफ़र का बेटा और मुर्शिदाबाद का युवराज मीरन एकाएक अपने बिछौने पर मरा हुआ पाया गया। कह दिया गया कि मीरन पर बिजली गिर पड़ी। सुप्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने पार्लिमेण्ट के सामने बड़ी सुन्दरता के साथ दिखलाया कि यह कैसी विचित्र बिजली थी। जिस ख़ेमे के नीचे मीरन सो रहा था उस पर या उसके कपड़े पर बिजली का ज़रा सा भी असर नहीं हुआ और उसके नीचे सोया हुआ मीरन मर गया। बिजली के गिरने की आम तौर पर बड़ी ज़बरदस्त आवाज़ होती है जो मीलों तक सुनाई देती है। किन्तु जो बिजली मीरन पर गिरी उससे ख़ेमे के चारों ओर सोए हुए लाखों सिपाहियों और दूसरे आदमियों में से किसी एक की भी आँख न खुली। मीरन उस समय सचमुच अंगरेज़ों के पहलू में एक काँटा था। इसमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि मीरन को मार डाला गया और इस हत्या में करनल केलो का ख़ास हाथ था। इस हत्या के ठीक एक महीने बाद हॉलवेल ने नये गवरनर वन्सीटार्ट को लिखा :—

मीर जाफ़र श्रौर मीरन

From the "History of Murshidabad", by Major Walsh

"दरबार में एक दल खड़ा हो गया था जिसके नेता नवाब का बेटा मीरन और राजा राजवल्लभ थे। ये लोग अंगरेज़ों के जुए को अपने कंधों पर से हटाने के लिए रोज़ तदबीरें सोचा करते थे और लगातार नवाब पर ज़ोर देते रहते थे कि जब तक यह न हो सकेगा, तब तक नवाब की हुकूमत केवल एक नाम की हुकूमत रहेगी।"*

समस्त सेना को पटने लौटा लाया गया और पटने लौट आने तक मीरन की मृत्यु को उसकी सेना से छिपाकर रक्खा गया।

बंगाल की दर्दनाक हालत

बंगाल और वहाँ की प्रजा की हालत इस समय अत्यन्त शोक जनक थी। मुसलमान इतिहास लेखक मौ० बदरुद्दीन अहमद उस समय की हालत को बयान करते हुए लिखता है :—

"कम्पनी और उसके ख़ास ख़ास मुलाज़िमों से अलग अलग जो बड़े बड़े वादे कर लिए गए थे, उन्हें पूरा करने में नाज़िम (मीर जाफ़र) के ख़ज़ाने का एक एक सिक्का दिया जा चुका था। बंगाल दिवालिया हो चुका था और तेज़ी के साथ अराजकता की ओर बढ़ा चला जा रहा था। शाहज़ादे की चढ़ाई से वहाँ की हालत और भी ख़राब हो गई थी, उससे नाज़िम की पूरी बेबसी ज़ाहिर हो गई थी और कम्पनी को पता चल गया था कि बाहर के हमलों से अपने इलाक़े की रक्षा करने के लिए नाज़िम हर तरह हमीं पर निर्भर है।"†

---

* "A party was soon raised at the Durbar, headed by the Nawab's son, Miran and Raja Rajebullab, who were daily planning schemes to shake off their dependence on the English, and continually urging to the Nawab, that until this was effected his government was a name only." *First Report 1772*, Appendix 9, p 225

† *Calendar of Persian correspondence*, vol iii, p viii

कम्पनी की व्यापार सम्बन्धी ज़्यादती

बंगाल की प्रजा ने अपनी गाढ़ी कमाई के पैसों से संचित मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने को अपनी आँखों के सामने दुलदुल कर विदेशियों के हाथों में जाते हुए देखा। आए दिन के संग्रामों और सैन्य यात्राओं के कारण देश की कृषि पर मिट्टी छित गई थी और उद्योग धन्धों का नाश हो रहा था। इस पर देश के एक एक व्यापार के ऊपर कम्पनी ज़बरदस्ती अपना अधिकार जमाती जा रही थी। मिसाल के लिए नमक, छालिया, इमारती लकड़ी, तम्बाकू, सूखी मछली इत्यादि का व्यापार देशवासियों की रोज़ी और सूबेदार की आमदनी दोनों का उन दिनों एक ख़ास ज़रिया था। इसीलिए इस तरह की कई चीज़ों का व्यापार शुरू से यूरोपनिवासियों के लिए इस देश में बन्द कर दिया गया था। विदेशी व्यापारियों के नाम सम्राट की साफ़ आज्ञाएँ इस विषय में मौजूद थीं। फिर भी प्लासी के फ़ौरन ही बाद अंगरेज़ों ने ये सब व्यापार ज़बरदस्ती अपने हाथों में ले लिए। मीर जाफ़र ने मसनद पर बैठने के एक महीने के अन्दर क्लाइव से इस ज़बरदस्ती की शिकायत की। कुछ देर के लिए कुछ रोक थाम का भी ढोंग रचा गया, किन्तु अन्त में किसी ने परवा न की। शोरे का ठेका कम्पनी को मिल ही चुका था। इस सब से राज की आमदनी में बहुत बड़ी कमी होती जा रही थी और प्रजा के अन्दर दुख, दरिद्रता और बदअमनी ज़ोरों के साथ बढ़ती जा रही थी। इस पर तारीफ़ यह कि जब कभी मीर जाफ़र अपने राज के आर्थिक, सैनिक या किसी प्रबन्ध में भी

किसी तरह का सुधार करना चाहता था तो उसे फ़ौरन रोक दिया जाता था। मीर जाफ़र भी मसनद पर बैठने के चन्द महीने के अन्दर अपनी बेबसी को समझने लगा था और अनुभव करने लगा था कि अंगरेज़ों की नई मित्रता ने मुझे और मेरे देश दोनों को चुपचाप नाग के लपेटों की तरह जकड़ लिया है। सिराजुद्दौला के साथ उसके विश्वासघात का फल अब मीर जाफ़र और उसकी प्रजा दोनों को भोगना पड़ रहा था।

सिराजुद्दौला की हत्या को अभी तीन साल भी पूरे न हुए थे। मीर जाफ़र ने जो सन्धि अंगरेज़ों के साथ की थी उसकी तमाम शर्तों को वह अक्षरशः पूरा कर चुका था। सन्धि से बाहर भी अनेक बेजा माँगें पै दर पै मीर जाफ़र के सामने पेश की जा चुकी थीं और ज़बरदस्ती पूरी कराई जा चुकी थीं। देश और प्रजा की यह हालत थी। इस स्थिति में अपने सच्चे मित्र मीर जाफ़र को लात मार कर उसकी जगह किसी और ऐसे मनुष्य को मसनद पर बैठाने के लिए, जिसके द्वारा बंगाल को और अधिक सफलता के साथ चूसा जा सके, अंगरेज़ों ने अब उस दूसरी बग़ावत के लिए तदबीरें शुरू कर दीं जिसका इशारा ऊपर क्लाइव के एक पत्र में आ चुका है।

बंगाल में दूसरी बग़ावत की तय्यारी

मीर जाफ़र एक बहुत बड़ी रक़म कम्पनी के नए गवरनर हॉलवेल को नक़द भेंट कर चुका था। फिर भी हॉलवेल पहले दिन से इस दूसरी बग़ावत की धुन में था। मई सन् १७६० में गवरनर हॉलवेल और करनल केलो के बीच इस नए षड्यन्त्र के सम्बन्ध में

गुप्त पत्र व्यवहार शुरू हो गया था। जुलाई में गवरनर वन्सीटार्ट के आने पर इस षड्यन्त्र ने शकल ली। हॉलवेल और केलो के उस समय के बयानों में मीरन की मृत्यु का साफ़ इस तरह ज़िक्र आता है, जिससे मालूम होता है कि मीरन की हत्या इसी षड्यन्त्र का एक अंग थी। सितम्बर सन् १७६० में इस षड्यन्त्र को अन्तिम रूप देने के लिए और मीर जाफ़र से छेड़ छाड़ शुरू करने का बहाना ढूंढने के लिए वन्सीटार्ट के सभापतित्व में कलकत्ते में कई गुप्त सभाएँ हुईं। ११ सितम्बर की सभा की काररवाई में दर्ज है :—

कम्पनी की धन और धरती की प्यास

"करनल क्लाइव की क्रांति से आज तक समय समय पर हमारा प्रभाव बढ़ता गया है और उस प्रभाव को क़ायम रखने के लिए हमें वैसे वैसे ही अपना सैन्यबल भी बढ़ाना पड़ा है। अब हमारे पास एक हज़ार से ऊपर यूरोपियन सिपाही और पाँच हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही हैं। इनका ख़र्च और उसके साथ साथ सेना का ग़ैर मामूली ख़र्च मिलाकर इतना अधिक है कि जो जागीरें हमें मिली हुई हैं उनकी सालाना आमदनी से किसी तरह पूरा नहीं हो सकता। × × ×

× × × ×

"इसलिए नवाब से कहना चाहिये कि आप इससे कहीं ज़्यादा सालाना आमदनी कम्पनी के नाम कर दें और इसके पूरे पूरे और ठीक ठीक प्रबन्ध के लिए इस तरह के कुछ ज़िलों का अनन्य अधिकार कम्पनी को दे दें जिनका हम बहुत आसानी से इन्तज़ाम कर सकें। × × × हम

समझते हैं कि हमारी इस तरह की तजवीज़ के रास्ते में जितनी रुकावटें डाली जा सकती हैं, सब अवश्य डाली जावेंगी। × × ×

"× × × इस सम्बन्ध मे अपनी तमाम इच्छाओं की पूर्ति को पक्का कर लेने का एक ऐसा अच्छा मौक़ा इस समय हमारे सामने है कि जैसा शायद फिर कभी न आ सके, इस मौक़े से शक्ति और अधिकार दोनों हमें मिल सकते हैं।

"दूसरी मुख्य बात, जो हमें अपनी आज कल की नीति बदलने पर विचार करने के लिए मजबूर करती है, धन की कमी है। यह कमी केवल हम तक ही परिमित नहीं, बल्कि नीचे लिखी चीज़ें भी बहुत दर्जे तक उसी पर निर्भर हैं :—

"समुद्रतट की कारखाइयाँ,

"पुदुचरी (पौण्डिचरी) का विजय करना, और

"अगले साल [बम्बई, मद्रास और कलकत्ता] तीनों प्रान्तों से माल लाद कर इंगलिस्तान जहाज़ भेजने के लिए पहले से धन का प्रबन्ध।" *

यह बात ध्यान में रहनी चाहिए कि उस ज़माने में इंगलिस्तान और हिन्दोस्तान के बीच की तिजारत का अर्थ यह नहीं था कि इंगलिस्तान का बना हुआ कोई माल हिन्दोस्तान में लाकर बेचा

* "Our influence increasing from time to time since the revolution brought about by Colonel Clive, so have we been obliged to increase our force to support that influence We have now more than a thousand Europeans, and five thousand Sepoys, which, with the contingent expenses of an army, is far more than the revenues alloted for their maintenance

"It must therefore be proposed to the Nawab, to assign to the Company a much larger income, and to assign it in such a full and ample manner,

जावे। ईस्ट इंडिया कम्पनी इस उद्देश से नहीं बनी थी। न इंगलिस्तान के उद्योग धन्धों की उस समय यह हालत थी कि इंगलिस्तान का बना हुआ कोई माल हिन्दोस्तान में लाकर बेचने का किसी को स्वप्न में भी गुमान हो सकता। भारत से इंगलिस्तान की तिजारत का अर्थ उस समय केवल यह था कि भारत के उन्नत उद्योग धन्धों और यहाँ की आंतरिक तिजारत में किसी तरह भाग लिया जावे और जिस तरह हो, व्यापार द्वारा या लूट द्वारा, यहाँ से माल और धन लाद कर इंगलिस्तान भेजा जावे।

मीर जाफ़र से नई माँगें

मीर जाफ़र पर किसी तरह का भी झूठा सच्चा दोष नहीं लगाया जा सका, किन्तु अंगरेज़ कम्पनी के लिए अपनी धन और धरती की प्यास को बुझाना ज़रूरी था। कम्पनी की ओर से नई माँगें मीर जाफ़र के सामने पेश की गईं। इन माँगों के विषय में इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

"मीर जाफ़र की हालत शुरू से ही शोकजनक थी। ख़ज़ाना सुत चुका था, देश सुत चुका था, बड़े बड़े अनिवार्य ख़र्च उसके सामने थे और

---

by giving to the Company the sole right of such districts, as lay most convenient for our management it is to be supposed, that such a proposal would meet with all the difficulties that could possibly be thrown in our way

" There seems now to offer such an opportunity of securing to ourselves all we could wish in this respect as likely may never happen again; an opportunity that will give us both power and right

"Another principal motive, that urges us to think of changing our

इस पर कड़ी से कड़ी माँगें पूरी करने के लिए उसे मजबूर किया जाता था × × ×।"*

मौलवी बदरुद्दीन अहमद ने लिखा है कि जो माँगें इस समय अंगरेज़ों ने मीर जाफ़र के सामने पेश कीं उनमें एक यह भी थी कि श्रीहट्ट (सिलहट) और इसलामाबाद के इलाक़ों के 'फ़ौजदारी' के अधिकार कम्पनी को दे दिए जावें। मीर जाफ़र इस हद तक जाने के लिए तैयार न था। उसने अपने विश्वस्त और होशियार दामाद नौजवान मीर क़ासिम को अंगरेज़ों से बातचीत करने के लिए कलकत्ते भेजा।

मीर क़ासिम के साथ गुप्त सन्धि

१५ सितम्बर सन् १७६० की गुप्त सभा में अंगरेज़ों ने तय किया कि मीर क़ासिम और राजा दुर्लभराम इन दोनों को भी इस नई साज़िश में शामिल कर लिया जावे और राजा दुर्लभराम की मार्फ़त सम्राट शाह आलम को अपनी ओर करने की कोशिश की जावे। यह भी तय हुआ कि कुछ मामूली लोगों को ख़ास ख़ास नौकरियों

system, is the want of money a want that is not confined to ourselves alone, but on which greatly depend,

"The operations on the cost

The reduction of Pondicherry, and

The provision of an investment for loading home the next year's ships at all the three presidencies " – Proceedings at Fort William, 11th September, 1760, *First Report, 1772*, pp 228 229

* "The situation of Jaffir was deplorable from the first With an exhausted treasury and exhausted country and vast engagements to discharge, he was urged to the severest exactions, "—Mill, vol III, pp 213, 214

के वादे देकर इस साज़िश में शामिल किया जावे और इस समय उनसे रुपए वसूल कर लिए जावें। मीर क़ासिम से बात करने के लिए गवरनर वन्सीटार्ट और राजा दुर्लभराम से बात करने के लिए हॉलवेल नियुक्त हुए। उसी रात को अलग अलग वन्सीटार्ट की मीर क़ासिम से और हॉलवेल की राजा दुर्लभराम से बातचीत हुई। अगले दिन गुप्त सभा में आकर वन्सीटार्ट और हॉलवेल दोनों ने अपनी अपनी सफलता का हाल सुनाया। क़रीब दस दिन शर्तों को तय करने इत्यादि में ख़र्च हुए। इतिहास लेखक मालेसन लिखता है कि २७ सितम्बर को कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल और मीर क़ासिम में एक गुप्त सन्धि हो गई, जिसमें यह तय हुआ कि मीर क़ासिम को मुर्शिदाबाद दरबार का वज़ीर आज़म बना दिया जाय, सूबेदारी के तमाम अधिकार मीर क़ासिम को दिला दिए जावें और मीर जाफ़र को केवल 'सूबेदार' की सूखी उपाधि और व्यक्तिगत ख़र्च के लिए एक सालाना रक़म बतौर पेन्शन जिन्दगी भर मिलती रहे, अंगरेज़ों और मीर क़ासिम में स्थाई मित्रता रहे, मीर क़ासिम को जब ज़रूरत हो अंगरेज़ अपनी सेना से उसकी मदद करें, इसके बदले में मीर क़ासिम बर्धमान, मेदिनीपुर और चटग्राम तीनों ज़िले हमेशा के लिए कम्पनी के नाम कर दे, जो जवाहरात मीर जाफ़र ने कम्पनी के पास गिरवी रक्खे थे उन्हें मीर क़ासिम नक़द रुपया देकर छुड़वा ले, सम्राट शाह आलम के साथ अंगरेज़ या मीर क़ासिम बिना एक दूसरे से सलाह किए कोई समझौता न करें, बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों

में से किसी में सम्राट के पैर न जमने दिए जावें, श्रीहट्ट ज़िले में चूना ख़रीदने के लिए अंगरेज़ों को विशेष सुविधाएँ दी जावें। मीर क़ासिम अधिकार मिलते ही इस उपकार के बदले में वन्सीटार्ट को पाँच लाख रुपए, हॉलवेल को दो लाख सत्तर हज़ार और इसी तरह कौन्सिल के अन्य सदस्यों में से किसी को ढाई लाख, किसी को दो लाख इत्यादि कुल मिलाकर बीस लाख रुपए दे और इनके अलावा पाँच लाख रुपए कम्पनी को बतौर क़र्ज़ दे। गवरनर वन्सीटार्ट उसकी कौन्सिल के अन्य सदस्यों और मीर क़ासिम, सब के इस सन्धिपत्र पर दस्तख़त हो गए। यह वही मीर क़ासिम था जिसे मीर जाफ़र ने अपना विश्वस्त प्रतिनिधि बनाकर अंगरेज़ों के पास बातचीत के लिए भेजा था।

मीर जाफ़र के महल पर रात को अचानक हमला

३० सितम्बर को सौदा पक्का करके मीर क़ासिम कलकत्ते से मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुआ। २ अक्तूबर को मीर जाफ़र पर दबाव डालने के लिए गवरनर वन्सीटार्ट और उसके कुछ साथी कलकत्ते से चले। मुर्शिदाबाद भागीरथी के एक ओर और क़ासिम बाज़ार की कोठी दूसरी ओर थी। १५, १६ और १८ अक्तूबर को वन्सीटार्ट और मीर जाफ़र में बातचीत हुई। मीर जाफ़र अंगरेज़ों की नई तजवीज़ें और मीर क़ासिम के इरादों का हाल सुनकर घबरा गया। उसने मीर क़ासिम के हाथों में शासन के अधिकार सौंपने से इनकार कर दिया। मीर क़ासिम और अंगरेज़ों के लिए अब पीछे हट सकना असम्भव था। २० अक्तूबर को सवेरे सूर्य निकलने

से कुछ घंटे पहले कम्पनी की सेना ने अचानक मीर जाफ़र को महल में सोते हुए जा घेरा। मीर जाफ़र की उस समय की मानसिक स्थिति को मालेसन ने बड़े सुन्दर शब्दों में चित्रित करने का यत्न किया है। वह लिखता है :—

मीरजाफ़र का दुःख और पश्चात्ताप

"निस्सन्देह उस दिन प्रभात की महत्वपूर्ण घड़ी में बूढ़े नवाब को तीन साल से कुछ अधिक पहले के उस दिन की अवश्य याद आई होगी, जब कि प्लासी के मैदान में, इन्हीं अंगरेज़ों के साथ गुप्त समझौता करके उस मसनद के लिए, जिसे अब उसका एक दूसरा सम्बन्धी उसी तरह के उपायों द्वारा उसके हाथों से छीन रहा था, उसने अपने स्वामी और आत्मीय सिराजुद्दौला के साथ विश्वासघात किया था। मीर जाफ़र अवश्य इस समय सोचता होगा कि— 'जिस सत्ता को मैंने इतने नीच और कलंकित उपाय से प्राप्त किया था उससे मुझे क्या लाभ पहुँचा? मैंने सिराजुद्दौला से उसका महल छीना! उस महल में तीन साल तक नवाबी की! किन्तु इन तीन साल के अंदर जो यातनाएं मुझे सहनी पड़ीं उनके सामने मेरे जीवन के पहले ४८ साल के तमाम कष्ट फीके हैं! वे लोग, जिनके हाथ मैंने अपना मुल्क बेचा था, आज मुझे डर दिखला रहे हैं! यदि प्लासी में मैं अपने उस बालक सम्बन्धी के साथ वफ़ादार रहा होता, जिसने अत्यन्त हसरत भरे शब्दों में मुझसे अपनी पगड़ी की लाज रखने की प्रार्थना की थी तो इस समय मेरी स्थिति क्या होती? निस्सन्देह जो गुस्ताख़ विदेशी प्लासी से अब तक मुझ पर हुकुम चलाते रहे और जो अब मुझे मसनद से उतारने की धमकी दे रहे हैं, यदि प्लासी के मैदान में मैंने उनके नाश के मुख्य साधन बनने का यश प्राप्त कर

लिया होता, तो इस समय मेरे हाथों में वास्तविक सत्ता होती, मेरा नाम इज़्ज़त से लिया जाता और मेरा मुल्क बच गया होता ! किन्तु अब,—अपने महल की खिड़की से बाहर नज़र डालते ही मुझे लाल वरदी वाले अंगरेज़ सिपाही दिखाई दे रहे हैं, जो मेरे ही बाग़ी रिश्तेदार के झंडे के नीचे जमा हैं ! जो व्यवहार मैंने स्वयं सिराजुद्दौला के साथ किया, क्या मैं मीर क़ासिम से उससे अधिक दया की आशा कर सकता हूँ ?' इत्यादि । निस्सन्देह अपने स्वामी और रिश्तेदार के साथ मीर जाफ़र ने जो व्यवहार किया था उसकी याद इस समय मीर जाफ़र की आँखों के सामने से फिर गई होगी × × ×।"*

* Well, indeed, on that eventful morning, might the thoughts of the old man have carried him back to a period little more than three years distant, when on the field of Plassy he too in secret compact with these same English had betrayed his kinsman and master to obtain the seat which another kinsman was now by similar means wresting from him What to him had been the power thus basely and dishonourably obtained? All the agonies of the preceding fifty-eight years of his life paled before those which he had suffered during the three years he had ruled as Nawab in the usurped palace of Sirajuddowlah He could not but contrast his position threatened by the men to whom he had sold his country with that which he would have occupied if, at Plassy he had been loyal to the boy relative who had, in the most touching terms implored him to defend his turban With the prestige of having been the main factor in the destruction of the insolent foreigners who had since dictated to him and who now threatened to dethrone him he would have wielded a real power, his name would have been honoured his country would have been secure But now a glance from the window of his palace showed him the red-coated English soldiers rallying round the standard of his kinsman in revolt against himself Would Mir Kasim show him more mercy than he had shown to Sirajuddolah? The recollection of the fate to which he had abandoned his kinsman and master must have passed through his mind ' *The Decisive Battles of India*, by Colonel Malleson, pp 131, 132

मीर जाफ़र का मसनद से हटाया जाना

एक बार मीर जाफ़र ने अंगरेज़ों को मुक़ाबला करने की धमकी दी। किन्तु तुरन्त ही उसने अपनी बेबसी को महसूस कर लिया और उसका साहस टूट गया। उसने अपने तई मीर क़ासिम के हाथों में सौंपने से इनकार कर दिया। उसी दिन सवेरे मीर जाफ़र को मसनद से हटाकर कलकत्ते भेज दिया गया और मीर क़ासिम को उसकी जगह सूबेदारी की मसनद पर बैठा दिया गया।

मीर जाफ़र की आयु उस समय ६० साल की और मीर क़ासिम की क़रीब ४० साल की थी।

२१ अक्तूबर को वन्सीटार्ट और केलो ने इस घटना को विस्तार से बयान करते हुए सिलेक्ट कमेटी के नाम एक पत्र लिखा, जिसका सार क़रीब क़रीब उन्हीं के शब्दों में इस तरह है :—

"१४ अक्तूबर को नवाब मीर जाफ़र गवरनर वन्सीटार्ट से भेट करने के लिए क़ासिमबाज़ार आया। अगले दिन वन्सीटार्ट और केलो नवाब से मिलने मुर्शिदाबाद गए। दोनों दिन मामूली बातचीत होती रही। १८ ता० को अंगरेज़ों की पुरानी शिकायतों और नई माँगों पर बातचीत करने के लिए नवाब फिर क़ासिमबाज़ार आया। ये सब शिकायतें और माँगे पहले से तीन पत्रों के अन्दर लिख दी गई थीं। ये पत्र बातचीत के शुरू ही मे वन्सीटार्ट ने मीर जाफ़र को दे दिए।

"मीर जाफ़र पत्रों को पढ़कर बहुत घबरा गया। उसने अपने महल वापस जाकर खाना खाने और सलाह करने के लिए समय चाहा। किन्तु अंगरेज़ों ने उस पर ज़ोर दिया कि आप यहीं ही खाना मँगवाकर हाथ के

हाथ तमाम मामले का फ़ैसला कर दें। अन्त में बूढ़ा मीर जाफ़र इस दर्जे थका हुआ मालूम हुआ कि अंगरेज़ों को मजबूर होकर उसे आराम करने और फिर विचार करने के लिए अपने महल लौटने की इजाज़त देनी पड़ी। अंगरेज़ों ने यह भी देख लिया कि बिना थोड़ी बहुत ज़बरदस्ती किए मीर जाफ़र राज की बाग मीर क़ासिम के हाथों मे देने के लिए राज़ी न होगा। मीर जाफ़र के जाने के दो घंटे बाद मीर क़ासिम वहाँ पहुँचा। मीर क़ासिम इस समय मीर जाफ़र के सामने जाने से डरता था। १६ ता० मीर जाफ़र को विचार करने के लिए दी गई, किन्तु उस दिन मीर जाफ़र की तरफ़ से कोई जवाब न मिल सका। फ़ौरन् वन्सीटार्ट और उसके साथियों ने ज़बरदस्ती करने का निश्चय किया। १६ की रात को महल के अन्दर किसी त्यौहार की तक़रीब में दावत थी। तमाम लोग थक कर सोए हुए थे। अंगरेज़ों ने उस मौक़े को बहुत ग़नीमत समझा। चुपचाप रात को तीन बजे करनल केलो ने दो कम्पनी गोरों की और छै कम्पनी काले सिपाहियों की लेकर नदी को पार किया और पौ फटते फटते मीर क़ासिम और उसके कुछ आदमियों को साथ लेकर मीर जाफ़र को महल के अन्दर सोते हुए जा घेरा। सब काररवाई अच्छी तरह गुप्त रक्खी गई, चूँकि महल के अन्दर के सहन के फाटक बन्द थे इसलिए केलों ने बाहर के सहन में अपने सिपाहियों को खड़ा कर दिया। मीर जाफ़र के पास वन्सीटार्ट का एक पत्र भेजा गया। मीरजाफ़र पत्र पढ़कर एकबार क्रोध से भर गया। उसने मुक़ाबले का इरादा ज़ाहिर किया। क़रीब दो घंटे तक संदेश आते जाते रहे। अन्त में अपनी बेबसी को पूरी तरह अनुभव कर मीर जाफ़र ने मीर क़ासिम को बुलवा भेजा और मसनद उसके सुपुर्द कर देने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की।

"मीर क़ासिम ने शासन का सारा भार अपने ऊपर ले लिया और सेना की पिछली तनख़ाहों की बक़ाया अदा करने और सम्राट को बराबर ख़िराज भेजते रहने का वादा किया। इस तरह २० अक्तूबर को सवेरे मीर जाफ़र बंगाल की मसनद से अलग किया गया और उसकी जगह मीर क़ासिमअली ख़ाँ के नाम की नौबत बजने लगी।"*

अंगरेज़ द्विभाषिया लशिंगटन के अनुसार मीर जाफ़र ने अन्त में करनल केलो से जो कुछ कहा वह यह था :—

"आप ही लोगों ने मुझे मसनद पर बैठाया था, आप चाहें तो मुझे उतार सकते हैं। आप लोगों ने अपने वादों को तोड़ना मुनासिब समझा। मैंने अपने वादे नहीं तोड़े। अगर मेरे दिल में भी इसी तरह की चालें होतीं और मैं चाहता तो बीस हज़ार फ़ौज जमा कर सकता था और आप से लड़ सकता था। मेरे बेटे मीरन ने मुझे इन सब बातों के बारे में पहले ही से आगाह कर दिया था।"†

बंगाल की इस दूसरी बग़ावत का यह सारा बयान उस बग़ावत के कर्त्ता धर्ता अंगरेज़ों ही की ज़बानी दिया गया है।

मीर जाफ़र पर झूठे दोष

मीर जाफ़र के साथ इस व्यवहार को जायज़ क़रार देने के लिए उस पर कुछ न कुछ इलज़ाम लगाना आवश्यक था। १० नवम्बर सन् १७६० को कलकत्ते में अंगरेज़ अफ़सरों की एक सभा हुई जिसमें कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम मशहूर जालसाज़ हॉलवेल

* *First Report 1772*, p 231

† Malcolm's *Life of Clive*, vol. ii p 268

का लिखा हुआ वह पत्र पढ़ा गया, जिसका ज़िक्र ऊपर एक जगह आ चुका है। उस पत्र में लिखा था :—

"नवाब जाफ़रअली ख़ाँ निहायत ज़ालिम और लालची तबीयत का आदमी था, साथ ही बड़ा काहिल भी था, और उसके आस पास के आदमी या तो कमीने, ग़ुलाम और ख़ुशामदी थे या उसकी बुरी इच्छाओं को पूरा करने के ज़रिये थे। हर श्रेणी के इस तरह के लोगों की बेहद मिसालें मौजूद हैं जिनका बिना किसी वजह के उसने ख़ून कर डाला।"*

इसके बाद इसी पत्र में पिता या पति के नाम इत्यादि समेत बड़ी तफ़सील के साथ अनेक ऐसे पुरुषों और स्त्रियों की सूची दी हुई है, जिनकी बाबत कहा गया है कि मीर जाफ़र ने उन्हें मार डाला। किन्तु १ अक्तूबर सन् १७६५ को मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद क्लाइव और उसके साथियों ने डाइरेक्टरों के नाम एक दूसरा पत्र भेजा जिसमें लिखा है:—

"× × × हम आपको सूचित कर देना अपना फ़र्ज़ समझते हैं कि मि० हॉलवेल ने × × × जिन भयंकर हत्याओं का इलज़ाम मीर जाफ़र पर लगाया है वे उस नवाब के चरित्र पर झूठे कलंक और उसके साथ ज़ुल्म हैं। उनमें ज़रा भी सच्चाई नहीं है, जिन स्त्री पुरुषों की (हॉलवेल के उस पत्र में)

---

* "The Nawab Jaffir Ali Khan, was of a temper extremely tyrannical and avaricious, at the same time very indolent, and the people about him being either abject slaves and flatterers, or else the base instruments of his vices, . numberless are the instances of men, of all degrees, whose blood he has spilt without the least assigned reason"—Holwell's Address to the proprietors of the East India Stock, p 46

सूची दी गई है और कहा गया है कि मीर जाफ़र ने उन्हें मरवा डाला, सिवाय दो के उनमें से सब इस समय ज़िन्दा हैं × × × ।"*

न जाने इसी तरह के और कितने झूठ सिराजुद्दौला और मीर जाफ़र दोनों के ख़िलाफ़ इस समय तक प्रचलित हैं और इतिहास की पुस्तकों में दर्ज हैं।

मीर जाफ़र को मसनद से उतार कर कलकत्ते में नज़रबन्द रक्खा गया। दो हज़ार रुपए माहवार उसके ख़र्च के लिए नियत किए गए। कहते हैं कि इस पर बूढ़े मीर जाफ़र ने करबला जाने की इजाज़त चाही और उसके लिए ख़र्च की दरख़ास्त की, किन्तु उसे करबला जाने की भी इजाज़त न मिल सकी।

कम्पनी और अंगरेज़ों को लाभ

अब केवल यह देखना बाक़ी है कि मीर जाफ़र के साथ इस विश्वासघात द्वारा अंगरेज़ों और अंगरेज़ कम्पनी को क्या क्या लाभ पहुँचा।

सब से पहले तीन ज़िले बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम जिनकी सालाना आमदनी तमाम बंगाल की आमदनी का एक तिहाई थी, सदा के लिए कम्पनी के हवाले कर दिए

* "In Justice to the memory of the late Nawab Mir Jaffir, we think it incumbent on us to acquaint you, that the horrible massacres wherewith he is charged by Mr Holwell, in his 'Address to the proprietors of East India Stock' (p 46), are cruel aspersions on the character of that prince, which have not the least foundation in truth The several persons there affirmed and who have been generally thought to have been murdered by his order, are all now living, except two, . . . "—Letter addressed to the Hon'ble Court of Directors by Clive and others, 1st October, 1765

गए। इन तीनों ज़िलों के लिए मुर्शिदाबाद के दरबार से कम्पनी के नाम अलग अलग सनदें जारी कर दी गईं। बर्धमान के लिए जो सनद जारी की गई उसमें लिखा है कि वहाँ के ज़मींदार और काश्तकार दोनों पहले की तरह क़ायम रहेंगे, केवल सरकारी मालगुज़ारी का जो रुपया अभी तक सूबेदार के कर्मचारी वसूल करके मुर्शिदाबाद भेजा करते थे, वह आइन्दा कम्पनी के नौकर वसूल करके कम्पनी के पास कलकत्ते भेजा करेंगे और इस धन के ख़र्च से कम्पनी साम्राज्य की रक्षा के लिए या जब ज़रूरत हो, सम्राट या सूबेदार की मदद के लिए, पाँच सौ यूरोपियन सवार, दो हज़ार यूरोपियन पैदल और आठ हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक सेना रक्खेगी। इसी तरह की सनदें मेदिनीपुर और चटगाम के लिए भी जारी की गईं।

इसके अलावा वन्सीटार्ट और केलो ने कलकत्ता कमेटी को लिखा कि इस बग़ावत से :—

"निस्सन्देह कम्पनी को बड़ा लाभ हुआ है। × × × पटने की फ़ौज को देने के लिए करनल के हाथ रुपए की रक़म भेजी जावेगी और हमें यह भी आशा है कि इसके अलावा कलकत्ते भेजने के लिए हमें तीन या चार लाख रुपए और मिल जावेंगे, जिनसे कम्पनी की वहाँ की और मद्रास की इस समय की ज़रूरतें पूरी हो सकेंगी।"*

* "The advantages to the Company are great indeed. . . . . A supply of money will be sent with the Colonel for the payment of the troops at Patna and we have even some hopes of obtaining three or four lacks

कम्पनी की टकसाल

सिराजुद्दौला ने एक बार कम्पनी को अलग टकसाल क़ायम करने से रोक दिया था। बाद में कुछ शर्तों के साथ उसे इजाज़त देनी पड़ी, किन्तु इस पर भी सिराजुद्दौला के समय में कम्पनी की टकसाल बंगाल में क़ायम न हो सकी। इतिहास लेखक ओर्मे लिखता है कि प्लासी के युद्ध के बाद कलकत्ते में कम्पनी की टकसाल क़ायम हुई और १६ अगस्त १७५७ को पहले पहल कम्पनी के नाम के रुपए ढाले गए। फिर भी तीन साल तक अंगरेज़ों को इस टकसाल से अधिक लाभ न हो सका, क्योंकि बंगाल भर में मुर्शिदाबाद के सरकारी रुपयों के सामने कम्पनी के रुपयों को, उनमें चांदी कम होने के कारण, बिना बट्टे कहीं कोई न लेता था। अब अंगरेज़ों को इस असुविधा के दूर करने का मौक़ा मिला। २० अक्तूबर को गद्दी पर बैठते ही मीर क़ासिम ने कम्पनी के नाम एक परवाना जारी किया, जिसमें उसने उन्हें अपनी कलकत्ते की टकसाल में अशर्फ़ियाँ और रुपए ढालने की इजाज़त दी, इस शर्त पर कि कम्पनी के सिक्के वज़न और धातु में मुर्शिदाबाद के सरकारी सिक्कों के बिलकुल बराबर हों। इसके साथ साथ उसने एक निहायत कड़ा हुकुम जारी कर दिया कि कोई सर्राफ़ या सौदागर कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इनकार न करे और न उन पर किसी तरह का बट्टा माँगे।"

besides to send down to Calcutta, to help out the Company in their present occasions there and at Madras "—Vansittart and Caillaud in their letter to the Select Committee at Fort William dated 21st October, 1760

इससे सरकारी आमदनी का बड़ा मद टूट गया और मुर्शिदाबाद दरबार की माली और राजनैतिक स्थिति को और अधिक धक्का पहुँचा। नवाब और उसकी प्रजा के साथ यह ज़बरदस्त अन्याय था। किन्तु कम्पनी के लिए आमदनी का और जैसा आगे चल कर साबित हुआ जालसाज़ी का एक बहुत बड़ा नया मद खुल गया।

कम्पनी को इस तरह जो कुछ लाभ हुआ उसके अलावा मीर क़ासिम ने इस अहसान के बदले में वन्सीटार्ट और उसके साथियों को बीस लाख रुपए नक़द बतौर नज़राने के भेंट किए।

अनेक इतिहास लेखकों ने कड़े शब्दों में मीर जाफ़र के साथ अंगरेज़ों के इस विश्वासघात की आलोचना की है। इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है:—

"उन लोगों तक में, जिन्होंने यूरोपनिवासियों को दिखाने के लिए यूरोपवालों के एशियाई करतूतों पर मुलम्मा फेरने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले रक्खी है, इस अन्याय को प्रायः कोई भी क्षम्य नहीं कहता। मीरजाफ़र × × × और कम्पनी के बीच मित्रता की क़समें खाई जा चुकी थीं और वह मित्रता ख़ून से पक्की की जा चुकी थी। और यदि कभी भी ईमानदारी का कम से कम ऊपरी रूप बनाए रखना मनुष्य के लिए ज़रूरी था तो इस मामले में कलकत्ते के गवरनर और उसकी कौन्सिल को इतनी शर्म होनी चाहिये थी। किन्तु इस पर भी उस दो लाख पाउण्ड के बदले जो उन्हें व्यक्तिगत हैसियत से मिले और उन तीन ज़रख़ेज़ इलाक़ों के बदले

जो कम्पनी को मिले इन लोगों ने अपने ऐसे मित्र और सहायक को बेच दिया जो इन पर हद से ज़्यादा विश्वास करता था।"*

* "The iniquity of this transaction finds few apologists even among those who have taken upon themselves to dress and to enamel Oriental deeds for European view The treaty with Mir Jaffir still subsisted, . He was the sworn and bloodknit ally of the Company, and if ever men were bound by decency to maintain at least the forms of good faith, the Governor and Council of Calcutta were so bound Yet, being so, for the sum of £s 200,000 to them privately paid, and for the cession of three rich and populous provinces, they sold their too confiding friend and ally' -*Empire in Asia*, by W M Torrens M P p 42

चौथा अध्याय

मीर क़ासिम

मुर्शिदाबाद के दरबार और बंगाल की प्रजा दोनों की हालत मीर क़ासिम के मसनद पर बैठते ही और अधिक शोचनीय होती गई। सब से पहले मीर क़ासिम ने देखा कि राज की आर्थिक अवस्था अत्यन्त बिगड़ी हुई थी। सरकारी मालगुज़ारी ठीक तौर पर वसूल न हो रही थी। खज़ाना क़रीब क़रीब ख़ाली था। सालाना ख़र्च आमद से बढ़ गया था, और फ़ौज की कई महीने की तनख़ाहें चढ़ी हुई थीं। इसके अलावा ठीक मीर जाफ़र के समान मीर क़ासिम ने अब महसूस किया कि जो बड़े बड़े वादे उसने अंगरेज़ों के साथ कर रक्खे थे उन्हें पूरा करना इतना आसान न था। इन वादों और दूसरी नई नई माँगों को पूरा करने के लिए मीर क़ासिम ने अपने यहाँ के ज़मींदारों और रईसों को अंगरेज़ों ही के सिपाहियों की

बंगाल की हालत

मारफ़त बुला बुला कर ज़बरदस्ती उनसे रक़में वसूल करना शुरू किया। जब इससे भी काम न चल सका तो उसे जगतसेठ से क़र्ज़ लेना पड़ा और अन्त में अंगरेज़ों को रक़में देने के लिए रियासत के जवाहरात बेचकर और महल के सोने चाँदी के बरतन गलवा कर सिक्के ढलवाने पड़े।

कम्पनी के खोटे सिक्के

कम्पनी की टकसाल कलकत्ते में क़ायम हो चुकी थी। किन्तु अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम की इस शर्त की बिल्कुल परवाह न की कि जो सिक्के कलकत्ते में ढाले जावें वह मुर्शिदाबाद की सरकारी टकसाल के सिक्कों के समान वज़न और समान धातु के हों। अंगरेज़ बराबर अपनी टकसाल में घटिया सिक्के ढालते रहे। नतीजा यह हुआ कि बावजूद मीर क़ासिम की कड़ी आज्ञाओं के प्रजा ने कलकत्ते के सिक्कों को बिना बट्टे के लेने से इनकार किया। इस पर अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम से प्रार्थना की कि जो सिक्के हम कलकत्ते में ढालें उन पर भी हमें मुर्शिदाबाद का नाम और मुर्शिदाबाद ही की छाप रखने की इजाज़त दी जावे। मीर क़ासिम ने इस जाली काररवाई को तो मंज़ूर न किया, किन्तु उसने अंगरेज़ों को सन्तुष्ट करने के लिए कलकत्ते के सिक्कों को लेने से इनकार करने वाले या उन पर बट्टा माँगने वाले ज़मींदारों और अन्य लोगों को सज़ाएं देना शुरू कर दिया। इन सख़्तियों की वजह से अनेक ज़मींदार मीर क़ासिम से असन्तुष्ट हो गए, यहाँ तक कि कई जगह नए नवाब के ख़िलाफ़ बग़ावत की तैयारियाँ होने लगीं।

कुछ साल पहले कम्पनी का क़र्ज़ चुकाने के लिए मीर जाफ़र ने बर्धमान के इलाके की मालगुज़ारी कम्पनी के नाम कर दी थी। उस समय से बर्धमान का इलाक़ा अंगरेज़ों के इन्तज़ाम में था और कम्पनी के सिपाहियों ने, जिनमें अधिकांश मद्रास से लाए गए थे, उस इलाके भर में लूट मार जारी कर रक्खी थी। इन तिलंगे सिपाहियों के अत्याचारों की शिकायत करते हुए सितम्बर सन् १७६० में वर्धमान के ज़मींदार राजा तिलकचन्द ने कलकत्ते की अंगरेज़ कमेटी को लिखा :—

बर्धमान में कम्पनी के अत्याचार

"अनेक तिलंगों ने मण्डलघाट, मानकर, जहानाबाद, चितवर, बरसात, बलगुरी और चोमहन के परगनों और दूसरे स्थानों मे घुसकर वहाँ के बाशिंदों को लूट लिया है और उनके साथ इस तरह के ज़ुल्म किए हैं जिनसे लोगों की जान तक ख़तरे मे पड़ गई है। इन ज़ुल्मों से मजबूर होकर वहाँ के बाशिंदे गाँव छोड़ कर भाग गए हैं और उन मौज़ों की मालगुज़ारी मे दो या तीन लाख रुपए का नुक़सान हुआ है।"*

इस पर भी इन तिलंगों की लूट मार जारी रही और राजा तिलकचन्द को कुछ समय बाद फिर लिखना पड़ा :—

"तिलंगों के व्यवहार से रय्यत को ज़बरदस्त कष्ट हो रहा है और मजबूर होकर रय्यत अपने घर बार छोड़ छोड़ कर भाग रही है।"*

किन्तु कम्पनी ने इन शिकायतों की ओर कुछ भी ध्यान न दिया। लिखा है कि बर्धमान के कई परगने इस समय वीरान पड़े हुए थे।

* Long's *Records* p. 236

अब मीर क़ासिम ने यह तमाम इलाक़ा हमेशा के लिए कम्पनी को सौंप दिया और वहाँ के ज़मींदार को अंगरेज़ों के अधीन कर दिया। जब यह नया परवाना राजा तिलकचन्द के पास पहुँचा तो उसे दुख होना स्वाभाविक था। उसने गवरनर वन्सीटार्ट को अपनी ज़मींदारी की शोचनीय अवस्था की फिर से इत्तला दी और अपने यहाँ की मालगुज़ारी का सब हिसाब भेज दिया।

वर्धमान और बीरभूम पर कम्पनी का क़ब्ज़ा

वन्सीटार्ट ने किसी तरह उसकी मदद न की और न कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार बन्द हुए। मजबूर होकर कहा जाता है राजा तिलकचन्द ने बीरभूम के राजा के साथ मिलकर अंगरेज़ों और मीर क़ासिम दोनों से लड़ने के लिए फ़ौज जमा करना शुरू किया। इस पर कलकत्ते की कौंसिल ने "बर्धमान और मेदनीपुर के इलाक़ों पर क़ब्ज़ा करने के लिए" कप्तान व्हाइट के अधीन कुछ सेना बर्धमान भेजी। राजा तिलकचन्द के एक पत्र से मालूम होता है कि इस सेना ने भी मार्ग भर में असहाय ग्रामवासियों पर तरह तरह के ज़ुल्म किए, उन्हें ख़ूब लूटा और ख़ूब ख़ून बहाया।

२८ दिसम्बर सन् १७६० को कप्तान व्हाइट की सेना और बर्धमान के राजा की सेना में लड़ाई हुई, जिसमें राजा की सेना हार गई। अंगरेज़ी सेना का एक हिस्सा बीरभूम की राजधानी नागौर पर क़ब्ज़ा करने के लिए भेज दिया गया। वहाँ का राजा अपनी राजधानी छोड़कर पहाड़ों की ओर भाग गया और बर्धमान तथा नागौर दोनों पर कम्पनी का क़ब्ज़ा हो गया।

आए दिन के राज परिवर्तन की वजह से बंगाल के शासन की अवस्था अत्यन्त अस्तव्यस्त हो रही थी। कम्पनी की व्यापार सम्बन्धी ज़बरदस्तियाँ बंगाल भर में ज़ोरों के साथ बढ़ रही थीं। अंगरेज़ों ने जो क़रीब तीस हज़ार नई सेना मीर क़ासिम और सम्राट की सहायता के नाम पर और साम्राज्य की रक्षा के लिए कहकर जमा कर रक्खी थी, जिसके ख़र्च के लिए मीर क़ासिम से तीन बड़े बड़े ज़िले लिए गए थे, वह सब अब सूबे भर में इन ज़बरदस्तियों को जारी रखने के लिए काम में लाई जा रही थी।

महसूल की माफ़ी और उसका दुरुपयोग

प्राचीन भारतीय नरेशों के अधीन राज की आमदनी का एक बहुत बड़ा ज़रिया तिजारती माल का महसूल था। मुग़ल सम्राटों के अधीन ईरान, अरब, मिश्र, इतालिया, स्पेन, पुर्तगाल, इङ्गलिस्तान, बर्मा, चीन, जापान इत्यादि अनेक बाहर के मुल्कों के साथ और स्वयं भारत के अन्दर भारतीय तिजारत बेहद बढ़ी हुई थी, जिसमें हज़ारों भारतीय जहाज़ हर साल लगे रहते थे और हर व्यापारी को अपना माल एक जगह से दूसरी जगह ले जाने में सरकारी महसूल देना पड़ता था। केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए मुग़ल सम्राट ने ख़ुश होकर यह महसूल माफ़ कर दिया था। इस माफ़ी का मतलब यह था कि कम्पनी अगर विलायत से कोई माल लाकर हिन्दोस्तान में बेचना चाहे या हिन्दोस्तान का बना माल ख़रीद कर विलायत ले जाना चाहे तो उस माल पर कोई महसूल न लिया जावे। शाही फ़रमान में कम्पनी के मुलाज़िमों या

दूसरे अंगरेज़ों को निजी तौर पर बिना सरकारी महसूल दिए तिजारत करने की इजाज़त कहीं न थी और न कम्पनी को ही देश के भीतर की मामूली तिजारत में बिना महसूल दिए हिस्सा लेने का अधिकार दिया गया था। इतना ही नहीं, बल्कि जैसा पिछले अध्याय में कहा जा चुका है, नमक, छालिया, तम्बाकू, इमारती लकड़ी, सूखी मछली इत्यादि बहुत सी चीज़ों में शुरू से ही बंगाल भर के अन्दर यूरोपनिवासियों को तिजारत करने की मनाही थी।

सब से पहले मीर जाफ़र के समय में अंगरेज़ों ने ज़बरदस्ती इस नियम को तोड़ा और नमक वग़ैरह की तिजारत शुरू कर दी, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। मीर जाफ़र ने बहुतेरा एतराज़ किया, किन्तु उसकी एक न चल सकी। अंगरेज़ों का यह तमाम व्यापार शाही फ़रमान के विरुद्ध था, किन्तु कम से कम कुछ दिनों तक अंगरेज़ व्यापारी अपनी इस नाजायज़ तिजारत के माल पर महसूल उसी तरह अदा करते रहे, जिस तरह तमाम देशी व्यापारी अपने माल पर करते थे।

अब मीर क़ासिम को नवाब बनाने के बाद कम्पनी के मुलाज़िम और दूसरे अंगरेज़, कम्पनी का पास (दस्तक) लेकर, बिना किसी तरह का महसूल दिए, देश भर में हर चीज़ का व्यापार करने लगे और जब नवाब के कर्मचारी एतराज़ करते थे या महसूल माँगते थे तो उन्हें कम्पनी के नए सिपाहियों के हाथों दुरुस्त कर दिया जाता था। इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

"इस तरह कम्पनी के मुलाज़िमों का माल बिलकुल बिना महसूल

सब जगह आता जाता था, जब कि और सब व्यापारियों का अपने माल पर भारी महसूल देना पड़ता था। नतीजा यह हुआ कि देश का सारा व्यापार तेज़ी के साथ कम्पनी के मुलाज़िमों के हाथों में आने लगा और सरकारी आमदनी का एक स्रोत बिलकुल सूखने लगा। जब महसूल जमा करने वाला कोई सरकारी कर्मचारी कम्पनी के दस्तक के इस दुरुपयोग पर एतराज़ करता और माल को रोकता था तो उसे गिरफ़्तार करके पास की अंगरेज़ी कोठी में पहुंचा देने के लिए सिपाहियों का एक दस्ता भेज दिया जाता था।"*

व्यापार सम्बन्धी अत्याचार

अंगरेज़ों की इस नाजायज़ तिजारत के साथ जो जो ज़ुल्म और ज़बरदस्तियाँ होती थीं उनकी गवाही अनेक अंगरेज़ लेखकों के बयानों से मिलती है। जहाँ जहाँ कोई अंगरेज़ बैठकर इस तरह व्यापार करता था, वहाँ वहाँ ही अंगरेज़ी झंडा और कम्पनी के कुछ सिपाही उसके साथ रहते थे। वारन हेस्टिंग्स २५ अप्रैल सन् १७६२ के एक पत्र में लिखता है :—

"जहाँ जहाँ मैं गया हूँ वहाँ वहाँ अनेक अंगरेज़ी झंडे लहराते हुए देखकर मैं चकित रह गया हूँ × × × चाहे किसी भी अधिकार से ऐसा क्यों

* "The Company's servants whose goods were thus conveyed entirely free from duty, while those of all other merchants were heavily burdened, were rapidly getting into their own hands the whole trade of the country, and thus drying up one of the sources of the public revenue. When the Collectors of these tolls, or transit duties questioned the power of the Dustuck, and stopped the goods it was customary to send a party of Sepoys to seize the offender and carry him prisoner to the nearest factory." Mill's *History of India*, vol iii, pp 229, 230

न कर लिया गया हो, मुझे विश्वास है कि जगह जगह इन झंडों की मौजूदगी से नवाब की आमदनी, देश के अमन या हमारी क़ौम की इज़्ज़त तीनों में से किसी को भी लाभ नहीं पहुँच सकता। × × × रास्ते में हमारे सिपाहियों के व्यवहार के ख़िलाफ़ मुझसे अनेक शिकायतें की गईं। हम लोगों के पहुँचते ही लोग अधिकांश छोटे क़स्बों और सरायों को ख़ाली छोड़ कर भाग जाते थे और दुकानों को बन्द कर देते थे, क्योंकि उन्हें हमसे भी उसी तरह के व्यवहार का डर था।"*

वेरेल्स्ट नामक अंगरेज़ इस सम्बन्ध में हमें एक और नई बात बताता है। वह लिखता है :—

"उन दिनों बहुत से काले (हिन्दोस्तानी) व्यापारी अपनी सुविधा के लिए कम्पनी के किसी नौजवान मुहर्रिर को धन देकर उसका नाम ख़रीद लेते थे और उसके नाम के 'दस्तक' के ज़रिए देश के लोगों को तंग करते और उन पर ज़ुल्म करते थे। इस ज़रिए से इतनी ज़्यादा आमदनी होने लगी कि कई नौजवान (अंगरेज़) मुहर्रिर १५ हज़ार और २० हज़ार रुपए साल ख़र्च कर सकते थे, नफ़ीस कपड़े पहनते थे और रोज़ अच्छे से अच्छा खाना उड़ाते थे।"

वह आगे चल कर लिखता है :—

* I have been surprised to meet with several English flags flying in places which I have passed . . . By whatever title they have been assumed I am sure their frequency can bode no good to the Nawab's revenues the quiet of the country or the honor of our nation . . . Many complaints against them Sepoys were made me on the road and most of the petty towns and serais were deserted at our approach and the shops shut up from the apprehensions of the same treatment from us." Warren Hastings in a letter to the President dated Bhagalpur 25th April 1762

"बिना महसूल दिए तिजारत की जाती थी और उसके जारी रखने में बेहद ज़ुल्म किए जाते थे। × × × मीर क़ासिम के साथ लड़ाई की यही उस समय वजह हुई।"*

कम्पनी के डाइरेक्टरों तक ने ८ फ़रवरी सन् १७६४ के एक पत्र में स्वीकार किया है कि "कम्पनी के नौकरों, गुमाश्तों, एजन्टों और दूसरों की यह निजी तिजारत" "नाजायज़" थी, "दस्तक का लज्जाजनक दुरुपयोग" थी, "हर तरह से अनधिकार युक्त" थी, और नवाब और उसकी "कुदरती प्रजा" दोनों के साथ यह "दोहरा अन्याय" था। किन्तु डाइरेक्टरों के इस पत्र के बाद भी इस अन्याय में कोई कमी न पड़ी।

उन सिपाहियों के ज़रिए, जो नवाब के पैसे से नियुक्त किए गए थे, नवाब ही की प्रजा के ऊपर जिस जिस तरह के ज़ुल्म किए जाते थे उनका कुछ अनुमान मीर क़ासिम के नाम बाकरगंज के एक सरकारी कर्मचारी के २५ मई सन् १७६२ के पत्र से किया जा सकता है। उसमें लिखा है:—

---

* "At this time many black merchants found it expedient to purchase the name of any young writer, in the Company's Service, by loans of money and under this sanction harassed and oppressed the natives. So plentiful a supply was derived from this source that many young writers were enabled to spend £s. 1,500 and £s. 2,000 per annum, were clothed in fine linen and fared sumptuously every day."

* * * *

"A trade was carried on without payment of duties, in the prosecution of which infinite oppressions were committed. This was the immediate cause of the war with Mir Cassim."—Verelst's *View of Bengal*, pp. 8 and 46.

"× × × यह जगह पहले बड़ी तिजारत की जगह थी, किन्तु अब नीचे लिखी काररवाइयों की वजह से बरबाद हो गई। कोई अंगरेज़ माल ख़रीदने या बेचने के लिए यहाँ किसी गुमाश्ते को भेजता है फ़ौरन् वह गुमाश्ता यह फ़र्ज़ कर लेता है कि यहाँ के किसी भी आदमी के हाथ ज़बरदस्ती अपना माल बेचने या उसका माल ज़बरदस्ती ख़रीदने का मुझे पूरा अधिकार है और यदि वह आदमी ख़रीदने या बेचने की सामर्थ्य न रखता हो और इनकार करे तो फ़ौरन् या तो उस पर कोड़े बरसाए जाते हैं और या उसे क़ैद कर लिया जाता है। यदि वह राज़ी हो जावे तब भी केवल इतना ही काफ़ी नहीं समझा जाता, बल्कि एक दूसरी ज़बरदस्ती यह की जाती है कि अनेक चीज़ों की तिजारत का ठेका अपने ही हाथों में ले लिया जाता है, यानी जिन जिन चीज़ों की तिजारत अंगरेज़ करते हैं उनकी तिजारत किसी दूसरे को करने नहीं दी जाती और न किसी दूसरे के पास से किसी को ख़रीदने दिया जाता है। × × × और फिर अंगरेज़ समझते हैं कि कम से कम जो हम कर सकते हैं वह यह है कि दूसरा सौदागर जिस दाम पर कोई चीज़ ख़रीदता है, हम उसी चीज़ को उससे बहुत कम दाम पर ख़रीदें। अकसर ये लोग दाम देने से इनकार कर देते हैं और मैं दख़ल देता हूँ तो फ़ौरन् मेरी शिकायत होती है।"*

तिजारत के बहाने लूट

१८ वीं सदी के पिछले पचास साल में बंगाल भर के अन्दर यह ज़बरदस्त ज़ुल्म सब जगह फैला हुआ था। अब हम इंगलिस्तान के प्रसिद्ध नीतिज्ञ और वक्ता एडमण्ड बर्क के कुछ वाक्य इसके विषय में देते हैं। बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने कहा था :—

* Vansittart's *Narrative*, vol. ii, p. 112

"तिजारत जो दुनिया के हर मुल्क को धनवान बनाती है, बंगाल को सर्वनाश की ओर ले जा रही थी। इससे पहले, जब कि कम्पनी को देश में कहीं भी हुकूमत करने का हक़ हासिल न था, अपने दस्तक या पास के ऊपर उन्हें बड़े बड़े अधिकार मिले हुए थे, कम्पनी का माल बिना महसूल दिए देशभर में आ जा सकता था। (धीरे धीरे) कम्पनी के नौकर अपनी अपनी निजी तिजारत के लिए इस पास का उपयोग करने लगे। यह मामला जब तक कि थोड़ा थोड़ा होता रहा, देश की सरकार ने कुछ हद तक इसे गवारा कर लिया, किन्तु जब सभी लोग ऐसा करने लगे तब तिजारत की जगह उसे डकैती कहना ज़्यादा ठीक मालूम होता था।

"ये व्यापारी हर जगह पहुँचते थे, अपने ही दामों पर माल बेचते थे और दूसरे लोगों को ज़बरदस्ती मजबूर करके उनका माल अपने ही दामों पर ख़रीदते थे। बिलकुल ऐसा मालूम होता था कि तिजारत के बहाने एक फ़ौज लोगों को लूटने जा रही है। लोग अपनी देशी अदालतों से रक्षा की आशा करते थे, किन्तु व्यर्थ। अंगरेज़ व्यापारियों की यह सेना जिधर जाती थी उधर ही तातारी विजेताओं से बढ़कर लूट मार और बरबादी करती थी। × × × इस तरह इस अभागे देश पर दोहरा अन्याय जारी था, जिसकी भयंकर लूट द्वारा देश चूर चूर हो रहा था।"*

---

* "Commerce, which enriches every other country in the world, was bringing Bengal to total ruin The Company, in former times, when it had no sovereignty or power in the country, had large privileges under their Dustuck or permit, their goods passed witout paying duties through the country The servants of the Company made use of this dustuck for their own private trade, which, while it was used with moderation, the native Government winked at in some degree, but when it got wholly into private

सन्देह होने लगता है कि उन दिनों बंगाल में किसका राज था। वास्तव में राज न मुग़ल सम्राट का था, न मुर्शिदाबाद के सूबेदार का ; राज था विदेशियों की कूट नीति, अराजकता और इस देश के दुर्भाग्य का, और यह सब नतीजा था थोड़े से भारतवासियों की लज्जाजनक देशघातकता का। हम ऊपर कह चुके हैं कि बर्धमान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की आमदनी से वे सब फ़ौजें रक्खी गई थीं, जिनके हाथों बंगाल भर में यह भयंकर नादिरशाही चलाई जा रही थी। सच यह है कि इसे नादिरशाही कहना भी नादिरशाह के साथ अन्याय करना है। नादिरशाह यदि ग़ैर मुल्क में पहुँच कर अपने सिपाहियों की शान क़ायम रखने के लिए चन्द घड़ी के लिए क़त्लआम का हुकुम दे सकता था तो वह अपनी एक आवाज़ पर अमन क़ायम करना भी जानता था और क्षमा और उदारता की शक्ति भी उसमें अपार थी। वास्तव में अठारवीं सदी के उत्तरार्ध में बंगाल के अंदर अंगरेज़ों के अत्याचारों की तुलना संसार के इतिहास के किसी दूसरे पन्ने पर मिलना कठिन है।

---

hands, it was more like robbery than trade These traders appeared every where they sold at their own prices, and forced the people to sell to them at their own prices also It appeared more like an army going to pillage the people under pretence of commerce than anything else In vain the people claimed the protection of their own Country Courts This English army of traders, in their march ravaged worse than a Tartarian Conqueror

Thus this miserable country was torn to pieces by the horrible rapaciousness of a double tyranny" --Burke in his impeachment of Warren Hastings

मीर क़ासिम की शिकायतें

बंगाल और बिहार भर में इस समय कम्पनी की कोठियाँ फैली हुई थीं। नमक से लेकर इमारती लकड़ी तक अनेक चीज़ों का सारा व्यापार अंगरेज़ों के हाथों में आ गया था। किसानों की खड़ी खेती कम्पनी के अंगरेज़ नौकर जिस भाव चाहें ख़रीद लेते थे। देश के हज़ारों लाखों व्यापारियों की रोज़ी छिन चुकी थी और किसानों की हालत इससे भी अधिक करुणाजनक थी। नवाब के मुलाज़िमों के साथ कम्पनी के गुमाश्तों और एजन्टों के रोज़ाना जगह जगह झगड़े होते रहते थे। कम्पनी के गुमाश्ते अनेक झूठी सच्ची शिकायतें रोज़ाना कलकत्ते भेजते रहते थे और वहाँ से वही फ़ौजी सिपाही नवाब के मुलाज़िमों या स्वाभिमानी प्रजा को दुरुस्त करने के लिए जगह जगह भेज दिए जाते थे। नवाब की सरकारी चौकियों में बंगाल भर के अंदर कहीं पर एक पाई महसूल की वसूली न होती थी। मीर क़ासिम ने अनेक बार पत्रों द्वारा दर्दनाक शब्दों में गवरनर वन्सीटार्ट से इन तमाम बातों की शिकायत की, किन्तु इन शिकायतों और मीर क़ासिम के प्रयत्नों का ज़िक्र और आगे चलकर किया जावेगा।

राजा नन्दकुमार का देशप्रेम

इस सब अपमान से बंगाल की सचमुच रक्षा करने और देश को आइन्दा की आफ़तों से बचाने का केवल एक ही तरीक़ा हो सकता था। देश में उस समय केवल एक ही शक्ति थी, जिसके झंडे के नीचे और तमाम शक्तियों का मिलना मुमकिन हो सकता था। वह

शक्ति दिल्ली के मुग़ल सम्राट की रही सही शक्ति थी। उपाय केवल यह था कि विदेशियों के मुक़ाबले के लिए दिल्ली सम्राट के झंडे के नीचे देश की सारी हिन्दू और मुसलमान राज शक्तियों को एकत्रित किया जावे और उनके सम्मिलित प्रयत्नों द्वारा विदेशियों को बंगाल तथा भारत से निकाल कर बाहर कर दिया जावे।

यह एक आश्चर्य की बात है कि यह उपाय उस समय उसी राजा नन्दकुमार को सूझा जिसने सन् १७५७ में अमींचन्द के धन के लोभ में आकर अपने स्वामी सिराजुद्दौला, भारतीय प्रजा और फ़्रांसीसियों तीनों के साथ विश्वासघात किया था। मालूम होता है नंदकुमार अब अपने देश को अंगरेज़ों के हाथों बिकते हुए देखकर और प्रजा के ऊपर उनके अन्यायों को देखकर अपनी ग़लती पर पछता रहा था। राजा नंदकुमार ने जी तोड़ प्रयत्न शुरू किए। सम्राट शाह आलम अभी तक बिहार में था। सम्राट और मराठों से उसने पत्र व्यवहार शुरू किया। उसकी कोशिशों से मराठों ने मीर क़ासिम और अंगरेज़ों दोनों के ख़िलाफ़ सम्राट की ओर से बंगाल पर हमला करने का वादा किया। बर्धमान, बीरभूम और अन्य अनेक स्थानों के राजा और ज़मींदार इस काम के लिए सम्राट के झंडे के नीचे आ आकर जमा होने लगे।

ये सब प्रयत्न अभी चल ही रहे थे, इतने में एक ऐसी घटना हुई जिसका भारत के अंदर ब्रिटिश राज के क़ायम होने पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा, किन्तु जिसके इस गम्भीर प्रभाव पर भारतीय इतिहास लेखकों ने अभी तक उचित ध्यान नहीं दिया।

यह घटना ६ जनवरी सन् १७६१ ई० की पानीपत की तीसरी लड़ाई थी।

मुग़ल साम्राज्य की निर्बलता

भारत का राजशासन उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई हालत में था। औरंगज़ेब की संकीर्ण नीति और उसके अविश्वासी स्वभाव तथा बाद के दिल्ली के सम्राटों की विलासप्रियता और अयोग्यता ने मुग़ल साम्राज्य को अंग भंग और खोखला कर दिया था। अनेक छोटे बड़े नरेशों के अलावा अवध के नवाब और दक्खिन के निज़ाम अपने अपने सूबों के स्वच्छन्द शासक बन बैठे थे। बंगाल अभी तक नाम मात्र को दिल्ली के अधीन था। किन्तु बंगाल से भी दिल्ली ख़िराज जाना कई साल से बंद हो गया था, जिसकी वजह से शाह आलम दूसरे को बिहार पर चढ़ाई करनी पड़ी थी। स्वयं राजधानी के पास भरतपुर के जाट राजा और रामपुर के रुहेला नवाब दोनों अपने अपने स्वाधीन राज क़ायम कर रहे थे। मराठों की शक्ति दिनों दिन बढ़ती जा रही थी। दिल्ली के सम्राट अभी तक भारत के सम्राट कहलाते थे, किन्तु बहुत दर्जे तक केवल नाम के लिए। पच्छिम में सिन्ध और पञ्जाब के सूबे अफ़ग़ानिस्तान के शासक अहमदशाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे और पूरब में बंगाल और बिहार दोनों के अंदर अंगरेज़ों की साज़िशें सफल हो रही थीं।

वास्तव में सारे भारत पर अपनी हुकूमत जमा लेने के लिए उस समय अफ़ग़ानों, मराठों और अंगरेज़ों के बीच एक प्रकार का तिकोनिया संग्राम जारी था, जिसमें अफ़ग़ान और मराठे अपने

युद्ध बल पर और अंगरेज़ अपनी कूटनीति के बल पर कामयाबी की उम्मीद कर रहे थे। उस समय देश को इस विपज्जाल से निकालने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वही उपाय राजा नन्दकुमार को सूझा और ज़ाहिर है कि दिल्ली और पूना के कुछ नीतिज्ञ भी नन्दकुमार के इस विचार से पूरी सहानुभूति रखते थे।

पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों का नेतृत्व

सम्राट आलमगीर दूसरे के समय में वज़ीर ग़ाज़ीउद्दीन ने मराठों को सम्राट की सहायता के लिए दिल्ली बुलवाया। उस समय के पेशवा ने अपने भाई रघुनाथ राव (राघोबा) को सम्राट के आज्ञा पालन के लिए एक बड़ी सेना सहित दिल्ली भेजा। सम्राट और पेशवा के बीच प्रेम का सम्बन्ध क़ायम हो गया। रघुनाथ राव ने अपनी सेना सहित और आगे बढ़कर अहमदशाह अब्दाली के नायब के हाथों से पञ्जाब विजय कर लिया और एक मराठा सरदार को दिल्ली सम्राट के अधीन वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया। राघोबा दक्खिन लौट आया। मराठों की शक्ति इस समय शिखर पर पहुँची हुई थी। किन्तु इस अन्तिम घटना ने उनके विरुद्ध अहमदशाह अब्दाली का क्रोध भड़का दिया और सन् १७५६ ई० में एक ज़बरदस्त सेना लेकर वह पञ्जाब पर फिर से अपना राज क़ायम करने और मराठों का विध्वन्स करने के लिए अफ़ग़ानिस्तान से निकल पड़ा।

सदाशिव भाऊ २० हज़ार सवार, १० हज़ार पैदल और तोप ख़ाना लेकर अहमदशाह के मुक़ाबले के लिए पूना से रवाना हुआ।

पेशवा का पुत्र विश्वासराव भी सदाशिव के साथ था। मार्ग में होलकर और सींधिया की सेनाएँ सदाशिव से आ मिलीं। राजपूत राजाओं ने सहायता के लिये अपने सवार भेजे। भरतपुर का जाट राजा ३०,००० सेना लेकर स्वयं सदाशिव से आ मिला। साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में सदाशिव का ख़ूब स्वागत हुआ। अवध का नवाब शुजाउद्दौला अपनी सेना और सम्राट की सेना दोनों को लेकर सदाशिव की मदद के लिये तैयार हो गया। एक बार मालूम होता था कि भारत के सब हिन्दू और मुसलमान विदेशियों से अपने देश की रक्षा करने के लिए कमर कसके मैदान में उतर आए।

मराठा सेनापति की अदूरदर्शिता और पराजय

किन्तु सदाशिव भाऊ उस ऐन परीक्षा के समय सच्चा नीतिज्ञ साबित न हो सका। गर्व ने उसकी दूरदर्शिता पर परदा डाल दिया। मार्ग में ही उसने कई मराठा सरदारों को अपने अनुचित व्यवहार से नाराज़ कर लिया। राजा भरतपुर को भी वह सन्तुष्ट न रख सका। दिल्ली के अंदर उसका बर्त्ताव और भी बुरा रहा। क़िले में घुसते ही बहुत सा शाही सामान उसने अपने क़ब्ज़े में कर लिया। दीवान ख़ास की सुन्दर क़ीमती चाँदी की छत को उखड़वा कर और गलवा कर उसने उससे १७ लाख रुपये ढलवा लिए। यह भी कहा जाता है कि वह इस समय विश्वासराव को दिल्ली के तख़्त पर बैठाना चाहता था। सदाशिव भाऊ की इस संकीर्ण और घातक नीति का नतीजा यह हुआ कि उसके मुसलमान मित्रों के दिल उसकी ओर से फिर गए। अवध का नवाब वज़ीर

उसकी ओर से सशंक हो गया और जिस उत्साह के साथ वह आक्रामक अहमदशाह के विरुद्ध मराठों की सहायता करना चाहता था, न कर सका।

६ जनवरी सन् १७६१ को पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में एक अत्यन्त घमासान संग्राम हुआ, जिसमें दोनों ओर के हताहतों की संख्या लाखों तक पहुँच गई। ऐन मौक़े पर सदाशिव के व्यवहार से बेज़ार होकर भरतपुर का राजा अपनी सेना सहित मैदान से हट गया। होलकर तटस्थ रहा। सदाशिव और विश्वासराव दोनों मैदान में काम आए। विजय अहमदशाह की ओर रही। नवाब शुजाउद्दौला ने मजबूर होकर विजयी अहमदशाह के साथ मेल कर लिया। किन्तु अहमदशाह को भी अपनी इस विजय की बहुत ज़बरदस्त क़ीमत देनी पड़ी। उसके इतने अधिक आदमी लड़ाई में काम आए और घायल हुए कि आगे बढ़ने का इरादा छोड़ कर उसे फ़ौरन् अफ़ग़ानिस्तान लौट जाना पड़ा। लौटने से पहले उसने शाहआलम दूसरे को भारत का सम्राट स्वीकार किया और ग़ाज़ीउद्दीन को हटाकर उसकी जगह नवाब शुजाउद्दौला को दिल्ली की सल्तनत का वज़ीर क़रार दिया। निस्सन्देह सदाशिव राव की संकीर्णता और अदूरदर्शिता की वजह से पानीपत के मैदान में मराठों की बढ़ती हुई शक्ति चकनाचूर हो गई और उसके साथ ही साथ दिल्ली के साम्राज्य और भारत की राष्ट्रीय स्वाधीनता दोनों की आशाएँ कुछ समय के लिए ख़ाक में मिल गईं।

प्रोफ़ेसर सिडनी ओवन ने सच कहा है :—

"कहा जा सकता है कि पानीपत की लड़ाई के साथ साथ भारतीय इतिहास का भारतीय युग समाप्त हो गया। इतिहास के पढ़ने वाले को इसके बाद से दूरवर्ती पच्छिम से आए हुए व्यापारी शासकों की उन्नति से ही सरोकार रह जाता है।"*

निस्सन्देह जिस तिकोनिया संग्राम का हम ऊपर ज़िक्र कर चुके हैं, उसकी तीन शक्तियों में से अफ़ग़ानों को अब और आगे बढ़कर दिल्ली सम्राट के निर्बल हाथों से भारतीय साम्राज्य की बाग छीनने का साहस न हो सकता था। मराठों की कमर टूट चुकी थी और वे अंगरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव को रोकने के लिए अब बंगाल तक पहुँचने के नाक़ाबिल थे। इस तरह नन्दकुमार और उसके साथियों की आशाओं पर पानीपत ने पानी फेर दिया।

पानीपत का परिणाम

एक अंगरेज़ लेखक साफ़ लिखता है :—

"पानीपत की लड़ाई से मराठा संघ को जो थोड़ी देर के लिए धक्का पहुँचा उसकी वजह से मराठे बंगाल पर हमला करने से रुक गए। इस हमले में शायद शुजाउद्दौला और शाह आलम मराठों के साथ मिल जाते और मुमकिन है कि ये लोग अंगरेज़ कम्पनी की उस सत्ता को, जो अभी उस समय तक कमज़ोर थी और अनेक कठिनाइयों से घिरी हुई थी, सफलता के साथ उखाड़ कर फेंक देते।"†

* "With the battle of Panipat, the native period of Indian History may be said to end. Henceforth the interest gathers round the progress of the Merchant Princes from the far west." *India on the Eve of the British Conquest*, by Professor Sydney Owen.

† H. G. Keene's *Madhava Rao Scindhia*, p. 46.

इसके बाद केवल अंगरेज़ बाक़ी रह गए और विविध सूबों के निर्बल तथा अदूरदर्शी शासकों को एक दूसरे से तोड़ फोड़ कर अपने लिए अनन्य राजनैतिक प्रभुत्व का मार्ग बना लेना अब उनके लिए काफ़ी सरल हो गया।

शाह आलम और अंगरेज़

अब हम पानीपत से हट कर फिर अपने असली इतिहास की ओर आते हैं। सम्राट शाहआलम दूसरा अभी तक बिहार प्रान्त में था। सितम्बर सन् १७६० ही में अंगरेज़ शाहआलम को अपनी ओर फोड़ने का निश्चय कर चुके थे। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के अनेक ज़मींदार जो नई बग़ावत के ख़िलाफ़ थे, सम्राट के झंडे के नीचे जमा हो रहे थे। अंगरेज़ों ने अब जिस तरह हो बिहार पहुँच कर सम्राट से मामला तय कर लेना ज़रूरी समझा। करनल केलो की जगह मेजर कारनक बंगाल की सेनाओं का प्रधान सेनापति था। जनवरी सन् १७६१ में कारनक पटने पहुँचा। कम्पनी की सेना के अलावा राम नारायन की सेना और मुर्शिदाबाद की सेनाएँ भी कारनक के साथ थीं। गया मौनपुर के पास सम्राट की सेना और इन सेनाओं का आमना सामना हुआ, अन्त में समझौते की बातचीत होने लगी।

सम्राट शाहआलम कारनक को साथ लेकर पटना आया। मीर क़ासिम पटने में मौजूद था। मीर क़ासिम ने हाज़िर होकर पिछले ख़िराज के बदले में एक बहुत बड़ी नक़द रक़म सम्राट की भेंट की और अपने यहाँ की सरकारी टकसाल में शाहआलम दूसरे के नाम के सिक्के ढलवाने का वादा किया। यही वादा कलकत्ते की टक-

साल के बारे में अंगरेज़ों ने किया। मीर क़ासिम ने तीनों प्रान्तों की आमदनी में से २४ लाख रुपए सालाना दिल्ली सम्राट की सेवा में भेजने का वचन दिया। सम्राट ने मार्च सन् १७६१ में तीनों प्रान्तों की सूबेदारी का परवाना बाज़ाब्ता मीर क़ासिम के नाम जारी कर दिया। अंगरेज़ों का असली मतलब पूरा हो गया। उन्होंने इस अवसर पर एक कोशिश यह भी की कि जिस तरह मीर क़ासिम को शाही परवाना अता हुआ, उसी तरह जो इलाक़े अंगरेज़ कम्पनी के पास थे उनके लिए कम्पनी को अलग सूबेदारी का परवाना मिल जावे; किन्तु शाहआलम ने इसे मंज़ूर न किया। एक और प्रार्थना इस समय अंगरेज़ों ने शाहआलम से यह की कि सूबेदार मीर क़ासिम को रहने दिया जावे, किन्तु तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार सूबेदार से लेकर कम्पनी को दे दिए जावें। इस दीवानी का मतलब यह था कि अंगरेज़ सूबेदार के मातहत तीनों प्रान्तों से सरकारी मालगुज़ारी वसूल करके उसका हिसाब सम्राट और सूबेदार दोनों को दे दें और वसूली का ख़र्च निकाल कर बाक़ी सब रुपया सूबेदार के सुपुर्द कर दें। इस धन से सरकारी फ़ौजें रखना, अपने प्रान्तों के शासन का बाक़ी सारा काम चलाना और सम्राट को सालाना ख़िराज भेजना सूबेदार का काम रह जाय।

शाहआलम इस समय दिल्ली लौटने के लिए उत्सुक था। राजधानी के अन्दर सिंहासन के लिए किसी दूसरे हक़दार के खड़े हो जाने का भी डर था। सम्राट ने चाहा कि अंगरेज़ अपनी सेना

सहित मेरे साथ दिल्ली चलें। इसके बदले में वह कम्पनी को तीनों प्रान्तों का दीवान बना देने के लिए भी तैयार था। किन्तु अंगरेज़ों के पास उस समय इस काम के लिए काफ़ी फ़ौज न थी। बंगाल के अन्दर भी वे अपने अनेक शत्रु पैदा कर चुके थे। इसलिए वे सम्राट की इस इच्छा से उस समय लाभ न उठा सके और जून सन् १७६१ में सम्राट शाहआलम पटने से दिल्ली की ओर लौट गया।

अंगरेज़ों का राजा रामनारायन से विश्वासघात

अब अंगरेज़ों को मराठों का डर न रहा था। शाहआलम से किसी तरह निपटारा हो गया। बंगाल का मैदान फिर कम्पनी के मुलाज़िमों की लूट और ज़बरदस्तियों के लिए ख़ाली हो गया। इस बार उनका पहला वार राजा रामनारायन पर हुआ। अंगरेज़ों ही के बयान के अनुसार रामनारायन एक अत्यन्त योग्य शासक था। वह बहुत धनवान भी मशहूर था और शुरू से अंगरेज़ों का "पक्का हितसाधक" रह चुका था। किन्तु अब मीर क़ासिम और अंगरेज़ दोनों को रुपए की ज़रूरत थी। अपनी सेना के हाथों लोगों को पकड़वा पकड़वा कर मीर क़ासिम के सामने पेश करना और उनसे रक़में वसूल करना अंगरेज़ों का इस समय एक ख़ास पेशा था। यह इलज़ाम लगाकर कि रामनारायन के ज़िम्मे सूबेदार की बक़ाया निकलती है, गवरनर वन्सीटॉर्ट ने रामनारायन को छल से गिरफ़्तार कर मीर क़ासिम के हवाले कर दिया। इसके कुछ ही समय पहले वन्सीटार्ट ने कारनक को लिखा था कि तुम्हें नवाब के हर तरह के अन्यायों से रामनारायन की रक्षा करनी चाहिए। कारनक ने सन्

१७७२ में पार्लिमेएट की सिलेक्ट कमेटी के सामने गवाही देते हुए कहा था कि राजा रामनारायन पर बक़ाया का इलज़ाम "बे बुनियाद" था। निस्सन्देह वन्सीटॉर्ट और उसके साथियों का यह कार्य बिलकुल निस्स्वार्थ न था। १७ जुलाई सन् १७६१ को करनल कूट ने गवरनर और कौन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें साफ़ लिखा है कि मीर क़ासिम इस काम के लिए साढ़े सात लाख रुपए रिशवत देने को तैयार है। गवरनर वन्सीटॉर्ट के इस काम की निन्दा करते हुए इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

"मिस्टर वन्सीटॉर्ट के शासन की यह घातक भूल थी, क्योंकि इसकी वजह से ऊँचे दरजे के हिन्दोस्तानियों के दिलों से यह विश्वास बिलकुल उठ गया कि अंगरेज़ कभी उनकी रक्षा करेंगे। इस मामले में जिस घोर अन्याय का मि० वन्सीटॉर्ट ने साथ दिया, उससे लोगों की यह राय होगई कि वन्सीटॉर्ट अपनी कमज़ोरी से या रिशवत लेकर किसी भी पक्ष का समर्थन करने को तैयार हो सकता है। × × ×"*

मुर्शिदाबाद में निर्दोष रामनारायन को हथकड़ियाँ डालकर रक्खा गया, उससे ख़ूब धन वसूल किया गया और पटने में उसकी जगह दूसरा नायब नियुक्त कर दिया गया।

मीर क़ासिम मामूली चरित्र का मनुष्य न था। मीर जाफ़र

---

* "This was the fatal error of Mr Vansittart's administration because it extinguished among the natives of rank all confidence in the English protection, and because the enormity to which, in this instance, he had lent his support, created an opinion of a weak or a corrupt partiality"

Mill, vol iii p 224

में और उसमें बड़ा अन्तर था। मीर जाफ़र अयोग्य, निर्बल, स्वार्थी, अदूरदर्शी और भीरु था। इसके विपरीत मीर क़ासिम की योग्यता, उसके बल, अपनी प्रजा के लिए उसकी हित चिन्ता, उसकी दूरदर्शिता, उसकी वीरता और शासक को हैसियत से उसकी कार्य कुशलता की क़रीब क़रीब सब इतिहास लेखकों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। इतिहास लेखक करनल मालेसन जगह जगह लिखता है कि मीर क़ासिम "अत्यन्त योग्य और व्यवहार कुशल मनुष्य था······ अपने इरादों में लोहे की तरह दृढ़ रहता था, हर बात को ठीक ठीक समझ कर उसका जल्दी से फ़ैसला कर सकता था, उसके विचार उदार थे······ उसका दिमाग़ साफ़ था और उसका चरित्र मज़बूत था।*"

मीर क़ासिम का चरित्र और शासन

एक दूसरा अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है—"मीर क़ासिम के अन्दर एक सिपाही की वीरता और एक राजनीतिज्ञ की दूरदर्शिता दोनों मौजूद थी।"† करनल मालेसन लिखता है कि मीर क़ासिम को मीर जाफ़र के साथ देशघातकों की पंक्ति में रखना मीर क़ासिम के साथ अन्याय करना है। वह यह भी लिखता है कि मीर क़ासिम का इरादा मीर जाफ़र के साथ विश्वासघात करने का न था। मीर क़ासिम ने अपने बूढ़े श्वसुर मीर जाफ़र की निर्बलता,

* "...... man of great tact and ability ...... of iron will ...... quick decision, large views ...... of clear head and strong character."
The Decisive Battles of India by Colonel Malleson, pp. 127, 145.

† "He united the gallantry of the soldier with the sagacity of the statesman."—*Transactions in India from 1757 to 1783*.

कायरता और अयोग्यता को अच्छी तरह महसूस कर लिया था। उसकी आत्मा यह देखकर दुखी थी कि बंगाल का सूबेदार विदेशियों के हाथों की केवल एक कठपुतली रह गया था। इसीलिए मीर क़ासिम ने जिस तरह हो सके, सूबेदार की सत्ता को फिर से क़ायम करने का संकल्प किया।* मीर क़ासिम और अंगरेज़ों में जो गुप्त समझौता हुआ था वह केवल मीर क़ासिम को मीर जाफ़र का प्रधान मन्त्री बनाने का हुआ था और मीर क़ासिम को आशा थी कि प्रधान मंत्री की हैसियत से मैं सूबेदारी की सत्ता को फिर से क़ायम कर सकूँगा। किन्तु जब एक बार यह सब मामला निर्बल और सशङ्क मीर जाफ़र पर प्रकट कर दिया गया और मीर जाफ़र को मीर क़ासिम पर भरोसा न हो सका, तो फिर मीर क़ासिम के लिए पीछे हट सकना नामुमकिन हो गया था। इसमें भी शक नहीं कि मीर क़ासिम ने मसनद पर बैठते ही बंगाल की हालत को सुधारने की जी तोड़ कोशिश की और इस कोशिश में उसे एक दरजे तक आश्चर्यजनक सफलता मिली।

मीर क़ासिम के सुधार

माल और ख़ज़ाने के महकमों में उसने कई सुधार किए। सन् १७६२ तक उसने न केवल अपनी फ़ौज की तमाम पिछली तनख़ाहों को अदा कर दिया और अंगरेज़ों की एक एक पाई चुकता कर दी, बल्कि शासन का इतना सुन्दर प्रबन्ध किया कि सूबेदारी की आमदनी सालाना ख़र्च से बढ़ गई। अंगरेज़ों पर उसे शुरू से ही विश्वास

* *The Decisive Battles of India* p 128

न था, इस पर भी उसने अंगरेज़ों के साथ अपने वचन का पूरी तरह पालन किया। मुर्शिदाबाद की राजधानी में विदेशियों का प्रभाव अधिक बढ़ गया था। इसलिए मीर क़ासिम ने मुंगेर को अपनी नई राजधानी बनाया। उसने अधिकतर मुंगेर ही में रहना शुरू कर दिया। मुंगेर की उसने बड़ी सुन्दर और मज़बूत क़िलेबंदी की। क़रीब चालीस हज़ार फ़ौज वहाँ जमा की। उस फ़ौज को यूरोपियन ढंग के अस्त्रों की शिक्षा देने के लिए अपने यहाँ कई योग्य यूरोपियन नौकर रक्खे। एक बहुत बड़ा नया कारख़ाना तोपें ढालने का उसने क़ायम किया। जिसकी तोपों के विषय में कहा जाता है कि उस समय की यूरोप की बनी हुई तोपों से हर तरह बढ़कर थीं। मीर क़ासिम की सारी प्रजा उससे अत्यन्त संतुष्ट थी और उससे प्रेम करती थी।

मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों की साज़िश

किन्तु ज्योंही मीर क़ासिम और उसकी प्रजा के थोड़ा बहुत पनपने का समय आया, त्योंही मीर क़ासिम को भी मसनद से उतारने की तैयारियाँ शुरू हो गईं। करनल मॉलेसन साफ़ लिखता है कि मीर क़ासिम ने अंगरेज़ों के साथ अपने सब वादे पूरे कर दिए, "किन्तु लालची अंगरेज़ों को अपनी धन पिपासा के शान्त करने का सब से अच्छा उपाय यही दिखाई दिया कि मीर क़ासिम को नाश करके उसके उत्तराधिकारी के साथ नए सिरे से सौदा किया जावे।"*

* Mir Kassim performed his covenant But men greedy of

जिस तरह मीर जाफ़र के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों ने मीर क़ासिम को अपनी साज़िशों का केन्द्र बनाया था, उसी तरह अब उलट कर मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ बूढ़े मीर जाफ़र को इन नई साज़िशों का केन्द्र बनाया गया। मीर क़ासिम के विरुद्ध सामग्री तैयार करने के लिए कलकत्ते की सिलेक्ट कमेटी के कुछ मेम्बरों ने ११ मार्च सन् १७६२ को कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने मीर क़ासिम और उसके चरित्र पर अनेक झूठे सच्चे दोष लगाए, मीर जाफ़र की ख़ूब तारीफ़ें कीं, यह स्वीकार किया कि मीर जाफ़र के चरित्र पर इससे पहले जो दोष लगाए जा चुके थे वे सब झूठे थे और मीर जाफ़र को मसनद से उतारना एक भूल और अन्याय था, और लिखा :—

"जब से वह (मीर क़ासिम) सूबेदार बना है, तब से उसके ज़ुल्मों और लूट खसोट की बेशुमार मिसालें हम आपको दे सकते हैं। किन्तु उससे यह पत्र बेहद लम्बा हो जायगा × × ×। हम केवल एक रामनारायन का हाल ख़ास तौर पर देते हैं, जिसे मीर क़ासिम ने पटने की नायबी से अलग कर दिया। यह बात मानी हुई है कि रामनारायन अपने वचन का सच्चा है, इसी लिए उसकी नायबी का समर्थन करना हम सदा अपने लिए हितकर समझते रहे। मीर क़ासिम आजकल रामनारायन को हथकड़ी डालकर रक्खे हुए है और उस समय तक रक्खेगा जब तक कि वह उससे हद दर्जे धन न चूस ले।

---

gain, deeming that the shortest road to their end lay in compassing the ruin of Mir Kassim, in order to make a market of his successor" - *The Decisive Battles of India* p 134

इसके बाद कोई सन्देह नहीं कि रामनारायन का काम तमाम कर दिया जायगा। जिन जिन लोगों ने अंगरेज़ों का साथ दिया था, उनमें से सब नहीं तो अधिकांश से मीरक़ासिम भारी भारी रक़में वसूल कर चुका है। रुपए वसूल करने के लिए जो जो तकलीफ़ें उन्हें दी गई हैं, उनसे कई मर चुके। बहुतों को या तो कमीनेपन के साथ क़त्ल कर दिया गया और या (जो हिन्दोस्तानियों में अकसर होता है) बेइज़्ज़ती से बचने के लिए उन्होंने स्वयं आत्महत्या कर ली × × ×।"

मीर क़ासिम पर झूठे इलज़ाम

मीर क़ासिम के चरित्र को कलङ्कित करने में अब इन लोगों ने कोई कसर उठा न रक्खी। अंगरेज़ों को रुपए देने के लिये ही मीर क़ासिम को अपने अनेक आश्रितों पर ज़ुल्म करने पड़े। इतिहास से ज़ाहिर है कि ख़ुद अंगरेज़ ही इस तरह के अनेक अभागों को ला लाकर मीर क़ासिम के हवाले करते थे। अंगरेज़ों ही ने साढ़े सात लाख रुपए या कुछ अधिक के बदले में अपने सच्चे मित्र निर्दोष रामनारायन को छल से पकड़ कर मीर क़ासिम के हाथों में दिया और अब अंगरेज़ ही मीर क़ासिम को इन सब अन्यायों के लिए ज़िम्मेदार ठहराते थे।

एक इलज़ाम मीर क़ासिम पर यह भी था कि वह अपनी फ़ौज बढ़ा रहा था, उन्हें यूरोपियन ढङ्ग की क़वायद और यूरोपियन शस्त्रों का इस्तेमाल सिखा रहा था और नई क़िलेबन्दियाँ करा रहा था (!)।

इसी पत्र में इन लोगों ने लिखा कि मीर जाफ़र के चरित्र के

विरुद्ध जितने इलज़ाम गवरनर वन्सीटॉर्ट ने लगाए थे वे सब झूठे हैं, उनका उद्देश केवल "लोगों के चित्तों को मीर जाफ़र की ओर से फेर देना था," और यह कि मीर जाफ़र को मसनद से उतारने और मीर क़ासिम को उसकी जगह बैठाने से सारी प्रजा अत्यन्त असन्तुष्ट है। कमेटी के छै मेम्बरों के इस पत्र पर दस्तख़त हैं। निस्सन्देह इस पत्र को पढ़ने के बाद कम्पनी के उस समय के अंगरेज़ मुलाज़िमों के किसी भी पत्र या बयान पर कुछ भी विश्वास कर सकना क़तई नामुमकिन है।

अंगरेज़ों की लूट खसोट

तिजारत और सरकारी महसूल सम्बन्धी अंगरेज़ों के अत्याचार इस समय तक समस्त बंगाल में फैल चुके थे और बढ़ते जा रहे थे। इन अत्याचारों के विषय में करनल मॉलेसन लिखता है :—

"इस लज्जास्पद और अन्यायपूर्ण व्यवहार का नतीजा यह हुआ कि प्रतिष्ठित देशी व्यापारी सब बरबाद हो गए, ज़िले के ज़िले निर्धन हो गए, देश का सारा व्यापार उलट पुलट हो गया और व्यापार के ज़रिए नवाब को जो आमदनी होती थी उसमें लगातार और तेज़ी के साथ कमी आती गई। मीर क़ासिम ने बार बार कलकत्ते की कौन्सिल से इन ज़्यादतियों की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।"*

* "The results of this shameful and oppressive system were that the respectable class of native merchants were ruined, whole districts became impoverished, the entire native trade became disorganised and the Nawab's revenue from that source suffered a steady and increasing declension. In

अन्त को इन बेशुमार शिकायतों के जवाब में इस सब मामले का निपटारा करने के लिए ३० नवम्बर सन् १७६२ को गवरनर वन्सीटॉर्ट और वारन हेस्टिंग्स नवाब से भेंट करने के लिए मुंगेर पहुँचे। मीर क़ासिम ने जो शिकायतें इस मौक़े पर वन्सीटॉर्ट के सामने पेश कीं उनमें से एक यह भी थी :—

"जब सूबेदार (मीर क़ासिम) बिहार की ओर गया हुआ था और बंगाल में कोई शासक न रहा, उस समय अंगरेज़ों ने अपने अत्याचारों द्वारा उस सूबे के हर ज़िले और हर गाँव को तबाह कर डाला था, प्रजा से उनकी रोज़ की रोटी तक छीन ली गई थी और सरकारी महसूलों और माल-गुज़ारी का जमा होना बिलकुल बन्द हो गया था। इससे सूबेदार को क़रीब एक करोड़ रुपए का नुक़सान हुआ × × ×।"*

मुँगेर की सन्धि

१५ दिसम्बर सन् १७६२ को वन्साटॉर्ट और मीर क़ासिम के बीच एक सन्धि हुई जो 'मुंगेर की सन्धि' के नाम से मशहूर है। और बातों के साथ इस सन्धि में यह भी तय हुआ कि अंगरेज़ व्यापारी आइन्दा से नमक, तम्बाकू, छालिया इत्यादि सब चीज़ों के ऊपर

...im did Mir Kassim represent, again and again, these evils on the Calcutta Council"—*The Decisive Battles of India*, p 137

* "When His Excellency went to Behar, Bengal being left without a ruler, every village and district in that province was ruined through the oppression of the English, the subjects of the Sarkar were deprived of their daily bread, and the collection of the revenues was entirely stopped, so that His Excellency lost nearly a crore of rupees . . ."—*Calender of Persian Correspondence*, p 194 No 1695

६ फ़ीसदी महसूल दिया करें और हिन्दोस्तानी व्यापारी इन्हीं तमाम चीज़ों पर २५ फ़ीसदी महसूल दिया करें। भारतीय व्यापारियों के साथ यह घोर अन्याय था, फिर भी मीर क़ासिम ने शान्ति बनाए रखने की इच्छा से उसे स्वीकार कर लिया।

वन्सीटॉर्ट और हेस्टिंग्स दोनों ने सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किए और दोनों ने कलकत्ता कौन्सिल के नाम अपने १५ दिसम्बर के पत्र में इस सन्धि की 'न्याय्यता' और 'उदारता' और मीर क़ासिम की 'सच्चाई' तीनों की साफ़ शब्दों में तारीफ़ की है। वन्सीटॉर्ट ने मीर क़ासिम से वादा किया कि कलकत्ते पहुंच कर मैं कम्पनी और सरकार के बीच के सब मामले तय कर दूँगा। किन्तु कलकत्ते वापस पहुँचते ही बजाय 'सब मामला तय' करने के गवरनर वन्सीटॉर्ट ने कम्पनी और उसके आदमियों की धींगाधींगी को पहले की तरह जारी रखने के लिए जगह जगह नई फ़ौजें रवाना कर दीं। इसके साथ साथ कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल ने अपना बाज़ाब्ता इजलास करके फ़ौरन तमाम अंगरेज़ी कोठियों और उनके गुमाश्तों के पास यह खुली हिदायतें भेज दीं कि मुंगेर की शर्तों पर हरगिज़ कोई अमल न करे और यदि नवाब के कर्मचारी अमल कराने पर ज़ोर दें तो उनकी ख़ूब गत बनाई जावे। इसी इजलास में यह भी कहा गया कि मुंगेर की सन्धि पर हस्ताक्षर करने के लिए वन्सीटॉर्ट ने नवाब मीर क़ासिम से सात लाख रुपए रिशवत ली थी। जो हो, सन्धि पत्र की स्याही अभी सूखने भी न पाई थी कि सन्धि तोड़ दी गई। नवाब के कर्मचारी यदि कोई

बोलते थे या महसूल माँगते थे तो पहले की तरह उन पर मार पड़ती थी। मीर क़ासिम ने वन्सीटॉर्ट को ५ मार्च सन् १७६३ के पत्र में फिर लिखा कि :—

"तीन साल से सरकार को अंगरेज़ों से एक भी पाई या एक भी चीज़ नहीं मिली, इसके ख़िलाफ़ सरकार के कर्मचारियों से अंगरेज़ बराबर जुरमाने और हरजाने वसूल कर रहे हैं।"

मीर क़ासिम ने बार बार शिकायत की किन्तु कोई फल न हुआ। विदेशी व्यापारियों का बिना महसूल व्यापार करना और देशी व्यापारियों से भारी महसूल वसूल किया जाना दोनों बराबर जारी रहे। इस अन्याय द्वारा देशी व्यापारियों का अस्तित्व ही मिटता जा रहा था। अन्त को मजबूर होकर और देशी व्यापारियों को जीवित रखने का और कोई उपाय न देख २२ मार्च सन् १७६३ को मीर क़ासिम ने अपनी सूबेदारी भर में चुंगी की तमाम चौकियों के उठवा दिए जाने का हुकुम दे दिया और सूबे भर में एलान कर दिया कि आज से दो साल तक किसी तरह के तिजारती माल पर किसी से किसी तरह का भी महसूल न लिया जाय। मीर क़ासिम की सालाना आमदनी को इससे ज़बरदस्त धक्का पहुँचा, किन्तु देशी व्यापारियों को अन्याय से बचाने और उन्हें ज़िन्दा रखने का मीर क़ासिम को और कोई उपाय न सूझ सकता था। इस आज्ञा से मीर क़ासिम की बेबसी और उसकी प्रजा पालकता दोनों प्रकट होती हैं।

मीर क़ासिम का चुंगी उठवा देना

हज़ारों हिन्दोस्तानी व्यापारियों को इस एलान से लाभ हुआ। वे अंगरेज़ों से कम ख़र्च में ज़िन्दगी बसर कर सकते थे और अपना माल सस्ता बेचकर भी लाभ कमा सकते थे। तिजारत का दरवाज़ा एक बार फिर बिल्कुल खुल गया, फिर चारों ओर से आ आकर बंगाल में व्यापारियों की संख्या बढ़ने लगी और देश की तिजारत और कृषि दोनों फिर ज़ोरों के साथ उन्नति करने लगीं। अंगरेज़ों को यह कब गवारा हो सकता था। फ़ौरन कलकत्ते में फिर कौन्सिल का इजलास हुआ। तय हुआ कि नवाब की नई आज्ञा नाजायज़ है और नवाब को मजबूर किया जाय कि अपनी इस आज्ञा को वापस लेकर देशी व्यापारियों से पहले की तरह महसूल वसूल करे। ऐमयाट और हे नाम के दो अंगरेज़ मुंगेर जाकर नवाब से मिलने और सब बातें नए सिरे से तय करने के लिए नियुक्त हुए।

बंगाल में फिर से ख़ुशहाली

बंगाल की प्रजा के साथ अत्याचारों और बंगाल के शासक के साथ ज़बरदस्तियों का प्याला अब लबालब भर चुका था। मीर क़ासिम को यह भी मालूम था कि बंगाल के तीनों प्रान्तों की दीवानी के अधिकार प्राप्त करने के लिए दिल्ली सम्राट के साथ अंगरेज़ों का गुप्त पत्र व्यवहार बराबर जारी है। मीर क़ासिम और वन्सीटॉर्ट के दरमियान इस समय जो पत्र व्यवहार हुआ वह पढ़ने के योग्य है। मीर क़ासिम ने बार बार अपने कर्मचारियों और अपनी प्रजा के ऊपर अंगरेज़ों के अत्याचारों की शिकायतें कीं। अत्यन्त दर्द भरे

दूसरा सूबेदार खड़ा करने की तजवीज़

शब्दों में उसने लिखा कि—"कम्पनी के जो तिलंगे सिपाही सम्राट और सूबेदार की सहायता के लिए कह कर रक्खे गए थे और जिनके ख़र्च के लिए मैं कम्पनी को पचास लाख रुपए की ज़मींदारी दे चुका हूँ वे अब देश भर में मेरे और मेरे आदमियों के विरुद्ध काम में लाए जा रहे हैं।" अन्त को एक पत्र में उसने साफ़ साफ़ लिखा कि—"मुझे मालूम हुआ है कि बहुत से अंगरेज़ एक दूसरा सूबेदार खड़ा करना चाहते हैं। × × × हर शख़्स पर ज़ाहिर है कि यूरोपवालों का एतबार नहीं किया जा सकता।"

मीर क़ासिम के साथ अंगरेज़ों के इस समय के व्यवहार की आलोचना करते हुए मालेसन लिखता है :—

"जो अनुचित, नीच और शर्मनाक कारवाइयाँ मीर जाफ़र को मसनद से हटाने के बाद तीन साल तक कलकत्ते की अंगरेज़ गवरमेण्ट ने कीं उनसे अधिक अनुचित, अधिक नीच और अधिक शर्मनाक कारवाइयों की मिसालें किसी भी क़ौम के इतिहास में नहीं मिलतीं।"*

मालेसन यह भी लिखता है कि—"मीर क़ासिम का एक मात्र क़सूर यह था कि उसने यूरोप निवासियों की लूट से अपनी प्रजा की रक्षा करने की कोशिश की।" † इस पर भी "मीर क़ासिम

*"The annals of no nation contain records of conduct more unworthy, more mean and more disgraceful, than that which characterised the English Government of Calcutta during the three years which followed the removal of Mir Jaffar "—*The Decisive Battles of India*, p 133

† "Whose only fault was his endeavour to protect his subjects from European extortion "—Ibid, p 136

अपनी स्वाधीनता और प्रजा के सुख इन दोनों का नाश किए बिना और किसी भी क़ीमत पर अंगरेज़ों के साथ अमन से रहने को उत्सुक था।"*

किन्तु मीर क़ासिम के विरुद्ध साज़िश अभी पूरी तरह पकने न पाई थी, इसलिए उसके अन्तिम पत्र के उत्तर में वन्सीटॉर्ट ने मीर क़ासिम को लिख दिया—"यह क़िस्सा कि अंगरेज़ दूसरा नाज़िम खड़ा करना चाहते हैं, चालबाज़ लोगों की मनगढ़न्त है × × ×।"

मीर क़ासिम से नई नई माँगें

इसके बाद जब वन्सीटॉर्ट ने मीर क़ासिम को लिखा कि ऐमयाट और हे एक नई सन्धि करने के लिए मुंगेर भेजे गए हैं तो मीर क़ासिम ने उत्तर में लिखा कि—"हर साल नई सन्धि करना क़ायदे के ख़िलाफ़ है, क्योंकि इनसानों की सन्धियों की कुछ उमरें होती हैं।" उसने यह भी लिखा कि—"एक ओर आप चारों तरफ़ फ़ौजें भेज रहे हैं और दूसरी ओर मुझसे बातचीत करने के लिए आदमी भेज रहे हैं।"

ऐमयाट और हे का मुंगेर भेजना केवल एक चाल थी। बंगाल के अंदर इस तीसरी बग़ावत के लिए अंगरेज़ों की तैयारी ज़ोरों के साथ जारी थी।

मीर क़ासिम को इतने में पता चला कि मेरे विरुद्ध साज़िशों का जाल स्वयं मेरी राजधानी के अंदर पूरा फैल चुका है। वही

* "Mir Kassim, still anxious for peace at any price short of sacrificing his own independence and the happiness of his people."—Ibid p. 140

जैन जगतसेठ, जो छै साल पहले सिराजुद्दौला के पतन में अंगरेज़ों का सहायक हुआ था, अब फिर इस नई साज़िश में शामिल था। पता चलते ही मीर क़ासिम ने जगतसेठ और उसके भाई स्वरूपचन्द दोनों को मुंगेर बुलाकर नज़रबन्द कर दिया। ये दोनों भाई मीर क़ासिम की प्रजा थे। अंगरेज़ों को इस पर एतराज़ करने का कोई हक़ न था, किन्तु वन्सीटॉर्ट ने इस पर भी एतराज़ किया।

इस बीच ऐमयाट और हे दोनों दूत मुंगेर पहुँच गए। २५ मई सन् १७६३ को इन दोनों ने कम्पनी की ओर से ११ नई माँगें लिख कर मीर क़ासिम के सामने पेश कीं—(१) यह कि अंगरेज़ कौन्सिल ने तिजारती महसूल और एजन्टों के बारे में जो कुछ तय किया है, नवाब उसे ज्यों का त्यों लिखकर स्वीकार करे, (२) यह कि नवाब अपनी प्रजा यानी देशी व्यापारियों पर नए सिरे से महसूल लगावे और अंगरेज़ों की बिना महसूल तिजारत जारी रहे, (३) यह कि अंगरेज़ों और उनके जिन जिन आदमियों को नई आज्ञा से व्यापारिक नुक़सान हुआ है, नवाब उन सब का हरजाना पूरा करे, (४) यह कि नवाब अपने उन सब कर्मचारियों को जिन्हें अंगरेज़ कहें दंड दे। इत्यादि, इत्यादि।

हथियारों से भरी हुई किश्तियाँ

निस्सन्देह कोई स्वाभिमानी शासक इन शर्तों को स्वीकार न कर सकता था। ऐमयाट का व्यवहार नवाब के साथ अत्यन्त रूखा और धृष्टतापूर्ण था। यहाँ तक कि उसने मीर क़ासिम की शिकायतें सुनने तक से इनकार कर दिया। वास्तव में अंगरेज़ युद्ध चाहते थे और

युद्ध की पूरी तैयारी कर चुके थे। १४ अप्रैल सन् १७६३ ही को अंगरेज़ों ने अपनी सेना को तैयार हो जाने की आज्ञा दे दी थी। पटने में एलिस नामक एक अंगरेज़ कम्पनी के एजन्ट की हैसियत से रहता था। एलिस ने वहाँ के नायब नाज़िम को दिक़ करना और बात बात में उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करना शुरू कर दिया था। मीर क़ासिम ने अनेक बार वन्सीटॉर्ट से एलिस के व्यवहार की शिकायत की, किन्तु व्यर्थ। अब कलकत्ते से एलिस को लिख दिया गया कि तुम आज्ञा पाते ही पटने पर क़ब्ज़ा करने के लिए तैयार रहो। कम्पनी की काफ़ी सेना पहले ही पटने पहुँचा दी गई थी। उधर ऐमयाट साहब सुलह के लिए मुंगेर में ठहरे हुए थे और इधर हथियारों से भरी हुई कई किश्तियाँ एलिस की मदद के लिए कलकत्ते से पटने की ओर जा रही थीं। जब ये किश्तियाँ मुंगेर के पास से निकलीं, नवाब उन्हें देखकर चौंक गया। उसने किश्तियों को आगे बढ़ने से रोक दिया और २ जून सन् १७६३ को वन्सीटॉर्ट को लिखा कि—"कम्पनी की नई माँगें बेजा और पहली सन्धियों के विरुद्ध हैं × × × पटने की अंगरेज़ी फ़ौज या तो कलकत्ते वापस बुला ली जावे और या मुंगेर में रक्खी जावे, नहीं तो मैं निज़ामत छोड़ दूँगा।"

इसके जवाब में ऐमयाट ने मीर क़ासिम से साफ़ साफ़ कहा कि बजाय वापस बुलाने के पटने में अंगरेज़ी फ़ौज बढ़ाई जायगी। हथियारों की किश्तियाँ मुंगेर में रुकते ही कलकत्ते की कौन्सिल ने, जो केवल एक बहाने के इन्तज़ार में थी, ऐमयाट और हे को वापस

बुला लिया और एलिस को आज्ञा दे दी कि तुम फ़ौरन पटने पर हमला करके नगर पर क़ब्ज़ा कर लो।

पटने पर अचानक रात के समय हमला

२४ जून की रात को अचानक हमला करके एलिस ने पटने पर क़ब्ज़ा कर लिया। मीर क़ासिम की बरदाश्त की कोई हद न थी। इतिहास लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि—"उसे गुस्सा आने के बेशुमार कारण थे, फिर भी उसने धैर्य और बरदाश्त से काम लिया।"* किन्तु अब मजबूर होकर उसे एलिस के विरुद्ध सेना भेजनी पड़ी। मीर क़ासिम की सेना ने पटने पहुँच कर फिर से नगर अंगरेज़ों से विजय कर लिया। इस बार की लड़ाई में कम्पनी के क़रीब ३०० यूरोपियन और ढाई हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाही काम आए। एलिस और उसके कई यूरोपियन साथी पहिली जुलाई को क़ैद करके मुंगेर पहुँचा दिए गए।

ऐमयाट की मृत्यु

ऐमयाट चुपके से किश्ती में बैठकर कलकत्ते की ओर भाग गया। मीर क़ासिम ने हे को मुंगेर में रोक लिया। मालूम होता है मीर क़ासिम ने अपने आदमियों को हुकुम भेज दिया कि ऐमयाट को भी रोक कर वापस मुंगेर भेज दिया जाए। क़ासिमबाज़ार के निकट नवाब के एक कर्मचारी मोहम्मद तक़ी ख़ाँ ने अपने एक आदमी को भेजकर

* "He conducted himself under innumerable provocations with temper and forbearance."—*Rise of the British power in India* by Elphinstone, pp 390, 391
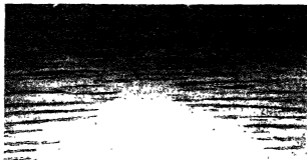
मीर क़ासिम

[श्री बहादुर सिंह सिंघी, कलकत्ता, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

ऐमयाट से खाना खाने के बहाने किनारे पर आने की प्रार्थना की। ऐमयाट ने इनकार किया और उसकी किश्तियाँ बीच धार से चलती रहीं। एक दूसरा उच्च कर्मचारी भेजा गया, जिसने किनारे से फिर कहा कि खाना तैयार है और यदि आप सेनापति मोहम्मद तक़ी ख़ाँ की प्रार्थना स्वीकार न करेंगे तो उन्हें दुख होगा। ऐमयाट ने फिर इनकार कर दिया। इसके बाद किनारे के अफ़सरों ने किश्तियों को रुकने का स्पष्ट हुकुम दिया। जवाब में ऐमयाट ने वहीं से किनारे की ओर गोलियों की बौछार शुरू कर दी। नवाब के आदमियों ने अब ज़बरदस्ती किश्तियों पर पहुँच कर बदला लिया। उस लड़ाई में ऐमयाट का भी वहीं पर काम तमाम होगया।

२८ जून को मीर क़ासिम ने वन्सीटॉर्ट और उसकी कौन्सिल के नाम यह पत्र लिखा :—

मीर क़ासिम की प्रजा के साथ ज़ुल्म और ज़्यादतियां

"× × × रात को डाकू की तरह मिस्टर एलिस ने पटने के क़िले पर हमला किया, वहाँ के बाज़ार को और तमाम व्यापारियों और नगर के लोगों को लूटा और सुबह से तीसरे पहर तक लूट और क़त्ल जारी रक्खी। × × × चूंकि आप लोगों ने बेइंसाफ़ी और ज़ुल्म के साथ शहर को रौंद डाला है, लोगों को बरबाद किया है और कई लाख का माल लूट लिया है, इसलिए अब इंसाफ़ यह है कि कम्पनी ग़रीबों का नुक़सान भर दे, जैसा पहले कलकत्ते में हो चुका है। आप ईसाई लोग विचित्र दोस्त निकले। आपने सन्धि की, उस पर ईसा मसीह के नाम से क़सम खाई। इस शर्त पर कि आपकी सेना सदा मेरा साथ देगी और मेरी सहायता करेगी, आपने अपनी सेना के ख़र्च के लिए

मुझसे इलाक़ा लिया। असलीयत में मेरे ही नाश के लिए आप फ़ौज रख रहे थे, क्योंकि उसी फ़ौज के हाथों ये सब कार्य हुए हैं × × × इसके अलावा कई साल से अंगरेज़ गुमाश्तों ने मेरी निज़ामत के अन्दर जो जो ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ की हैं, जो बड़ी बड़ी रक़में लोगों से ज़बरदस्ती वसूल की हैं और जो नुक़सान किए हैं मुनासिब और इंसाफ़ यह है कि कम्पनी इस समय उस सबका हरजाना दे। आपको सिर्फ़ इतनी ही तकलीफ़ करने की ज़रूरत है कि जिस तरह से बर्धमान और दूसरे इलाक़े आपने लिए थे उसी तरह मुझपर इनायत करके आप उन्हें वापस लौटा दीजिए।"*

निस्सन्देह मजबूर होकर मीर क़ासिम ने अब लड़ाई का निश्चय कर लिया।

मीरजाफ़र के साथ दोबारा साज़िश

७ जुलाई को यह पत्र कलकत्ते पहुँचा। उसी रोज़ कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल की ओर से मीर क़ासिम के साथ युद्ध का एलान प्रकाशित हुआ, जिसमें प्रजा को यह सूचना दी गई कि मीर क़ासिम की जगह मीर जाफ़र को अब फिर से बंगाल की मसनद पर बैठा दिया गया है। नवाब मीर जाफ़र ही के नाम पर बंगाल भर से सेना जमा की गई और मीर जाफ़र ही के नाम पर प्रजा से अंगरेज़ी सेना का साथ देने के लिए कहा गया। किन्तु इस बाक़ायदा एलान से पहले ही पटना विजय हो चुका था और फिर से छिन भी चुका था। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कलकत्ते के अंगरेज़ व्यापारियों की कौन्सिल को बंगाल के सूबेदार को मसनद

* Long's *Selections*, pp 325 326

से उतारने या दूसरा सूबेदार नियुक्त करने का अधिकार कभी किसी ने न दिया था।

मीर जाफ़र के साथ जो नई सन्धि इस अवसर पर की गई उसका ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा।

कई छोटी छोटी लड़ाइयाँ

कम्पनी की सेना मेजर एडम्स के अधीन ५ जुलाई को यानी युद्ध के एलान से दो दिन पहले कलकत्ते से मुर्शिदाबाद की ओर रवाना हुई। मीर क़ासिम की सेना सिपहसालार मोहम्मद तक़ी ख़ाँ के अधीन मुंगेर से चली। तक़ी ख़ाँ वीर और योग्य सेनापति था, किन्तु उसकी तमाम तजवीज़ों में बात बात में मुर्शिदाबाद का नायब नाज़िम सय्यद मोहम्मद ख़ाँ, जो अंगरेज़ों से मिला हुआ था, रुकावटें डालता रहता था। तक़ी ख़ाँ की सेना के अन्दर भी अंगरेज़ काफ़ी सफलता के साथ विश्वासघात के बीज बो चुके थे। तीन स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं। इन लड़ाइयों का विस्तृत हाल "सीअरुल-मुताख़रीन" नामक ग्रन्थ में दिया हुआ है। उस ग्रन्थ में मुसलमान सेना के अन्दर एक ख़ास देशघातक मिरज़ा ईरज ख़ाँ का ज़िक्र आता है, जिसने भीतर ही भीतर अंगरेज़ों से मिलकर मीर क़ासिम और मोहम्मद तक़ी ख़ाँ के साथ दग़ा की। क़रीब दो सौ यूरोपियन और अन्य ईसाई, जो नवाब की सेना में ख़ासकर तोपख़ाने में नौकर थे, ऐन मौक़े पर शत्रु की ओर जा मिले। इन लड़ाइयों में से एक में मोहम्मद तक़ी ख़ाँ मार डाला गया। इन्हीं लड़ाइयों के

सम्बन्ध में मालेसन लिखता है कि—"अंगरेज़ों की सफलता में जितनी सहायता भारतीय नेताओं और नरेशों की परस्पर की ईर्षा से मिली है उतनी दूसरी किसी भी चीज़ से नहीं मिली।"*

मीर क़ासिम की सेना ने अब ऊदवानाला नामक ऐतिहासिक स्थान पर अपना अन्तिम पड़ाव किया। प्राकृतिक स्थिति और मीर क़ासिम की दूरदर्शिता दोनों ने मिलकर इस स्थान को सुरक्षित और अभेद्य बना रक्खा था। एक ओर गंगा थी, दूसरी ओर ऊदवानाला नाम की गहरी नदी जो गंगा में गिरती थी, तीसरी ओर राजमहल की दुरारोह पहाड़ियाँ और चौथी ओर मीर क़ासिम की बनवाई हुई ज़बरदस्त खाड़ियाँ और क़िलेबन्दी, जिसके ऊपर सौ से अधिक मज़बूत तोपें लगी हुई थीं। पहाड़ियों की तलहटी में खाड़ियों से ऊपर की ओर एक झील और एक लम्बी चौड़ी दलदल थी। इस दलदल के अन्दर से ही दुर्ग से बाहर आने जाने का एक अत्यन्त पेचदार रास्ता था, जिसका अंगरेज़ी सेना को किसी तरह पता न चल सकता था। एक महीने तक मीर क़ासिम की सेना इस दुर्ग के अन्दर और कम्पनी की सेना, जिसके साथ बूढ़ा मीर जाफ़र भी था, ऊदवानाला के बाहर पड़ी रही, किन्तु न अंगरेज़ अपनी तोपों के गोलों से संगीन क़िलेबन्दी पर किसी तरह का असर पैदा कर सके और न भीतर की सेना को

ऊदवानाला में दोनों ओर की फ़ौजें

* "Few things have more contributed to the success of the English than the action of jealousy of each other of the native princes and leaders of India."—Ibid, p. 150

ज़रा भी हानि पहुँचा सके। दूसरी ओर एक साहसी और परहेज़गार मुसलमान सेनापति मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ रोज़ रात के पिछले पहर उसी दलदल के रास्ते आकर अंगरेज़ी सेना पर धावा करता और अनेकों को ख़त्म कर और बहुत सा माल लेकर उसी रास्ते लौट जाता। अंगरेज़ी सेना किसी तरह उसका पीछा न कर पाती थी। लड़ाई का सामान भी अंगरेज़ों की निस्बत मीर क़ासिम की सेना के पास कहीं अच्छा था। अंगरेज़ इतिहास लेखक ब्रूम लिखता है कि भारत की बनी हुई जो बन्दूकें इस समय मीर क़ासिम की सेना के पास थीं वह अंगरेज़ी सेना की, इंगलिस्तान की बनी हुई बन्दूकों से धातु, बनावट, मज़बूती, उपयोगिता इत्यादि सब बातों में कहीं बढ़िया थीं।* ईमानदारी की लड़ाई में अंगरेज़ किसी तरह मीर क़ासिम पर विजय न प्राप्त कर सकते थे।

मीर क़ासिम के ईसाई अफ़सरों की नमकहरामी

मीर क़ासिम की सेना का एक ख़ास दोष, जो उसके लिए घातक सिद्ध हुआ, यह था कि उसने अनेक यूरोपियन और आरमीनियन ईसाइयों को अपनी सेना के बड़े बड़े ओहदों पर नियुक्त कर रक्खा था। ईसा की ११ वीं सदी से लेकर जब कि यूरोप की कई ईसाई शक्तियों ने मिल कर पहली बार मुसलमानों से जैरूसेलम (बैतुलमुक़द्दस) छीनना चाहा, आज तक हज़रत ईसा और हज़रत मोहम्मद के अनुयायियों के बीच प्रायः लगातार संग्राम होते रहे हैं। ईसाई ताक़तों ने अनेक मुसलमान राज्यों के स्वतन्त्र

* *History of the Bengal Army*, by Broome, p 351

अस्तित्व को मिटाकर अनेक बार अपना जुआ मुसलमान कौमों के कन्धों पर रक्खा है। ईसाइयों और मुसलमानों के इस सदियों के विरोध के अलावा भी यूरोपियनों का ख़ास कर किसी यूरोपियन कौम के विरुद्ध अपने किसी एशियाई स्वामी के साथ वफ़ादारी कर सकना करीब करीब नामुमकिन है। इस सच्चाई को न समझ सकना अनेक भारतीय और अन्य एशियाई शासकों के लिए घातक साबित हुआ है।

कलकत्ते में इस समय आरमीनिया का एक मशहूर ईसाई सौदागर ख़ोजा पेतरूस रहता था। इस सौदागर का एक भाई ख़ोजा ग्रिगरी मीर क़ासिम की सेना में एक अफ़सर था और भी कई आरमीनियन ईसाई मीर क़ासिम की सेना में नौकर थे। मेजर एडम्स ने ख़ोजा पेतरूस की मारफ़त गुप्त पत्र व्यवहार द्वारा इन सब लोगों को अपनी ओर फोड़ लिया।

एक अंगरेज़ विश्वासघातक

इनके अलावा मीर क़ासिम की सेना में एक अंगरेज़ सिपाही भी था, जो कुछ समय पहले अंगरेज़ी सेना को छोड़कर नवाब के यहाँ भरती हो गया था। इस अंगरेज़ को अपनी सेना में भरती कर लेना मीर क़ासिम के नाश का सबसे बड़ा सबब साबित हुआ। उसने मिरज़ा नजफ़ ख़ाँ के आने जाने के मार्ग को धीरे धीरे अच्छी तरह देख लिया और एक दिन, जब कि मालूम होता है दुर्ग के भीतर के अन्य ईसाई और ग़ैर ईसाई विश्वासघातकों के साथ सारी योजना पक्की की जा चुकी थी, ४ सितम्बर की रात को क़रीब दस बजे

यह अंगरेज़ नवाब की सेना से निकल कर अंगरेज़ी सेना की ओर चला आया और वहाँ से शत्रु की सेना को साथ ले उसी मार्ग से रातों रात अचानक नवाब की सेना पर आ टूटा। किले के अन्दर के और भी कई अफ़सर शत्रु से मिले हुए थे और "सीअरुल मुताख़रीन" से पता चलता है कि अनेक अपने स्थान की अभेद्यता और शत्रु की अशक्तता पर ज़रूरत से ज़्यादा भरोसा करके अपने कर्त्तव्य से असावधान हो गए थे। ऐसी स्थिति में सेना का कर्त्तव्य विमूढ़ हो जाना स्वाभाविक था। नतीजा यह हुआ कि मीर क़ासिम के पूरे पन्द्रह हज़ार सैनिक उस रात की लड़ाई में काम आए।

इस अंगरेज़ विश्वासघातक के काम के बारे में करनल मालेसन लिखता है :—

"केवल एक व्यक्ति के इस कार्य ने अंगरेज़ों की ना उम्मेदी को विश्वास में बदल दिया; और इस कार्य के नतीजे ने मीर क़ासिम की सेना के आत्म-विश्वास को ना उम्मेदी में बदल दिया। अंगरेज़ी सेना के लिए इस आदमी ने इस मौक़े पर ईश्वर का काम किया।"*

"जनरल एडम्स ने मीर क़ासिम की सेना को केवल विजय ही नहीं किया, बल्कि उसका संहार कर डाला।"† मीर क़ासिम की क़रीब चार सौ तोपें इस युद्ध में अंगरेज़ों के हाथ आईं।

* "It was the act of a single individual which converted the despair of the English into confidence, it was the consequence of that act which changed the confidence of Mir Kassim's army into despair. The individual on this occasion performed the divine function for the English army."—Ibid p. 157

† Ibid, p. 160

ऊदवानाला ही विदेशी व्यापारियों के विरुद्ध बंगाल के भारतीय सूबेदारों की आशा का अन्तिम आधार था। ४ सितम्बर सन् १७६३ की रात को वह आशा सदा के लिए टूट गई। जो चीज़ सिराजुद्दौला के लिए प्लासी साबित हुई वही मीर क़ासिम के लिए ऊदवानाला साबित हुआ, और दोनों जगह क़रीब क़रीब एक ही से उपायों द्वारा अंगरेज़ व्यापारियों ने बंगाल की शाही सेना पर विजय प्राप्त की।

ऊदवानाला को पराजय

ऊदवानाला की पराजय का एक सबब यह भी बताया जाता है कि उस रात को मीर क़ासिम ख़ुद अपनी सेना के साथ दुर्ग के अन्दर मौजूद न था। अंगरेज़ इतिहास लेखक बोल्ट्स की राय है कि यदि मीर क़ासिम स्वयं अपने अफ़सरों को सावधान रखने और अपने सैनिकों को उत्साह दिलाने के लिए मौजूद होता तो—"शायद ही नहीं बल्कि बहुत ज़्यादा मुमकिन है कि उस दिन से अंगरेज़ कम्पनी के पास इन प्रान्तों में एक फुट ज़मीन भी न रह जाती।"*

ऊदवानाला की पराजय से मीर क़ासिम को बहुत बड़ा धक्का लगा, किन्तु उसने विदेशियों की अधीनता स्वीकार न की और न वह इतनी जल्दी हिम्मत हारा। ऊदवानाला के बाद उसने मुंगेर के क़िले को सँभाला। यह क़िला भी अत्यन्त मज़बूत था। उसकी रक्षा का

कुछ ख़ास ख़ास विश्वासघातक

* "... it is more than probable that, the English Company would have been left, from that day, without a single foot of ground in these Provinces."—*Consideration on Indian Affairs*, By Bolts, p 43

उचित प्रबन्ध कर मीर क़ासिम अज़ीमाबाद (पटना) के लिए रवाना हो गया। "सीअरुल-मुताख़रीन" से पता चलता है कि मीर क़ासिम के जाते ही मुंगेर के क़िलेदार अरब अली ख़ाँ ने नक़द रिशवत लेकर अपना क़िला चुपचाप अंगरेज़ों के सुपुर्द कर दिया। अंगरेज़ों ने मुंगेर पर क़ब्ज़ा जमा कर अब मीर क़ासिम का पीछा किया। महाराजा कल्यानसिंह की पुस्तक "ख़ुलासतुल तवारीख़" में लिखा है कि अज़ीमाबाद किले के संरक्षक मीर मोहम्मदअली ख़ाँ ने अपने लिए पाँच सौ रुपए मासिक पेन्शन कम्पनी से मंज़ूर करा कर बिना विरोध वहाँ का क़िला भी शत्रु के हवाले कर दिया।

मीर क़ासिम को इस समय अपने चारों ओर सिवाय दग़ा के और कुछ नज़र न आता था। अंगरेज़ों को अब केवल दो बातों की चिन्ता थी। एक एलिस इत्यादि जो अंगरेज़ मीर क़ासिम के पास अभी तक क़ैद थे उन्हें छुड़ा लेना और दूसरे किसी प्रकार मीर क़ासिम को गिरफ़्तार करना। १९ सितम्बर सन् १७६३ को एडम्स और कारनक ने मीर क़ासिम के एक फ़्रान्सीसी मुलाज़िम जाँती (Gentil) को इस मज़मून का पत्र लिखा :—

"मुसलमानों के हाथों में जब कभी ताक़त होती है और उन्हें कोई डर नहीं होता तो वे सदा हमारे सहधर्मियों और यूरोप निवासियों के साथ क्रूर से क्रूर पाशविकता का व्यवहार करते हैं। किसी ईसाई के लिए मुसलमानों की नौकरी करना बड़ी ज़िल्लत का काम है। हमारा यह भी अनुमान है कि किसी बहुत ही ज़बरदस्त ज़रूरत से मजबूर होकर ही आपने इतनी ज़िल्लत की नौकरी स्वीकार की होगी। अब ऐसी कष्टकर ग़ुलामी से बच निकलने का

और हमारी क़ौम की फिर से मित्रता लाभ करने का आपके लिए अच्छा मौक़ा है। आप इससे इनकार नहीं कर सकते कि हमारी क़ौम के साथ आपने बहुत बेजा सलूक किया है (जब कि आजकल हमारी और आपकी क़ौमों में सुलह है) । यदि आप हमारे आदमियों को क़ासिमअली ख़ाँ के हाथों से निकाल कर हमारे पास भेजने की तदबीर कर सकें तो आप अंगरेज़ों की कृतज्ञता पर पूरा भरोसा रखिए और हम आपको पचास हज़ार रुपए फ़ौरन देने का वादा करते हैं।"*

मीर क़ासिम को गिरफ़्तार करने की योजना

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि इसके बाद मीर क़ासिम को किसी तरह गिरफ़्तार करने की अंगरेज़ों को चिन्ता हुई। वन्सीटार्ट और वारन हेस्टिंग्स ने कलकत्ते के ईसाई सौदागर ख़ोजा पेतरूस से जिसे आग़ा बेदरूस भी कहते थे, ख़ोजा ग्रिगरी के नाम जिसे गुरगिन ख़ाँ भी कहते थे, इस सम्बन्ध में एक पत्र

* "We are persuaded also that it must have been the most absolute necessity only which could have engaged you in so dishonourable a service to a Christian as that of the moors, who always treat with the grossest brutality those of our religion and Europeans when it is in their power to do it with impunity. A favourable opportunity now offers to enable you to rid yourself of so irksome a slavery and to reconcile yourself with our nation towards which you cannot deny but you have acted very improperly (and which is now at peace with yours.) If you can contrive means for the delivery of our gentlemen from the power of Cossim Ally Khan and will convey them to us, you may place a firm reliance on the gratitude of the English, and we promise you fifty thousand Rupees immediately." – Letter dated 19th September, 1763, from Adams and Carnac to one Monsieur Gentil in the employ of Meer Kassim. Long's *Records*, pp. 332, 333

लिखाया। अचानक एक दिन रात को एक बजे मीर क़ासिम के एक विश्वस्त जासूस ने उसे जगाकर ख़बर दी—"आप बिछौने पर पड़े क्या कर रहे हैं, आपका सेनापति गुरग्रिन खाँ आपको साफ़ फ़िरङ्गियों के हाथों में बेच रहा है! कुछ बाहर के लोगों के साथ और मालूम होता है कि भीतर के लोगों, यानी आपके क़ैदियों, के साथ भी उसकी साज़िश हो चुकी है।"

अभी तक एलिस और उसके अंगरेज़ साथियों के साथ मीर क़ासिम ने बड़ी उदारता का व्यवहार किया था। इन खुले बाग़ियों को ख़तम कर देने के बजाय वह तीन महीने से बराबर उन्हें आदर पूर्वक अपने साथ रक्खे था और खिला पिला रहा था। किन्तु 'सीअरुल-मुताख़रीन' के अनुसार जब उसने देखा कि ये सब लोग अब भी मेरे ख़िलाफ़ गहरी साज़िश कर रहे हैं और बाहर से शस्त्रों वग़ैरह का भी गुप्त प्रबन्ध कर चुके हैं, तो उसने मजबूर होकर पटने में ख़ोजा ग्रिगरी को, एलिस और उसके तमाम साथियों को—केवल एक अंगरेज़ डॉक्टर फ़ुलरटन को छोड़कर—जगतसेठ और उसके भाई महाराजा स्वरूपचन्द को, यानी उन सबको जो इस साज़िश में शामिल थे, क़त्ल करवा दिया। कहा जाता है कि ख़ोजा ग्रिगरी इस साज़िश का सरग़ना था।

इसके बाद जब अंगरेज़ पटने की ओर बढ़े तो मीर क़ासिम ने कर्मनासा नदी को पार कर कुछ सेना और तोप ख़ाने सहित ४ दिसम्बर सन् १७६३ को अपनी सरहद से निकल कर नवाब शुजाउद्दौला के

मीर क़ासिम के शासन का अंत

सूबे अवध में प्रवेश किया। तीन साल तक वह बंगाल का सूबेदार रह चुका था। उसका सारा शासन काल आपत्तियों से भरा हुआ था। अब इस प्रकार उसके शासन का अन्त हुआ। मीर क़ासिम के बाक़ी प्रयत्नों और उसकी मृत्यु का ज़िक्र अगले अध्याय में किया जायगा। निस्सन्देह वह योग्य, वीर और अपने देश और प्रजा दोनों का सच्चा हितचिन्तक था। सिराजुद्दौला के समान वह विश्वासघात का शिकार हुआ। उसके शासन काल और पतन के सारे क़िस्से को पढ़कर और उसकी कोशिशों के साथ उसके विरोधियों की समस्त करतूतों की तुलना कर प्रत्येक निष्पक्ष मनुष्य के चित्त में उसकी ओर दया, प्रेम और सहानुभूति का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। बहुत दरजे तक वह अन्तिम भारतीय वीर था, जिसने बंगाल की स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार जी तोड़ प्रयत्न किया और इसी प्रयत्न में अपने आपको मिटा डाला।

पाँचवाँ अध्याय

फिर मीर जाफ़र

७ जुलाई सन् १७६३ को कलकत्ते के अंगरेज़ों ने समस्त बंगाल, बिहार और उड़ीसा में यह एलान प्रकाशित कर दिया कि 'मीर मोहम्मद क़ासिमअली ख़ाँ' के ज़ुल्मों के कारण उन्हें सूबेदारी की मसनद से उतार कर उनकी जगह 'मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ाँ बहादुर' को फिर से मसनद पर बैठा दिया गया है। इसी एलान में सब सरकारी कर्मचारियों और प्रजा से अपील की गई कि आप लोग "मीर मोहम्मद जाफ़रअली ख़ाँ बहादुर की मदद के लिए उनके झंडे के नीचे आकर जमा हो जावें, ताकि मीर मोहम्मद जाफ़र अली ख़ाँ बहादुर क़ासिमअली ख़ाँ के प्रयत्नों को निष्फल करके अपनी सूबेदारी को पक्का कर सकें।"

अंगरेज़ों की ओर से एलान

७ जुलाई से पहले ही एक और नई सन्धि मीर जाफ़र के साथ कर ली गई थी, जिसके विषय में इतिहास लेखक ऐल्फ़िन्सटन लिखता है :—

मीर जाफ़र के साथ नई सन्धि

"अधिकांश अंगरेज़ यही कहते थे कि मीर जाफ़र को फिर से मसनद पर बैठाना केवल उसके न्याय्य अधिकारों का उसे वापस देना है, किन्तु फिर भी वे उससे नई और अधिक कड़ी शर्तें स्वीकार करा लेने में न झिझके।"*

बर्धमान इत्यादि तीनों ज़िले और जितनी रिआयतें मीर क़ासिम ने उन्हें दे रक्खी थीं वे सब इस नई सन्धि द्वारा क़ायम रक्खी गईं। ऐल्फ़िन्सटन लिखता है कि आइन्दा के लिए यह नियत कर दिया गया कि नवाब छै हज़ार सवार और बारह हज़ार पैदल से ज़्यादा फ़ौज अपने पास न रक्खे। तमाम हिन्दोस्तानी व्यापारियों से पहले की तरह सब माल पर २५ फ़ी सदी महसूल वसूल किया जावे। अंगरेज़ व्यापारी नमक पर ढाई फ़ी सदी महसूल दिया करें और बाक़ी हर तरह के माल पर उन्हें बिना महसूल दिए देश भर में व्यापार करने का अधिकार रहे। मीर जाफ़र अंगरेज़ों को युद्ध के ख़र्च के लिए ३० लाख, अंगरेज़ी स्थल सेना के लिए २५ लाख और जल सेना के लिए १२½ लाख रुपए दे, और अंगरेज़ व्यापारियों का जितना नुक़सान मीर क़ासिम के समय में देशी व्यापारियों से महसूल न लिए जाने के कारण हुआ है, अब मीर जाफ़र उसे पूरा करे। सन्धि के समय कहा गया कि यह हरजाने की

* *Rise of British Power in India* p 397

रक़म पाँच लाख से अधिक न होगी, किन्तु बाद में इस पाँच लाख की जगह ५३ लाख वसूल किए गए। सन्धि की इन शर्तों के विषय में करनल मालेसन लिखता है :—

*"देशभक्त मीर क़ासिम ने जिन जिन रिआयतों के देने से इनकार कर दिया था, नीच और स्वार्थी मीर जाफ़र ने वह सब अंगरेज़ों को प्रदान कर दीं।"**

इतिहास लेखक स्कैफ़टन लिखता है :—

"नवाब इसके बाद केवल एक बंक की तरह रह गया, जिससे कम्पनी के मुलाज़िम जितनी दफ़े और जितनी रक़म चाहें, ले सकते थे।"

बंगाल की और बुरी हालत

मीर क़ासिम के ख़िलाफ़ मीर जाफ़र अंगरेज़ों के हाथों में एक उपयोगी हथियार था। उसी के नाम पर मीर क़ासिम के अनेक आदमियों को बहका बहका कर अंगरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ा। ऊदवानाला की लड़ाई में मीर जाफ़र अंगरेज़ी सेना के साथ था। फिर भी मीर जाफ़र का अहसान मानने के स्थान पर अंगरेज़ों ने उसे अब और अधिक दबाना शुरू किया, यहाँ तक कि इस दूसरे बार की सूबेदारी में उसकी और उसकी प्रजा दोनों की हालत धीरे धीरे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक दर्दनाक हो गई। सितम्बर सन् १७६४ में मीर जाफ़र ने कलकत्ते की कौन्सिल के नाम एक पत्र भेजा, जिसमें उसने तेरह शिकायतें अंगरेज़ों के सामने रक्खीं। इन शिकायतों का

* "Having obtained from the low ambition of Mir Jaffir the advantages which the patriotism of Mir Kassim had refused to them."—Ibid p 145

सार नीचे दिया जाता है, जिससे उस समय के बंगाल की हालत का ख़ासा अन्दाज़ा लगाया जा सकता है। शिकायतें इस प्रकार थीं :—

१—पटने में करनलगंज और मारुगंज नाम की दो नई मंडियाँ अंगरेज़ों ने क़ायम की हैं। वहाँ के अंगरेज़ अफ़सर पुरानी सरकारी मंडियों के व्यापारियों को ज़बरदस्ती पकड़ पकड़ कर अपने यहाँ ले जाते हैं, जिसके कारण मेरी मंडियाँ उजड़ गई और मुझे एक लाख का नुक़सान हो रहा है।

२—पटना और मुर्शिदाबाद की कचहरियों की यह हालत है कि वहाँ पर तमाम व्यापारी अंगरेज़ी कोठियों की आड़ लेकर सरकारी महसूल देने से इनकार कर देते हैं।

३—जगह जगह अंगरेज़ गुमाश्ते सरकार के बाग़ियों और मुजरिमों को अपने यहाँ आश्रय देते हैं।

४—हल्के और घटिया सिक्के ढालकर टकसाल के अधिकार का दुरुपयोग किया जा रहा है।

५—क़ासिमबाज़ार की कोठी के गुमाश्तों ने ज़बरदस्ती दम-दम, शिवपुर और बामनघाट इन तीनों गांव पर क़ब्ज़ा कर लिया है और एक कौड़ी मालगुज़ारी नहीं देते।

६—अंगरेज़ गुमाश्ते अपना तम्बाकू और दूसरा माल ताल्लुक़-दारों और रय्यत के सर ज़बरदस्ती मढ़ देते हैं, जिससे मुल्क वीरान हो रहा है और सरकार की आमदनी को बहुत भारी नुक़सान हो रहा है।

७—पटना, मुंगेर इत्यादि के किलों में अंगरेज़ों के आदमी ज़बरदस्ती घुसे बैठे हैं और मेरी एक नहीं सुनते।

८—बंगाल के गंजों (मंडियों) और गोलों में कई अंगरेज़ों के आदमी ज़बरदस्ती नाज ख़रीद लेते हैं और जिस तरह चाहते बेचते हैं, यहाँ तक कि मेरे फ़ौजदारों को फ़ौज की आवश्यकताओं के लिए भी नाज नहीं मिलता।

९—पटने के अन्दर करीब चालीस मकानों पर, जो मुसाफ़िरों के लिए बने हैं, कुछ अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया है, यहाँ तक कि मुझे अपने और अपने कुटुम्बियों के ठहरने के लिए भी जगह न मिल सकी।

१०—पूर्निया की लकड़ी की मंडी से मुझे पचास हज़ार रुपए साल वसूल होते थे। अब अंगरेज़ों ने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया है और मुझे एक कौड़ी नहीं मिलती।

११—यह क़ायदा कर दीजिये कि सरकार के नौकरों या आदमियों को न कोई अंगरेज़ उकसावे और न उन्हें आश्रय दे।

१२—कम्पनी की कोठियों से जो सिपाही मुल्क के विविध भागों में भेजे जाते हैं, वे गाँव के गाँव उजाड़ डालते हैं और उनके अत्याचारों के कारण रय्यत गाँव छोड़ कर भाग जाती है।

१३—इस मुल्क के जो ग़रीब लोग सदा से नमक, छालिया, तम्बाकू इत्यादि का व्यापार करते थे, उन सब की रोज़ी अब यूरोपनिवासियों ने छीन ली है, जिससे कम्पनी को कोई फ़ायदा नहीं और सरकारी आमदनी को बहुत बड़ा नुक़सान है।*

* Long's *Selections*, pp 356-358

मीर जाफ़र ने प्रार्थना की कि मेरी ये शिकायतें दूर की जावें, किन्तु कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल ने इस ओर तनिक भी ध्यान न दिया।

उधर मीर क़ासिम का साहस अभी तक टूटा न था। अपनी सरहद से बाहर निकल कर वह इन विदेशियों के बल को तोड़ने के अन्तिम प्रयत्न कर रहा था। सूबेदारी की सनद मीर क़ासिम को सम्राट की ओर से बाज़ाब्ता अता हो चुकी थी और मीर जाफ़र को बिना सम्राट की इजाज़त ज़बरदस्ती अंगरेज़ों ने सूबेदार बना दिया था। सम्राट शाहआलम अभी तक फाफामऊ (इलाहाबाद) में था। अवध का नवाब शुजाउद्दौला इस समय मुग़ल साम्राज्य का प्रधान मंत्री और सम्राट का विशेष संरक्षक था। मीर क़ासिम ने सम्राट और शुजाउद्दौला दोनों से मिलकर अंगरेज़ों और बंगाल का सब हाल कह सुनाया। शुजाउद्दौला की माँ को उसने माँ और शुजाउद्दौला को अपना भाई कह कर सम्बोधन किया। शुजाउद्दौला ने क़ुरान हाथ में लेकर अंगरेज़ों को सज़ा देने और मीर क़ासिम को फिर से मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाने की क़सम खाई।

मीर क़ासिम के अन्तिम प्रयत्न

बुन्देलखण्ड का राजा इधर कई वर्ष से विद्रोह कर रहा था। उसने दिल्ली दरबार को ख़िराज भेजना बन्द कर दिया था। शुजाउद्दौला सम्राट की ओर से उस पर चढ़ाई की तैयारी कर रहा था। मीर क़ासिम ने इस मौक़े को ग़नीमत समझा, सम्राट और शुजाउद्दौला से इजाज़त लेकर अपनी सेना और तोपख़ाने सहित

बुन्देलखण्ड पर चढ़ाई की और शीघ्र ही वहाँ के राजा को अधीन कर लिया। राजा ने तमाम पिछला ख़िराज अदा करने का वादा किया। मीर क़ासिम इलाहाबाद लौट आया। सम्राट और उसका वज़ीर मीर क़ासिम की इस सेवा से इतने ख़ुश हुए कि उन्होंने तुरन्त अंगरेज़ों के विरुद्ध बंगाल पर चढ़ाई करने की तैयारी शुरू कर दी। सम्राट की इस चढ़ाई का स्पष्ट उद्देश मीर क़ासिम को फिर से मसनद पर बैठाना था।

अंगरेज़ों के नाम शुजाउद्दौला का पत्र

किन्तु चढ़ाई करने से पहले अंगरेज़ों को इसकी सूचना देना और उनसे जवाब तलब करना ज़रूरी था। नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला ने इस समय सम्राट की ओर से नीचे लिखा पत्र अंगरेज़ गवरनर और उसकी कौन्सिल के नाम कलकत्ते भेजा :—

"हिन्दोस्तान के पिछले बादशाहों ने अंगरेज़ कम्पनी को महसूल माफ़ कर दिया, उन्हें बहुत सी बस्तियाँ और कोठियाँ अता कीं और उनके तमाम कारबार में मदद की। इस तरह उन्होंने कम्पनी पर इतनी मेहरबानियाँ की हैं और उसकी इतनी इज़्ज़त बढ़ाई है, जितनी न अपने मुल्क के व्यापारियों के साथ कीं और न किसी दूसरी यूरोपियन क़ौम के साथ। इसके अलावा हाल ही में बादशाह ने मेहरबानी करके मुनासिब से ज़्यादा ख़िताब और रुतबे और उसके बाद जागीरें और दूसरी रिआयतें आप लोगों को अता की हैं। बावजूद इन सब इनायतों के आप लोगों ने बादशाह के मुल्क में दख़ल दिया, बर्धमान, चट्टग्राम वग़ैरह सरकारी इलाक़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया और बिना दरबार की रज़ामन्दी के जिस नवाब को चाहा मसनद से उतार दिया

नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला

[श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा, एक प्राचीन चित्र से]

अगर (खुदा न करे) आप सरकशी और नाफ़रमानी करते रहे तो इन्साफ़ की तलवार बग़ावत करने वालों के सरों को खा जायगी और आप शहनशाह की ख़फ़गी के भार को महसूस करेंगे, जो खुदा के क़हर का एक नमूना है; फिर बाद में आपके अपनी ग़लती मानने या दरख़्वास्तें देने से भी काम न चलेगा, क्योंकि शुरू ज़माने से बादशाह आपकी कम्पनी के साथ काफ़ी रिआयतें करते रहे है। इसलिए मैंने आपको लिख दिया है, आप जैसा मुनासिब समझिए वैसा कीजिए और मुझे जल्दी जवाब दीजिए।"

निस्सन्देह मुग़ल साम्राज्य के वज़ीर की हैसियत से शुजाउद्दौला का पत्र उचित, उदार और न्यायानुकूल था। किन्तु इस पत्र से यह भी ज़ाहिर है कि उस समय के भारतीय शासकों को पाश्चात्य कूटनीति का पूरा पता न था।

इस पत्र को पाते ही और यह सुनते ही कि सम्राट और शुजाउद्दौला को साथ लेकर मीर क़ासिम बिहार लौटने वाला है, अंगरेज़ डर गए। 'सीअरुल मुताख़रीन' में लिखा है :—

"शुजाउद्दौला के बल की ख्याति और उसकी सेना की अधिकता और वीरता का हाल सुनकर वे डर गए और उन्होंने अपने आपको मैदान में शुजाउद्दौला का मुक़ाबला कर सकने के नाक़ाबिल समझा।"

मीर क़ासिम के प्रान्त छोड़ने के समय अंगरेज़ों ने अज़ीमाबाद (पटना) से आगे बढ़कर सोन नदी को पार कर बक्सर में अपनी छावनी डाल ली थी। अब फिर फुर्ती के साथ बक्सर की छावनी को छोड़ कर सोन पार कर वे अज़ीमाबाद की चहारदीवारी के अन्दर आ गए।

जब इस पत्र का कोई सन्तोषजनक उत्तर न मिला तो शुजाउद्दौला ने सम्राट और मीर क़ासिम के साथ आकर अपनी फ़ौज से पटने को घेर लिया।

सम्राट को शुजाउद्दौला से फोड़ने की कोशिश

बंगाल के अंगरेज़ इस समय ज़बरदस्त संकट में थे, किन्तु उनकी पुरानी कूटनीति ने इस अवसर पर भी उनका पूरा साथ दिया। सबसे पहले उन्होंने सम्राट और शुजाउद्दौला को एक दूसरे से फोड़ने की कोशिश की। "सीअरुल मुताख़रीन" का विद्वान लेखक सय्यद गुलामहुसेन, जो अपने पिता के साथ इस अवसर पर सम्राट की सेना में मौजूद था, अपनी पुस्तक में स्वीकार करता है कि लोभवश वह खुद इस समय अंगरेज़ों से मिल गया। उसी की मारफ़त अंगरेज़ों ने शाहआलम को विश्वास दिलाया कि हम आपके सच्चे "वफ़ादार और ख़ैरख़ाह" हैं। उन्होंने सम्राट से यह वादा किया कि हम शुजाउद्दौला को ज़ेर करके उसका सारा सूबा आपके हाथों में दे देंगे। सम्राट शाहआलम को इस समय दिल्ली में अपने विपक्षियों के विरुद्ध चारों ओर से मदद की ज़रूरत थी और उसकी इस कमज़ोरी तथा अदूरदर्शिता से अंगरेज़ों को अपनी कूटनीति के लिए काफ़ी मदद मिली। भारत सम्राट का इस समय का भोलापन भी दर्दनाक और हैरतअंगेज़ था। अंगरेज़ों ने अपनी चालों द्वारा सम्राट को अपने पक्ष में तो नहीं कर लिया किन्तु संग्राम से उदासीन अवश्य कर दिया।

एक दूसरा विश्वासघातक महाराजा शिताबराय का बेटा महा-

राजा कल्यानसिंह शुजाउद्दौला की सेना में एक ऊँचा ओहदेदार था और अपने यहाँ की सेना की संख्या, सामान, इरादों इत्यादि की पूरी सूचना अंगरेज़ कम्पनी के अफ़सरों को देता रहता था। उसने अपने एक लेख में स्वीकार किया है :—

शुजाउद्दौला की सेना में विश्वास-घातक

"महाराजा शिताबराय उस समय अज़ीमाबाद में थे, उनका एक मुन्शी राय माधोराम फुलवाड़ी में मुझसे मिलने के लिए आया × × × मैंने उससे यह कहा कि अंगरेज़ अफ़सरों को और मीर मोहम्मद जाफ़र ख़ाँ को विश्वास दिला दो कि मैं उनके साथ हूँ और इस बात के इन्तज़ार में बैठा हूँ कि मौक़ा मिले और मैं लड़ाई का सारा रुख़ उनके पक्ष में मोड़ दूँ। राय माधो राम ने मेरा सन्देश पहुंचा दिया और वापस आकर मुझे इत्तला दी कि आपके सहानुभूति और आशा से भरे संदेश को पाकर अंगरेज़ और नवाब दोनों ख़ुश हुए और उन्हें आप पर पूरा भरोसा है।"*

एक तीसरे देशघातक और विश्वास घातक ज़ैनुल आबदीन का एक पत्र अंगरेज़ सेनापति मेजर मनरो के नाम २२ सितम्बर सन् १७६४ को कलकत्ते पहुँचा। इस पत्र में लिखा है :—

"असद ख़ाँ बहादुर की मारफ़त आपका मित्रता सूचक पत्र मेरे पास पहुँचा, जिससे मेरी इज़्ज़त बढ़ी। उस पत्र मे आपने इच्छा प्रकट की है कि जितने अधिक मज़बूत और हथियारबन्द मुग़ल, तूरानी और अन्य सवारों को हो सके, साथ लेकर मैं आपसे आ मिलूँ।

"जनाबमन्, हर आदमी के लिए और ख़ासकर ख़ानदानी लोगों के

* J B A O R S vi, pp 148, 149

लिए अपनी वक्त की मुलाज़मत को छोड़कर अपने मालिक के दुश्मनों से जा मिलना बड़ी ज़िल्लत की बात है, फिर भी कुछ हालात ऐसे हैं जिनसे हम लोगों के लिए ऐसा करना जायज़ है × × ×"*

निस्सन्देह भारतीय नरेशों में परस्पर ईर्षा इस समय हद को पहुँची हुई थी।

इस दरमियान बरसात शुरू हो गई और मौसम ख़राब होने की वजह से या इन सब बातों से विवश होकर शुजाउद्दौला पटने का मोहासरा छोड़कर बक्सर लौट आया। बक्सर ही में उसने बरसात गुज़ारने का निश्चय किया।

उधर मीर जाफ़र ने मसनद पर दोबारा बैठते ही महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त किया। नन्दकुमार सच्चा और वफ़ादार साबित हुआ। अंगरेज़ों की चालों को वह ख़ासा समझ गया था। नन्दकुमार की सलाह से मीर जाफ़र ने अब यह कोशिश की कि मैं सम्राट शाहआलम और वज़ीर शुजाउद्दौला को ख़ुश करके अपनी सूबेदारी के लिए बाज़ाब्ता शाही फ़रमान हासिल करलूं। निस्सन्देह मीर जाफ़र की यह इच्छा हर तरह उचित और नियमानुकूल थी। किन्तु सम्राट और मीर जाफ़र का मेल अंगरेज़ों के लिए हितकर न हो सकता था। इसलिए ख़बर पाते ही अंगरेज़ों ने फ़ौरन निर्दोष नन्दकुमार को ज़बरदस्ती दीवानी से अलग कर

दीवान नन्दकुमार के साथ ज़बरदस्ती

* Long's *Selections*, pp 358, 359

दिया और मीर जाफ़र को पटने से कलकत्ते बुलवा लिया। कठ-पुतली तथा बेबस मीर जाफ़र को अंगरेज़ों की आज्ञा माननी पड़ी।

मेजर कारनक की जगह मेजर मनरो अब पटने की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त हुआ। जुलाई मास में वह पटने पहुँचा। अंगरेज़ों को डर था कि यदि लड़ाई देर तक चली तो सम्भव है मराठों और

मनरो का रोहतास के क़िले पर क़ब्ज़ा

अफ़ग़ानों की सेनाएँ शुजाउद्दौला की मदद के लिए आ जावें। इसलिए मेजर मनरो को आज्ञा दी गई कि तुम शुजाउद्दौला की सेना पर हमला करके लड़ाई का शीघ्र अन्त कर डालो। मालूम होता है मेजर मनरो के आते ही कम्पनी के कुछ हिन्दोस्तानी सिपाही मीर जाफ़र के साथ अंगरेज़ो के इस अन्याय को देखकर या किसी दूसरी वजह से अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ बग़ावत कर बैठे। मेजर मनरो ने फ़ौरन बिना किसी तहक़ीक़ात या पूछ ताछ के तमाम बाग़ियों को तोप के मुंह से उड़वा दिया।

इसके बाद मेजर मनरो ने रोहिताश्व (रोहतास) के क़िले पर क़ब्ज़ा किया। इस क़िले के विषय में, सय्यद ग़ुलामहुसेन लिखता है कि मेजर मनरो ने आते ही डॉक्टर फुलरटन की मारफ़त सय्यद ग़ुलामहुसेन को पत्र लिखा कि—"यदि आप रोहिताश्व का क़िला अंगरेज़ों के हवाले करने की तदबीर कर सकें तो आप अंगरेज़ों की मित्रता और कृतज्ञता के हक़दार होंगे।" सय्यद ग़ुलामहुसेन लिखता है कि—"इस सूचना के मिलने पर मैंने राजा साहूमल से बातचीत की।" राजा साहूमल रोहिताश्व के क़िले का

किलेदार था। वह गुलामहुसेन की बातों में आ गया। उसने अपनी शर्तें पेश कीं। अंगरेज़ों ने उसकी शर्तें मञ्जूर करलीं और चुपचाप उसकी मदद से किले पर कब्ज़ा कर लिया। बाद में अंगरेज़ों ने राजा साहूमल के साथ एक भी शर्त का पालन नहीं किया। राजा साहूमल ने गुलामहुसेन से शिकायत की, किन्तु व्यर्थ।

यह भी कहा जाता है कि इस समय मीर क़ासिम के साथ शुजाउद्दौला का व्यवहार जैसा चाहिए वैसा न रहा था।

बक्सर की मशहूर लड़ाई

१५ सितम्बर सन् १७६४ को बक्सर में दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुआ। शाहआलम के दिल और दिमाग़ पर अंगरेज़ों की चालों का काफ़ी असर हो चुका था। "सीअरुल-मुताख़रीन" का रचयिता, जो इस काम में अंगरेज़ों का ख़ास मददगार था, लिखता है :—

"किन्तु शाहआलम ने जो भीतर से वज़ीर (शुजाउद्दौला) से असन्तुष्ट था × × × कई तरह के बहाने करके समय टालना उचित समझा। वजह यह थी कि वह कुछ पहले ही से अंगरेज़ों से मिल जाने की तदबीर सोच चुका था। अंगरेज़ क़ौम इस विषय का कुछ सन्देशा उसके पास भेज चुकी थी, जिससे वह उनसे मिल जाने का इच्छुक हो गया था और उनकी सहायता से लाभ उठाने का भी निश्चय कर चुका था।"

जब कि स्वयं भारत सम्राट की यह हालत थी तो न जाने उस दिन और कितने भारतीय सेनानियों ने सक्रिय या निष्क्रिय रूप में शत्रु का साथ दिया होगा। नतीजा यह हुआ कि दिन भर के घमासान में क़रीब पाँच छै हज़ार आदमी काम आए और असहाय

शुजाउद्दौला को अपनी सेना सहित मैदान से पीछे हट जाना पड़ा, जिसमें कहा जाता है उसके हज़ारों सैनिक गंगा की दलदल में फँस कर रह गए।

मीर क़ासिम की मृत्यु

मीर क़ासिम जानता था कि यदि मैं अंगरेज़ों के हाथों में पड़ गया तो जो व्यवहार उन्होंने सिराजुद्दौला के साथ किया उससे बेहतर सलूक की मुझे अंगरेज़ों से आशा नहीं हो सकती। इसलिए वह बक्सर से भाग कर सीधा इलाहाबाद पहुँचा। वहाँ से चल कर उसने बरेली में दम लिया और अन्त को १२ साल से ऊपर एक गृह विहीन जलावतन की तरह जगह जगह मुसीबतें उठाकर सन् १७७७ ई० में दिल्ली में उसकी मृत्यु हुई। निस्सन्देह भारत की स्वाधीनता के लिए अपने आप को मिटा देने वालों में मीर क़ासिम का नाम सदा के लिए स्मरणीय रहेगा।

सम्राट शाहआलम ने लड़ाई के समाप्त होते ही शुजाउद्दौला का साथ छोड़कर अंगरेज़ी सेना के साथ डेरा डाला। अंगरेज़ों ने फ़ौरन उसके सामने हाज़िर होकर उसका बाक़ायदा आदर मान किया और उसे अपना सम्राट कह कर सलाम किया। सम्राट ही के साथ अंगरेज़ों ने गंगा को पार किया और वहाँ से शुजाउद्दौला के दीवान बेनीबहादुर को बुलवाकर शुजाउद्दौला के साथ सुलह की बातचीत शुरू की। अंगरेज़ों ने दीवान बेनीबहादुर को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि कम्पनी ने अपने मुलाज़िमों को आज्ञा दे दी है कि हिन्दोस्तान के अन्दर अब और नए इलाक़े फ़तह न

किए जायँ। इस पर भी शुजाउद्दौला और अंगरेजों में इस समय सुलह न हो सकी।

मालूम होता है कि सम्राट बक्सर से इलाहाबाद की ओर चल दिया। शुजाउद्दौला फिर से मुक़ाबला करने की तैयारी के इरादे से पीछे हटा और अंगरेज़ शुजाउद्दौला का पीछा करने के लिए आगे बढ़े।

चुनारगढ़ में अंगरेज़ों की हार

मार्ग में अंगरेज़ों ने चुनार के क़िले का मोहासरा किया। "सीअरुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि अंगरेज़ सेनापति ने कम्पनी के नाम सम्राट का एक दस्तख़ती परवाना क़िलेदार मोहम्मद बशीर ख़ाँ के सामने पेश किया, किन्तु क़िले के भीतर की भारतीय सेना ने इस परवाने की ख़ाक परवा न की। इस सेना ने जब यह देखा कि हमारा क़िलेदार भी डाँवाडोल हो रहा है तो उन्होंने उसे क़िले से बाहर निकाल कर उस सड़क पर छोड़ दिया, जो नवाब शुजाउद्दौला के ख़ेमों की ओर जाती थी और स्वयं वीरता के साथ विदेशियों से क़िले की रक्षा शुरू की। अंगरेज़ों ने अपनी तोपें सामने कीं। कई दिन की गोलेबारी के बाद वे केवल क़िले की दीवार का एक थोड़ा सा टुकड़ा गिरा पाए, किन्तु ज्योंही एक दिन अँधेरी रात में अंगरेज़ी सेना ने इस रास्ते से क़िले के भीतर प्रवेश करना चाहा, भीतर की भारतीय सेना ने अपनी बन्दूकों से उनमें से अधिकांश का वहीं दीवार के ऊपर काम तमाम कर दिया। लाचार होकर और बुरी तरह हार कर अंगरेज़ों को चुनार का मोहासरा छोड़

इलाहाबाद का रास्ता लेना पड़ा। वास्तव में बिना रिशवत, दग़ा या इसी तरह के दूसरे उपायों के अंगरेज़ों ने कभी कहीं किसी एक लड़ाई में भी किसी भारतीय सेना के ऊपर विजय प्राप्त नहीं की।

इलाहाबाद पर अंगरेज़ों का क़ब्ज़ा

इलाहाबाद के किले की संरक्षक सेना ने भी अंगरेज़ी सेना का ख़ासा मुकाबला किया। किन्तु अंगरेज़ों के सौभाग्य से वही नजफ़ ख़ाँ जिसने ऊदवानाला पर अंगरेज़ों को बुरी तरह दिक़ किया था और जो बहुत अरसे तक इलाहाबाद के किले में रह चुका था और उसके रहस्यों से परिचित था, इस मौक़े पर अंगरेज़ों से मिल गया। किले की दीवारों को गिराने के लिए अंगरेज़ी सेना के पास इस समय जो एक सबसे अच्छी तोप थी वह हिन्दोस्तान ही की बनी हुई थी और शुजाउद्दौला के खेमों की लूट में उन्हें मिली थी। नजफ़ ख़ाँ ने अंगरेज़ों को क़िले के सब गुप्त रास्ते बतला दिए और इस तोप ने भी उन्हें ख़ासी मदद दी। अन्त में थोड़ी सी लड़ाई के बाद अंगरेज़ी सेना ने इलाहाबाद के किले में प्रवेश किया। किले पर हमला करने और भीतर वालों से शर्तें तय करने में महाराजा शिताबराय की फ़ौज आगे थी, किन्तु क़ब्ज़ा करते समय कम्पनी की अपनी सेना आगे थी।

कम्पनी और नवाब शुजाउद्दौला में संधि

शुजाउद्दौला अब भाग कर बरेली पहुँचा। वहाँ से लौट कर मलहरराव होलकर की कुछ मराठा सेना की सहायता से उसने कड़ा में अंगरेज़ी सेना पर फिर हमला किया। एक दो छोटी मोटी लड़ाइयाँ

भी हुईं। अन्त में महाराजा शिताबराय ने बीच में पड़ कर नीचे लिखी शर्तों पर कम्पनी और शुजाउद्दौला में सुलह करवा दी :—

१—युद्ध में कम्पनी का जो ख़र्च हुआ है उसके लिए शुजाउद्दौला पचास लाख रुपए कम्पनी को दे। पच्चीस लाख फ़ौरन् और पच्चीस लाख सालाना क़िस्तों में।

२—इलाहाबाद के आस पास का प्रान्त जो इससे पहले अवध के सूबे में शामिल था, सम्राट के उपयोग के लिए अलग कर दिया जाय। इलाहाबाद का शहर और क़िला सम्राट के रहने के लिए नियुक्त हो और इलाहाबाद के क़िले में सम्राट की रक्षा के लिए कम्पनी की एक सेना रहे।

३—ग़ाज़ीपुर और उसके आस पास का इलाक़ा कम्पनी को दे दिया जाय।

४—अंगरेज़ों का एक वकील शुजाउद्दौला के दरबार में रहा करे, किन्तु नवाब शुजाउद्दौला के राज प्रबन्ध में वह किसी तरह का दख़ल न दे।

५— आइन्दा हर पक्ष दूसरे पक्ष के शत्रु या मित्र को अपना शत्रु या मित्र समझे।

अवध के नवाब वज़ीर के साथ अंगरेज़ों की यह पहली सन्धि थी। अवध की नवाबी का प्रारम्भ सन् १७२० के क़रीब दिल्ली दरबार की निर्बलता के दिनों में हुआ था। दिल्ली के सम्राट ने पहले नवाब सआदत ख़ाँ को अवध का सूबेदार नियुक्त करके भेजा था। उसके बाद सआदत ख़ाँ के भतीजे दूसरे नवाब सफ़दरजंग ने दो

करोड़ रुपए नादिरशाह को नज़र करके अपनी नवाबी क़ायम रक्खी। सफ़दरजंग ही को पहली बार दिल्ली सम्राट ने साम्राज्य के वज़ीर की पदवी प्रदान की और तभी से अवध के नवाब 'नवाब वज़ीर' कहलाने लगे। शुजाउद्दौला सफ़दरजंग का बेटा था।

निस्सन्देह नवाब शुजाउद्दौला ने अंगरेज़ों का ख़ासा मुक़ाबला किया और इसमें भी सन्देह नहीं कि यदि स्वयं शाह आलम और उसके अन्य साथी अंगरेज़ों के हाथों में न खेल जाते, तो बक्सर के मैदान में ही शुजाउद्दौला अगरेज़ों की उभरती हुई ताक़त को सदा के लिए अन्त कर देता। शाह आलम की अयोग्यता ने शुजाउद्दौला को पंगुल कर दिया। किन्तु शुजाउद्दौला के बाद से सन् १८५६ तक अंगरेज़ कम्पनी और भारतीय नरेशों के परस्पर संग्रामों में भारतवासियों को अवध के नवाबों से कभी विशेष फ़ायदा नहीं पहुँचा। इसके विपरीत ब्रिटिश सत्ता के क़ायम करने में अवध के निर्बल नवाब अकसर कम्पनी की साज़िशों में एक उपयोगी साधन साबित हुए। कम्पनी की भारतीय सेना के अधिकांश सिपाही सदा अवध से ही आते रहे और कम्पनी के अफ़सरों को जब जब रुपए की ज़रूरत पड़ी, तो डर कर या मूर्खतावश, उन्हें धन देने में अवध के ख़ज़ाने ने सदा कामधेनु का काम दिया।

मीर जाफ़र का अन्त

मीर जाफ़र को भी अंगरेज़ों ने अपनी महत्त्वाकांक्षा की शिखर तक पहुँचने के लिए बतौर एक सीढ़ी के इस्तेमाल किया और ज्योंही वे ऊपर तक पहुँच गए उन्होंने बिना सङ्कोच उसे लात मार कर अलग

कर दिया। उसकी ज़िन्दगी के आख़िरी दिनों को उन्होंने अत्यन्त दुखमय बना दिया। अक्तूबर सन् १७६४ में उससे पाँच लाख रुपए माहवार कम्पनी को देने का वादा करा लिया, जिससे वह अन्त तक बहुत तङ्ग रहा और सदा शिकायत करता रहा। सन्धि से बाहर नित्य नई और बढ़ बढ़ कर माँगें उससे की जाती रहीं। आए दिन की इन ज़बरदस्तियों ने उसके स्वास्थ्य और आयु दोनों पर असर डाला। प्रसिद्ध इतिहास लेखक सर विलियम हएटर लिखता है :—

"मीर जाफ़र जनवरी सन् १७६५ में मरा और कहा जाता है कि जिस बेजा तरीक़े से कलकत्ते के अंगरेज़ों ने अपने व्यक्तिगत नुक़सानों के हरजाने की अदायगी के लिए उससे तक़ाज़े शुरू किए, उनसे उसकी मौत और जल्दी हुई।"*

वास्तव में मीर जाफ़र की मृत्यु फ़रवरी सन् १७६५ के आरम्भ में मुर्शिदाबाद के महल में हुई। उसकी आयु उस समय ६५ वर्ष की थी। अन्त समय में मीर जाफ़र की इच्छा के अनुसार उसके अनेक सम्बन्धियों और बेटों के रहते हुए उसके चिर मित्र महाराजा नन्दकुमार ने एक हिन्दू मन्दिर से गंगाजल लाकर मीर जाफ़र के मुंह में डाला और उसी जल से अपने हाथों से उसने मीर जाफ़र को आख़िरी स्नान कराया।

* "His death took place in January 1765, and is said to have been hastened by the unseemly importunity with which the English at Calcutta pressed upon him their private claims to restitution." Sir W. W. Hunter, in *Statistical Account of Bengal* vol ix, p 191

छठा अध्याय

मीर जाफ़र की मृत्यु के बाद

नवाब नजमुद्दौला और उसके साथ नई सन्धि

मीर जाफ़र के बड़े बेटे मीरन की हत्या का हाल ऊपर आ चुका है। मीर जाफ़र का दूसरा बेटा नजमुद्दौला अब मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठा, किन्तु असम्भव था कि अंगरेज़ हर ऐसे अवसर से पूरा लाभ न उठाते। कलकत्ते का अंगरेज़ गवरनर उन दिनों "बंगाल में फ़ोर्ट विलियम किले का गवरनर" कहलाता था। अंगरेज़ 'गवरनर और कौन्सिल' के पास मुर्शिदाबाद की सरकारी सेना से कहीं अधिक सेना थी। बिना इस 'गवरनर और कौन्सिल' की रज़ामन्दी के मुर्शिदाबाद का कोई सूबेदार अब अपने आप को क्रियात्मक सूबेदार न समझ सकता था। उस समय के गवरनर स्पेन्सर ने जो वन्सीटॉर्ट का उत्तराधिकारी था और उसकी अंगरेज़ कौन्सिल ने नजमुद्दौला को उस समय तक

सूबेदार मानने से इनकार किया, जब तक कि उससे एक नई सन्धि पर दस्तख़त न करा लिए। इस नई सन्धि की मुख्य शर्तें ये थीं:—

(१) नवाब नजमुद्दौला 'नायब सूबेदार' का एक नया ओहदा क़ायम करे, नायब सूबेदार नवाब के नाम पर शासन का सारा काम करे, और अंगरेज़ों का एक ख़ास आदमी मोहम्मद रज़ाँ ख़ाँ इस नए ओहदे पर नियुक्त किया जावे।

(२) माल के महकमे में बिना कलकत्ते की अंगरेज़ कौन्सिल की रज़ामन्दी के नवाब न किसी को बरख़ास्त करे और न कोई नया आदमी नियुक्त करे।

(३) कम्पनी को फ़ौज के ख़र्च के लिए पाँच लाख रुपए माहवार बराबर मुर्शिदाबाद के ख़ज़ाने से मिलते रहें।

(४) सिवाय इतनी फ़ौज के जो सरकारी मालगुज़ारी वसूल करने और दरबार की इज़्ज़त क़ायम रखने के लिए ज़रूरी हो, नवाब और अधिक फ़ौज अपने पास न रक्खे।

और (५) देश भर में हर तरह के व्यापार पर अंगरेज़ों के लिए महसूल माफ़ रहे।

इन शर्तों के बाद बंगाल के सूबेदार की सत्ता केवल छाया मात्र रह गई। किन्तु नजमुद्दौला को ये सब शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं, और इनके अलावा बीस लाख रुपए नक़द बतौर दोस्ताने या रिशवत के स्पेन्सर और उसके साथियों की नज़र करने पड़े। यह बीस लाख की रक़म गवरनर और उसकी कौन्सिल के मेम्बरों ने आपस में बाँट ली।

नन्दकुमार की गिरफ़्तारी

नए नवाब ने महाराजा नन्दकुमार को अपना दीवान नियुक्त करना चाहा। अंगरेज़ नन्दकुमार से काफ़ी सावधान हो चुके थे। उन्होंने इजाज़त न दी और नवाब पर उसकी बेबसी प्रकट कर देने के लिए वे महाराजा नन्दकुमार को क़ैद करके ज़बरदस्ती मुर्शिदाबाद से कलकत्ते ले आए।

क्लाइव का दोबारा भारत आना

कम्पनी का कारबार अब काफ़ी बढ़ गया था। उसकी आकांक्षाएँ बहुत ऊँची हो गई थीं। अपने कारबार की ठीक व्यवस्था करने और इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए डाइरेक्टरों ने क्लाइव को, जो अब 'लॉर्ड क्लाइव' था, दोबारा भारत भेजना आवश्यक समझा। क्लाइव फिर एक बार 'फ़ोर्ट विलियम का गवरनर' नियुक्त हुआ। जिस समय क्लाइव इंगलिस्तान से कलकत्ते आ रहा था, मद्रास में उसने मीर जाफ़र की मृत्यु का समाचार सुना। उसका ख़ास उद्देश इस समय बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार शाह आलम से प्राप्त करना था। इतिहास लेखक ह्वीलर लिखता है :—

"मीर जाफ़र की मृत्यु की ख़बर सुनकर क्लाइव बहुत ख़ुश हुआ। वह अब बंगाल प्रान्तों के राज शासन में उस नई पद्धति को जारी करने के लिए उत्सुक था, जिसका सात साल से अधिक हुए वह इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री पिट से ज़िक्र कर चुका था। वह चाहता था कि एक ऐसे नए आदमी को नवाब बना दिया जाय जो केवल शून्य मात्र हो, सारा शासन प्रबन्ध

हिन्दोस्तानी कर्मचारियों के हाथों में रहे, असली मालिक अंगरेज़ रहें। वे ही मालगुज़ारी वसूल करें, वे ही बाहर के हमलों और भीतर के विद्रोहों से तीनों प्रान्तों की रक्षा करें, जंग करें और सन्धियाँ करें; किन्तु अंगरेज़ों की यह बादशाहत जन सामान्य की आँखों से छिपी रहे, अंगरेज़ इस तरह नवाब के नाम पर और मुग़ल सम्राट के दिए हुए अधिकार से शासन करते रहें।"*

क्लाइव की तजवीज़

क्लाइव को उस समय तक यह मालूम न था कि अंगरेज़ों ने नजमुद्दौला को नवाब मान लिया है। उसकी तजवीज़ यह थी कि मीर जाफ़र के छै साल के एक पोते को मुर्शिदाबाद की मसनद पर बैठाकर उसके नाम पर अपनी यह सारी योजना पूरी की जावे।

मई सन् १७६५ में क्लाइव कलकत्ते पहुँचा। यहाँ आकर जब उसने सुना कि स्पेन्सर और उसके साथियों ने नजमुद्दौला को नवाब स्वीकार कर लिया और इस सौदे में बीस लाख रुपए नक़द अपनी जेबों में भर लिए, तो क्लाइव को बड़ा क्रोध आया। किन्तु

---

* [illegible] was delighted at the news. He was anxious to introduce the new system for the Government of the Bengal provinces, which he had unfolded to Pitt more than seven years before. He would set up a new Nawab who should be only a cypher. He would leave the administration in the hands of native officials. The English were to be the real masters; they were to take over the revenues, defend the three provinces from invasion and insurrection, make war and conclude peace. But the sovereignty of the English was to be hidden from the public eye. They were to rule only in the name of the Nawab and under the authority of the Moghul Emperor."
Wheeler's *Early Records of British India*, pp. 329, 330.

सम्राट् शाहआलम लार्ड क्लाइव को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी प्रदान कर रहा है।

(By the courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta

वह उसी समय से अपनी ऊपर लिखी योजना को पूरा करने के प्रयत्नों में लग गया।

क्लाइव का इलाहाबाद आना

सम्राट शाहआलम अभी तक इलाहाबाद में था। सम्राट और नवाब वज़ीर शुजाउद्दौला दोनों अंगरेज़ों से दबे हुए थे। बंगाल के तीनों प्रान्तों की 'दीवानी' के अधिकार सम्राट से प्राप्त कर लेने की अंगरेज़ पहले भी कोशिशें कर चुके थे। यही बात क्लाइव की ऊपर लिखी योजना में भी शामिल है। उसने इस काम के लिए अब सीधे इलाहाबाद पहुँचने का इरादा किया।

शुजाउद्दौला से नई सन्धि

मार्ग में सबसे पहले क्लाइव मुर्शिदाबाद ठहरा। वहाँ पर मोहम्मद रज़ा ख़ाँ की सहायता से क्लाइव ने पाँच लाख रुपए नक़द बतौर नज़र के अपने लिए नवाब नजमुद्दौला से वसूल किए और इस तरह का पक्का इन्तज़ाम कर दिया कि जिससे आइन्दा के लिए क़रीब क़रीब सारी अमली हुकूमत अंगरेज़ों के हाथों में आ गई और सूबेदार केवल एक नाम मात्र की चीज़ रह गया। वहाँ से चलकर क्लाइव जनरल कारनक के पास बनारस पहुँचा। शुजाउद्दौला भी उस समय बनारस में था। शुजाउद्दौला और अंगरेज़ों के बीच हाल ही में सन्धि हो चुकी थी। दो अगस्त को क्लाइव की शुजाउद्दौला से भेंट हुई। उसी दिन इस हाल की सन्धि की ख़ाक परवा न करते हुए क्लाइव ने शुजाउद्दौला को फिर से लड़ाई की धमकी देकर उससे एक नई सन्धि मंजूर करा ली, जिसके अनुसार

नवाब वज़ीर ने अब इलाहाबाद और कड़ा दोनों स्थान सम्राट के लिए (?) कहकर कम्पनी को दे दिए और लड़ाई का जो हरजाना पिछली सन्धि में पचास लाख रुपए नियुक्त किया गया था उसे बढ़ाकर अब ६ लाख पाउण्ड यानी क़रीब ६० लाख रुपए कम्पनी को भर देने का वादा किया।

कम्पनी को दीवानी के अधिकार

बनारस से आगे बढ़ कर क्लाइव इलाहाबाद पहुंचा। ६ अगस्त सन् १७६५ को उसने सम्राट शाहआलम से भेंट की और उसी रोज़ बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार अंगरेज़ कम्पनी को देकर निर्बल और अदूरदर्शी शाहआलम ने मुर्शिदाबाद की सूबेदारी और मुग़ल साम्राज्य दोनों की मौत के परवाने पर दस्तख़त कर दिए। इसका मतलब यह था कि आइन्दा से तीनों प्रान्तों का लगान और दूसरे सरकारी टैक्स वसूल करने और उसमें से २६ लाख रुपए सम्राट की मालगुज़ारी दिल्ली भेजने रहने और मुर्शिदाबाद दरबार के ख़र्च के लिए रक़म अदा करने का काम कम्पनी के सुपुर्द हो गया। तीनों प्रान्तों का शेष शासन प्रबन्ध सूबेदार के हाथों में रहा और बची हुई मालगुज़ारी कम्पनी की सम्पत्ति हो गई। इस समय से बंगाल में दो अलग अलग 'सरकारें' साफ़ दिखाई देने लगीं—एक मुर्शिदाबाद की भारतीय सरकार और दूसरी कलकत्ते की अंगरेज़ सरकार।

इसमें सन्देह नहीं, सम्राट से इस महत्त्वपूर्ण परवाने के हासिल करने में बल प्रदर्शन से भी काम लिया गया। 'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि सम्राट और वज़ीर दोनों को—

नजमुद्दौला

From the "History of Murshidabad", by Major Walsh.

"अपनी इच्छा के विरुद्ध मजबूर होकर यह प्रार्थना स्वीकार करनी पड़ी।"

क्लाइव अब अपना उद्देश पूरा कर इलाहाबाद से कलकत्ते वापस आ गया।

नजमुद्दौला की हत्या

क्लाइव जब मुर्शिदाबाद से बनारस के लिए रवाना हुआ था उसी समय अचानक नवाब नजमुद्दौला की मृत्यु हो गई। जिन हालात में यह मृत्यु हुई वे काफ़ी शक पैदा करने वाले थे। 'सीअरुल-मुताख़रीन' से मालूम होता है कि नजमुद्दौला और मोहम्मद रज़ा ख़ाँ दोनों मुर्शिदाबाद के बाहर एक बाग़ तक क्लाइव को छोड़ने के लिए आए। क्लाइव के रवाना हो जाने पर जब ये दोनों अपने अपने महलों की ओर लौटे तो मार्ग ही में नौजवान नवाब के पेट में एकाएक ज़बर दस्त दर्द पैदा हुआ और महल तक पहुँचते पहुँचते उसकी मृत्यु हो गई। लिखा है कि उन दिनों आम लोगों का ज़ोरों के साथ यह ख़याल था कि मोहम्मद रज़ा ख़ाँ ने नजमुद्दौला को मरवा डाला।

मोहम्मद रज़ा ख़ाँ अंगरेज़ों का ख़ास आदमी था। वेरेल्स्ट नामक अंगरेज़ के एक ख़त से मालूम होता है कि कलकत्ते में उन दिनों यह ज़बरदस्त अफ़वाह थी कि नवाब नजमुद्दौला की हत्या में लॉर्ड क्लाइव और उसके कई अंगरेज साथियों की साज़िश थी।* इसमें संदेह नहीं, क्लाइव नजमुद्दौला के ख़िलाफ़ था। पाँच लाख रुपए नक़द ले लेने के बाद उसने डाइरेक्टरों के नाम एक ख़त में लिखा—"नजमुद्दोला के हाथों में सत्ता सौंप देना और ख़ैरियत से

* *Third Report 1773*, p 325

रह सकना नामुमकिन है।"* इसके अलावा कोई नीच से नीच काम ऐसा न हो सकता था जिसे अपनी इष्टसिद्धि के लिए क्लाइव करने को तैयार न हो जाता। नजमुद्दौला की मृत्यु से एक लाभ कम्पनी को और हुआ। उन्होंने 'दीवानी' मिलने पर नवाब के सैनिक खर्च के लिए ५५ लाख रुपए सालाना देश की आमदनी में से देने का वादा किया था। अब उसे घटा कर ४१ लाख ८१ हज़ार कर दिया।

नजमुद्दौला की मृत्यु के साथ साथ मुर्शिदाबाद के नवाबों की सत्ता की रही सही छाया भी बंगाल के इतिहास से लोप हो जाती है। यद्यपि नाम या उपचार के लिए नजमुद्दौला के बाद उसका एक छोटा भाई मसनद पर बैठा दिया गया और यह दोश्रमली वारन हेस्टिंग्स के समय तक जारी रही, किन्तु वास्तव में बंगाल का सूबेदार अब केवल एक 'शून्य' रह गया, तीनों प्रान्तों का शासन अंगरेज़ों के नियुक्त किए हुए तीन 'नायबों' के हाथों में आगया और 'अंगरेज़ सरकार' का ही बंगाल भर में ज़हूर दिखाई देने लगा। उस समय से बंगाल का इतिहास केवल अंगरेज़ गवरनरों के कारनामों का इतिहास रह जाता है।

भयंकर लूट और दोश्रमली

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तमाम छोटे बड़े अंगरेज़ मुलाज़िमों में धन का लोभ और दुराचार दोनों अब इस दर्जे फैल गए थे कि नेकी, बदी या न्याय अन्याय का विचार तो दूर रहा, अपने व्यक्तिगत स्वार्थ

* "It is impossible, therefore, to trust him with power, and be safe"—Clive's letter to the Court of Directors, dated 30th September, 1765

के सामने ये लोग कम्पनी के हित अहित की भी परवा न करते थे। ३० सितम्बर सन् १७६५ को क्लाइव ने कम्पनी के डाइरेक्टरों के नाम एक लम्बा पत्र लिखा, जिससे उस समय के अंगरेज़ों की हालत का ख़ासा पता चलता है। इस पत्र में क्लाइव लिखता है :—

"× × × ये लोग (कम्पनी के अंगरेज़ मुलाज़िम) अपने अपने व्यक्तिगत और थोड़ी देर के लाभ के पीछे इस जोश के साथ बढ़े चले जा रहे हैं कि इनमें से अपनी इज़्ज़त का ख़याल या अपने मालिकों की ओर अपना कर्त्तव्य पूरा करने का ख़याल दोनों जाते रहे। इन लोगों के पास दौलत एका एक बढ़ गई है और बहुतों ने उसे नाजायज़ तरीक़ों से हासिल किया है; जिसकी वजह से तरह तरह की ऐश परस्ती इन लोगों में घर कर गई है और यह ऐश परस्ती बड़ी ख़तरनाक हद को पहुँच गई है। × × × यह बुराई रोग की तरह एक से दूसरे को लगती गई और दीवानी तथा फ़ौजी दोनों महकमों के अंगरेज़ मुहर्रिरों, झंडा बरदारों और स्वतन्त्र व्यापारियों तक मे फैल गई है। × × ×

"मैं अभी समझ भी न पाया था कि यह धन किन किन विविध उपायों से प्राप्त किया गया है कि इतने में मैं यह देख कर अत्यन्त चकित रह गया कि ये लोग इतनी जल्दी धनवान हो गए हैं कि अंगरेज़ी बस्ती भर में शायद ही कोई एक अंगरेज़ ऐसा होगा, जिसने बहुत ही थोड़े समय के अन्दर अपनी विशाल पूँजी सहित इंगलिस्तान लौट जाने का निश्चय न कर रक्खा हो।"

खुले डाके

कम्पनी के अंगरेज़ों के धन कमाने का एक ख़ास उपाय उन दिनों खुले डाके डालना था। इतिहास लेखक टॉरेन्स ने साफ़ लिखा है कि ये लोग "बंगाल

और अन्य स्थानों में निडर होकर लूट के लिए निकलते थे।" और "बार बार अपनी दूकान छोड़ कर दल बना कर इधर उधर डाके डालने जाते थे।" "उन दिनों कम्पनी के हर अंगरेज़ मुलाज़िम का काम केवल यह था कि जितनी जल्दी हो सके, भारतवासियों से दस या बीस लाख रुपए लूट खसोट कर इंगलिस्तान लौट जावे।"*

और आगे चल कर क्लाइव अपने उस ख़त में लिखता है :—

"× × × दौलत व्यवस्था की शत्रु है ही। इसी दौलत की वजह से हमारी सेना प्रतिदिन बरबाद होती जा रही हैं × × × जब अंगरेज़ी फ़ौज किसी शहर पर क़ब्ज़ा करती है तो उसके बाद सारा लूट का माल, दण्ड का रुपया और सामान बे रोक टोक फ़ौज के लोग आपस में बाँट लेते हैं। × × × मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि बनारस में भी ऐसा ही हुआ। इससे भी अधिक विचित्र बात यह है कि बनारस की लूट से कई साल पहले आपकी ये स्पष्ट आज्ञाएँ आ चुकी थीं कि लूट के तमाम माल में से आधा कम्पनी को मिलना चाहिए, फिर भी उस समय के गवरनर और कौन्सिल ने बजाय आपको आज्ञा के अनुसार काम करने के × × × तमाम माल और रुपया विजयी फ़ौज के सैनिकों में बाट दिया × × ×।

"× × × अय्याशी और रिशवतख़ोरी का ज़ोर है × × ×।"

---

* "The *razzias* made with impunity in Bengal and elsewhere . the counting-house was deserted continually for marauding expeditions, During this period the business of a servant of the Company was simply to wring out of the natives a hundred or two hundred thousand pounds as speedily as possible, that he might return home "— Torren's *Empire in Asia*, pp 82, 83

उस समय के अंगरेज़ हिन्दोस्तानियों पर जिस तरह के अत्याचार करते थे उनके विषय में क्लाइव ने लिखाः—

संसार के इतिहास में अपूर्व अन्याय

"जो यूरोपियन एजण्ट और जो बेशुमार काले (हिन्दोस्तानी) एजंट और सब एजंट कम्पनी के मुलाज़िमों के अधीन काम करते हैं, उन सब ने प्रजा पर ज़ुल्म करने और उन्हें पीड़ा पहुंचाने के जो तरीक़े जारी कर रखे हैं, वे मुझे डर है कि इस देश में अंगरेज़ों के नाम पर सदा के लिए एक कलंक रहेंगे। × × × मैं देखता हूं कि हर आदमी में बड़े बनने और धन कमाने की इच्छा, उसमें सफलता और ऐश परस्ती, इन तीनों ने मिलकर एक नई क़िस्म की राजनीति प्रचलित कर दी है, जिससे अंगरेज़ क़ौम की इज़्ज़त, कम्पनी पर लोगों का विश्वास और मामूली इन्साफ़ और इन्सानियत—सब का ख़ून हो रहा है।"*

* men, whose sense of honour, and duty to their employers, had been estranged by the too eager pursuit of their own immediate advantage. The sudden, and among many, the unwarrantable acquisition of riches, had introduced luxury in every shape, and in its most pernicious excess. the evil was contagious and spread among the Civil and Military down to the writer, the ensign, and the free merchant.

"Before I had discovered these various sources of wealth I was under great astonishment to find individuals so suddenly enriched, that there was scarce a gentleman in the settlement who had not fixed upon a very short period for his return to England with affluence.

" riches, the bane of discipline, were daily promoting the ruin of our army. they are suffered, without control, to take possession, for themselves, of the whole booty, donation money, and plunder on the capture of a city. This I can assure you, happened at Benares and what is more surprising, the then Governor and Council so far from laying in a claim to the moiety which ought to have been reserved for, the Company, agreeable to those positive orders from the Court of Directors a few years ago gave up the whole to the captors .

क्लाइव के इसी पत्र के उत्तर में डाइरेक्टरों ने मई सन् १७६६ में क्लाइव को लिखा :—

"हम समझते हैं कि देश के आन्तरिक व्यापार में इन अंगरेज़ों ने व्यक्तिगत हैसियत से जो बड़ी बड़ी पूँजियाँ कमाई हैं वे इस तरह के ज़बरदस्त अन्यायों और अत्याचारों द्वारा हासिल की गई है, जिनसे बढ़ कर अन्याय और अत्याचार कभी किसी ज़माने और किसी देश में भी देखने या सुनने में न आए होंगे।"*

ऊपर का लम्बा पत्र लॉर्ड क्लाइव का लिखा हुआ है, जो स्वयं हद दर्जे का लालची और रिशवतख़ोर था, जो अपने इस दूसरी बार के भारत आने से भी लाखों रुपए नाजायज़ तरीक़ों से कमाकर विलायत ले गया और जो अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए न्याय अन्याय या पाप पुण्य का ज़रा भी विचार न रखता था। इसी पत्र में एक जगह उसने "भारत के बाशिन्दों" को "अंगरेज़ों के क़ुदरती

" . the rage of luxury and corruption

" The sources of tyranny and oppression, which have been opened by the European agents acting under the authority of the Company's servants, and the numberless black agents and sub-agents acting also under them, will, I fear, be a lasting reproach to the English name in this country

Ambition success and luxury, have, I find, introduced a new system of politics, at the severe expense of English honor, of the Company's faith, and even of common justice and humanity — Clive's letter to the Directors, dated 30th September 1765

* we think the vast fortunes acquired in the inland trade have been obtained by a scene of the most tyrannic and oppressive conduct that ever was known in any age or country " Letter from the Court of Directors to Lord Clive dated May, 1766

दुशमन" कहा है और उनसे बचते रहने के उपाय दर्शाए हैं। किन्तु क्लाइव जितना स्वार्थी था उतना ही चतुर और बना हुआ भी था। उसके कई पत्रों से साबित है कि ज़रूरत पड़ने पर वह न्यायप्रेमी और सदाचारी का बाहरी वेष बना लेना भी जानता था। इसके अलावा इस समय अंगरेज़ों का व्यक्तिगत लोभ इतना बढ़ गया था कि यदि उसे परिमित न किया जाता तो कम्पनी ही का चारों ओर से दिवाला निकल जाने का डर था। यही क्लाइव के इस लम्बे पत्र के लिखे जाने का सबब था।

नमक पर महसूल

तिजारती माल पर महसूल वसूल करने का अधिकार अब कम्पनी को मिल चुका था। किन्तु कम्पनी के मुलाज़िमों के व्यापार सम्बन्धी अन्यायों को रोकने के बजाय क्लाइव ने इस बार नमक जैसे पदार्थ की तिजारत का ठेका, जो कि हर मनुष्य के जीवन के लिए आवश्यक है, कम्पनी के मुलाज़िमों को दे दिया और उस पर कम्पनी की ओर से ३५ फ़ीसदी महसूल लगा दिया, जिससे प्रजा के लिए यह अन्याय और भी कष्ट कर हो गया। ऐसे ही पान, तम्बाकू और इसी तरह की और अनेक चीज़ों की तमाम तिजारत बंगाल भर में अंगरेज़ों और उनके आदमियों के हाथों में दे दी गई। क्लाइव की यह खुली नीति थी कि नमक जैसी ज़रूरी चीज़ पर महसूल ज़्यादा और पान तम्बाकू जैसी ग़ैर ज़रूरी चीज़ों पर महसूल कम रहे और तमाम महसूल लेने वाली अंगरेज़ कम्पनी रहे।

सच यह है कि क्लाइव के जीवन का कोई भी काम ऐसा न था जिससे भारतवासी उसे कृतज्ञता के साथ याद कर सकें।

उसका व्यक्तिगत चरित्र भी अत्यन्त पतित था। कैरेकोली ने अपनी 'क्लाइव की जीवनी' में उसके पापमय कृत्यों की अनेक मिसालें दी हैं, जिन्हें इस पुस्तक मे उद्धृत करना व्यर्थ और शिष्टता के विरुद्ध होगा। कैरेकोली ने लिखा है:—

क्लाइव का व्यक्तिगत चरित्र

"बंगाल भर में यूरोपियन और हिन्दोस्तानी दोनों तरह की स्त्रियों की ऐसी अनेक मिसालें थीं, जिन्होंने नफ़रत के साथ उसके प्रेम प्रदर्शन को अस्वीकार किया और उसे संसार के सामने हास्यास्पद बना दिया।"*

इनमें से अनेक स्त्रियाँ विवाहित थीं।

सन् १७६७ मे क्लाइव ने सदा के लिए भारत छोड़ा और इंगलिस्तान में एक भारतीय 'नवाब' के ठाट से रहना शुरू कर दिया। अन्त में उसने आत्महत्या कर ली। इंगलिस्तान के अनेक सरल-विश्वासी लोगों ने उसकी आत्महत्या का सबब यह बतलाया कि अमींचन्द के साथ जालसाज़ी करके ब्रिटिश राज क़ायम करने, सिराजुद्दौला और नजमुद्दौला की हत्याएँ कराने और अपने अनेक ईसाई मित्रों की पत्नियों को बहकाकर उनके घरों का सुख नाश करने, इत्यादि पापों की याद ने क्लाइव की आत्मा को चैन से रहने न दिया।

* "There were several instances of both white and black women in Bengal who rejected his offer with disdain and exposed him to the ridicule of the world." *Life of Clive*, by Caraccioli, Vol. I.

क्लाइव के बाद वेरेल्स्ट बंगाल का गवरनर नियुक्त हुआ। वेरेल्स्ट के एक ख़त से मालूम होता है कि सम्राट शाहआलम को दिल्ली जाने से रोकने और उसे इतनी देर तक इलाहाबाद में ठहराए रखने में अंगरेज़ों का काफ़ी हाथ था। वेरेल्स्ट कम्पनी के हित में सम्राट को बंगाल लाना चाहता था, किन्तु वह चाहता यह था कि कोई ऐसी तरकीब की जावे, जिससे अंगरेज़ों को उसे बंगाल बुलाना न पड़े, बल्कि शाहआलम स्वयं उनके साथ बंगाल चलने की इच्छा प्रकट करे। अगस्त सन् १७६६ में वेरेल्स्ट की जगह कारटियर गवरनर नियुक्त हुआ। स्कॉलफ़ील्ड इस अंगरेज़ गवरनर के विषय में लिखता है:—

क्लाइव के बाद

"इस जिल्द के अधिकांश पत्र या तो बंगाल फ़ोर्ट विलियम क़िले के गवरनर के नाम भेजे गए थे या उसकी ओर से दूसरों को भेजे गए थे; किन्तु इन सब चालों और चालों के जवाब में चालों, साज़िशों और आशंकाओं के जआल में से इस गवरनर का व्यक्तित्व कुछ बहुत चमकता हुआ नज़र नहीं आता।"*

उस समय के अंगरेज़ गवरनरों के मुख्य कार्य का यह ख़ासा सार है। सन् १७७२ में कारटियर की जगह वारन् हेस्टिंग्स गवरनर

* "From the tangle of plot and counterplot, of intrigue and suspicion, *the personality of the Governor of Fort William in Bengal, to whom most of* the letters in this volume are addressed or in whose name they were issued, does not emerge with any great distinctness."—A F Scholfield in the preface to the Third Volume of *Calendar of Persian Correspondence*

नियुक्त हुआ। किन्तु क्लाइव के जाने के समय से वारन् हेस्टिंग्स की नियुक्ति के समय तक उत्तरीय भारत में कोई भी महत्त्व की राजनैतिक घटना नहीं हुई।

'सीअरुल-मुताख़रीन' में विस्तार के साथ बयान किया गया है कि किस तरह उन दिनों बंगाल के तीनों प्रान्तों में अलग अलग शितावराय, मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और जसारत ख़ाँ कम्पनी के नायबों की हैसियत से सारा काम करते थे, उनके साथ बैठकर और हर ज़िले में छोटे से छोटे देशी अफ़सरों के पास बैठकर अंगरेज़ माल के महकमें का सारा काम सीखते थे और देश के रस्म रिवाज की जानकारी प्राप्त करते थे और फिर उन्हीं से सीखकर उन्हीं पर हावी रहते थे, या उन्हें निकाल कर उनकी जगह ले लेते थे।

दो अमली द्वारा बंगाल का नाश

इस दो अमली ने तीनों प्रान्तों का सत्यानाश कर डाला। चारों ओर अराजकता थी। हर समय हर एक को जान और माल का ख़तरा था। हर तरह की तिजारत पर अंगरेज़ों का अनन्य अधिकार था। देश के समस्त उद्योग धन्धे, जिन्हें कुछ ही वर्ष पहले संसार चकित होकर देखता था, कुचल कर मटियामेट कर दिए गए थे। सोना, चाँदी, जवाहरात, रुपए और अशर्फ़ियाँ लद लद कर देश से बाहर जाने लगीं, यहाँ तक कि देश में रुपया दिखाई देना तक कठिन हो गया। बोल्ट्स नामक अंगरेज़ ने विस्तार के साथ बयान किया है कि किस प्रकार अंगरेज़ दलालों ने बंगाल की फली फूली कारीगरियों का

नाश कर डाला। * इसी अपराध के दंड में बोल्ट्स को भारत से देश निकाला दे दिया गया।

गवरनर वेरेल्स्ट के एक पत्र से मालूम होता है कि अंगरेज़ों के अधिकार से पहले बंगाल की बनी हुई चीज़ें हिन्दोस्तान के कोने कोने में और पच्छिम में ईरान और अरब की खाड़ियों और पूरब में चीन इत्यादि के समुद्रों से होकर दूर दूर के देशों में पहुँचती थीं और "हज़ारों रास्तों से धन बह बह कर" बंगाल में आता था, किन्तु अब वह सब रास्ते बन्द हो गए। यूरोप की कम्पनियाँ जो भारतीय माल हर साल जहाज़ों में भर कर अपने देशों को ले जाती थीं उस माल के बदले में एक पैसा यूरोप से भारत न आता था। इस माल की पूरी क़ीमत बंगाल ही से वसूल की जाती थी। अपना भारत के दूसरे प्रान्तों का ख़र्च यहाँ तक कि अपनी चीन की बस्तियों तक का ख़र्च अंगरेज़ बंगाल ही से वसूल करते थे। व्हीलर नामक अंगरेज़ लिखता है :—

"तीन साल के अन्दर पचास लाख पाउण्ड (पाँच करोड़ रुपए) से ऊपर का सोना चाँदी बंगाल से विदेशों को गया, जबकि क़रीब पाँच लाख पाउण्ड (पचास लाख रुपए) का सोना चाँदी बाहर से बंगाल आया। इसी समय के अन्दर एक रुपए की क़ीमत दो शिलिंग छै पेन्स हो गई।"*

---

* *Consideration of the Affairs of the East India Company* by Bolts

* "During three years the exports of bullion from Bengal exceeded five millions sterling, whilst the imports of bullion were little more than half a million. Meantime the rupee rose to an exchange value of two and six pence." *Early Records of British India* by Wheeler p. 375

'सीअरुल-मुताख़रीन' का बयान है :—

दरिद्रता, दुष्काल और महामारी

"इस समय यह देखा गया कि बंगाल में रुपया कम होता जा रहा था। × × × हर साल बेशुमार नक़दी लाद कर इंगलिस्तान भेजी जाती थी। यह एक मामूली बात थी कि हर साल पाँच छै या इससे भी अधिक अंगरेज़ बड़ी बड़ी पूँजियाँ साथ लेकर अपने वतन को लौटते हुए दिखाई देते थे। इस लिए लाखों के ऊपर लाखों चिन चिन कर इस देश से निकल गए। × × × सरकारी फ़ौज, ज़मींदारों की फ़ौजें, उम्मेदवार और उनके नौकर—सब मिलाकर कम से कम ७० या ८० हज़ार हिन्दोस्तानी सवार पहले बंगाल और बिहार के मैदानों में भरे रहते थे; और अब बगाल के अन्दर एक सवार ऐसा ही अलभ्य है, जैसा दुनिया में 'उनक़ा' पक्षी। हर ज़िले में पैदावार कम होती जा रही है और असंख्य जनता दुष्काल और महामारी से मिटती जा रही है, जिससे देश बराबर उजड़ता चला जा रहा है। नतीजा यह है कि बेहद ज़मीन बिना जोती बोई पड़ी हुई है और जो हम लोगों ने जोती है, उसकी भी पैदावार की निकासी के लिए हमें बाज़ार नहीं मिल सकता। यह बात यहाँ तक सच है कि यदि अंगरेज़ हर साल बंगाल और बिहार भर से शोरा, अफ़ीम, कच्चा रेशम और सफ़ेद कपड़े के थान न ख़रीदते होते तो शायद बहुत से हाथों में एक रुपया या अशरफ़ी वैसी ही अलभ्य हो जाती, जैसी पारस पथरी। और वह समय आने वाला है, जब बहुत से नए पैदा हुए आदमी यह न समझ सकेंगे कि लोग पहले रुपया किस चीज़ को कहा करते थे और अशरफ़ी शब्द के क्या अर्थ होते थे।"*

* *Seir ul-Mutakhrin* Vol. iii p. 32 Calcutta Reprint

दुर्भाग्य से इसी मौक़े पर बंगाल में सूखा पड़ा। फिर भी यदि कम्पनी के आदमियों की अनीति जारी न होती तो इस सूखे के होते हुए भी बंगाल में दुष्काल न पड़ सकता।

कम्पनी के सरकारी काग़ज़ों में लिखा है कि इस सूखे के दिनों में—

"कुछ एजण्टों ने चावलों की कोठियाँ भर लेने का अच्छा मौक़ा देखा। उन्होंने अपनी कोठियाँ भर लीं, वे जानते थे कि हिन्दू मर जायँगे, लेकिन मांस खाकर अपने धर्म से भ्रष्ट न होंगे। इस लिए मरने से बचने के लिए अपना सर्वस्व देकर चावल ख़रीदने के सिवा उनके पास और कोई चारा न रहेगा। देश के बाशिन्दे मर मिटे। ज़मीन उन्होंने ख़ुद जोती थी और देखा कि पैदावार दूसरों के हाथों में चली गई। उन्होंने सशंक हृदय से बीज बोया—काल पड़ा। फिर (चावल के व्यापार पर) अपना ठेका जमाए रखना (अंगरेज़ों के लिए) और अधिक आसान होगया—महामारी फैली। बाज़ ज़िलों में जीवित, किन्तु अधमरे लोग अपने बेशुमार मरे हुए रिश्तेदारों के शरीरों को बिना दफ़नाए छोड़कर चल दिए।"*

* "Some of the agents saw themselves well situated for collecting the rice into stores they did so They knew the gentoos (Hindoos) would rather die than violate the principles of their religion by eating flesh The alternative would therefore be between giving what they had or dying The inhabitants sunk, they had cultivated the land and saw the harvest at the disposal of others (planted in doubt scarcity ensued Then the monopoly was easier managed sickness ensued In some districts the languid living left the bodies of their numerous dead unburied"—*Short History of the English Transactions in the East Indies*, p 145

अन्न के काल और महामारी में घनिष्ट सम्बन्ध है। इसी समय बंगाल भर में चेचक की महामारी फैली, जिससे न बच्चा बच सका और न बूढ़ा, न पुरुष बच सके और न स्त्री, किन्तु अंगरेज़ों ने न चावल के व्यापार का ठेका अपने हाथों से छोड़ा और न मुँह माँगी क़ीमतों में कमी की।

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने १८ दिसम्बर सन् १७७१ के पत्र में स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि इस अवसर पर कम्पनी के मुलाज़िमों ने चावल और दूसरे अनाज के व्यापार पर अपना अनन्य अधिकार जमा रक्खा था, जिसके सबब से देश भर में चारों ओर अन्न का अभाव दिखाई देता था।

ख़ून के आँसू

बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सत्ता का इस प्रकार प्रारम्भ हुआ। कलकत्ते के विक्टोरिया मेमोरियल में १७वीं सदी के शुरू का बना हुआ संगमूसा का वह सुन्दर तख़्त अभी तक रक्खा है, जिस पर मुर्शिदाबाद के सूबेदार बैठा करते थे। इसी तख़्त पर बैठकर अलीवर्दी ख़ाँ और सिराजुद्दौला ने बंगाल पर शासन किया। इसी तख़्त पर प्लासी के संग्राम के बाद क्लाइव ने मीर जाफ़र को बैठाकर तीनों प्रान्तों का सूबा कह कर सलाम किया। इसी तख़्त पर बैठकर मीर क़ासिम ने बंगाल की स्वाधीनता की रक्षा के अन्तिम प्रयत्न किए।

विक्टोरिया मेमोरियल के सूची पत्र में पृष्ठ ४० पर लिखा है कि अभी तक ख़ून के से रंग की लाल बूँदें इस तख़्त के कई हिस्सों

से समय समय पर टपकती रहती है। वैज्ञानिकों की राय है कि इन लाल बूँदों के टपकने की वजह पत्थर के अन्दर की कुछ रासायनिक विशेषता है। किन्तु बंगाल में यह एक आम किम्बदन्ती है कि भारतीय नवाबी के पतन और अंगरेज़ कम्पनी की सत्ता के प्रारम्भ पर मुर्शिदाबाद का सूना और निर्जीव तख़्त अभी तक ख़ून के आँसू बहाता रहता है। जो हो, नवाबी के पतन के साथ साथ बंगाल और वहाँ की प्रजा की इस हृदय विदारक अवस्था को देखते हुए पूर्वोक्त किम्बदन्ती आश्चर्यजनक प्रतीत नहीं होती।

सातवाँ अध्याय

वारन हेस्टिंग्स

[१७७२—१७८५]

दो अमली का अन्त

सन् १७७२ ई० में वारन हेस्टिंग्स कम्पनी की ओर से कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम क़िले का गवरनर नियुक्त हुआ। वारन हेस्टिंग्स की शिक्षा बहुत ही कम थी। सन् १७५० के क़रीब वह एक मामूली क्लर्क की हैसियत से हिन्दोस्तान आया और बहुत दिनों तक चालीस रुपए मासिक पर मुर्शिदाबाद दरबार के अंगरेज़ वकील के पास काम करता रहा। मुर्शिदाबाद में रह कर वह क्लाइव की देख रेख में भारत-वासियों के रस्म रिवाज और कूट नीति के दाव पेंच सीखता रहा। धीरे धीरे वह क्लाइव से बढ़कर चतुर साबित हुआ और न्याय अन्याय या पाप पुण्य की उससे भी कम परवा करता था।

इस समय तक बंगाल के अन्दर कुछ इलाक़ा, बंगाल, बिहार और उड़ीसा तीनों प्रान्तों की दीवानी, और थोड़े थोड़े इलाक़े मद्रास और बम्बई की ओर कम्पनी को मिल चुके थे। मुर्शिदाबाद का मसनद-नशीन नवाब केवल एक अधिकार शून्य खिलौना था, और तीनों प्रान्तों का सारा शासन पटने में महाराजा शिताबराय, मुर्शिदाबाद में मोहम्मद रज़ा खाँ और उड़ीसा में जसारत खाँ इन तीन नायबों के हाथों में था, जो हर तरह अंगरेज़ों के हाथों की कठपुतली थे।

निस्सन्देह इन दोनों नायबों ने कम्पनी के ऊपर बेशुमार उपकार किए। अंगरेज़ों और शुजाउद्दौला के युद्ध के समय शिताबराय ने क़दम क़दम पर अंगरेज़ों का साथ दिया था और उसी से अंगरेज़ों का अधिकांश काम निकला।

'सीअरुल-मुताख़रीन' में लिखा है कि आए दिन कम्पनी के कर्मचारी एक न एक अंगरेज़ को शिताबराय के पास भेजते रहते थे और बिना किसी वजह यह लिख भेजते थे कि इसे इतनी रक़म दे दी जावे। शिताबराय ने इन अंगरेज़ों को देने के लिए रुपए वसूल करने के अनेक उपाय निकाल रक्खे थे, जिनमें से एक उपाय यह था कि ऐसे मौक़ों पर वह अपने ख़ास ख़ास जागीरदारों, माफ़ीदारों इत्यादि को उनके पट्टों और सनदों सहित बुलवा भेजता था; फिर इस बहाने से कि अमुक अंगरेज़ आपके काग़ज़ देखना चाहता है, उनसे काग़ज़ लेकर अपने किसी कर्मचारी को दे देता था और जब तक एक ख़ास रक़म उनसे वसूल न कर लेता था, काग़ज़ वापस न

देता। अन्त में ये रक़में जमा करके उस अंगरेज़ को दे दी जाती थीं।*

वारन हेस्टिंग्स के समय में हिन्दोस्तान के अन्दर कम्पनी का इलाक़ा नहीं बढ़ा। फिर भी वारन हेस्टिंग्स का शासन काल ब्रिटिश भारत के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता है। क्लाइव ने इस देश के अन्दर अंगरेज़ी शासन की जो बुनियाद डाली थी, वारन हेस्टिंग्स ने भारत की राज शक्तियों को और अधिक कमज़ोर करके उस बुनियाद को पक्का कर दिया।

मालूम होता है कि इस समय तक अंगरेज़ भारतीय शासन का सब कारबार सीख चुके थे। वारन हेस्टिंग्स ने सब से पहला काम यह किया कि क्लाइव की क़ायम की हुई दो-अमली का अन्त करने के लिए उसने मोहम्मद रज़ा ख़ाँ और शिताबराय दोनों नायबों पर गबन और ख़यानत के इलज़ाम लगाकर उन्हें क़ैद कर लिया। मोहम्मद रजा ख़ाँ को फँसाने के लिए वारन हेस्टिंग्स ने राजा नन्दकुमार को अपनी ओर फोड़ा। नन्दकुमार को यह लालच दिया गया कि रज़ा ख़ाँ की जगह तुम्हें बंगाल का नायब बना दिया जावेगा। इस लालच में आकर नन्दकुमार ने मोहम्मद रज़ा ख़ाँ को दोषी साबित करने में अंगरेज़ों को काफ़ी मदद दी। "सीअरुल-मुताख़रीन" में लिखा है कि महाराजा शिताबराय को भी धोखा देकर गिरफ़्तार किया गया।

कलकत्ते लाकर इन दोनों हिन्दोस्तानी शासकों के मुक़दमों को

* *Seir*, vol iii, pp 65 66, Calcutta Reprint

सुनाई हुई। राजा नन्दकुमार ने अपने बयान में लिखा है कि इन दोनों से कई कई लाख रुपए रिशवत लेकर अन्त में वारन हेस्टिंग्स ने दोनों को निर्दोष कह कर छोड़ दिया, किन्तु उन दोनों का काफ़ी अपमान किया जा चुका था। उनके अधिकार छीन कर कम्पनी को दे दिए गए। मुर्शिदाबाद के नवाब के सालाना ख़र्च की रक़म को वारन हेस्टिंग्स ने और अधिक कम कर दिया और दीवानी तथा फ़ौजदारी दोनों की सदर अदालतों को मुर्शिदाबाद से कलकत्ते हटा लिया। इस प्रकार दो-अमली का भी अब अन्त हो चला और तीनों प्रान्तों के ऊपर कम्पनी की राज्य-सत्ता और साफ़ साफ़ चमकने लगी। मुक़दमा समाप्त होने के बाद नन्दकुमार को मालूम हुआ कि मुझे बंगाल की नायबी का झूठा लालच केवल काम निकालने के लिए ही दिया गया था।

अभी तक क्लाइव के समय की सन्धि के अनुसार कम्पनी सम्राट शाहआलम को २६ लाख रुपए वार्षिक ख़िराज भेजती थी। सन् १७७१ में सम्राट शाहआलम इलाहाबाद से दिल्ली चला गया। वारन हेस्टिंग्स ने गवरनर नियुक्त होते ही सम्राट को ख़िराज भेजना बन्द कर दिया। इलाहाबाद और कड़ा का इलाक़ा क्लाइव ने शुजा-उद्दौला से सम्राट के लिए कह कर लिया था। अब हेस्टिंग्स ने यह इलाक़ा पचास लाख रुपए के बदले में फिर शुजाउद्दौला के हाथ बेच दिया। किन्तु इलाहाबाद के क़िले में सेना बराबर कम्पनी ही की रहती रही।

वारन हेस्टिंग्स के इन समस्त कार्यों को "सुधार" का नाम

दिया जाता है। इनका उद्देश था बंगाल के राज शासन से धीरे धीरे भारतीय अंश को मिटा देना।

निरपराध रुहेलों का संहार

कम्पनी के डाइरेक्टर अब वारन हेस्टिंग्स पर बार बार ज़ोर दे रहे थे कि जिस तरह हो सके अधिक से अधिक धन भारत से वसूल करके इंगलिस्तान भेजा जावे। वारन हेस्टिंग्स ने भी, लार्ड मैकॉले के शब्दों में —"चाहे ईमानदारी से हो और चाहे बेईमानी से, जिस तरह हो सके, धन बटोरने का निश्चय कर लिया।"* देश की स्थिति का उसे पूरा ज्ञान था और सूझ की भी उसमें कमी न थी।

सब से पहले वारन हेस्टिंग्स की नज़र रुहेलखण्ड की ओर गई। अवध की उत्तर-पच्छिम सरहद पर रुहेले पठानों का स्वतन्त्र राज था। इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

"एशिया भर में जिन देशों का शासन सबसे अच्छा था, उनमें से एक रुहेलखण्ड का इलाक़ा था। वहाँ की प्रजा सुरक्षित थी, उनके उद्योग धन्धों को राज की ओर से सहायता दी जाती थी और देश में बराबर खुशहाली बढ़ती जाती थी। इन उपायों द्वारा और अपने पड़ोसियों का देश विजय करने के स्थान पर यत्नपूर्वक सबके साथ मेल जोल बनाए रख कर उन लोगों ने अपनी स्वाधीनता को क़ायम रक्खा था।"†

---

* "The object of Mr Hastings diplomacy was at this time simply to get money by some means fair or foul." *Critical and Historical Essays* by Lord Macaulay, vol iii p 244

† "Their territory was one of the best governed in Asia, the people were protected, their industry encouraged, and the country flourished steadily.

अवध के नवाब के साथ रुहेलों की सन्धि हो चुकी थी, जिसका ये लोग सदा ईमानदारी के साथ पालन करते थे। अंगरेज़ों के साथ रुहेलों का कोई किसी तरह का झगड़ा न था और न "झगड़े का कोई छोटे से छोटा बहाना ही अंगरेज़ों को मिल सकता था।"* फिर भी वारन हेस्टिंग्स ने सन् १७७३ ई० में रुहेलों के विरुद्ध नवाब शुजाउद्दौला के साथ एक गुप्त सन्धि कर डाली। इस सन्धि में यह तय हो गया कि कोई मुनासिब बहाना मिलते ही कम्पनी और नवाब की सेनाएँ मिलकर रुहेलखंड पर चढ़ाई करेंगी। रुहेला जाति को "निर्मूल" † कर उनका देश शुजाउद्दौला के हवाले कर दिया जावेगा। और इस उपकार के बदले में शुजाउद्दौला चालीस लाख रुपए नक़द और युद्ध का सारा ख़र्च कम्पनी को अदा करेगा। मिल के इतिहास से मालूम होता है कि शुजाउद्दौला ने अपनी इच्छा के विरुद्ध विवश होकर इस सन्धि को स्वीकार किया। इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है कि—"१७ अप्रैल सन् १७७४ को इस ज़बरदस्त अन्याय में एक दूसरे को मदद देने वाली दोनों सेनाओं ने रुहेलखंड में प्रवेश किया। रुहेले वीर थे, किन्तु उनकी संख्या बहुत कम थी। उन्होंने रहम की प्रार्थना की, किन्तु व्यर्थ।" मजबूर होकर उन्होंने वीरता के साथ मुक़ाबला किया, किन्तु क्या हो

By these cares, and by cultivating diligently the arts of neutrality, and not by conquering from their neighbours, they provided for their independence."—Mill's *History of India*, Book v Chap 1

* "We had not the slightest pretence of quarrel with the Rohillas" Torrens' *Empire in Asia*, p 111

† "The Rohillas should be exterminated" -Warren Hastings' letters.

सकता था। अन्त में २३ अप्रैल को रामपुर की मशहूर लड़ाई में उनकी क़िस्मत का फ़ैसला हो गया। उनका नेता नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ पहाड़ों की ओर भाग गया। "एक एक आदमी जो रुहेला कहलाता था या तो अपना देश छोड़कर भाग गया या चुन चुन कर मार डाला गया।"* सारा हरा भरा देश लूट खसोट कर उजाड़ कर दिया गया। रुहेलखंड की लूट से चालीस लाख रुपए नक़द कम्पनी को मिले और दो लाख नक़द वारन हेस्टिंग्स की जेब में गए।

रामपुर और उसके आस पास का थोड़ा सा इलाक़ा बतौर जागीर नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ को वापस दे दिया गया। रुहेलखंड का बाक़ी इलाक़ा शुजाउद्दौला को मिल गया। किन्तु वीर रुहेला जाति और उसकी स्वाधीनता का सदा के लिए अन्त हो गया।

वारन हेस्टिंग्स को इनाम

इससे पहले वारन हेस्टिंग्स केवल फ़ोर्ट विलियम क़िले और बंगाल के इलाक़ों का गवरनर कहलाता था। मद्रास और बम्बई, दोनों प्रान्तों के अंगरेज़ी इलाक़ों का प्रबन्ध दो अलग गवरनरों के सुपुर्द था, जिनकी दो अलग अलग कौन्सिलें थीं। रुहेला युद्ध के अगले साल मद्रास और बम्बई के गवरनर और उनकी कौन्सिलें बंगाल

* "On the 17th April the allies in iniquity entered Rohilkhund. In vain the brave but out-numbered people sued for mercy. . . . Seldom, if ever have what are calculated the rights of victory been more inhumanly abused. Every man who bore the name of Rohilla was either put to death or forced to seek safety in exile." —Torrens' *Empire in Asia*, p. 110

के गवरनर के अधीन कर दी गई और वारन हेस्टिंग्स कम्पनी के समूचे भारतीय राज का पहला 'गवरनर-जनरल' नियुक्त हुआ।

ऊपर लिखा जा चुका है कि मोहम्मद रज़ा ख़ाँ के विरुद्ध काम निकालने के लिए वारन हेस्टिंग्स ने महाराजा नन्दकुमार से बंगाल की नायबी का झूठा वादा कर दिया था। किन्तु नन्दकुमार भी एक अर्से से अंगरेज़ों की आँखों में खटक रहा था। उस झगड़े के बाद नन्दकुमार ने एक लम्बी अर्ज़ी लिखकर कलकत्ते की कौन्सिल के सामने पेश की, जिसमें उसने वारन हेस्टिंग्स पर बंगाल के रईसों और ज़मींदारों से रिश्वतें लेने, ज़बरदस्ती धन वसूल करने, यहाँ तक कि मुर्शिदाबाद के नवाब की माँ मुन्नी बेगम से रक़में वसूल करने, लोगों को धोखा देने इत्यादि के अनेक इलज़ाम लगाए। नन्दकुमार की अर्ज़ी में ठीक ठीक रक़में और पूरे नाम और पते मौजूद थे। उसने शहादतें पेश करके अपने तमाम दावों को सच्चा साबित कर दिया।

वारन हेस्टिंग्स पर इलज़ाम

कौन्सिल के मेम्बरों ने नन्दकुमार के इलज़ामों को सच्चा स्वीकार किया।* किन्तु हेस्टिंग्स को कोई दंड न मिल सका। उसने इस बात से ही इनकार किया कि कौन्सिल को गवरनर के विरुद्ध शिकायत सुनने का अधिकार है। हेस्टिंग्स ने नन्दकुमार के इलज़ामों का जवाब देने के बजाय उलटा नन्दकमार पर अब यह जुर्म लगाया

महाराजा नन्दकुमार को फाँसी

* Minute of Council, 11th April 1775

कि पाँच साल पहले यानी सन् १७७० ई० में नन्दकुमार ने किसी काग़ज़ पर जाली दस्तख़त किए थे। सन् १७७३ ई० में कम्पनी की ओर से कलकत्ते में एक नई अदालत 'सुप्रीम कोर्ट' के नाम से क़ायम हुई थी। वारन हेस्टिंग्स का एक लड़कपन का दोस्त सर एलाइजाह इम्पे उसका चीफ़ जस्टिस था। सर एलाइजाह इम्पे के सामने महाराजा नन्दकुमार पर जालसाज़ी का मुक़दमा चलाया गया। मिल की पुस्तक और उस समय के अन्य इतिहासों से साफ़ ज़ाहिर है कि नन्दकुमार पर जालसाज़ी का इलज़ाम बिलकुल झूठा था। फिर भी कई झूठे गवाह खड़े कर दिए गए। दूसरे पक्ष की सफ़ाई के सबूत की ख़ाक परवा नहीं की गई। भारत में उस समय देशी या अंगरेज़ी कोई क़ानून भी इस तरह का न था जिससे जालसाज़ी के जुर्म में मौत की सज़ा दी जा सके। किन्तु हेस्टिंग्स के दोस्त सर एलाइजाह इम्पे ने फ़ौरन महाराजा नन्दकुमार को मुजरिम क़रार देकर हज़ारों भारतवासियों की आँखों के सामने ५ अगस्त सन् १७७६ को कलकत्ते में फाँसी पर चढ़वा दिया। मिल लिखता है कि महाराजा नन्दकुमार ने अपूर्व शान्ति और धैर्य के साथ मौत का सामना किया और अपने हज़ारों देशवासियों को फाँसी के चारों ओर ज़ार ज़ार रोता और चीख़ता छोड़कर इस दुनिया से कूच किया।

जालसाज़ी ही के ऊपर क्लाइव ने भारत के अन्दर ब्रिटिश राज की नींव रक्खी। और खुले शब्दों में उसने अपनी इस जालसाज़ी को स्वीकार किया। किन्तु उस जालसाज़ी के इनाम में क्लाइव को

"लॉर्ड" की उपाधि दी गई। उसी क्लाइव के उत्तराधिकारी के समय में एक स्वतन्त्र भारतीय शासक को जालसाज़ी के झूठे इलज़ाम में फाँसी पर लटका दिया गया!

वारन हेस्टिंग्स ३ साल गवरनर और १० साल गवरनर जनरल रहा। उसका सारा शासन काल भारतीय प्रजा और भारतीय नरेशों के साथ घोरतम अन्यायों से भरा हुआ था। मराठों और हैदरअली के साथ उसकी लड़ाइयों का ज़िक्र दूसरे अध्यायों में किया जायगा। बंगाल और उत्तरीय भारत के उसके समस्त अत्याचारों को बयान कर सकना भी इस पुस्तक में असम्भव है। इसलिए उसके उत्तरीय भारत के केवल दो और ज्वलन्त कृत्यों को यहाँ पर संक्षेप में बयान किया जाता है।

बनारस की समृद्ध रियासत

इनमें पहली घटना बनारस की है। बनारस की समृद्ध रियासत उस समय अवध के नवाब के अधीन थी, किन्तु अवध के नवाब बनारस के महाराजा से अपना मामूली वार्षिक ख़िराज वसूल कर लेने के अलावा और किसी तरह का हस्तक्षेप उस रियासत के आंतरिक शासन में न करते थे।

इतिहास लेखक टॉरेन्स लिखता है—"बनारस का महाराजा बलवन्तसिंह बड़ा अच्छा शासक था। × × × उसकी प्रजा सुखी थी और देश ख़ुशहाल था। × × × किसानों को न बेजा माँग का डर रहता था और न किसी तरह की ज़बरदस्ती का। वे अपने खेतों को बाग़ों की तरह जोतते थे और अपने अथक परिश्रम की

पैदावार पर फूलते फलते थे। उनकी संख्या पाँच लाख से ऊपर अनुमान की जाती थी।"*

किन्तु महाराजा बनारस आस पास के राजाओं में सब से अधिक धनवान मशहूर था।

सन् १७७६ में अवध के नवाब ने बनारस का इलाक़ा कम्पनी के नाम कर दिया। कम्पनी ने अपनी ओर से एक नई सनद जारी करके बलवन्तसिंह के पुत्र चेतसिंह को पिता के तमाम अधिकार दे दिए। एक अंगरेज़ रेज़ीडेन्ट बनारस के दरबार में रहने लगा और महाराजा चेतसिंह की शुमार अंगरेज़ कम्पनी के मित्रों में होने लगी।

वारन हेस्टिंग्स की महाराजा बनारस से छेड़ छाड़

अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों में लड़ाई छिड़ी। वारन हेस्टिंग्स ने महाराजा चेतसिंह को पाँच लाख रुपए सालाना ख़र्च पर अपने यहाँ तीन पलटनें रखने का हुकुम दिया। चेतसिंह की प्रजा उससे सन्तुष्ट थी। उसे इस सेना की कोई ज़रूरत न थी। पाँच लाख सालाना का ख़र्च भी उसके लिए बहुत अधिक था। उसने एतराज़ किया, किन्तु कोई सुनाई न हुई। अन्त में उसे वारन हेस्टिंग्स की आज्ञा माननी पड़ी। तारीफ़ यह कि इन पलटनों के

* "Bulwant Singh was an excellent ruler, ... his people were happy, and the country prosperous . . . . the peasantry fearless of unjust exaction or personal wrong, cultivated their fields like gardens, and throve on the fruits of their unwearied industry. Their numbers were estimated at more than half a million . . . ."—Torrens' *Empire in Asia*, p. 124

काशी नरेश राजा चेतसिह

[By the courtesy of the curator, Victoria Memorial, Calcutta]

अफ़सरों का अंगरेज़ होना और कम्पनी का उन पर अधिकार रहना ज़रूरी था।

दो साल बाद महाराजा चेतसिंह को हुकुम मिला कि इसी प्रकार एक पलटन सवारों की भी अपने यहाँ रक्खो। इस बार उसने इनकार कर दिया। वारन हेस्टिंग्स केवल बहाना ढूंढ़ रहा था। उसने फ़ौरन सेना सहित बनारस पर चढ़ाई की। चेतसिंह ने आगे बढ़ कर बक्सर में वारन हेस्टिंग्स से भेंट की और अपनी अधीनता प्रकट करने के लिए अपनी पगड़ी उतार कर वारन हेस्टिंग्स के पैरों पर रख दी। फिर भी वारन हेस्टिंग्स न रुका। उसने सीधे बनारस पहुँच कर चेतसिंह के महल को घेर लिया और रेज़िडेन्ट को आज्ञा दी कि चेतसिंह को क़ैद कर लिया जावे।

बनारस की प्रजा इस अंधेर को देख कर भड़क उठी। वहाँ के लोगों में अभी जान बाक़ी थी। वे कम्पनी की सेना पर टूट पड़े। तुरन्त तमाम अंगरेज़ सिपाही एक एक कर क़त्ल कर डाले गए। बदला लेने के लिए अब और अधिक सेना भेजी गई। ख़ूब घमासान युद्ध हुआ।

रात को चेतसिंह के कुछ नौकरों ने जब यह देखा कि बनारस का क़िला शत्रु के हाथों में पड़ने वाला है तो अपनी पगड़ियों की रस्सी बना कर उसके ज़रिए महाराजा चेतसिंह को महल की एक खिड़की से नीचे उतार दिया। गंगा के उस पार रामनगर के क़िले में चेतसिंह का मुख्य ख़ज़ाना था। चेतसिंह अपनी माता और

रानी समेत भाग कर वहाँ पहुँचा। अन्त में रामनगर का क़िला भी जीत लिया गया और चेतसिंह ने एक गृहविहीन बटोही की तरह वहाँ से भागकर ग्वालियर की रियासत में अपने शेष दिन बिताए।

बनारस की लूट और बरबादी

हेस्टिंग्स ने फ़ौरन उसकी जगह उसी कुल के एक १९ साल के लड़के को बनारस की गद्दी पर बैठा दिया। कम्पनी का ख़िराज बढ़ा कर बीस लाख रुपए सालाना कर दिया गया। नए महाराजा के अनेक अधिकार छीन कर रेज़िडेएट को दे दिए गए। शासन प्रणाली और राज कर्मचारियों में अनेक उलट फेर हुए। प्रजा पर अब नित्य नए अत्याचार होने लगे। दुखित और बे सरदार की प्रजा ने नए अमलदारों और उनके अत्याचारों के विरुद्ध बार बार विद्रोह किया और सत्याग्रह किए, किन्तु अन्त को 'जिसकी लाठी उसकी भैंस।' लूट खसोट और नई अमलदारी का नतीजा यह हुआ कि "थोड़े दिन पहले जहाँ सुख और शान्ति विराजमान थी वहाँ अब दुख और असन्तोष ने उसकी जगह ले ली।" दो साल बाद जब वारन हेस्टिंग्स फिर बनारस गया तो उसे तमाम नगर उजड़ा हुआ दिखाई दिया।* आबादी घटते घटते सन् १८२२ में केवल दो लाख रह गई।

---

* "Misery and distraction took the place which had recently been occupied by comfort and content . . two years later, when Hastings revisited the scene . . . he found it one of desolation."—Torrens' *Empire in Asia*, p 125

किन्तु इंगलिस्तान से धन की माँग बढ़ती गई। वारन हेस्टिंग्स की व्यक्तिगत धन पिपासा भी बनारस की लूट से शान्त न हो सकी। बनारस से लौटते ही उसने अवध की ओर दृष्टि डाली। बनारस का हाल हमने इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मेम्बर इतिहास लेखक टॉरेन्स की पुस्तक "इम्पायर इन एशिया" से लिया है। अवध की कहीं अधिक दुखमय कहानी भी ठीक टॉरेन्स ही के शब्दों में नीचे बयान की जाती है। अनेक बार ही कम्पनी की ओर से बड़ी बड़ी रक़में बिना किसी कारण अवध के नवाब से माँगी जा चुकी थीं और जबरन् वसूल की जा चुकी थी, किन्तु इस बार—

अवध की बेगमों पर अत्याचार

"नवाब आसफ़ुद्दौला ने अपनी निर्धनता की बिना पर माफ़ी चाही और इस निर्धनता का एक कारण यह बताया कि मुझे अपने यहाँ की 'सबसीडीयरी' सेना के ख़र्च के लिए एक बड़ी रक़म हर साल कम्पनी को देनी पड़ती है। निस्सन्देह यह कारण सच्चा था। इसके बाद इस डर से कि कहीं (बनारस की तरह) गवरनर जनरल लखनऊ न आ धमके, आसफ़ुद्दौला स्वयं हेस्टिंग्स से मिलने और अपनी स्थिति समझाने के लिए आगे बढ़ा। चुनार के क़िले के अन्दर दोनों में बातचीत हुई। वहाँ एक ऐसी याद रखने योग्य तदबीर निकाली गई, जिससे कलकत्ते का ख़ज़ाना भर जावे और लखनऊ का ख़ज़ाना ख़ाली भी न करना पड़े। लॉर्ड मैकॉले ने लिखा है—'तदबीर केवल यह थी कि गवरनर जनरल और नवाब वज़ीर दोनों मिलकर एक तीसरे शख़्स को लूटें, और जिस तीसरे शख़्स को लूटने का उन्होंने निश्चय किया, वह इन दोनों लूटने वालों में से एक की माँ थी।' समझा जाता था कि

नवाब शुजाउद्दौला मरते समय अपनी माँ और अपनी विधवा बेगम दोनों को बड़े बड़े ख़ज़ाने दे गया है। फ़ैज़ाबाद के महल भी वह उन्हीं के नाम कर गया था, और ये दोनों बेगमें अपने अनेक सम्बन्धियों, बाँदियों और नौकरों के साथ अपने इन्हीं प्यारे महलों मे रहती थीं। इस धूर्तता की राय देने वाला माननीय गवरनर जनरल था। आसफ़ुद्दौला सुनकर शर्म से काँप उठा। × × × अन्त को × × × सौदा पक्का हो गया और दोनों अलग अलग अपनी अपनी ओर से इस दग़ाबाज़ी की ज़ाब्तापूरी में लग गए। तय हुआ कि × × × फ़ैज़ाबाद मे रहने वाली कुम्हलाई हुई औरतों के सर यह इलज़ाम मढ़ा जावे कि तुम अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ चेतसिंह के साथ साज़िश कर रही हो। यदि किसी तरह यह साज़िश साबित की जा सके तो फिर बेगमों को हर तरह का दण्ड देना या उनके धन की ज़ब्ती जायज़ ठहराई जा सकेगी; इसलिए साबित करना ज़रूरी था और साबित भी बाज़ाब्ता तरीक़े से करना। जब लोगों को पता चला कि अंगरेज़ क्या चाहते हैं, तो झूठे गवाह खड़े हो गए × × × बेगमों की तरफ़ से न कोई जवाबदेही करने वाला था और न कोई वकालत करने वाला × × ×। अब पेश्तर इसके कि बेगमों के महल के फाटकों को तोड़कर अंगरेज़ी सेना भीतर घुस सके, केवल एक कठिनाई और बाक़ी थी—लोकाचार और शिष्टता के एक रेशमी बन्धन को तोड़ना ज़रूरी था। वह बन्धन यह था कि शुजाउद्दौला मरते समय अपने इन सम्बन्धियों को अंगरेज़ सरकार की ख़ास संरक्षता मे छोड़ गया था, और गो कि अब स्थिति बदल चुकी थी, किन्तु उस समय अंगरेज़ सरकार ने यह ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली थी। × × × सर एलाइजाह इम्पे पहले भी कई ऐसी कठिनाइयों के मौक़े पर काम दे चुका था। इस संकट के समय

वह फिर वारन हेस्टिंग्स का दोस्त साबित हुआ। × × × अपनी पालकी में बैठकर ग़ैर ईसाई कहारों की डॉक लगवाकर उनके कन्धों पर सर एलाइजाह इम्पे कलकत्ते से लखनऊ रवाना हुआ; × × × एक माननीय वाइसराय की आज्ञा पर उस वाइसराय को डकैती में मदद देने के लिए ईसाई चीफ़ जस्टिस को पूरी तेज़ी के साथ अपने कन्धों पर ले जाने में ग़ैर-ईसाई हिन्दुओं का उपयोग किया गया। रूहानी अन्धकार में डूबी हुई जनता को यूरोपियन व्यवहार और यूरोपियन सदाचार की श्रेष्ठता का इससे बढ़कर और क्या सुबूत मिल सकता था? अवध की राजधानी में पहुँच कर चीफ़ जस्टिस ने बहुत से हलफ़नामे लिए, जिनमें बेगमों पर यह इलज़ाम लगाया गया कि वे चेतसिंह के न्याय्य मालिकों यानी कम्पनी के विरुद्ध उस फ़रज़ी साज़िश में चेतसिंह से मिली हुई थीं। सर एलाइजाह ने न हलफ़नामे पढ़े, न किसी से पढ़वाकर सुने। वे एक ऐसी ज़बान में थे जिसे इम्पे समझता तक न था और न उसके पास इतना समय था कि किसी दूसरे से तरजुमा करवाने का इन्तज़ार करता। एशिया के अन्दर इंगलिस्तान के प्रधान न्यायाधीश की हैसियत से उसने हलफ़नामे लिए और 'अपने उच्च अधिकार के इस घृणित दुरुपयोग' को पूरा कर फिर पालकी में बैठ कलकत्ते लौट आया। × × × फ़ैज़ाबाद के महलों को अंगरेज़ी सेना ने घेर लिया। बेगमों से कहा गया कि आप क़ैदी हैं और अपने तमाम ज़ेवर, सोना, चाँदी और जवाहरात दे दीजिए। जब बेगमों ने इनकार किया तो महल की शरीफ़ औरतों को भूखों मारा गया और उनके नौकरों को बड़ी बड़ी यातनाएँ दी गईं। बेगमें जब इन लोगों के रोने चीख़ने की आवाज़ों को न सह सकीं तो उन्होंने पिटारों पर पिटारे और ख़ज़ानों पर ख़ज़ाने देना शुरू किया, यहाँ तक कि कुल लूट की क़ीमत का

अन्दाज़ा एक करोड़ बीस लाख किया गया। जब तक यह रक़म पूरी न हुई तब तक उन अभागे नौकरों और बाँदियों को रिहा न किया गया। उस भयंकर काण्ड का यह सब केवल एक ढाँचा है। जिन जिन बातों से इस चित्र (ढाँचे) में सच्चे रंग भरे जा सकते हैं उन सब पर आज विस्मृति (काल) ने परदा डाल दिया है, जो अब किसी तरह हटाया नहीं जा सकता।"*

* Asafuddoula pleaded poverty and named, with some truth, that amongst its causes was the annual contribution he was obliged to pay for the maintenance of the subsidiary force. Dreading a visit from the Viceroy he went to meet him and at the fortress of Chunar the negotiations took place which resulted in the memorable device for replenishing the exchequer of Calcutta without exhausting that of Lucknow. 'It was,' says Lord Macaulay, 'simply this, that the Governor-General and the Nawab-Vizier should join to rob a third party, and the third party whom they determined to rob was the parent of one of the robbers.' The mother and the widow of the late Vizier were supposed to have derived under his will vast treasures. They dwelt with a numerous retinue at the favourite palace of Fyzabad, which he had bequeathed to them. Asafuddoula shrank in shame from the villainy suggested by his Right Honourable Accomplice. The confederates having ratified the bargain parted and each went his way to prepare the formalities of fraud. A conspiracy to aid Chait Singh in his resistance to intolerable exaction was to be imputed to the withered women who dwelt at Fyzabad. If such a breach of friendship could be proved, it would justify any penalty or forfeiture; therefore it must be proved and proved in a regular respectable way. When it was known what was wanted false witnesses rose up against the undefended Princesses of Oudh no advocate. Still there was a difficulty; a silken cord of conventional decency had to be snapped before the palace gates of the Begums could be forced open by English troops. The dying Vizier had placed these members of his family under the special protection of the British Government, and for reasons apparently good at the time, but good no longer, that Government had accepted the trust. Not for the first time Sir Elijah Impey proved

इसके बाद टॉरेन्स बयान करता है कि किस प्रकार इन समस्त अत्याचारों ने, अवध के नवाब पर कम्पनी की आए दिन की माँगों ने, और वहाँ के राजशासन में अंगरेज़ों के नित्य हस्तक्षेप ने मिलकर आसफ़ुद्दौला को मिटा डाला, अवध निवासियों की हिम्मतों को कुचल कर ख़ाक कर दिया और उत्तरीय भारत के उस हरे भरे बाग़ को थोड़े ही दिनों में इधर से उधर तक वीरान कर डाला।

himself to be a friend in need ... Sir Elijah got into palanquin, and posted to Lucknow, by relays of pagan bearers—for were not pagans made to bear Christian Chief Justice on their shoulders, when at full speed to aid in the Commission of robbery at the command of a Right Honourable Viceroy? What could more clearly prove to a soul-darkened population the superiority of European manners and morals? Arrived in the capital of Oudh, the Chief Justice took a number of affidavits which accused the Begum of complicity with Chait Singh in his supposed conspiracy against his lawful masters the Company. Sir Elijah did not read the affidavits, or hear them read. They were in a dialect he did not understand, and he had not time to wait for an interpreter. So he took them as Chief Magistrate of England in the East, and this "scandalous prostitution of his high authority" being completed he got into his palanquin again, and returned to Calcutta ... The farce concluded, tragic scenes began. The palace of Fyzabad was surrounded by English troops. The princesses were told that they were captives, and required to deliver up their gold and jewels. On their refusal their ladies were subjected to semi-starvation and their servants to torture. Unable to endure their groans and tears, the Begums gave up casket after casket, and store after store, until the sum of spoil was reckoned at £s 12,00,000. Then and not till then, their wretched menials were let go. Such are the bare outlines of the dreadful tale. Over all that could furnish forth the true coloring of the picture, the veil of oblivion has fallen, and it can not now be raised ... Asafuddoula ... lost influence and power ... the desolation that overspread the country, ..."—Torren's *Empire in Asia*, pp 126-128

भारत से हेस्टिंग्स की कमाई

उन दिनों कम्पनी के प्रायः सब अंगरेज़ मुलाज़िम कम्पनी के लाभ के साथ साथ अपने व्यक्तिगत लाभ का भी ख़ासा ख़याल रखते थे। वारन हेस्टिंग्स को भी अपनी हर राजनैतिक चाल में इस बात का पूरा पूरा विचार रहता था। नज़रानों और रिशवतों का बाज़ार चारों ओर गरम था। इतिहास लेखक जे० टालबॉयज़ व्हीलर लिखता है :—

"हेस्टिंग्स ने क़बूल किया कि उसने सन् १७८२ में आसफ़ुद्दौला से १० लाख रुपए लिए। इससे अनुमान होता है कि सन् १७७३ में उसने इतनी ही रक़म शुजाउद्दौला से लेकर चुपके से जेब में डाल ली थी। जिन कर्मचारियों को कुछ भी राजनैतिक तजरुबा है, उन्हें इसमें कोई शक नहीं हो सकता कि यदि इससे पहले आसफ़ुद्दौला के बाप शुजाउद्दौला ने इतनी ही रक़म हेस्टिंग्स को न दी होती और हेस्टिंग्स ने मंज़ूर न कर ली होती तो आसफ़ुद्दौला हरगिज़ दस लाख रुपए हेस्टिंग्स की नज़र न करता।"*

कलकत्ता कौन्सिल की ११ अप्रैल सन् १७७५ की कारवाई की रिपोर्ट में दर्ज है कि अपनी गवरनरी के केवल पहले तीन साल के अन्दर वारन हेस्टिंग्स इन ज़रियों से "चालीस लाख रुपए से

* "Hastings acknowledged to having taken a hundred thousand pounds from Asafuddoula in 1782 The inference follows that in 1773 he received a like sum from Shujauddoula and silently pocketed the money Officers of any political experiences would be satisfied that Asafuddoula would never have offered the hundred thousad pounds to Hastings, unless a like sum had been previously offered by his father, Shujauddoula, and accepted by Hastings"—J Talboys Wheeler in his *Short History of India, etc*

ऊपर" कमा चुका था। वास्तव में हेस्टिंग्स के ख़िलाफ़ नन्दकुमार की शिकायतें झूठी न थीं। हमें यह भी याद रखना चाहिये कि डेढ़ सौ साल पहले भारत के अन्दर चालीस लाख रुपए की उतनी क़ीमत थी जितनी आज आठ करोड़ की, और 'चालीस लाख' के आदमी उन दिनों इंगलिस्तान में इतने ही कम थे जितने आठ करोड़ के आज दिन भारत में।

कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा देश व्यापी लूट

वारन हेस्टिंग्स जिस तरह रिशवतें लेता था उसी तरह देता और दिलवाता भी था। उसके अनेक छोटे और बड़े काले और गोरे दलाल कम्पनी की अमलदारी भर में तमाम महकमों के अन्दर फैले हुए थे, जो देशी नरेशों और भारतीय प्रजा दोनों को तरह तरह से लूटते थे और उन पर तरह तरह के अत्याचार करते थे।

कोलब्रुक नामक अंगरेज़ ने २८ जुलाई सन् १७८८ को एक पत्र भारत से इंगलिस्तान अपने पिता के नाम भेजा, जिसमें उसने लिखा :—

"मिस्टर हेस्टिंग्स ने इस देश को ऐसे कलक्टरों और जजों से भर दिया है, जिनके सामने एक मात्र लक्ष्य धन कमाना है। ज्योंही ये गिद्ध मुल्क के ऊपर छोड़े गए, उन्होंने कहीं कोई बहाना निकाल कर और कहीं बिना किसी बहाने के देशवासियों को लूटना शुरू कर दिया। × × × जज लोग मुक़द्दमे का फ़ैसला उसके हक़ में करते हैं जो उन्हें सबसे ज़्यादा रुपए देता है। और चोर निर्विघ्न डाके डालने के बदले में बाज़ाब्ता सालियाना अदा करते हैं।"

आगे चलकर कोलब्रुक लिखता है :—

गोरखपुर के अत्याचार

"वारन हेस्टिंग्स की कूटनीति और उसके निर्लज्ज विश्वासघात का प्रभाव केवल राजाओं और बड़े लोगों पर ही नहीं पड़ा। ज़मींदारों की ज़मींदारियाँ छीन लेना, बेगमों को लूटना, रुहेलों को निर्वंश कर डालना, ये सब भूले जा सकते हैं, किन्तु जो अत्याचार उसने गोरखपुर में किए वे सदा के लिए ब्रिटिश जाति के नाम पर एक कलङ्क रहेंगे।"*

गोरखपुर के इन अत्याचारों के विषय में जेम्स मिल लिखता है कि सन् १७७८ में वारन हेस्टिंग्स ने अपने एक अफ़सर करनल हैनेवे को कम्पनी की नौकरी से निकाल कर अवध के नवाब के यहाँ भेज दिया। नवाब पर ज़ोर देकर बहराइच और गोरखपुर के ज़िलों का दीवानी और फ़ौजी शासन करनल हैनेवे को दिलवा दिया गया। मिल लिखता है कि—"यह तमाम इलाक़ा नवाब के शासन में ख़ूब ख़ुशहाल था, किन्तु करनल हैनेवे के अत्याचारों के कारण तीन साल के अन्दर यह तमाम इलाक़ा वीरान हो गया।"

* "It was Mr Hastings who filled the country with collectors and Judges who adopted *one pursuit — a fortune*. These harpies were *no sooner* let loose upon the country, than they plundered the inhabitants with or without pretences. . . . Justice was dealt out to the highest bidders by the Judges, and thieves paid a regular revenue to rob with impunity.

"Nor did his crooked politics and shameless breach of faith affect none but the princes and great men; the deposition of zemindars, the plundering of Begums, the extermination of the Rohillas may be forgotten, but the *cruelties acted in Gorukhpore will for ever be quoted to the dishonor of the* British name."—Colebrooke in a private letter to his father, dated 28th July, 1788.

लिखा है कि—"हैनेवे ने कोई लगान नियत न कर रक्खा था, बल्कि जिस समय जिस ज़मींदार या रय्यत से जितना चाहता था, अपने कलक्टरों द्वारा वसूल कर लेता था। इलाके भर के अन्दर जो लोग अदा करने में असमर्थ होते थे उन्हें आम तौर पर क़ैद और कोड़ों की सज़ा दी जाती थी। लोग अपने घर बार और गाँव छोड़ छोड़ कर निकल गए। बहुतों को इतना दिक़ किया गया कि उन्हें अपने बच्चे तक बेच देने पड़े।"*

मिल लिखता है कि कम्पनी का एक मुलाज़िम कप्तान एडवर्ड्स सन् १७८० में इस इलाक़े को देखने के लिए गया। उसने देखा कि देश के बहुत कम हिस्से में खेती की गई थी, आबादी बहुत कम रह गई थी और जो इने गिने आदमी उस इलाक़े में रह गए थे वे अत्यन्त दुखी दिखाई देते थे। मिल यह भी लिखता है कि जिस समय करनल हैनेवे ने नवाब के यहाँ जाकर नौकरी की, उस समय हैनेवे के ज़िम्मे क़र्ज़ा था, किन्तु तीन साल के अन्दर क़र्ज़ा अदा करने के बाद उसके पास क़रीब ४५,००,००० रुपए नक़द मौजूद थे।

नवाब ने इन अत्याचारों की ख़बर सुनकर सन् १७८१ में

* ... the country, from every flourishing state ... had been reduced to misery and desolation, that taxes were levied, not according to any fixed rule, but according to the pleasure of the Collector, that imprisonments and scourgings for enforcing payment, were common in every part of the country, that emigrations of the people were frequent and that many of them were so distressed as to be under the necessity of selling their children." —Mill, Book v, Chapter 8

करनल हैनेवे को बरख़ास्त कर दिया। इसके बाद जब नवाब को मालूम हुआ कि हेस्टिंग्स फिर करनल हैनेवे को मेरे सिर मढ़ने की तजवीज़ कर रहा है तो नवाब ने हेस्टिंग्स को लिख दिया कि—"मैं हज़रत मोहम्मद की क़सम खाता हूँ कि यदि आपने मेरे यहाँ किसी काम पर भी करनल हैनेवे को नियुक्त किया तो मैं सलतनत छोड़कर निकल जाऊँगा।"*

दुर्भाग्यवश उस समय के कम्पनी के शासन का कोई सच्चा और विस्तृत इतिहास किसी भारतवासी के हाथ का लिखा हुआ मौजूद नहीं है।

लगान का बढ़ाया जाना

अब हम फिर कोलब्रुक के पत्र की ओर आते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि कम्पनी ही इस समय सारे बंगाल, बिहार और उड़ीसा की प्रजा से लगान वसूल करती थी। यह लगान जिस हिसाब से वसूल किया जाता था, उसके विषय में कोलब्रुक लिखता है :—

"जिस पद्धति के अनुसार इस देश के अन्दर अंगरेज़ी इलाक़ों का शासन किया जा रहा है उससे प्रजा की ख़ुशहाली पर बुरा असर पड़ा है। × × × नमक और अफ़ीम के ठेकों का या उन तरीक़ों का जिनसे कम्पनी की तिजारती पूँजी जमा की जाती है ज़िक्र छोड़कर, मैं केवल ज़मीन के लगान का ज़िक्र करता हूँ। ज़मीन का लगान जहाँ तक बढ़ाया जा सकता था, बढ़ा दिया गया है। मुग़ल सरकार के अधीन कोई ज़मींदार अपनी ज़मींदारी की

* Mill, Book v Chapter 8

आमदनी का आधा भी सरकार को न देता था और छोटी ज़मींदारियों से तो इससे भी कहीं कम लिया जाता था। इसके अलावा ज़मींदारों को कुछ रक़म बतौर पेनशन के अपने हिसाब में जमा कर लेने की इजाज़त थी, या उसकी जगह उन्हें कुछ ज़मीनें माफ़ी में मिल जाती थीं। इसके विपरीत कम्पनी के अधीन ज़मींदार के पास अपने यहाँ की आमदनी का केवल दस फ़ी सदी रहने दिया जाता है। × × × प्रजा के साथ जिस तरह का बर्ताव किया जा रहा है, उससे वे सदा याद रक्खेंगे कि कभी किसी भी विजेता ने अपनी किसी पराजित जाति के कन्धों पर इससे भारी जुआ नहीं रक्खा।"*

वारन हेस्टिंग्स के अत्याचारों की अनेक संगीन शिकायतें इंगलिस्तान को पार्लिमेण्ट के कुछ मेम्बरों के पास पहुँचीं। पार्लिमेण्ट में कुछ न्यायप्रेमी मेम्बर भी मौजूद थे। इनकी ओर से पार्लिमेण्ट के सामने वारन हेस्टिंग्स पर रिशवतख़ोरी और अनेक अन्य घोर अन्यायों के

वारन हेस्टिंग्स पर मुक़दमा

* "The system upon which the British dominions have been governed in the East, has affected the happiness of the people not to mention monopolies of salt and opium, or the principles upon which the Company's investment has been provided, I may confine myself to the stretching the land rents to the utmost sum they can produce A proprietor of an estate under the Mogul Government seldom paid half of the produce of his estate, and in small properties much less, he was further allowed to take credit for a certain sum by way of pension or held rent-free lands in lieu there of Under the Company, a landholder is allowed ten per cent of net produce as his share

"The treatment of the people has been such as will make them remember the yoke as the heaviest that ever conquerors put upon the necks of conquered nations"– Colebrooke in the above letter

विषय में मुक़दमा चलाया गया। सुप्रसिद्ध विद्वान एडमण्ड बर्क ने अपनी अमर वक्तृताओं में कम्पनी और वारन हेस्टिंग्स के उन दिनों के कलुषित कृत्यों की खूब पोल खोली। इन वक्तृताओं का पढ़ना ब्रिटिश भारतीय इतिहास के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक है। सात साल तक मुक़दमा चलता रहा, किन्तु वास्तव में इंगलिस्तान के सामने प्रश्न न्याय अन्याय का न था। प्रश्न था अंगरेज़ क़ौम के हित और अंगरेज़ क़ौम के राज का। वारन हेस्टिंग्स ने जो कुछ किया था, अपनी क़ौम के हित के लिए और भारत में अंगरेज़ी राज को मज़बूत करने के लिए किया था। इसलिए अन्त में ब्रिटिश पार्लिमेण्ट ने उसे सब इलज़ामों से साफ़ बरी कर दिया।

इस तमाम मुक़दमे में वारन हेस्टिंग्स के क़रीब १० लाख रुपए ख़र्च हुए, जो निस्सन्देह उसकी भारत की कमाई का केवल एक हिस्सा था। कम्पनी के मालिकों ने फ़ौरन हरजाने के तौर पर आइन्दा २८ साल तक के लिए चालीस हज़ार रुपए सालाना वारन हेस्टिंग्स को देने का वादा किया, जिसमें से अधिकांश उन्होंने उसी समय पेशगी अदा कर दिया। हेस्टिंग्स इससे कई गुना अधिक कम्पनी को लाभ पहुँचा चुका था।

सर एलाइजाह इम्पे पर भी "रिशवतें लेने, अन्याय करने, झूठी गवाहियाँ बनाने, झूठे हलफ़नामे तसदीक़ करने"* इत्यादि का

* "Gross corruption, positive injustice, ... intentional violation of the Acts under which he held his powers ... having suborned evidence and given to falsehood the sanctity of an affidavit."—Impeachment of Sir Elijah Impey, December 12th, 1787

मुक़दमा चलाया गया। किन्तु अन्त में इंगलिस्तान के शासकों ने यह कहकर कि "उसके जुर्मों का केवल प्रगट हो जाना ही काफ़ी है" उसे साफ़ छोड़ दिया।

भारत में अंगरेज़ी राज की जड़ें इस प्रकार पक्की की गईं।

आठवाँ अध्याय

पहला मराठा युद्ध

मराठा मण्डल

छत्रपति शिवाजी की मृत्यु के क़रीब ७५ साल के अन्दर १८वीं सदी के मध्य में मराठों की सत्ता अपनी शिखर को पहुँच चुकी थी। मुग़ल साम्राज्य उस समय अत्यन्त जर्जर हालत में था और दो सौ साल से ऊपर के उस पुराने साम्राज्य के खंडहरों में से उत्पन्न होकर मराठों का साम्राज्य एक बार समस्त भारत पर फैलता हुआ मालूम होता था। स्वयं दिल्ली और दिल्ली का सम्राट दोनों मराठों के हाथों में थे। रघुनाथ राव की मराठा सेना राजधानी से आगे बढ़ कर लाहौर विजय कर चुकी थी और पराजित अफ़ग़ान सेना को अटक के पार भगा कर पंजाब का सूबा मराठा साम्राज्य में शामिल कर चुकी थी।

बालाजी बाजीराव पेशवा की मसनद पर था। शिवाजी के

छत्रपति शिवाजी

From an old painting in the Bibliotheque Nationale, Paris
Rise of the Christian Power in India

अयोग्य वंशज सतारा के क़िले के अन्दर पेशवा की सेना की हिफ़ाज़त में अभी तक अपनी नाम मात्र की गद्दी क़ायम रक्खे हुए थे। किन्तु सारा शासन प्रबन्ध पेशवा के योग्य और प्रबल हाथों में था। पेशवा के अलावा मराठा साम्राज्य के चार मुख्य स्तम्भ यानी 'महाराष्ट्र मण्डल' के चार मुख्य सदस्य, सींधिया, होलकर, गायकवाड़ और भोंसला थे। ये चारों चार बड़े बड़े राज्यों के स्वतंत्र शासक थे, किन्तु सब पेशवा को अपना अधिराज मानते थे। उसे बराबर ख़िराज देते थे और हर लड़ाई में आज्ञा मिलने पर अपनी सेनाओं सहित पेशवा की सहायता के लिए हाज़िर हो जाते थे। पहले पेशवा बालाजी विश्वनाथ ने दिल्ली सम्राट फ़र्रुख़सीयर के दरबार में हाज़िर होकर प्रसिद्ध देशहितैषी भाइयों सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसेनअली की मदद से सम्राट से मराठा राज के लिए 'स्वराज' का परवाना हासिल किया। सम्राट ने फ़रमान जारी कर दिया कि इस मराठा 'स्वराज' के अलावा दक्खिन के सूबेदार के बाक़ी तमाम इलाक़ों पर भी मराठों को 'चौथ' मिला करे। पेशवा ने सम्राट की वफ़ादारी की क़सम खाई और अपनी सेना द्वारा साम्राज्य की रक्षा करते रहने का वादा किया। वास्तव में यह 'चौथ' इसी उद्देश से दी गई थी कि उससे पेशवा मुग़ल साम्राज्य के तमाम दक्खिनी इलाक़े की हिफ़ाजत के लिए सेना रख सके। इसके बाद हर पेशवा और उसके मातहत समस्त मराठा नरेश कम से कम नाम के लिए दिल्ली के सम्राट को सारे भारत का सम्राट और अपना महाराजाधिराज मानते थे। रघुनाथ राव ने दिल्ली सम्राट ही के नाम पर

अफ़ग़ानों से पंजाब विजय किया और जिस मराठा सरदार को वहाँ की हुकूमत सौंपी उसे 'दिल्ली' सम्राट का एक सूबेदार कहकर नियुक्त किया। फिर भी दिल्ली दरबार की निर्बलता के सबब मराठों की उस समय की सत्ता वास्तव में स्वाधीन सत्ता थी। और पेशवा ही हिन्दोस्तान के उत्तर से दक्खिन और पूरब से पच्छिम तक यानी अटक से करनाटक और बंगाल की सरहद से खम्भात की खाड़ी तक फैले हुए इस विशाल मराठा साम्राज्य का क्रियात्मक सम्राट था।

मराठा साम्राज्य की अवनति

किन्तु यह मराठा साम्राज्य चन्द रोज़ भी अपने पूरे वैभव को क़ायम न रख सका। मालूम होता है कि साम्राज्य के साथ ही साथ मराठा सरदारों में एक दूसरे से ईर्षा और प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी। वे श्रीहीन किन्तु निरपराध और राष्ट्रोपयोगी दिल्ली सम्राट को भी तख़्त से उतार कर उसकी जगह लेने के चक्कर मे पड़ गए। उनमें से कुछ अपने या अपने कुलों के लाभ के लिए अपने देशवासियों, यहाँ तक कि स्वयं पेशवा के ख़िलाफ़ विदेशियों से मेल करने में भी न झिझके। एक पिछले अध्याय में लिखा जा चुका है कि इस तरह के भीतरी दोषों के कारण ही मराठों की सत्ता को पहला धक्का सन् १७६१ में पहुँचा, जबकि पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में अहमदशाह अब्दाली की सेना ने मराठों की संयुक्त सेना को हरा कर उन्हें उत्तरीय भारत से सदा के लिए निकाल बाहर किया। उसी समय से दिल्ली के सम्राट पर से मराठों का प्रभाव उठ गया और उस

समय से ही धीरे धीरे गायकवाड़, भोंसला, होलकर और सींधिया एक एक कर पेशवा की अधीनता से अपने तईं स्वाधीन समझने लगे।

पानीपत के कुछ सप्ताह बाद बालाजी बाजीराव की मृत्यु हो गई। बालाजी का नाबालिग़ बेटा माधाराव पेशवा की मसनद पर बैठा और माधोराव का चाचा रघुनाथ राव, जिसे इतिहास में अधिकतर राघोबा कहा जाता है और जिसकी सेना ने अफ़ग़ानों से पंजाब विजय किया था, अपने भतीजे पेशवा का संरक्षक नियुक्त हुआ। राघोबा अत्यन्त वीर, किन्तु अदूरदर्शी था। वह महत्वाकांक्षी भी था और महत्वाकांक्षा ने उसकी नीतिज्ञता पर और भी परदा डाल दिया था। इसीलिए जब अंगरेज़ों ने अपने मतलब के लिए मराठों की सत्ता को नष्ट करने का विचार किया, तो राघोबा आसानी से उनके हाथों में खेल गया।

कम्पनी की सत्ता उन दिनों भारत में बढ़ती जा रही थी। मराठों जैसी प्रबल भारतीय शक्ति के अस्तित्व को अंगरेज़ अपनी उन्नति के लिए हितकर न समझ सकते थे। एक न एक दिन इन दोनों शक्तियों का एक दूसरे से टकरा जाना अनिवार्य था।

दक्खिन में कम्पनी की नीति

प्रसिद्ध इतिहास लेखक ग्राण्ट डफ़ लिखता है कि उस समय—

"कम्पनी के डाइरेक्टर इस बात के लिए इच्छुक थे कि मराठों की बढ़ती हुई सत्ता को किसी तरह धक्का पहुँचे, और यदि देश की दूसरी शक्तियाँ

मिलकर मराठों पर हमला करतीं तो यह देखकर उन्हें बहुत बड़ा सन्तोष होता ।"*

इसी इच्छा को पूरा करने के लिए अंगरेज़ों ने राघोबा को बहकाना शुरू किया कि दक्खिन का सूबेदार निज़ामुलमुल्क मराठों पर हमला करने वाला है ।

राघोबा की अदूरदर्शिता से पेशवा माधोराव और बम्बई के अंगरेज़ गवर्नर इन दोनों के बीच यह सन्धि हो गई कि यदि निज़ाम मराठों पर हमला करे, तो अंगरेज़ सेना और सामान से मराठों की मदद करेंगे और इस मदद के बदले में पच्छिमी तट पर साष्टी (Salsette) का टापू और बसई (Bassein) का क़िला दोनों पेशवा की ओर से अंगरेज़ों को दे दिए जावेंगे ।

न निज़ाम ने मराठों पर हमला किया, न मराठों को अंगरेज़ों की मदद की ज़रूरत हुई, और न साष्टी और बसई उस समय अंगरेज़ों के हवाले किए गए, फिर भी इस सन्धि के समय से ही अंगरेज़ों की पेशवा दरबार के अन्दर पहुँच हो गई । उन्हें मराठों की भीतरी कमज़ोरियों का पता लगने लगा और मराठा साम्राज्य के अन्दर अपनी साज़िशों के फैलाने का मौक़ा मिलने लगा ।

दक्खिनी भारत के सम्बन्ध में इस समय कम्पनी की नीति के तीन मुख्य पहलू थे, दूसरे शब्दों में उनकी तीन मुख्य इच्छाएँ थीं,

* "The Court of Directors, were desirous of seeing the Marhattas checked in their progress, and would have beheld combinations of the other native powers against them with abundant satisfaction."—*History of the Marhattas* by Grant Duff

जो डाइरेक्टरों और गवरनर जनरल के पत्रों से बिलकुल साफ़ हैं—

(१) अंगरेज़ जानते थे कि यदि दक्खिन की तीन मुख्य शक्तियाँ निज़ाम, हैदरअली और पेशवा आपस में मिल गईं तो दक्खिनी भारत से अंगरेज़ों के अस्तित्व को आसानी से मिटा देंगी, इसलिए जिस तरह हो इन तीनों को एक दूसरे से लड़ाए रखना ज़रूरी था।

(२) इनमें मराठे सब से अधिक महत्वाकांक्षी और साम्राज्य-प्रेमी थे। इसलिए उन्हें घरेलू झगड़ों में इस तरह फँसाए रखना ज़रूरी था कि जिससे बंगाल और उत्तरीय भारत के अन्दर अंगरेज़ों के बढ़ते हुए प्रभाव में हस्तक्षेप करने का उन्हें अवकाश न मिल सके।

(३) भारत के पच्छिमी तट पर आहिस्ता आहिस्ता अपने पैर फैलाने के लिए साष्टी का टापू, बसई का इलाक़ा और कुछ थोड़ा सा गुजरात प्रान्त का भाग कम्पनी को अपने अधीन कर लेना ज़रूरी था।

साष्टी और बसई पर अंगरेज़ों के दांत

कम्पनी के डाइरेक्टरों ने बम्बई के गवरनर और वहाँ की कौंसिल के नाम १८ मार्च सन् १७६८ के एक पत्र में लिखा कि—"हम आप से जितने ज़ोर के साथ हो सकता है उतने ज़ोर के साथ सिफ़ारिश करते हैं कि आपको जब जब मौक़ा मिल सके, आप इन स्थानों (साष्टी और बसई) को प्राप्त करने के

यत्न करते रहें। इसमें हम अपना बहुत बड़ा लाभ समझते हैं।"*
इसके बाद ३१ मार्च सन् १७६९ के डाइरेक्टरों के पत्र में फिर यह वाक्य आता है—"साष्टी और बसई और उनके साथ के इलाके, सूरत प्रान्त का मराठा भाग × × × ये चीज़ें हैं, जिन्हें आपको अपनी तमाम सन्धियों में, पत्र व्यवहार में और लड़ाइयों में अपनी नज़र के सामने रखना चाहिए, जिन्हें प्राप्त करने के लिए हमेशा मौके की ताक में रहना चाहिए।"†

इतिहास लेखक मिल लिखता है कि—"इसी मनोरथ को अधिक लगन के साथ सिद्ध करने और पेशवा माधोराव से बातचीत करने के लिए डाइरेक्टरों ने हिदायतें देकर मिस्टर मॉस्टिन को भारत भेजा।"‡

सन् १७७२ में डाइरेक्टरों का विशेष दूत मॉस्टिन भारत पहुँचा

---

* "We recommend to you, in the strongest manner to use your endeavours, upon every occasion that may offer to obtain these places which we should esteem a valuable acquisition." Director's letter to the President and Council of Bombay, dated 18th March, 1768.

† "Salsette and Bassein, with their dependencies, and the Marhattas portion of the Surat Provinces . . . These are the objects you are to have in view, in all treaties, negotiations, and military operations,—and that you must be ever watchful, to obtain." Directors' letter, dated 31st March 1769.

‡ "In more earnest prosecution of the same design, Mr Mostyn arrived from England, in 1772, with instructions from the Court of Directors, that he should be sent immediately to negotiate with Madho Rao the Peshwa for the cession of the island and peninsula of Salsette and Bassein."
—Mill, vol iii pp 423, 24

और तुरन्त उसे बम्बई की कौन्सिल का वकील बनाकर पेशवा के दरबार में भेज दिया गया।

मराठों, हैदर और निज़ाम में फूट डालने के प्रयत्न

इतिहास लेखक ग्राण्ट डफ़ स्पष्ट शब्दों में लिखता है—"बम्बई की गवरमेण्ट ने मि० मॉस्टिन को इस उद्देश से पूना भेजा कि वह × × × मराठों को घर ही घर में एक दूसरे से लड़ा कर या जिस तरीक़े से हो सके इस बात की कोशिश करे कि मराठे हैदर के साथ या निज़ाम के साथ मिलने न पावें।"*

गंगा के उत्तर में कुछ इलाक़ों पर उस समय तक मराठों का क़ब्ज़ा हो चुका था और मिल के इतिहास से पता चलता है कि सन् १७७३ में यदि आपसी घरेलू झगड़े मराठों को बाहर जाने से न रोकते, तो वे इलाहाबाद, कड़ा, अवध और रुहेलखण्ड पर हमला करने वाले थे।†

इस तरह कम्पनी की उस समय की नीति के तीनों पहलू महत्व पूर्ण और साफ़ थे।

मॉस्टिन ने पूना पहुँच कर बड़ी होशियारी के साथ अपना काम शुरू किया। स्वार्थान्ध राघोबा से उसे इस काम में पूरी मदद मिली। किन्तु पेशवा दरबार में उस समय एक और दूरदर्शी नीतिज्ञ मौजूद था,

नाना फ़ड़नवीस की दूरदर्शिता

* "Mr Mostyn was sent to Poona by the Bombay Government, for the purpose of using every endeavour, by fomenting domestic dissensions or otherwise, to prevent the Marhattas from joining Hyder or Nizam Ally"—Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 340

† Mill's *History of British India*, p 221

जो राघोबा की स्वार्थपरता और अंगरेज़ों की चालों दोनों को ख़ूब समझता था। यह नीतिज्ञ सुप्रसिद्ध नाना फड़नवीस था। सन् १८५० में नाना की मृत्यु के बरसों बाद उसकी योग्यता को स्वीकार करते हुए जे० सलीवन नामक अंगरेज़ ने करनल ब्रिग्स के नाम एक पत्र में लिखा कि—"नाना फड़नवीस और उस जैसे आदमी हमें दीजिये। उस योग्यता के भारतवासियों के मुक़ाबले में भारत के शासकों की हैसियत से हम अत्यन्त तुच्छ और बौने मालूम होते हैं !!!"*

इतिहास लेखक टॉरेन्स अंगरेज़ों की ओर नाना फड़नवीस की नीति के विषय में लिखता है :—

नाना फ़डनवीस और अंगरेज़

"नाना फ़डनवीस अंगरेज़ों के प्रति आदर प्रकट करता था, उनकी तारीफ़ करता था, किन्तु उनके राजनैतिक आलिङ्गन से पीछे हटता था और चाहे कोई कैसी भी आपत्ति क्यों न सामने खड़ी हो, वह अंगरेज़ों से स्थायी सैनिक सहायता स्वीकार करने से सदा इनकार करता रहा।"†

नाना की यह नीति ही उस समय के भारतीय शासकों के लिए एक मात्र कुशल नीति हो सकती थी। इसीलिए राघोबा और अंगरेज़ों के बीच जो सन्धि हो चुकी थी, नाना फड़नवीस उसके ख़िलाफ़ था। पेशवा माधोराव भी नाना के प्रभाव में था। ऐसी

* "Give us Nana Fadnavis and such like What poor pigmies we are as Indian Administrators when compared with natives of that stamp !!!" J Sullivan's letter to colonel Briggs 1850

† Torrens *Empire in Asia*, p 221

सूरत में मॉस्टिन की चालें कुछ दिनों तक न चल सकीं। इतिहास लेखक मिल लिखता है कि थोड़े दिनों की बातचीत के बाद मॉस्टिन ने देख लिया कि साष्टी और बसई इतनी आसानी से न मिल सकेंगे।

अंगरेज़ दूत मॉस्टिन की करतूतें

फिर भी मॉस्टिन के प्रयत्न जारी रहे। सब से पहले उसने राघोबा और नाना फ़ड़नवीस को एक दूसरे से फोड़ने की कोशिश की। पेशवा माधोराव बालिग़ हो गया था। तब भी राघोबा मॉस्टिन के कहने में आकर उसे नाना के प्रभाव से हटाकर अपने प्रभाव में रखने की चेष्टा करता रहा। धीरे धीरे माधोराव और राघोबा में अनबन इतनी बढ़ गई कि एक बार माधोराव ने विवश होकर अपने चचा राघोबा को क़ैद कर दिया। शीघ्र ही राघोबा फिर छोड़ दिया गया। इतने में १८ नवम्बर सन् १७७२ को २८ साल की अल्प आयु में माधो राव की मृत्यु हो गई। माधोराव की मृत्यु मराठा साम्राज्य के लिए बड़े दुर्भाग्य की घटना थी। इस नौजवान पेशवा की मौत का ज़िक्र करते हुए ग्राण्ट डफ़ लिखता है :—

"दूर दूर तक फैले हुए मराठा साम्राज्य के उस वृक्ष को, जिसे कुछ हानि पहले ही पहुँच चुकी थी, जो जड़ नीचे से रस पहुँचाती थी वह तने से कटकर अलग हो गई। उस साम्राज्य का पानीपत के मैदान से भी इतना धक्का न पहुँचा था जितना इस सुयोग्य शासक की अकाल मृत्यु से पहुंचा। माधोराव युद्ध विद्या में तो अत्यन्त चतुर था ही, नरेश की हैसियत

से भी उसका चरित्र उसके पूर्वाधिकारियों से कहीं अधिक प्रशंसा और आदर के योग्य था।"*

पेशवा माधोराव की अचानक मृत्यु के सम्बन्ध में कम्पनी के दूत मॉस्टिन पर सन्देह होना, ख़ास कर मॉस्टिन की अन्य करतूतों को देखते हुए, बिलकुल स्वाभाविक है; किन्तु इन गुप्त पापों का ठीक भेद इतने समय के बाद खुल सकना अत्यन्त कठिन है।

माधोराव के कोई बच्चा न था। मरने से पहले उसने अपने भाई नारायनराव को पेशवा की मसनद के लिए नियुक्त कर दिया और अपने चचा राघोबा से प्रार्थना की कि आप नारायनराव की रक्षा और सहायता कीजियेगा।

पेशवा नारायनराव की हत्या

राघोबा के लिए अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने और मॉस्टिन के लिए राघोबा द्वारा अपने मालिकों की इच्छा को सफल बनाने, दोनों का अब ख़ासा सुन्दर अवसर था। ३० अगस्त सन् १७७३ को राघोबा ने अपने भतीजे नारायनराव पेशवा को मरवा डाला। मॉस्टिन ने बड़े उल्लास के साथ बम्बई की अंगरेज़ कौन्सिल को इस घटना की सूचना दी।

नारायनराव की हत्या का भेद उसी समय पूरी तरह खुल गया। जिन आदमियों ने नारायनराव को मारा वे राघोबा के आदमी थे। पूछ ताछ होने पर राघोबा ने बयान किया कि जो मराठी पत्र मैंने

* Grant Duff's *History of the Mahrattas*, p 352

पेशवा नारायण राव

[चित्रशाला प्रेस पूना की कृपा द्वारा]

अपने उन आदमियों के नाम भेजा था, जिन्होंने नारायनराव को क़त्ल किया, उसमें शब्द 'धरावे' था जिसका अर्थ 'पकड़ना' है और मेरा मतलब केवल नारायनराव को गिरफ़ार कराने का था, किन्तु बाद में बीच ही में किसी ने कहीं पर 'धरावे' शब्द को बदल कर 'मारावे' कर दिया। इसमें भी कोई सन्देह नहीं हो सकता कि इस हत्याकांड में मॉस्टिन का पूरा हाथ था। सर हेनरी लारेन्स लिखता है—"बाद में राघोबा ने नारायनराव को मार डाला × × × और अंगरेज़ सरकार ने उसका साथ दिया। अंगरेज़ों के भारतीय इतिहास का यह एक अत्यन्त पापमय अध्याय है।"*

उधर बम्बई की कौन्सिल ने नारायनराव की मृत्यु का समाचार पाकर इस मौक़े को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए ग़नीमत समझा। ३० अगस्त को पूना में पेशवा नारायनराव की हत्या हुई और १७ सितम्बर को बम्बई की कौन्सिल ने मॉस्टिन को पत्र लिखा कि—"इस अवसर पर साष्टी और बसई प्राप्त करने में जितनी चीज़ें हमें मदद दे सकें, उन्हें तुम ख़ूब परिश्रम के साथ बढ़ाना और चाहे कुछ भी क्यों न हो, पूना छोड़ कर कहीं न जाना।"†

नारायनराव की मृत्यु के बाद राघोबा ने अपने आपको पेशवा

---

* "Ragoba afterwards murdered Narain Rao and was supported by the British Government A very evil chapter in Anglo Indian History "—*Calcutta Review*, vol ii, p 430

† ' to improve diligently every circumstance favourable to the accomplishment of that event (the possession of Salsette and Bassein) and on no account whatever to leave the Marhatta Capital" Mill vol iii, p 425

पलान कर दिया। मॉस्टिन और उसके साथियों ने राघोबा को पेशवा बनने में पूरी सहायता दी। पेशवा नारायनराव के स्वभाव की प्रशंसा करते हुए ग्रॉन्ट डफ़ अन्त में लिखता है कि—"सिवाय उसके शत्रुओं के बाक़ी सब उससे प्रेम करते थे।"* किन्तु अंगरेज़ों ने अब नारायनराव की ख़ूब बुराई और राघोबा की तारीफ़ें करनी शुरू कर दीं।

विद्रोही राघोबा और अंगरेज़

पूना के अधिकांश दरबारी और वहाँ की प्रजा सब राघोबा के विरुद्ध थे। राघोबा हर तरह से मॉस्टिन के हाथों की कठपुतली था। मॉस्टिन ने अब उसे समझा बुझाकर निज़ाम और हैदरअली के साथ उसका बाज़ाब्ता युद्ध छिड़वा दिया और इस युद्ध के लिए उसे सेना सहित पूना से रवाना कर दिया। किन्तु इस लड़ाई में राघोबा को सिवाय कष्ट और अपमान के और कुछ न मिला।

नाना फड़नवीस और उसके साथियों ने, जो अच्छी तरह देख रहे थे कि राघोबा विदेशियों के हाथों में खेल कर मराठा साम्राज्य की जड़ें खोखली कर रहा है, राघोबा की इस ग़ैर मौजूदगी में अपना बल और बढ़ा लिया, यहाँ तक कि राघोबा को पूना लौटने का साहस न हो सका। वह जान बचा कर गुजरात की ओर भाग गया।

इसी बीच पूना में १८ अप्रैल सन् १७७४ को पेशवा नारायनराव

---

* ... all but his enemies loved him" Grant Duff, *History of the Marhattas*

पेशवा नारायण राव की हत्या

चित्रकार—म० द० धुरन्धर

पेशवा नारायण राव ने घबरा कर अपने चचा राघोबा की शरण ली। राघोबा भीतर से इस षड्यन्त्र में शामिल था। नारायण राव के एक मात्र विश्वस्त अनुचर ने अपने स्वामी के शरीर से चिपट कर अपने टुकड़े टुकड़े करवा दिये। इसके बाद नारायण राव अपने चचा की गोद में मार डाला गया।

[द० ब० पारसनीस कृत "इतिहास संग्रह"]

पेशवा नारायनराव की हत्या

[चित्रकार—म० व० धुरन्धर]

की विधवा स्त्री के, जो अपने पति की हत्या के समय गर्भवती थी, एक पुत्र हुआ। पूना दरबार ने एक मत से इस बालक के पेशवा नियुक्त होने का एलान कर दिया। प्रजा ने मसनद नशीनी की खुशियाँ मनाईं।

पूना मे दूसरे पेशवा की नियुक्ति

किन्तु अंगरेज़ों का हित राघोबा ही को पेशवा बनाने में था। उन्होंने राघोबा को अपने पास सूरत बुलवा लिया। सूरत में ६ मार्च सन् १७७५ को राघोबा और अंगरेज़ों में एक सन्धि हो गई, जिसमें राघोबा ने साष्टी, बसई और सूरत प्रान्त का एक भाग कम्पनी के नाम लिख दिया और बम्बई की अंगरेज़ कौन्सिल ने इसके बदले में राघोबा को कम्पनी की सेना सहित पूना भेजने और पेशवा की मसनद पर बैठाने का वादा किया। यह नाजायज़ सन्धि ही पहले मराठा युद्ध की जड़ थी।

पहले मराठा युद्ध की जड़

करनल कीटिंग के अधीन कम्पनी की सेना और राघोबा की सेना दोनों मिल कर राघोबा को ज़बरदस्ती पेशवा की मसनद पर बैठाने की ग़रज़ से पूना की ओर बढ़ीं। उधर पूना दरबार ने सेनापति हरिपन्त फड़के के अधीन एक सेना राघोबा की बग़ावत को दमन करने के लिए गुजरात की ओर रवाना कर दी। १८ मई सन् १७७५ को आरस नामक स्थान पर दोनों ओर की सेनाओं में घमासान संग्राम हुआ, जिसमें राघोबा और उसके मददगारों की हार हुई। अंगरेज़ों की बहुत सी सेना और अनेक अंगरेज़ अफ़सर मारे गए।

अंगरेज़ों की पहली हार

किन्तु बरसात सर पर थी, इसलिए बाग़ियों का पीछा करके उनका सर्वनाश किए बिना ही हरिपन्त फड़के को अपनी सेना सहित पूना लौट आना पड़ा।

नतीजा यह हुआ कि राघोवा और अंगरेज़ों को गुजरात में अपनी साज़िशों के पक्का करने का अब और अच्छा मौका मिला।

अंगरेज़ों और गायकवाड में सन्धि

भारतीय नरेशों की आपसी ईर्षा की वजह से इस तरह की साज़िशों के लिए मैदान उन दिनों भारत के प्रायः हर प्रान्त में मिल सकता था। सन् १७६८ में गुजरात के अन्दर महाराजा दमनाजी गायकवाड़ की मृत्यु हुई। तीन रानियों से उसके चार बेटे थे—सयाजी, गोविन्दराव, मानिकजी और फ़तहसिंह। कई साल से सयाजी और गोविन्दराव में गद्दी के लिए लड़ाइयाँ हो रही थीं। फ़तहसिंह चारों में सबसे चलता हुआ और सयाजी के पक्ष में था।

करनल कीटिङ्ग जब राघोवा की सहायता के लिए सेना लेकर बम्बई से गुजरात आया, उसने गोविन्दराव के विरुद्ध सयाजी के साथ सन्धि करने की कोशिश की। २२ अप्रैल सन् १७७५ को उसका एक दूत लैफ़्टिनेन्ट जॉर्ज लवीबॉण्ड बातचीत के लिए फ़तहसिंह के पास पहुँचा। नौजवान फ़तहसिंह ने अंगरेज़ों के साथ सन्धि करने से इनकार कर दिया और तिरस्कार के साथ लवीबॉण्ड को अपने यहाँ से निकाल दिया।

बम्बई की कौन्सिल ने जब यह समाचार सुना तो फ़ौरन अपने खुर्राट दूत मॉस्टिन को कीटिङ्ग की मदद के लिए पूना से गुजरात

भेजा। इस समय तक फड़के की विजयी सेना पूना वापस पहुँच चुकी थी। मॉस्टिन अब पूना से गुजरात चला आया और वहाँ पर उसने अपनी चालों का जाल बिछाना शुरू किया। अन्त में अंगरेज़ों और फ़तहसिंह गायकवाड़ के बीच सन्धि हो गई।

इस सन्धि के अनुसार भड़ोच, चिखली, वड़ियाव और कोरल के तीनों परगने, जिनकी आमदनी कई लाख रुपए सालाना थी, बिना किसी तरह की लड़ाई के कम्पनी को मिल गए और सयाजी राव गायकवाड़ अंगरेज़ों की मदद से बड़ोदा की गद्दी पर बैठ गया। गायकवाड़ का राज कुल अभी तक पेशवा को अपना अधिराज मानता था, किन्तु अब से वह सदा के लिए मराठा मण्डल से फूट कर अलग हो गया और गुजरात में अंगरेज़ों के पैर जम गए।

सूरत की सन्धि के अनुसार अंगरेज़ों ने साष्टी और बसई दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया। किन्तु सूरत की सन्धि को पेशवा सरकार ने स्वीकार न किया था और बाग़ी राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने का निष्फल प्रयत्न कर अंगरेज़ पूना सरकार को अपना दुशमन बना चुके थे।

अंगरेज़ों के सामने उस समय वास्तव में एक कठिन समस्या थी। राघोबा के पेशवा बन सकने की सम्भावना बहुत ही कम थी और बाग़ी राघोबा को मदद देने के बाद पूना सरकार से बातचीत करने का उन्हें अब कोई मुंह न था। उनके गुप्तचर मॉस्टिन का अब फिर पूना में घुस सकना तक नामुमकिन मालूम होता था।

वारन हेस्टिंग्स को इस समय एक ख़ासी अच्छी तरकीब सूझी। उसने सीधे कलकत्ते से अपने एक विशेष दूत करनल अपटन को पूना दरबार के पास भेजा और यह रुख़ लिया कि बम्बई की कौन्सिल ने राघोबा के साथ जो सन्धि की है और उसे जो कुछ मदद दी है, वह मेरी मरज़ी के ख़िलाफ़ और मेरी इजाज़त के बिना दी गई है, इसलिए वह सन्धि नाजायज़ है और अंगरेज़ सरकार न बाग़ी राघोबा का साथ देना चाहती है और न पेशवा सरकार से लड़ना चाहती है।

वारन हेस्टिंग्स की दोरुख़ी चालें

वारन हेस्टिंग्स ने बम्बई सरकार को हुकुम दिया कि पेशवा दरबार से युद्ध फ़ौरन बन्द किया जावे और करनल कीटिङ्ग और उसकी सेना को वापस बुला लिया जावे। बम्बई सरकार ने आज्ञा पाते ही कीटिङ्ग और उसकी रही सही सेना को सूरत वापस बुला लिया। पेशवा दरबार के मन्त्री उस समय पुरन्धर में थे, इसलिए करनल अपटन २८ दिसम्बर सन् १७७५ को पुरन्धर पहुँचा।

सखाराम बापू उस समय पेशवा का प्रधान मन्त्री था। करनल अपटन के पूना जाने का उद्देश ज़ाहिरा यह था कि बम्बई कौन्सिल के समस्त कार्यों को नाजायज़ बताकर उनके लिए कम्पनी की ओर से दुख प्रदर्शित करे और पेशवा दरबार के साथ कम्पनी की मित्रता और वफ़ादारी प्रकट करे। किन्तु करनल अपटन के पास वारन हेस्टिंग्स के दस्तख़ती दोहरे पत्र मौजूद थे। एक सखाराम बापू के नाम जिसका आशय ऊपर दिया जा चुका है और दूसरा बाग़ी

राघोबा के नाम, जिसमें वारन हेस्टिंग्स ने राघोबा के प्रति मित्रता प्रकट करते हुए बम्बई कौन्सिल की समस्त काररवाई का समर्थन किया। अपटन को हिदायत कर दी गई थी कि यह दूसरा पत्र केवल उस सूरत में उपयोग करना, जब कि इस बीच किसी सबब से राघोबा के पक्ष की जीत हो चुकी हो। साथ ही हेस्टिंग्स ने जो पत्र सखाराम बापू के नाम भेजा, उसमें भी अपनी मित्रता प्रकट करते हुए पेशवा दरबार से प्रार्थना की कि साष्टी और बसई अंगरेज़ों ही के पास रहने दिए जायँ।

मराठों का सन्देह

पेशवा दरबार के मन्त्री, जिनमें सखाराम बापू और नाना फ़ड़नवीस जैसे नीतिज्ञ मौजूद थे, मामले को ख़ूब समझते थे। करनल अपटन ने वारन हेस्टिंग्स के नाम २ फ़रवरी सन् १७७६ के पत्र में लिखा—

"वे मुझसे हज़ार बार पूछते हैं कि 'आप बराबर इतनी वफ़ादारी की क़समें क्यों खाते हैं? बम्बई गवरमेण्ट की छेड़ी हुई लड़ाई को तो आप लोग बुरा कहते हैं और उस लड़ाई द्वारा जो इलाक़े आपको मिल गए हैं उन्हें अपने पास रखने के लिए इतने इच्छुक हैं, यह सब मामला क्या है?'"*

पेशवा दरबार ने इस बात पर ज़िद की कि अंगरेज़ फ़ौरन साष्टी और बसई ख़ाली कर दें। मजबूर होकर अपटन ने ७ फ़रवरी

* 'They ask me a thousand times, why we make such professions of honor? How disapprove the war entered into by the Bombay Government, when we are so desirous of availing ourselves of the advantages of it?"
Colonel Upton to warren Hastings, 2nd Feb 1776

सन् १७७६ को वारन हेस्टिंग्स को लिख दिया कि—"पूना दरबार हमारी शर्तों पर राज़ी नहीं होता।"

हेस्टिंग्स की युद्ध की तय्यारी

वारन हेस्टिंग्स ने जब देख लिया कि सुलह से काम नहीं चल सकता, तो अपटन के पूना रहते हुए फ़ौरन एक बहुत बड़े पैमाने पर जंग की तैयारियाँ शुरू कर दीं। कलकत्ते और मद्रास दोनों स्थानों पर पूना भेजने के लिए सेनाएँ जमा की जाने लगीं। भौंसले, सींधिया और होलकर, तीनों को हेस्टिंग्स ने अपनी ओर फोड़ने की कोशिशें शुरू कीं। हैदरअली और निज़ाम से भी उसने गुप्त पत्र व्यवहार शुरू किया, और यह कोशिश की कि यदि हैदरअली और निज़ाम पेशवा दरबार के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों को मदद न भी दें तो कम से कम तटस्थ रहें।

पूना दरबार को इन सब बातों की ख़बर मिलती रही। इतिहास से पता नहीं चलता कि और कौन कौन सी बातें थीं, जिनसे डर कर या मजबूर होकर अन्त में नाना फ़ड़नवीस जैसे नीतिज्ञों ने अपने विचार बदल दिए। करनल अपटन जिस समय निराश होकर पुरन्धर से बंगाल लौटने को तैयार हुआ, कहा जाता है कि पेशवा के मन्त्रियों ने उसे रोक लिया।

पुरन्धर की सन्धि

३ जून सन् १७७६ को पुरन्धर में पेशवा दरबार और कम्पनी के दरमियान एक नई सन्धि हुई, जिसमें सूरत वाली नाजायज़ सन्धि को रद्द क़रार दिया गया, अंगरेज़ों ने वादा किया कि हम फिर कभी राघोबा को

सहायता न देंगे, बसई का क़िला पूना दरबार को लौटा देंगे और इस दरबार के साथ सदा मित्रता क़ायम रक्खेंगे। पूना दरबार ने राघोबा के गुज़ारे के लिए प्रबन्ध कर दिया और "दोस्ताना क़ायम रखने के लिए" कम्पनी को साष्टी का टापू, भड़ोच शहर की मालगुज़ारी और उसके आस पास तीन लाख रुपए सालाना का इलाक़ा बतौर जागीर दे दिया। यह भी तय हुआ कि कम्पनी का एक वकील पेशवा के दरबार में रहा करे। पूना दरबार को निस्सन्देह यह आशा थी कि इस उदारता के बाद हम इन विदेशी व्यापारियों के साथ अमन से रह सकेंगे, किन्तु उनकी यह आशा झूठी निकली। पूना के चतुर ब्राह्मण भी कूट नीति में इन विदेशियों से टक्कर न ले सके। वास्तव में दोनों के नैतिक आदर्शों में बहुत बड़ा अन्तर था। ज्योंही कम्पनी के डाइरेक्टरों को इस नई सन्धि को सूचना मिली, उन्होंने फ़ौरन वारन हेस्टिंग्स को लिखा:—

"हम चाहते हैं कि राघोबा के साथ जो सन्धि हुई थी, उसके अनुसार कम्पनी को जितना इलाक़ा मिला था, उस सबको हर हालत में अपने क़ब्ज़े में रक्खा जावे और हम आपको आज्ञा देते हैं कि जो उपाय उसे क़ायम रखने और उसकी रक्षा करने के लिए ज़रूरी हों, आप तुरन्त कर डालें।"[*]

बम्बई कौंसिल, कलकत्ता कौंसिल और कम्पनी के डाइरेक्टर,

---

* "We approve under every circumstance of the keeping of all the territories and possessions ceded to the Company by the treaty concluded with Ragheba, and direct that you forthwith adopt such measures as may be necessary for their preservation and defence." Court of Directors to the Government of Bengal, Mill, p. 436

इन तीनों में इस सम्बन्ध में जो पत्र व्यवहार हुआ उससे इतिहास लेखक मिल ने डाइरेक्टरों के कपट और लालच को अच्छी तरह प्रकट किया है। डाइरेक्टरों ने इन पत्रों में स्पष्ट लिखा कि बसई जैसे महत्वपूर्ण इलाक़े को छोड़ देना मूर्खता है। अपनी मद्रास कौन्सिल को युद्ध के लिए तैयार रहने और समय पड़ने पर वारन हेस्टिंग्स की मदद करने की आज्ञा दी। भारत के तमाम अंगरेज़ अधिकारियों को साफ़ हिदायत की कि आप लोग राघोबा का साथ न छोड़ें और जिस बहाने हो सके, पुरन्धर की सन्धि को तोड़ कर या मराठों को उकसाकर उनकी ओर से तुड़वाकर, राघोबा को फिर सामने कर दें, इत्यादि।

कम्पनी के डाइरेक्टरों का कपट

वारन हेस्टिंग्स और उसके तमाम मातहतों के लिए ये हिदायतें काफ़ी थीं।

पुरन्धर की सन्धि हो चुकी थी। उस पर बाज़ाब्ता कम्पनी की मोहर लग चुकी थी। फिर भी अंगरेज़ों ने उस सन्धि की शर्तों को पूरा करने में टाल मटोल शुरू की। न उन्होंने राघोबा का साथ छोड़ा और न बसई का क़िला ख़ाली किया। करनल अपटन सन्धि करके कलकत्ते लौट गया और जब उस सन्धि के अनुसार कम्पनी के एक वकील को पूना भेजने का मौक़ा आया तो फिर वही प्रसिद्ध *अंगरेज़ दूत मॉस्टिन बम्बई से पूना भेजा गया।*

सन्धि को तोड़ने की कोशिशें

पेशवा दरबार के नीतिज्ञ मॉस्टिन और उसके कृत्यों से अच्छी

तरह परिचित थे। वे जानते थे कि मॉस्टिन ही अंगरेज़ों और मराठों के बीच की सारी आपत्तियों की जड़ है। उन्होंने मॉस्टिन जैसे आदमी के फिर अपने दरबार में भेजे जाने पर एतराज़ किया, किन्तु कम्पनी के अधिकारियों ने उनकी एक न सुनी और मार्च सन् १७७७ में मॉस्टिन कम्पनी के वकील की हैसियत से पूना पहुँच गया।

अंगरेज़ दूत मास्टिन का पूना दरबार में फूट डलवाना

मॉस्टिन ने इस बार अपने गुप्त कुचक्रों द्वारा धीरे धीरे पेशवा दरबार के एक और मन्त्री मोरोबा को अपनी ओर फोड़ लिया। उसने मोरोबा को नाना फ़ड़नवीस से लड़ा दिया और नाना फ़ड़नवीस तथा प्रधान मन्त्री सखाराम बापू में भी फूट डलवा दी। ये झगड़े यहाँ तक बढ़े कि दरबार के अन्दर नाना की जगह मोरोबा को मिल गई और नाना कुछ दिनों के लिए दरबार के कार्य से उदासीन होकर पुरन्धर चला गया। नाना की ग़ैर हाज़िरी में मोरोबा ने मॉस्टिन के कहने पर बम्बई की कौन्सिल को यह गुप्त पत्र लिख भेजा कि आप फ़ौरन राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए फिर से पूना ले आइए। बम्बई कौन्सिल ने, जो केवल एक सहारा ढूंढ रही थी, पुरन्धर की सन्धि के विरुद्ध फ़ौरन तैयारियाँ शुरू कर दीं। वारन हेस्टिंग्स ने भी ख़बर पाते ही बम्बई की कौन्सिल की मदद के लिए एक बहुत बड़ी सेना बंगाल से पूना भेजे जाने की आज्ञा दे दी।

करनल अपटन और उस समय के अन्य अंगरेज़ों के बयानों से साफ़ ज़ाहिर है कि पूना दरबार सच्चाई के साथ पुरन्धर की

सन्धि पर क़ायम रहना चाहता था; किन्तु वारन हेस्टिंग्स और उसके साथियों को इंगलिस्तान से विश्वासघात करने की आज्ञा मिल चुकी थी।

कम्पनी की सेनाएँ अभी पूना के लिए रवाना भी न हो पाई थीं कि पूना मन्त्रिमण्डल के फिर से बदलने की ख़बर कलकत्ते पहुँची। मालूम होता है कि अंगरेज़ों के नाम मोरोबा के पत्र का हाल किसी प्रकार खुल गया। मोरोबा अहमदनगर के क़िले में क़ैद कर दिया गया। नाना फ़ड़नवीस अब पेशवा का प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ। सखाराम बापू बहुत बूढ़ा था, वह अब दरबार के कामों से अलग रहता था, उसमें और नाना में फिर से प्रेम हो गया। पूना दरबार में कोई भी अब हत्यारे राघोबा के पक्ष में न था। किन्तु कम्पनी की दुरंगी नीति जारी रही। एक ओर मॉस्टिन पूना दरबार में रह कर नाना फ़ड़नवीस और उसके साथियों को यह विश्वास दिलाता रहा कि अंगरेज़ पुरन्धर की सन्धि पर क़ायम रहना चाहते हैं और शीघ्र उसकी सब शर्तों को पूरा कर देंगे, और दूसरी ओर वारन हेस्टिंग्स पुरन्धर की इस सन्धि के ख़िलाफ़ राघोबा को पेशवा बनाने के लिए बम्बई, मद्रास और कलकत्ते से सेनाएँ भेजने की ज़बरदस्त तैयारियाँ करता रहा।

कलकत्ते से अंगरेज़ी सेना का कूच

वारन हेस्टिंग्स ने जो सेना कलकत्ते में तैयार की वह मई सन् १७७८ में करनल लेसली के अधीन बंगाल से चली। इस सेना को भोंसले, होलकर, सींधिया इत्यादि कई भारतीय नरेशों के इलाक़ों से होकर

गुज़रना था। इनमें से भोंसले, होलकर और सींधिया तीनों महाराष्ट्र मण्डल के सदस्य थे। यदि इन नरेशों को अंगरेज़ी सेना का असली उद्देश मालूम होता तो उस सेना का पूना तक पहुँच सकना असम्भव होता। इसलिए वारन हेस्टिंग्स ने इन तीनों को धोखे में रखने के लिए उनके साथ गुप्त पत्र व्यवहार शुरू कर दिया।

सबसे पहले उसने इन सब नरेशों पर यह ज़ाहिर किया कि फ्रान्स की सेना भारत के पच्छिमी तट पर हमला करने वाली है और बंगाल से कम्पनी की सेना केवल फ्रान्सीसियों से अपने इलाक़े की हिफ़ाज़त करने के लिए भेजी जा रही है, उसका उद्देश किसी भारतीय नरेश से युद्ध करना नहीं है। इसके अलावा बरार के राजा मूदाजी भोंसले के साथ उसने एक और ख़ासी सुन्दर चाल चली। हाल ही में सतारा के राजा की मृत्यु हो चुकी थी, उसके कोई औलाद न थी। भोंसले कुल की उत्पत्ति शिवाजी के वंश से थी। वारन हेस्टिंग्स ने मूदाजी भोंसले को उकसाया कि आप सतारा की गद्दी पर अपना हक़ जमाइए, कम्पनी आपकी मदद करेगी। वारन हेस्टिंग्स का मतलब यह था कि सतारा की अधिकार शून्य गद्दी पर एक प्रबल नरेश को बैठाकर पेशवा दरबार के अधिकारों को तोड़ दिया जावे, मराठा मण्डल में फूट डाल दी जावे और फिर मूदाजी को अवध के नवाब वज़ीर की तरह अपने हाथों में रक्खा जावे।

इस काम के लिए एक अंगरेज़ दूत एलयॉट को बरार के राजा के पास भेजा गया। एक अंगरेज़ इतिहास लेखक लिखता है :—

बरार के राजा को फोड़ने के प्रयत्न

"मिस्टर एलयॉट को इस काम के लिए नियुक्त किया गया कि तुम जाकर बरार के राजा को मराठा मण्डल से फोड़ो। एलयॉट के द्वारा बरार के राजा से बातचीत की गई। एलयॉट को यह अधिकार दिया गया कि तुम राजा से कह दो कि गवरनर जनरल अपनी पूरी शक्ति से सतारा के राजा का तमाम इलाक़ा और पेशवा की पदवी आपको दिलवाने के लिए तैयार है।"*

किन्तु मूदाजी ने किसी वजह से वारन हेस्टिंग्स की इस सलाह को स्वीकार न किया। वारन हेस्टिंग्स की चाल पूरी तरह न चल सकी। इस पत्र व्यवहार से उसे इतना लाभ अवश्य हुआ कि बंगाल की सेना शान्ति के साथ बरार के इलाक़े से गुज़र सकी।

होलकर और सींधिया दोनों मालूम होता है फ़ान्सीसी हमले के धोखे में आगए। इसके अलावा वे उस समय पूना में थे, इस लिए उन्होंने इस सेना को अपने राज्यों में से गुज़रने की इजाज़त दे दी।

---

* "Overtures were made to the Raja of Berar through Mr Elliot, who was deputed, with the view of detaching him from the confederacy, and who was empowered to offer him the full support of the Governor-General in his claims to the possessions of the Raja of Sattara, and to the situation of Peshwa."—*Origin of the Pindaries etc*, by an Officer in the service of the Honorable East India Company, 1818

वारन हेस्टिंग्स ने ठीक यही धोखा नाना फ़ड़नवीस को देना चाहा और उससे यह इजाज़त माँगी कि पेशवा के इलाके में से कम्पनी की सेना को जाने दिया जावे। किन्तु नाना फ़ड़नवीस ताड़ गया, उसने कम्पनी की सेना के आगे बढ़ने पर एतराज़ किया, और जब देखा कि एतराज़ों का कोई फल नहीं हुआ और अंगरेज़ी सेना बढ़ी चली आ रही है तो मजबूर होकर युद्ध की तैयारी शुरू कर दी।

नाना फ़ड़नवीस का अंगरेज़ी सेना को रोकना

मार्ग में इस सेना को कई छोटी मोटी रुकावटें हुईं। बुन्देलखण्ड के स्वतन्त्र राजाओं ने उसे अपने इलाक़े में से गुज़रने से रोका। किन्तु किसी से लड़कर और किसी से मिलकर, किसी को चाल से और नवाब भोपाल जैसे को धन से शान्त करते हुए कम्पनी की सेना आगे बढ़ती रही। मार्ग में ३ अक्तूबर सन् १७७८ को करनल लेसली की मृत्यु हो गई और करनल गॉडर्ड उसकी जगह सेनापति नियुक्त हुआ।

बम्बई के अंगरेज़ों ने इस सेना के पहुँचने का इन्तज़ार न किया। उन्होंने राघोबा को युद्ध के ख़र्च के लिए एक ख़ासी रक़म बतौर क़र्ज़ के दी, जिसके लिए उससे पट्टा लिखा लिया और २२ नवम्बर सन् १७७८ को राघोबा तथा करनल इजर्टन के अधीन एक विशाल सेना राघोबा को पेशवा को मसनद पर बैठाने के लिए बम्बई से पूना की ओर रवाना कर दी। यह सेना राघोबा के नाम पर आगे बढ़ती

बम्बई से कम्पनी की सेना

जाती थी और उसके साथ साथ मार्ग भर में एलान बँटते जाते थे, जिनमें महाराष्ट्र की प्रजा से राघोबा की सहायता करने के लिए प्रार्थना की गई।

इसी बीच मॉस्टिन पूना में अचानक बीमार पड़ गया, उसे बम्बई लौट आना पड़ा और १ जनवरी सन् १७७६ को उसकी मृत्यु हो गई।

खण्डाला तक बम्बई की इस सेना को किसी ने न रोका, किन्तु नाना असावधान न था। उसके गुप्तचरों का सगंठन इतना अच्छा था कि पूना में बैठे हुए उसे भारत भर की राजनैतिक हालत का ठीक ठीक पता रहता था। सींधिया और होलकर दोनों उस समय पूना में थे। नाना ने उन्हें सेनापति नियुक्त करके उनके अधीन अंगरेज़ों के मुक़ाबले के लिए सेना रवाना की।

तालेगाँव की लड़ाई

मराठे युद्ध विद्या में अत्यन्त होशियार थे। वे धीरे धीरे पीछे हटते हुए अंगरेज़ी सेना को पूना से १८ मील दूर तालेगाँव के मैदान तक ले आए। ६ जनवरी सन् १७७६ को अंगरेज़ी सेना तालेगाँव पहुँची। वहाँ पहुँचते ही अंगरेज़ों ने अचानक अनुभव किया कि एक विशाल मराठा सेना ने उन्हें तीन ओर से घेर रक्खा था। इस पर वे इतने भयभीत हो गए कि उन्हें फ़ौरन पीछे हटने के सिवा कोई चारा दिखाई न दिया।

११ जनवरी के ११ बजे रात को अंगरेज़ी सेना ने पीछे हटना

शुरू किया। उन्होंने स्वयं अपने बहुत से गोले बारूद को आग लगा दी और भारी तोपों को एक बड़े तालाब में फेंक दिया। मराठा सेनापतियों ने अब आगे बढ़कर सामने से शत्रु को रोका और उन्हें चारों ओर से घेर लिया। एक भयङ्कर संग्राम हुआ। अंगरेज़ी सेना को दूसरी बार पूरी तरह हार खानी पड़ी। उनके तमाम अस्त्र शस्त्र छीन लिए गए। पेशवा की सेना उस समय यदि चाहती तो राघोबा और उसके एक एक देशी और विदेशी साथी को वहीं पर ख़त्म कर सकती थी, किन्तु अंगरेज़ों ने हार मान कर दया की प्रार्थना की। १३ जनवरी को अंगरेज़ों का एक दूत सन्धि के लिए मराठों के पास पहुंचा। मराठों ने शरणागत शत्रु को छोड़ दिया। दोनों पक्षों में फिर एक सन्धि हो गई जिसमें अंगरेज़ों ने वादा किया कि :—

अंगरेज़ों की दोबारा हार और दूसरी सन्धि

(१) राघोबा को फ़ौरन पूना दरबार के हवाले कर दिया जावेगा।

(२) भड़ोच, सूरत और मराठों के जितने और इलाक़ों पर कम्पनी ने अपना अधिकार जमा रक्खा है वे सब फ़ौरन पेशवा दरबार को वापस दे दिए जावेंगे।

(३) जो अंगरेज़ी सेना बंगाल से आ रही है उसे वापस लौटाने के लिए अंगरेज़ अफ़सर उस सेना के पास स्पष्ट सन्देशा भेज देंगे और यह सन्देशा पूना दरबार के एक वकील की मारफ़त भेजा जावेगा।

(४) जब तक अंगरेज़ इन शर्तों को पूरा न कर दें तब तक के लिए दो अंगरेज़ अफ़सर बतौर बन्धक मराठों के पास क़ैद रहेंगे।

सन्धि पर बाज़ाब्ता दोनों ओर के सेनापतियों के दस्तख़त हो गए और कम्पनी तथा पेशवा दरबार दोनों की मोहरें लग गईं। राघोबा और दो अंगरेज़ मराठों के हवाले कर दिए गए। करनल गॉडर्ड के नाम पत्र लिखकर पूना दरबार के एक वकील के सुपुर्द कर दिया गया। नाना फ़ड़नवीस ने राघोबा और उसके साथ दोनों अंगरेज़ों को माधोजी सींधिया (महादजी सींधिया) के हवाले कर दिया।

इस दूसरी सन्धि का उल्लङ्घन

किन्तु अंगरेज़ अब भी अपने छल से बाज़ न आए। बम्बई पहुँचते ही उन्होंने उस पत्र को रद्द करने के लिए जो हाल की सन्धि के अनुसार मराठा वकील की मारफ़त करनल गॉडर्ड के पास भेजा दिया गया था, करनल गॉडर्ड को एक और गुप्त पत्र भेजा और उसमें लिखा कि आप जितनी जल्दी हो सके बम्बई पहुँच जाइये।

बम्बई की अंगरेज़ी सेना की हार का समाचार सुनकर करनल गॉडर्ड पहले सूरत की ओर बढ़ा। ६ फ़रवरी को पूना दरबार का वकील अंगरेज़ सेनापति के पत्र सहित गॉडर्ड से जा मिला। वकील ने पत्र देकर गॉडर्ड पर बंगाल लौट जाने के लिए ज़ोर दिया। गॉडर्ड यह झूठ बोल कर कि मेरी सेना का उद्देश पेशवा सरकार से लड़ना नहीं है, बल्कि उससे मित्रता क़ायम रखना और फ़्रांसीसियों का मुक़ाबला करना है, बराबर आगे बढ़ता गया।

२६ फ़रवरी सन् १७७६ को वह अपनी विशाल सेना सहित सूरत पहुँच गया।

वारन हेस्टिंग्स को जिस समय बम्बई की सेना की इस अपमानजनक हार और नई सन्धि का पता लगा तो उसने फ़ौरन करनल गॉडर्ड को लिख भेजा कि आप उस सन्धि की बिलकुल परवा न करें, और आगे बढ़ते जावें।

सींधिया और होलकर कुलों की उत्पत्ति

मराठा मण्डल के पाँच मुख्य स्तम्भों में से एक महाराजा गायकवाड़ को अंगरेज़ अपनी ओर फोड़ चुके थे। बरार के महाराजा भोंसले ने वारन हेस्टिंग्स की सलाह न मानी थी, फिर भी वारन हेस्टिंग्स ने अपनी चालों द्वारा उसे इस संग्राम से तटस्थ कर रक्खा था। पेशवा की मदद के लिए अब केवल होलकर और सींधिया दो नरेश बाक़ी रह गए थे।

मालवा का प्रान्त जिसे मध्यभारत कहते हैं, १८ वीं सदी के प्रारम्भ तक मुग़ल साम्राज्य का एक भाग था और निज़ाम की सूबेदारी में था। सन् १७२१ में निज़ाम के बग़ावत करने पर दिल्ली सम्राट ने निज़ाम की जगह एक हिन्दू राजा गिरधरराय को मालवे का सूबेदार नियुक्त कर दिया। कुछ समय बाद पेशवा ने राजा गिरधरराय से मालवा विजय करके उत्तरीय भाग अपने एक अनुचर रानोजी सींधिया को और दक्खिनी भाग एक दूसरे अनुचर मलहरराव होलकर को दे दिया। यही इन दोनों राजकुलों का प्रारम्भ था।

जिस समय का हाल हम लिख रहे हैं उस समय दक्खिन मालवे का शासन उस प्रातःस्मरणीया महारानी अहिल्याबाई के हाथों में था, जिसकी बुद्धिमत्ता, योग्यता, न्यायशासन, सच्चरित्रा और आदर्श राजप्रबन्ध की प्रशंसा अनेक भारतीय और विदेशी इतिहास लेखकों ने मुक्तकण्ठ से की है; जिसकी गाढ़ धार्मिकता के कारण उत्तर से दक्खिन तक हिन्दू और मुसलमान समस्त भारतीय नरेश उसे अपनी श्रद्धा और आदर का पात्र स्वीकार करते थे; और जिसका नाम आज तक भारत के एक एक गांव और एक एक झोपड़े में श्रद्धा और भक्ति के साथ लिया जाता है। अहिल्याबाई इन विदेशियों के साथ मेल या अपने यहाँ उनका हस्तक्षेप पसन्द न करती थी, इसलिए वारन हेस्टिंग्स को पेशवा के ख़िलाफ़ सींधिया कुल के साथ साज़िश करनी पड़ी।

महारानी अहिल्याबाई

माधोजी सींधिया उस समय पेशवा के अत्यन्त योग्य और विश्वस्त सेनापतियों में से था। वारन हेस्टिंग्स ने देख लिया कि नाना को पंगुल कर देने का सबसे अच्छा तरीक़ा माधोजी को अपनी ओर फोड़ लेना है। अदूरदर्शी माधोजी विदेशियों की बातों में आकर पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात करने को राज़ी हो गया। तालेगाँव ही में अंगरेज़ों और माधोजी के बीच गुप्त बातचीत शुरू होगई। माधोजी को ख़ास लालच यह दिया गया कि यूरोपियन अफ़सरों और यूरोपियन ढंग के शस्त्र ढालने वालों की मदद से तुम्हारे पास

माधोजी सींधिया के साथ झूठा वादा

महारानी अहल्याबाई होलकर
[चित्रशाला प्रेस पूना की कृपा द्वारा]

एक ज़बरदस्त सेना तैयार कर दी जावेगी, जिसके द्वारा महाराष्ट्र, बल्कि सारे भारत में तुम्हारा प्रभाव थोड़े ही दिनों के अन्दर सर्वोपरि हो जावेगा। इस चाल के ज़रिये अंगरेज़ उससे राघोबा और अपने दोनों बन्धकों को छुड़ा लेना चाहते थे।

सींधिया और राघोबा के साथ गुप्त सन्धि

अन्त में माधोजी, राघोबा और अंगरेज़ों के बीच गुप्त सन्धि होगई, जिसमें तय हुआ कि बालक माधोराव नारायन जिसकी आयु उस समय पाँच साल की थी, पेशवा की मसनद पर क़ायम रहे, उसी के नाम के सिक्के ढलते रहें, राघोबा का बेटा बाजीराव जिसकी आयु चार साल की थी, पेशवा का दीवान नियुक्त हो, माधोजी नाबालिग़ दीवान के नाम से शासन का सारा काम करे और राघोबा को पेशवा दरबार से बारह लाख सालाना पेन्शन पर झाँसी भेज दिया जावे। इसके अलावा अंगरेज़ों ने भड़ोच का ज़िला माधोजी को और ४१,००० रुपए नक़द उसके आदमियों को देने का वादा किया। स्वार्थान्ध माधोजी ने अपने स्वामी पेशवा के साथ विश्वासघात करके राघोबा और दोनों अंगरेज़ बन्धकों को चुपके से छोड़ दिया। राघोबा फिर अंगरेज़ों से जा मिला। इसके थोड़े ही दिनों के अन्दर अंगरेज़ों ने माधोजी सींधिया के साथ ठीक वैसा ही बर्ताव किया, जैसा वे बंगाल में अमींचन्द से लेकर मीर जाफ़र तक एक एक देशघातक के साथ कर चुके थे; फिर भी उस समय भारत के अन्दर कम्पनी की सत्ता के जमने में माधोजी ने ज़बरदस्त मदद दी।

नाना फ़ड़नवीस को जब अंगरेज़ों के इरादों का पता चला और मालूम हुआ कि गॉडर्ड की सेना गुजरात पहुँच गई है, तो उसने एक ओर माधोजी सींधिया को सेना देकर गुजरात भेजा ताकि वह गुजरात से अंगरेज़ों को बाहर निकाल दे और दूसरी ओर मूदाजी भोंसले को आज्ञा दी कि तुम फ़ौरन तीस हज़ार सेना लेकर बंगाल पर चढ़ाई कर दो। नाना की तजवीज़ें काफ़ी ज़बरदस्त थीं; किन्तु नाना को उस समय पता न था कि माधोजी और अंगरेज़ों में पहले ही गुप्त सन्धि हो चुकी थी और मूदाजी भोंसले भी भीतर से वारन हेस्टिंग्स के साथ मिला हुआ था। माधोजी का बाक़ी हाल आगे चल कर दिया जावेगा। मूदाजी ने नाना को धोखे में रखने के लिए ३०,००० सेना लेकर बंगाल पर चढ़ाई अवश्य की, किन्तु उसने पहले ही से वारन हेस्टिंग्स को एक गुप्त पत्र लिख दिया कि—"मैं यह चढ़ाई केवल नाना फ़ड़नवीस और दूसरे मराठों को खुश करने के लिए कर रहा हूँ, यह केवल दिखावा है। मैं मार्ग में जानकर इतनी देर लगा दूँगा कि बरसात से पहले बंगाल की सरहद पर न पहुँच सकूँ और फिर बरसात का बहाना लेकर बरार वापस लौट आऊँगा।" मूदाजी भोंसले ने हेस्टिंग्स के साथ अपने वचन का पालन किया। सारांश यह कि इन दोनों मराठा सेनापतियों ने अपने स्वामी और देश दोनों के साथ विश्वासघात किया।

करनल गॉडर्ड अब सूरत में बैठा हुआ एक ओर नाना फ़ड़नवीस के पास सुलह के पत्र भेज रहा था और दूसरी ओर पूना पर

चढ़ाई करने की ज़ोरदार तैयारी कर रहा था। नाना फड़नवीस ने गॉडर्ड के पत्रों के उत्तर में स्पष्ट लिख भेजा कि सुलह की बातचीत के लिए सबसे पहली शर्त यह है कि पिछली सन्धि के अनुसार साष्टी का टापू और विद्रोही राघोबा दोनों पेशवा दरबार के हवाले कर दिए जावें। किन्तु साष्टी पर अंगरेज़ों के शुरू से दाँत थे और राघोबा इस तमाम खेल में उनके हाथ का तुरुप था।

अंगरेज़ों का सींधिया के साथ विश्वासघात

इस दरमियान गॉडर्ड ने गुजरात में पेशवा के इलाक़ों पर धावे मारने शुरू किए और वहाँ की प्रजा को ख़ूब लूटा और तबाह किया। माधोजी सींधिया नाना को दिखाने के लिए सेना लेकर गुजरात पहुँच गया था और इस समय गुजरात में मौजूद था। किन्तु अंगरेज़ों ने बड़ी सफलता के साथ उसे झूठी आशाओं के नशे में सुला रक्खा था। नाना फड़नवीस ने प्रजा की बरबादी और माधोजी की नाफ़रमानी का हाल सुनकर अब होलकर को सेना सहित गुजरात भेजा। किन्तु गायकवाड़ इस समय तक मराठा मण्डल से पृथक हो चुका था। माधोजी सींधिया विदेशियों के हाथों में खेल रहा था। मूदाजी भोंसले वारन हेस्टिंग्स की चालों में आकर पेशवा के साथ विश्वासघात कर चुका था। इन हालतों में अकेला होलकर गॉडर्ड की सेना के हाथों गुजरात की प्रजा की बरबादी को न रोक सका।

१६ मार्च सन् १७८० को माधोजी सींधिया ने अपना एक वकील गॉडर्ड के पास भेजा और प्रार्थना की कि तालेगाँव की गुप्त

सन्धि के अनुसार राघोबा को झाँसी की ओर भेज दिया जाय, ताकि मैं राघोबा के पुत्र बाजीराव को साथ लेकर पूना के लिए रवाना हो जाऊँ। किन्तु गॉडर्ड का मतलब निकल चुका था। वह राघोबा को इस तरह हाथ से छोड़ देने के लिए तैयार न था। उसने अब तालेगाँव की गुप्त सन्धि को स्वीकार करने से इनकार कर दिया।

माधोजी को ज़बरदस्त नैराश्य और दुख हुआ। गॉडर्ड ने इस हालत में उसे देर तक गुजरात में रहने देना ठीक न समझा। चन्द रोज़ के अन्दर ही उसने बिल्कुल अचानक माधोजी की सेना पर हमला कर दिया। माधोजी की सेना को तैयार होने का समय भी न मिल सका। जिस तरह पेशवा के दल में माधोजी अंगरेज़ों से मिल गया था, उसी प्रकार माधोजी की सेना में न मालूम कितने इस समय गॉडर्ड से मिले हुए होंगे। अन्त मे गॉडर्ड ने कर्त्तव्य विमूढ़ माधोजी और उसकी सेना को गुजरात से खदेड़कर बाहर कर दिया। करनल गॉडर्ड के लिए अब केवल पूना पर हमला करना बाकी था।

समस्त भारतीय नरेशों को मिलाने की नाना की कोशिश

दूरदर्शी नाना को जब माधोजी की कर्त्तव्य विमुखता, होलकर की असफलता और अंगरेज़ों के इरादों का पता चला, तो उसने फ़ौरन हिन्दोस्तान के करीब करीब सब मुख्य मुख्य नरेशों को इन विदेशियों के ख़िलाफ़ अपने साथ मिलाने के ज़ोरदार प्रयत्न शुरू किए। हैदराबाद के निज़ाम, अरकाट के नवाब, मैसूर के सुलतान हैदरअली और दक्खिन के अन्य कई

छोटे छोटे हिन्दू और मुसलमान नरेशों को उसने इस विषय के पत्र लिखे। नाना, निज़ाम और हैदरअली में तय हो गया कि तीनों एक साथ अपने अपने पास के अंगरेज़ी इलाक़ों पर हमला करके अंगरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकाल दें। नाना की ओर से मूदाजी भोंसले तीस हज़ार सेना सहित अंगरेज़ों को बंगाल से निकालने के लिए भेजा जा चुका था। निज़ाम और हैदरअली की कोशिशों का ज़िक्र और आगे चल कर किया जावेगा। इसके अलावा जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, कम से कम उपचार के लिए पूना के पेशवा दिल्ली के सम्राट को सारे भारत का अधिराज स्वीकार करते थे और पेशवा का एक वकील सम्राट के दरबार में रहा करता था। नाना को मालूम हुआ कि वारन हेस्टिंग्स दिल्ली सम्राट को अपनी ओर करने की कोशिशों में लगा हुआ है।

दिल्ली सम्राट के नाम नाना का पत्र

नाना ने ६ मई सन् १७८० को अपने दिल्ली के वकील पुरुषोत्तम महादेव हिङ्गने के नाम इस मज़मून का एक पत्र लिखा :—

"यहाँ पर समाचार मिला है कि कलकत्ते के अंगरेज़ दिल्ली के सम्राट के साथ पत्र व्यवहार करके सम्राट को अपनी ओर करने वाले हैं। इसलिए आप सम्राट और नजफ़ ख़ाँ दोनों को इस तरह साफ़ साफ़ समझा दीजिये।

"इन टोपी वालों (यूरोप निवासियों) के तरीक़े बेईमानी और चालबाज़ी के हैं। इनकी आदत यह है कि पहले तो किसी हिन्दोस्तानी नरेश को ख़ुश करते हैं, उसे अपने साथ सन्धि करने के फ़ायदे दिखलाते हैं

और फिर उसे क़ैद करके स्वयम् उसके राज पर क़ब्ज़ा कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर शुजाउद्दौला, मोहम्मदअली ख़ाँ, अरकाट के सूबे और तओर के नरेश इत्यादि की हालत देख लीजिये। इसलिए आपका इन टोपी वालों को दमन करना लाज़मी है, केवल इस उपाय से ही देशके नरेशों की इज़्ज़त बच सकती है, नहीं तो विदेशी टोपीवाले इस भूमि की तमाम रियासतों को छीन लेंगे, और सारे देश पर क़ब्ज़ा कर लेंगे। ऐसा होना अच्छा नहीं है और भविष्य में सब नरेशों के लिए अत्यन्त हानिकर साबित होगा। सम्राट समस्त पृथ्वी का स्वामी है, इसलिए हर तरह मुनासिब है कि सम्राट इस मामले की ओर ध्यान देना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझे। दक्खिन के सब नरेश मिल गए हैं। नवाब, निज़ामअली ख़ाँ, हैदर नायक और पेशवा, इन चारों में सन्धि हो गई है; इन्होने चारों ओर से अंगरेज़ों को दमन करने का निश्चय कर लिया है और अपने अपने इलाक़ों में अंगरेज़ों से युद्ध करने के लिए फ़ौज, तोपख़ाने और अस्त्र शस्त्र की तैयारी कर ली है।

"उत्तरीय भारत में सम्राट और नजफ़ ख़ाँ को चाहिए कि सब नरेशों को मिलाकर अंगरेज़ों को दमन करें। इससे साम्राज्य की कीर्ति और मान दोनों बढ़ेंगे।"

वारन हेस्टिंग्स और नाना फ़ड़नवीस के बीच मुक़ाबला ज़बरदस्त था। नाना की दूरदर्शिता और देशभक्ति दोनों अपूर्व थीं। इस पत्र को पढ़कर ऐसा मालूम होने लगता है मानों वह सन् १८५७ के प्रसिद्ध नाना धोण्डुपन्त के हाथ का लिखा हुआ हो। नाना फ़ड़नवीस जो बात चाहता था वह न हो सकी। किन्तु उसके प्रयत्न बिलकुल निष्फल नहीं गए।

करनल गॉडर्ड अपनी विशाल सेना सहित पूना की ओर बढ़ा। रास्ते में कल्यान, बसई और कोकन प्रान्त के अन्य कई स्थानों को उसकी सेना ने ख़ूब रौंदा और बरबाद किया। किन्तु अभी वह मराठा साम्राज्य के केन्द्र पूना के निकट भी न पहुँच पाया था कि भोरघाट के ऊपर हरिपन्त फड़के, परशुराम भाऊ और होलकर के अधीन पेशवा की सेना ने उसे रास्ते ही में घेर लिया। मैदान ख़ूब गरम हुआ, किन्तु फिर तीसरी बार विजय मराठों ही की ओर रही और अप्रैल सन् १७८१ के आख़ीर में जान और माल दोनों की भारी हानि उठाकर पूना के दर्शन किए बिना ही कम्पनी की इस विशाल सेना को उसी तरह ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा जिस तरह जनवरी सन् १७७६ में बम्बई की सेना को भागना पड़ा था। बचे खुचे आदमी जान बचाकर बम्बई पहुँच गए, किन्तु इस दूसरी लज्जा जनक हार से अंगरेज़ों को मराठों की वीरता और युद्ध कौशल का ख़ूब पता चल गया और उनकी हिम्मत कुछ अर्से के लिए टूट गई।

तीसरी बार अंगरेज़ों की हार

इस दरमियान भारत के दूसरे हिस्सों में भी वारन हेस्टिंग्स की साज़िशें जारी थीं। माधोजी सींधिया को अंगरेज़ों की दग़ाबाज़ी का काफ़ी तजरुबा हो चुका था। उसकी हालत इस समय अधमरे साँप की सी थी। वारन हेस्टिंग्स ने सबसे पहले उसे पूरी तरह कुचल डालना ज़रूरी समझा। सींधिया का मुख्य गढ़ ग्वालियर था। वारन हेस्टिंग्स ने सींधिया के एक बाजगुज़ार गोहद नरेश

अंगरेज़ों का गोहद के राना को अपनी ओर फोड़ना

को ग्वालियर का लालच देकर सींधिया के ख़िलाफ़ अपनी ओर फोड़ लिया। कप्तान पोफ़म के अधीन कम्पनी की एक सेना ग्वालियर भेजी गई और गोहद के राना की सहायता से ४ अगस्त सन् १७८० को ग्वालियर का क़िला माधोजी सींधिया से जीत कर गोहद के राना को दे दिया गया। आज कल के धौलपुर के जाट राना उसी गोहद के राना की औलाद हैं। इसके बाद करनल कारनक ने वारन हेस्टिंग्स की आज्ञा से फ़रवरी और मार्च सन् १७८१ में सींधिया के अनेक स्थानों को रौंदा, उन्हें लूटा और तबाह किया।

माधोजी को अपने विश्वासघात की काफ़ी सज़ा मिल चुकी थी। वारन हेस्टिंग्स ने इसके बाद माधोजी का सर्वनाश करने के लिए राजपूताने के नरेशों को उसके विरुद्ध भड़काना चाहा, किन्तु माधोजी के सौभाग्य से इसमें हेस्टिंग्स को सफलता न हो सकी।

इतने में हेस्टिंग्स को मालूम हुआ कि अंगरेज़ों के विरुद्ध नाना फ़ड़नवीस, निज़ाम और हैदरअली में सलाह होगई है। मूदाजी भोंसले का बंगाल पर हमला हेस्टिंग्स की चालों और मूदाजी के विश्वासघात द्वारा विफल हो ही चुका था। केवल दो प्रबल शक्तियाँ मैदान में बाक़ी थीं, निज़ाम और हैदरअली। हेस्टिंग्स ने इन दोनों को अपनी ओर फोड़ने के भरसक यत्न किए। निज़ाम के साथ उसे पूरी सफलता हुई, किन्तु हैदरअली को वह अपनी ओर न फोड़ सका। वास्तव में हैदरअली और निज़ाम के चरित्र में बहुत बड़ा अन्तर था।

हैदरअली और निज़ाम में तुलना

हैदरअली एक निर्धन घराने में पैदा हुआ था। केवल अपनी वीरता और योग्यता के बल वह एक मामूली सिपाही से बढ़ते बढ़ते एक विशाल राज का स्वामी बन गया था। वह प्रजापालक था और उसकी प्रजा उससे प्रेम करती थी। अपने देश या देशवासियों के साथ उसने कभी भी दग़ा नहीं की। हैदरअली के चरित्र, अंगरेज़ों के साथ उसके युद्ध और उसके अद्भुत पराक्रम का बयान अगले अध्याय में किया जायगा। इनके ख़िलाफ़ हैदराबाद के राजकुल का संस्थापक निज़ामुलमुल्क दिल्ली का एक चलता हुआ दरबारी था, जो केवल चालबाज़ियों से बढ़ा और जिसने अपने स्वामी दिल्ली सम्राट के साथ विश्वासघात करके अपने लिए एक स्वतन्त्र राज क़ायम किया। जिस समय दोनों प्रसिद्ध भाई सय्यद अब्दुल्ला और सय्यद हुसेनअली उस 'जज़िये' को, जिसे अकबर ने रद्द कर दिया था और जिसे औरङ्गज़ेब ने दोबारा जारी किया था, फिर से रद्द करवा कर तथा अन्य अनेक उपायों से मुग़ल साम्राज्य के नाश को रोकने के प्रयत्न कर रहे थे, उस समय निज़ामुलमुल्क ने इन दोनों दूरदर्शी भाइयों के ख़िलाफ़ साज़िशें करके उनकी सत्ता को नष्ट किया। निज़ामुलमुल्क ने ही मराठों को उकसाकर मुग़ल साम्राज्य पर उनसे हमले करवाए। निज़ामुलमुल्क ही ने नादिरशाह को ईरान से बुलवा कर भारत तथा भारत सम्राट दोनों को अपमानित करवाया। निज़ामुलमुल्क ही सम्राट का पहला सूबेदार था, जिसने अपने सूबे को साम्राज्य से पृथक करके साम्राज्य के अंगभंग

की नींव रक्खी और दूसरे सूबेदारों के लिए एक बुरी मिसाल क़ायम की। अंगरेज़ों को भारत के अन्दर अपना राज जमाने में भी समय समय पर निज़ाम कुल से काफ़ी सहायता मिली।

वारन हेस्टिंग्स ने उस समय के निज़ाम को बहकाया कि दिल्ली सम्राट तुम्हें दक्खिन की सूबेदारी से हटाकर हैदरअली को तुम्हारी जगह देना चाहता है। गुएटूर का इलाक़ा कुछ समय पहले अंगरेज़ों ही ने निज़ाम से छीन कर अपने मित्र करनाटक के नवाब मोहम्मदअली को दे दिया था। हेस्टिंग्स ने अब वह इलाक़ा निज़ाम को वापस दिलवा दिया। इस तरह हेस्टिंग्स ने नाना और हैदरअली दोनों के ख़िलाफ़ निज़ाम को अपनी ओर फोड़ लिया, किन्तु हैदरअली पर वारन हेस्टिंग्स की चालों का कोई असर नहीं हुआ। उसने नाना का सन्देशा पाते ही अपने पास के अंगरेज़ी इलाक़ों पर हमला कर दिया। उसकी विजयों का हाल अगले अध्याय में दिया जायगा। इधर हेस्टिंग्स को करनल गॉडर्ड की हार का समाचार मिला। इस समाचार को सुनकर हेस्टिंग्स का साहस एकदम टूट गया। एक ओर हैदरअली के भयंकर हमले और दूसरी ओर गॉडर्ड की लज्जाजनक हार। दोनों से घबराकर हेस्टिंग्स ने पेशवा दरबार के साथ तुरन्त सन्धि कर लेने ही में अपनी ख़ैरियत देखी।

निज़ाम का विश्वास घात और हैदरअली के अंगरेज़ों पर हमले

वारन हेस्टिंग्स ने अब नागपुर के मूदाजी भोंसले से प्रार्थना की कि आप मध्यस्थ बनकर नाना फड़नवीस और अंगरेज़ों में

सुलह करवा दे। किन्तु मूदाजी नाना के साथ विश्वासघात कर चुका था, उसे फिर नाना के सामने जाने का साहस न हो सका। मजबूर होकर हेस्टिंग्स ने १३ अक्तूबर सन् १७८१ को फिर माधोजी सींधिया के साथ एक गुप्त सन्धि की और उसी माधोजी द्वारा नाना फ़ड़नवीस से सन्धि की बातचीत शुरू की।

अंगरेज़ों की ओर से सन्धि की कोशिशें

११ सितम्बर सन् १७८१ को मद्रास की अंगरेज़ कौन्सिल ने भी हैदर से हार पर हार खाकर एक पत्र द्वारा बड़ी नम्रता के साथ नाना से सुलह की प्रार्थना की, जिसमें उन्होंने खुदा और ईसा मसीह के अलावा इंगलिस्तान के बादशाह, अंगरेज़ क़ौम और कम्पनी तीनों की क़स्में खाई कि हम लोग अब जो सन्धि होगी उस पर सदा क़ायम रहेंगे।

कई महीने तक पत्र व्यवहार जारी रहा। अन्त में १७ मई सन् १७८२ को सालबाई नामक स्थान पर पूना दरबार और कम्पनी के बीच तीसरी बार सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार—

सालबाई की सन्धि

१—शुरू से अब तक छल से या बल से पेशवा के जितने इलाक़ों पर अंगरेज़ों ने क़ब्ज़ा कर लिया था वे सब पेशवा दरबार को वापस दे दिए गए।

२—गायकवाड़ के इलाक़ों और तमाम गुजरात की ठीक वही स्थिति रहो, जो सन् १७७५ से यानी अंगरेज़ों के दख़ल देने से पहले थी।

३—राघोबा को २५,०००) रुपए मासिक पेन्शन पर एक जगह रहने की इजाज़त दी गई।

४—जो सन्धि वारन हेस्टिंग्स ने गोहद के राजा के साथ की थी वह रद्द ठहराई गई, ग्वालियर माधोजी सींधिया को वापस मिल गया और गोहद का राना, जिसे अंगरेज़ों ही ने माधोजी के ख़िलाफ़ भड़काया था, जिसकी सहायता के बिना कप्तान पोफ़म माधोजी को कभी भी वश में न कर पाता और बिना माधोजी को वश में किए पेशवा दरबार के साथ इतनी आसानी से सुलह भी न हो सकती, अब दण्ड भोगने के लिए अपने शत्रु माधोजी के हवाले कर दिया गया।

सन्धि पत्र १७ मई को लिखा गया, किन्तु नाना फ़ड़नवीस ने सात महीने बाद तक उस पर दस्तख़त न किए, क्योंकि नाना का सच्चा मित्र और अंगरेज़ों का जानी दुशमन हैदरअली अभी तक अंगरेज़ों से लड़ रहा था। नाना की आशाएँ अभी टूटी न थीं। इसके अलावा जब तक हैदरअली मैदान में था, नाना का अंगरेज़ों के साथ सन्धि कर लेना हैदरअली के साथ विश्वासघात करना होता। अन्त में दिसम्बर महीने में नाना को हैदरअली की मृत्यु का समाचार मिला। अंगरेज़ों को भारत से निकालने की उसकी आशाएँ टूट गईं। नाना ने अब सालबाई के सन्धि पत्र पर दस्तख़त कर दिए

इस तरह ले दे कर पहले मराठा युद्ध का अन्त हुआ। इस युद्ध से भारत के अन्दर न अंगरेज़ों का ज़रा सा भी इलाक़ा बढ़ा;

न वीरता, युद्धकौशल या ईमानदारी के लिए उनकी कीर्ति बढ़ी।

पहले मराठा युद्ध का अन्त

इसके खिलाफ़ मराठों की वीरता, उनका युद्ध कौशल और नाना फ़ड़नवीस की नीतिज्ञता तीनों इस युद्ध में अत्यन्त उच्च कोटि की साबित हुईं। इसमें सन्देह नहीं कि यदि गायकवाड़, सींधिया और भौंसले तीन तीन मराठा नरेशों ने पेशवा दरबार के साथ विश्वासघात न किया होता, या यदि ऐन मौक़े पर हैदरअली की ज़िन्दगी ने धोखा न दिया होता, तो हिन्दोस्तान से विदेशी सत्ता, जिसे जड़ पकड़े अभी २० साल भी न हुए थे, उसी समय समूल उखड़ कर फिक गई होती। किन्तु नाना फ़ड़नवीस की उच्च नीति और दूरदर्शिता उस समय के दूसरे मराठा नरेशों में मौजूद न थी और इस देश को पुनर्जन्म की प्रसव वेदना में से निकलना आवश्यक था।

नवाँ अध्याय

हैदरअली

पिछले अध्याय में हम हैदरअली और अंगरेज़ों की लड़ाइयों को ओर इशारा कर चुके हैं। सच यह है कि हैदरअली से बढ़कर बहादुर, होशियार और ख़ौफ़नाक शत्रु अंगरेज़ों को भारत के अन्दर दूसरा नहीं मिला। जिस तरह नाना फड़नवीस ने अपनी नीतिज्ञता द्वारा उसी तरह हैदरअली ने जीवन भर अपनी तलवार द्वारा अंगरेज़ों को भारत से निकालने का प्रयत्न किया। इसलिए अंगरेज़ों और हैदरअली की लड़ाइयों का बयान करने से पहले हैदरअली के जीवन और उसके अद्भुत चरित्र को संक्षेप में बयान करना ज़रूरी है।

हैदरअली का जन्म

हैदरअली का जन्म किसी राजघराने में न हुआ था। उसका प्रपितामह वली मोहम्मद एक मामूली मुसलमान फ़क़ीर था, जो

गुलबर्गा में दक्खिन के मशहूर मुसलमान सन्त हज़रत बन्दा नवाज़ गेसूदराज़ की दरगाह में रहा करता था। वली मोहम्मद के खर्च के लिए दरगाह से एक छोटी सी माहवारी रक़म बँधी हुई थी। प्राचीन भारतीय ऋषियों के समान उस समय के अनेक मुसलमान फ़क़ीर अत्यन्त सरल, किन्तु कौटुम्बिक जीवन व्यतीत किया करते थे। वली मोहम्मद के एक बेटा था, जिसका नाम शेख़ मोहम्मद अली था। उसे शेख़ अली भी कहते थे। शेख़ अली अपने बाप के समान पहुँचा हुआ फ़क़ीर माना जाता था। वह कुछ दिन बीजापुर में रहा, फिर करनाटक के कोलार स्थान में आकर ठहरा। कोलार का हाकिम शाह मोहम्मद दक्खिनी शेख़ अली का बड़ा भक्त था। शेख़ अली के चार बेटे थे। खर्च की तङ्गी के सबब बेटों ने बाप से प्रार्थना की कि हमें इजाज़त दीजिये कि हम कहीं और जाकर नौकरी कर लें, धन और इज़्ज़त हासिल करें। किन्तु शेख़ अली ने बेटों को समझाया :—

"हमारे बाप दादा ख़ुदातर्स और परहेज़गार लोग थे। वे इस क़ाबिल थे कि दुनिया में नाम हासिल करते, फिर भी दुनिया के बन्धनों और उसके संसर्ग से वे अपने को सदा अलग रखने की कोशिश करते रहे; क्योंकि दुनिया की लालसा से रूहानी शान्ति जाती रहती है और सच्चे सुख की खोज का शौक़ मिट जाता है; इसलिए तुम्हें उचित है कि अपने पूर्वजों के क़दम ब क़दम चलो और इस चन्दरोज़ा हस्ती के फन्दों में न आओ × × × इसके अलावा मनस्वी और आज़ाद तबीयत के लोग अपनी सांसारिक हालत के तङ्ग होने से कभी दुखी नहीं होते और यदि उनके

दुनिया से सम्बन्ध हों तो भी वे उन सम्बन्धों को छोड़ देने और दुनिया से तअल्लुक़ तोड़ लेने में ही फ़ख़्र करते हैं ।"*

निस्सन्देह हैदरअली के पितामह और प्रपितामह दोनों सच्चे फ़क़ीर थे । जब तक शेख़ अली ज़िन्दा रहा उसके बेटे उसके साथ रहे । सन् १६६५ ईसवी में शेख़ अली की मृत्यु हुई । बड़ा बेटा शेख़ इलियास बाप का उत्तराधिकारी हुआ । सबसे छोटे बेटे का नाम फ़तह मोहम्मद था । फ़तह मोहम्मद अपने बड़े भाई की इच्छा के ख़िलाफ़ अरकाट के नवाब सआदतउल्ला ख़ाँ की फ़ौज में जमादार हो गया । फ़तह मोहम्मद ने एक दूसरे मुसलमान फ़क़ीर तंजोर के पीरज़ादा बुरहानुद्दीन की लड़की के साथ विवाह कर लिया । इस स्त्री से फ़तह मोहम्मद के दो लड़के हुए । एक का नाम शहबाज़ और दूसरे का हैदरअली था । हैदरअली का जन्म सन् १७२० ईसवी के क़रीब हुआ ।

आज से दो सौ साल पहले अधिकांश भारत में हिन्दू और मुसलमानों का सामाजिक जीवन एक विचित्र ढंग से परस्पर गुथा हुआ था । हैदरअली की एक फ़ारसी जीवनी से पता चलता है कि हैदर के जन्म के समय हिन्दू ज्योतिषियों ने उसकी जन्मपत्री तैयार की । हैदर 'सिंह' राशि में पैदा हुआ था, इसलिए ज्योतिषियों ही की राय से उसका नाम हैदर (शेर) अली रक्खा गया । ज्योतिषियों ही ने पेशीनगोई की कि नवजात बालक एक

* *History of Hyder Naik*—by Mir Hussen Ali Khan Kirmani, translated by Col W Miles, p 5

दिन राजसिंहासन पर बैठेगा, किन्तु साथ ही उसके जन्म के थोड़े ही दिनों के बाद उसके पिता की मृत्यु हो जायगी। इस पर फ़तह मोहम्मद के कुछ रिश्तेदारों ने बालक को मार डालना चाहा। फ़तह मोहम्मद को पता लगा तो उसने स्वयं अपने जीने की परवा न कर बालक का पक्ष लिया। इस तरह हैदरअली की जान बच गई और माता पिता ने उसे बड़े प्रेम से पाला।

शहबाज़ और हैदरअली के जन्म से पहले फ़तह मोहम्मद ने अरकाट की नौकरी छोड़ कर पहले मैसूर में नौकरी की और फिर वहाँ से छोड़कर सूबा सीरा के नवाब दरगाह कुलीख़ाँ के यहाँ नौकरी कर ली। सीरा में वह बालापुर कलाँ का क़िलेदार बना दिया गया। थोड़े दिनों बाद दक्खिन के नरेशों की आपसी लड़ाइयों में फ़तह मोहम्मद किसी लड़ाई में काम आया। बाप की मृत्यु के समय शहबाज़ की आयु आठ साल की और हैदरअली की आयु ३ साल की थी। विजयी नवाब अब्बास कुली ख़ाँ ने फ़तह मोहम्मद की बेवा और उसके यतीम बच्चों का सब माल असबाब ज़ब्त कर लिया और उनके सम्बन्धियों से अधिक धन वसूल करने के उद्देश से शहबाज़ और हैदरअली दोनों मासूम बालकों को पकड़ कर एक नगाड़े के अन्दर बन्द कर दिया और ऊपर से नगाड़े पर चोट लगवानी शुरू की।

मैसूर की सेना में भरती होना

हैदरअली का एक चचेरा भाई, जिसका नाम भी हैदर साहब था और जो हैदरअली के ताऊ शेख़ इलियास का बेटा था, इस समय मैसूर के राजा के यहाँ नायक था। हैदरअली की माँ ने अपने इस भतीजे को

अपनी मुसीबत की इतला दी। हैदर साहब ने फ़ौरन धन भेजकर शहबाज़, हैदरअली और उनकी माँ तीनों को छुड़वाया और उन्हें श्रीरंगपट्टन में बुलवाकर बड़े आदर और प्रेम से अपने पास रक्खा। यहाँ पर शुरू से ही शहबाज़ और हैदरअली दोनों को घोड़े की सवारी, निशानेबाज़ी, शस्त्रों का उपयोग और युद्ध विद्या की पूरी तालीम दी गई। बालिग़ होने पर शहबाज़ और हैदरअली दोनों भाई मैसूर की फ़ौज में भरती हो गए।

मैसूर की हिन्दू रियासत दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार मराठों को 'चौथ' दिया करती थी। इस एक बात के अलावा और सब तरह अपने भीतरी शासन में मैसूर की रियासत स्वाधीन थी। दक्खिन के सूबेदार निज़ामुलमुल्क को मैसूर दरबार के ऊपर किसी तरह का क्रियात्मक आधिपत्य प्राप्त न था।

सन् १७४८ ई० में हैदराबाद के निज़ाम का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले निज़ाम ने मुज़फ़्फ़रजंग को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अंगरेज़ों ने एक दूसरे मनुष्य नाज़िरजंग को हक़दार खड़ा कर दिया और उसका पक्ष लेकर लड़ना शुरू किया। फ़्रांसीसियों और मैसूर दरबार ने मुज़फ़्फ़रजंग का साथ दिया। अन्त में मुफ़फ़्फ़रजंग ही की विजय रही। इन लड़ाइयों में हैदर अली का बड़ा भाई शहबाज़ मैसूर की ओर से लड़ रहा था। उसके अधीन दो सौ सवार और एक हज़ार पैदल थे। हैदरअली उस समय अपने भाई के अधीन एक मामूली घुड़ सवार था।

मैसूर के महाराजा एक अरसे से सिंहासन की केवल एक

शोभा समझे जाते थे। महाराजा का अधिकांश समय महल के

'दैव' की पदवी

अन्दर पूजा पाठ और अन्य धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत होता था। यहाँ तक कि महाराजा साल में केवल दो बार अपनी प्रजा के सम्मुख आता था। शासन के काम से उसे किसी तरह का सम्बन्ध न था। समस्त शासन प्रधान मन्त्री के सुपुर्द था, जिसे 'दैव' या 'दलवाई' कहते थे। दैव ही राज का क्रियात्मक स्वामी होता था। दैव की गद्दी पैतृक थी। यह रिवाज कई पीढ़ियों से चला आता था। पिछले युद्ध में मैसूर का दैव नन्दीराज हैदरअली की योग्यता और वीरता को देख कर इतना खुश हुआ कि सन् १७५५ में उसने हैदरअली को डिण्डीगल का फ़ौजदार नियुक्त कर दिया। इस युद्ध में ही हैदरअली ने फ़्रांसीसियों की सैनिक व्यवस्था और उनकी क़वायद को अच्छी तरह देखा और डिण्डीगल में फ़ौज को क़वायद सिखाने के लिए कुछ फ़्रांसीसी अफ़सर नौकर रक्खे। अपने तोपख़ाने में भी उसने कुछ फ़्रांसीसी कारीगर नियुक्त किए।

हैदरअली का 'दैव' नियुक्त होना

धीरे धीरे हैदरअली का बल बढ़ता गया। यहाँ तक कि वह रियासत का प्रधान सेनापति हो गया। थोड़े दिनों बाद मैसूर दरबार के मंत्रियों में आपसी झगड़े बढ़े। खाँडेराव ने किसी तरह साज़िश कर नन्दीराज को गद्दी से अलग कर अपने को मैसूर का 'दैव' नियुक्त करा लिया। लिखा है कि राजधानी श्रीरंगपट्टन की प्रजा खाँडेराव से बहुत असन्तुष्ट थी। खांडेराव एक मराठा

ब्राह्मण था, जिसे हैदरअली ने ही किसी समय रियासत के अन्दर नौकर रखाया था। खाँडेराव ने अब गुप्त तरीक़े से मराठों को श्रीरंगपट्टन पर हमला करने के लिए बुलवा भेजा। हैदरअली उस समय रियासत का प्रधान सेनापति था। इस तरह खाँडेराव ने मैसूर दरबार और हैदरअली दोनों के साथ विश्वासघात किया। हैदरअली को अपनी सेना सहित खाँडेराव और मराठों का मुक़ाबला करना पड़ा। हमें इन लड़ाइयों के विस्तार में पड़ने की ज़रूरत नहीं है। राजकुल के लोगों ने और ख़ास कर नन्दीराज से पहले के 'दैव' देवराज की विधवा ने, जिसका उस समय श्रीरंगपट्टन में बहुत अधिक प्रभाव था, हैदरअली की पूरी मदद की। अन्त में हैदरअली की विजय रही। प्रजा की इच्छा के अनुसार अब मैसूर के महाराजा ने विश्वासघातक खाँडेराव को अलग कर हैदरअली को 'दैव' के सर्वोच्च पद पर नियुक्त कर दिया।

सम्राट की ओर से 'सीरा' का सूबेदार नियुक्त किया जाना

ऊपर आ चुका है कि बहुत समय पहले से दैव ही मैसूर के क्रियात्मक शासक होते थे। मैसूर के दैव और वहाँ के महाराजा में करीब क़रीब वैसा ही सम्बन्ध था जैसा पूना के पेशवा और शिवाजी के वंशजों में। इसके बाद भी मैसूर के राजा नाम मात्र को अपने महल के अन्दर सिंहासन पर बैठते रहे, किन्तु वास्तव में इस समय से हैदरअली मैसूर का क्रियात्मक शासक बन गया और दैव की गद्दी उसके ख़ानदान में पैतृक हो गई। कुछ समय बाद दिल्ली सम्राट ने हैदरअली की योग्यता और उसके बल

की ख़बर सुन कर उसे मैसूर के पास सीरा प्रान्त का सूबेदार नियुक्त कर दिया।

मैसूर दरबार की हालत पिछली आपसी लड़ाइयों के सबब उस समय ख़ासी बिगड़ी हुई थी। हैदर ने सबसे पहले राज की माली हालत की ओर ध्यान दिया। रियासत के अधिकांश ज़ेवर और जवाहरात श्रीरंगपट्टन के एक धनाढ्य साहूकार के घर में गिरवी पड़े हुए थे। साहूकार ने कई मौक़ों पर रियासत को बड़ी बड़ी रक़में क़र्ज़ दी थीं। रियासत से उसने बेहद धन कमाया था। अपने धन के लिए वह दूर दूर तक मशहूर था। कहा जाता है कि उसके बच्चों के पालने ठोस सोने के बने हुए थे और ठोस सोने ही की ज़ञ्जीरों से लटके रहते थे। हैदरअली ने आज्ञा दी कि उसका क़र्ज़ चुका दिया जाय और रियासत का सामान उसके यहाँ से ले लिया जाय। हिसाब की जाँच पड़ताल के लिए पञ्च मुक़र्रर किए गए। पञ्चों की रिपोर्ट से मालूम हुआ कि साहूकार के हिसाब में काफ़ी बेईमानी और जालसाज़ी है। पञ्चों ही ने फ़ैसला किया कि साहूकार की तमाम सम्पत्ति ज़ब्त कर ली जाय और उसे आजन्म क़ैद रक्खा जाय। हैदरअली ने उसकी सम्पत्ति ज़ब्त कर ली, किन्तु उसे क़ैद करने के बजाय उसके गुज़ारे के लिए एक पेन्शन नियत कर दी और उसके बेटों को रियासत के अन्दर अच्छे अच्छे ओहदों पर नियुक्त कर दिया। मालगुज़ारी की वसूली और राज के ख़र्च का हैदरअली ने बहुत सुन्दर प्रबन्ध कर दिया।

शासन प्रबन्ध और सुधार

जिस तरह मैसूर का राजा दिल्ली सम्राट के मातहत था, उसी तरह मैसूर के मातहत अनेक छोटे छोटे सामन्त राजा थे। मैसूर के अनेक सामन्त उस समय मैसूर के खिलाफ़ बग़ावत कर रहे थे। इनमें से अनेक के बीच आपसी लड़ाइयाँ जारी थीं। इन सामन्तों या प्रान्तीय शासकों को अधिकतर पालीगार कहा जाता था। हैदर ने सेना भेजकर इन सब पालीगारों को वश में किया और सारे राज में शान्ति और सुशासन क़ायम किया।

इन बाग़ी सामन्तों में मुख्य बेदनूर का राजा था। लिखा है कि राजधानी बेदनूर की आधी आबादी उस समय ईसाई थी। बेदनूर के राजा और उसकी विधवा माता में कुछ झगड़ा हुआ। राजा ने हैदरअली से मदद चाही। बेदनूर की प्रजा भी राजा के पक्ष में थी। हैदरअली ने राजा का पक्ष लेकर बेदनूर पर चढ़ाई की, रानी ने बड़ी वीरता के साथ अपने दुर्ग की रक्षा की। अन्त में रानी की सेना हार गई। हैदरअली ने एक बार रानी और उसके बेटे में सुलह करवा दी और बेटे के राजतिलक का प्रबन्ध कर दिया। इसके बाद भी रानी ने बेटे के साथ गुप्त साज़िश करके हैदरअली को मरवा डालने का प्रबन्ध किया। हैदरअली पर भेद खुल गया। तहक़ीक़ात के बाद रानी और उसके पुत्र दोनों को उसने क़ैद कर लिया और उनकी जगह अपने एक आदमी राजाराम को बेदनूर का शासक नियुक्त कर दिया। बेदनूर की रियासत इतनी धनाढ्य थी कि क़िले के अन्दर हैदरअली को क़रीब बारह करोड़ रुपए का माल सोना, चाँदी और जवाहरात मिले। हैदरअली ने इस धन से अपने

तमाम सिपाहियों को छै छै महीने का वेतन इनाम में दिया, ग़रीबों और साधुओं में भोजन, वस्त्र, धन बटवाया और बेदनूर का नाम बदलकर हैदरनगर रख दिया।

इसके बाद और भी नए नए प्रान्तों को विजय कर हैदरअली ने मैसूर राज की सीमा को बढ़ाया और वहाँ के शासन को सुदृढ़ और व्यवस्थित रूप दिया।

मराठे भी चारों ओर अपना साम्राज्य बढ़ाने के प्रयत्नों में लगे हुए थे। चार बार उन्होंने मैसूर पर हमला किया, किन्तु इन हमलों से मराठों को कोई ख़ास लाभ न हो सका। हैदरअली का बल कुछ कम न था। वह कभी लड़कर और कभी थोड़ा बहुत ज़र ज़मीन देकर मराठों से छुटकारा पाता रहा। अन्त में जो थोड़ा बहुत इलाक़ा मराठों ने इस तरह हैदरअली का ले लिया था वह भी उन्हें वापस लौटा देना पड़ा और दोनों को अपने अपने हित के लिए एक दूसरे के साथ सन्धि करनी पड़ी।

अंगरेज़ों के साथ पहली लड़ाई

किसी भी स्वाधीन भारतीय नरेश के इस प्रकार बढ़ते हुए बल को अंगरेज़ गवारा न कर सकते थे। वे तरह तरह से हैदरअली को कुचलने की तदबीरें करने लगे। हैदरअली के साथ उनका पहला युद्ध सन् १७६७ में शुरू हुआ। छेड़छाड़ अंगरेज़ों की ओर से हुई। अंगरेज़ों ने बिला वजह उस साल हैदर के बारामहल के इलाक़े पर हमला कर दिया। करनाटक के नवाब मोहम्मदअली के साथ हैदरअली की इससे पहले ख़ासी मित्रता थी। अंगरेज़ों ने करनाटक के नवाब

को यह कह कर हैदरअली के ख़िलाफ़ फोड़ा कि बारामहल का इलाक़ा हैदरअली से जीतकर तुम्हें दे दिया जायगा।

अंगरेज़ों का मुक़ाबला करने के लिए हैदरअली ने अब निज़ाम के साथ सन्धि की। तय हो गया कि निज़ाम और हैदरअली दोनों की सेनाएँ मिलकर करनाटक और अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला करें और नवाब मोहम्मदअली को दण्ड देने के लिए उसे करनाटक की मसनद से हटाकर हैदरअली के बेटे टीपू को उसकी जगह बैठा दें। क़रीब पचास हज़ार सेना निज़ाम की ओर से वज़ीर रुकनुद्दौला के अधीन हैदरअली की मदद के लिए आई। इतनी ही सेना जनरल स्मिथ के अधीन मद्रास से बढ़ी। इतने में जब कि अभी अंगरेज़ों और हैदरअली में पत्र व्यवहार हो ही रहा था, जनरल स्मिथ ने हैदर के वनियमवाड़ी, कावेरीपट्टम इत्यादि कुछ सरहदी क़िले अपने अधीन कर लिए। हैदरअली के पास कुल सेना इस समय दो लाख के क़रीब थी। इसमें से पचास हज़ार सेना लेकर वह जनरल स्मिथ के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। रुकनुद्दौला की सेना भी हैदरअली की सेना के साथ साथ थी। इस दरमियान अंगरेज़ों ने निज़ाम और रुकनुद्दौला के साथ गुप्त पत्र व्यवहार शुरू किया। कई जगह ऐन मौक़े पर रुकनुद्दौला के व्यवहार से दग़ा का शक होने लगा। हैदरअली के साथ अंगरेज़ों की कई छोटी बड़ी लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें विजय कहीं अंगरेज़ों की रही और कहीं हैदरअली की। हैदरअली के मज़बूत क़िलों पर अंगरेज़ कोई विशेष असर न डाल सके। फिर भी हैदरअली का बहुत सा इलाक़ा अंगरेज़ों के हाथों में आ गया।

अरकाट का नवाब अंगरेज़ों से मिल चुका था और निज़ाम भी हैदरअली को धोखा देता हुआ मालूम होता था। दूसरे उन दिनों मराठों के हमले का हैदरअली को बराबर डर लगा रहता था। तीसरे स्वयं मैसूर में उसका शासन अभी हाल ही का जमा हुआ था और वह बहुत दिनों तक राजधानी से दूर न रह सकता था। इन सब बातों से मजबूर होकर सितम्बर सन् १७६८ में हैदरअली ने अंगरेज़ों से सुलह की बात चीत शुरू की।

अंगरेज़ों को इससे विश्वास हो गया कि हैदरअली की हालत कमज़ोर है और हम आसानी से उसके सारे इलाक़े को फ़तह कर लेंगे। उन्होंने अपमान के साथ हैदरअली के दूत को अपने यहाँ से लौटा दिया। किन्तु हैदर कायर न था, उसने अब ज़ोरों के साथ युद्ध की तैयारी शुरू की। नवम्बर सन् १७६८ में अंगरेज़ों को मैसूर राज्य से बाहर निकालने के लिए उसने अपने एक सेनापति फ़ज़लुल्लाह ख़ाँ को सेना सहित रवाना किया। इसके बाद हैदर ख़ुद सेना लेकर आगे बढ़ा।

हैदरअली की विजय और शत्रु के साथ उसकी उदारता

सब से पहले उसने अपने उन क़िलों को फिर से एक एक कर विजय करना शुरू किया, जिन पर अंगरेज़ी सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया था। इनमें कावेरीपट्टम का क़िला एक मुख्य क़िला था। हैदरअली ने उसका मोहासरा शुरू किया। अंगरेज़ों ने अपनी तोपों से क़िले की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर रक्खा था। हैदरअली की तोपों ने क़िले के बाहर से गोलाबारी शुरू की। क़रीब तीन घंटे की

गोलाबारी के बाद अंगरेज़ी सेना को फ़सील छोड़ कर पीछे हट जाना पड़ा। अंगरेज़ सेनापति ने विवश होकर सुलह का सफ़ेद झंडा दिखलाया। हैदर ने लड़ाई बन्द कर दी और क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। क़िले के भीतर के तमाम अंगरेज़ सिपाहियों की हैदर ने जान बख़्श दी और उन्हें इस बात की इजाज़त दे दी कि तुम लोग अपने हथियार रख कर मद्रास लौट जाओ। कम्पनी के देशी सिपाहियों को उसने मौक़ा दिया कि तुम लोग चाहे अपने घर लौट जाओ और चाहे मैसूर की सेना में भरती हो जाओ। ये हिन्दोस्तानी सिपाही क़रीब क़रीब सब हैदरअली की सेना में आकर भरती हो गए। हैदरअली ने इस बात का भी हुकुम दे दिया कि कम्पनी का हर अफ़सर और सिपाही, सिवाय हथियारों, गोले बारूद, घोड़ों और उस तमाम माल के जो इंगलिस्तान के बादशाह या अंगरेज़ कम्पनी या नवाब मोहम्मदअली का है, बाक़ी सब निजी सम्पत्ति अपने साथ ले जा सकता है। क़िले के पराजित अंगरेज़ सेनापति ने जब हैदरअली से निवेदन किया कि रसद इत्यादि का बहुत सा सामान मैंने अपने निजी रुपए से ख़रीदा है, तो उदार हैदरअली ने उसे अपने ख़ज़ाने से उस सामान का दाम तक दिलवा दिया।

अंगरेज़ों के व्यवहार के साथ तुलना

एक ओर हैदरअली का व्यवहार पराजित शत्रु के साथ इतना उदार था, दूसरी ओर अंगरेज़ों ने इसी युद्ध में हैदरअली के एक छोटे से क़िले धर्मपुरी पर क़ब्ज़ा करते हुए, उस समय जब कि सुलह का

सफ़ेद झंडा फ़सील पर गड़ा हुआ था, किले में घुस कर वहाँ के किलेदार, उसके बालबच्चों और एक एक सिपाही को जो हथियार रख चुके थे कत्ल कर दिया, और यह सब अंगरेज़ सेनापति की आज्ञा से किया गया।

कावेरीपट्टम के बाद हैदरअली ने अपने बाकी किलों को भी एक एक कर अंगरेज़ों से विजय किया। इन तमाम लड़ाइयों और मोहासरों का बयान करना यहाँ पर अनावश्यक है। इन लड़ाइयों में जनरल स्मिथ की सेना को काफ़ी ज़िल्लत के साथ पीछे भागना पड़ा। जगह जगह उसे अपना माल असबाब पीछे छोड़ देना पड़ा, अपनी तोपें और गोला बारूद तालाबों और नदियों में फेंक देना पड़ा और कहीं कहीं अपने मुर्दों तक को बिना दफ़नाए मैदान में छोड़ कर भागना पड़ा। किन्तु अपनी तमाम लड़ाइयों में हैदर का यह एक नियम था कि वह आगे बढ़ने से पहले शत्रु के मुर्दों को जमा करके यथा विधि दफ़ना दिया करता था।

टीपू का मद्रास पर हमला

हैदर के बड़े बेटे फ़तहअली टीपू की आयु इस समय १८ वर्ष की थी। टीपू अपने बाप के साथ मैदान में मौजूद था। हैदर स्वयं जनरल स्मिथ को अपनी सरहद से बाहर निकालने के लिए पीछे रहा और टीपू को उसने पाँच हज़ार सवार देकर एक दूसरे रास्ते मद्रास की ओर भेजा। टीपू अपनी सेना सहित इस तेज़ी के साथ आगे बढ़ा कि मद्रास का गवरनर और उसकी

कौन्सिल टीपू को अचानक मद्रास के सामने देखकर घबरा गए। लिखा है कि जिस दिन प्रातःकाल टीपू के सवार मद्रास के पास पहुँचे, गवरनर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर और नवाब मोहम्मद अली मद्रास के क़िले से कुछ दूर कम्पनी के एक बाग़ीचे में हवा खा रहे थे और दरख़्तों के नीचे खाना सजा हुआ था। इन लोगों को इस तेज़ी से भागना पड़ा कि घबराहट में गवरनर की तलवार और उसकी टोपी तक रह गई। सौभाग्यवश एक छोटा सा जहाज़ उस समय सामने था। गवरनर और उसके अंगरेज़ साथियों ने भागकर इस जहाज़ में पनाह ली। एक यूरोपियन इतिहास लेखक लिखता है कि यदि वह जहाज़ मौक़े पर न होता तो गवरनर और उसके साथियों को टीपू के सवारों ने अवश्य क़ैद कर लिया होता।* नवाब मोहम्मदअली अपने तेज़ घोड़े पर सवार होकर सड़क के रास्ते मद्रास से भाग निकला।

टीपू ने मद्रास के क़िले से पाँच मील दूर सेंएट टॉमस की पहाड़ी पर क़ब्ज़ा कर लिया और आस पास के अंगरेज़ी इलाक़े को अपने अधीन कर लिया।

हैदरअली के साथ निज़ाम का विश्वासघात

इस बीच त्रिनमल्ली नामक स्थान पर हैदरअली और जनरल स्मिथ का मुक़ाबला हुआ। निज़ाम की सेना अभी तक हैदर की सेना के साथ साथ थी, किन्तु निज़ाम और अंगरेज़ों में गुप्त बातचीत हो चुकी थी। ऐन इस मौक़े पर अंगरेज़ी सेना

* *History of Hyder Shah*, By M. M. D. L. T., p. 192

पर हमला करने के बहाने निज़ाम ने अपनी तमाम सेना को हैदर और अंगरेज़ों की सेना के बीच में लाकर खड़ा कर दिया। थोड़ी ही देर बाद निज़ाम ने अपनी सेना को इस बुरी तरह पीछे की ओर भगाया कि हैदर की तमाम सेना में खलबली मच गई। हैदरअली को अब पूरी तरह निज़ाम के विश्वासघात का पता चल गया। उसे मजबूर होकर अपनी सेना कुछ दूर पीछे हटा लेनी पड़ी। फिर भी हैदर के एक सिपाही को भी गिरफ़्तार करने का अंगरेज़ों को मौक़ा न मिल सका और न जनरल स्मिथ को आगे बढ़कर हैदर पर हमला करने का साहस हुआ।

हैदर के इस तरह पीछे हटने को उसकी पराजय बताकर अंगरेज़ों ने ख़ूब बढ़ा कर इस ख़बर को दूर दूर तक फैला दिया।

यहाँ पर युद्ध के प्रसङ्ग से हटकर हम हैदरअली और उसकी बूढ़ी माँ के सम्बन्ध की एक घटना बयान करना चाहते हैं। हैदर की माँ उस समय लड़ाई के मैदान से क़रीब दो सौ मील दूर हैदरनगर के महल में थी। बेटे की इस पराजय की ख़बर उसके कानों तक पहुँची। वह फ़ौरन पालकी में बैठकर अपने बेटे को हिम्मत दिलाने के लिए हैदरनगर से चल पड़ी। बरसात के दिन, उस ज़माने की यात्रा के कष्ट और उस पर लड़ाई का मैदान। फिर भी रात दिन चलकर बूढ़ी माँ चन्द रोज़ के अन्दर ही अपने बेटे की सेना के निकट आ पहुँची। ख़बर पाते ही हैदर अपने छोटे बेटों सहित स्वागत के लिए आगे बढ़ा। माँ के साथ क़रीब एक हज़ार सिपाही घोड़ों और ऊँटों पर,

हैदरअली की माँ

और इनके अलावा पालकी के आगे आगे दो सौ स्त्रियाँ बुरक़े पहने हुए घोड़ों पर सवार थीं। कहा जाता है कि माँ के ख़ेमे में उतरते ही हैदर ने हैरान होकर पूछा—"आप इतना कष्ट उठाकर इस समय यहाँ कैसे आईं?" बूढ़ी माँ ने उत्तर दिया—"बेटा, मैं यह देखना चाहती थी कि तुम अपनी पराजय को कितने धैर्य के साथ सह सकते हो।" हैदर ने जवाब में अपनी हिम्मत दिखलाते हुए माँ को विश्वास दिलाया कि वह पराजय कोई पराजय ही न थी। इस पर माँ ने उत्तर दिया—"ख़ूब, बहुत ख़ूब, अगर यही बात है तो ख़ुदा का शुक्र है और मैं फ़ौरन् लौट जाऊँगी, ताकि मेरे रहने से तुम्हारे काम में रुकावट न पड़े।" अपने पहुँचने के ठीक तीसरे रोज़ हैदर की बूढ़ी माँ बेटे को दुआ देकर हैदरनगर की ओर लौट गई। निस्सन्देह इस प्रकार की वीर माता ही हैदर जैसे वीर पुत्र को जन्म दे सकती थी।

टीपू के साथ छल

टीपू मद्रास के क़िले से केवल एक कोस की दूरी पर था। उस समय के उल्लेखों से ज़ाहिर है कि टीपू के लिए उस समय मद्रास विजय कर सकना कुछ भी मुश्किल न था। जनरल स्मिथ ने त्रिनमल्ली की विजय के बाद टीपू को पीछे हटाने की एक ख़ासी सुन्दर चाल चली। उसने एक साँडनी सवार फ़ौरन मद्रास की ओर भेजा। इस सवार ने टीपू की सेना में पहुँच कर यह ज़ाहिर किया कि मुझे सुलतान हैदरअली ने अपने बेटे की ख़बर लेने के लिए भेजा है। टीपू को उसने त्रिनमल्ली की पराजय की ख़बर दी और कहा कि सुलतान का हुकुम

है कि आप फ़ौरन लौटकर सुलतान से जा मिलें। इस छल के बाद इसी दूत ने टीपू की सेना से निकल कर आगे बढ़कर मद्रास के अंगरेज़ों को विजय की सूचना दी, जिसको झूठी खुशी में एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले से छोड़ी गईं।

नातजरुबेकार टीपू ने धोखे में आकर अपने सेनापतियों से सलाह की। सब की सलाह यही हुई कि इस हालत में मद्रास के क़िले का मोहासरा करना ठीक नहीं। टीपू अपनी सेना सहित पीछे लौटकर पिता से आ मिला।

माँ के जाने के दूसरे दिन हैदरअली वनियमवाड़ी के क़िले की ओर बढ़ा। वनियमवाड़ी का क़िला भी एक निहायत मजबूत क़िला था, किन्तु हैदर की चन्द घन्टे की गोलाबारी ने क़िले की अंगरेज़ी तोपों को ठण्डा कर दिया। क़िले के अंगरेज़ अफ़सर ने सफ़ेद झण्डा गाड़ दिया। हैदर की सेना ने क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। हैदर ने क़िले के तमाम अंगरेज़ अफ़सरों और सिपाहियों को उनसे यह वादा कराकर छोड़ दिया कि हम लोग कम से कम एक साल तक किसी लड़ाई में आपके ख़िलाफ़ न लड़ेंगे।

वनियमवाड़ी में हैदर की विजय

इस क़िले की रक्षा का उचित प्रबन्ध करके हैदरअली आम्बूर की ओर बढ़ा। आम्बूर के मोहासरे में हैदरअली का एक प्रसिद्ध मित्र पीरज़ादा ख़ाकीशाह घायल होकर मर गया। यह पीरज़ादा एक मुसलमान फ़क़ीर था, जो अक्सर हैदर की सेना के साथ रहा करता था।

पीरज़ादा ख़ाकी शाह

उसका मुख्य काम यह था कि वह हर विजय के बाद यह देखने के लिए घर घर घूमता फिरता था कि हैदर के सिपाही सिवाय नक़दी और अस्त्र शस्त्र ले लेने के प्रजा के साथ किसी तरह का अत्याचार न करें। इस सराहनीय प्रयत्न में ही पीरज़ादा ख़ाकी शाह की जान गई। क़िले के अन्दर की अंगरेज़ी सेना ने अपने कारतूस एक तालाब के अन्दर फेंक दिए और शस्त्रागार को आग लगा दी। फिर भी हैदर को इस क़िले के अन्दर अंगरेज़ों की १८ पीतल की तोपें, तीन हज़ार बन्दूकें और बहुत कुछ गोला बारूद और रसद का सामान मिला।

विश्वासघात के पक्ष में ईसाई पादरियों का फ़तवा

जनरल स्मिथ की सेना अब हार पर हार खाकर पीछे हटती जा रही थी। उसकी सहायता के लिए करनल वुड एक नई सेना सहित बंगाल से रवाना किया गया। इसी समय के निकट हैदर की सेना में विश्वासघात के बीज बोने का अंगरेज़ों ने एक ख़ासा षड्यन्त्र रचा। अनेक यूरोपियन उस ज़माने में यूरोप से आकर अनेक हिन्दुस्तानी नरेशों की फ़ौजों में नौकरियां कर लेते थे। हैदर की सेना में भी अनेक यूरोपियन कई ऊँचे पदों पर नियुक्त थे। कई कम्पनियाँ फ़्रांसीसी सिपाहियों की भी उसकी सेना में शामिल थीं। अंगरेज़ों ने ईसाई पादरियों के ज़रिए हैदर के इन तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को फोड़ने की कोशिश की। इस षड्यन्त्र की कुछ भनक हैदर के कानों तक पहुँच गई। उसने अपने तमाम यूरोपियन मुलाज़िमों को जमा करके उनकी तनख़ाहें दिलवा

दीं और उनसे कह दिया कि तुम लोग अगर चाहो तो नौकरी छोड़ कर जा सकते हो। किन्तु उन सब ने 'इंजील और सलीब हाथ में लेकर' हैदर की वफ़ादारी की क़सम खाई। वे सब फिर से नौकर रख लिए गए। अंगरेज़ों के जासूस जब फिर इन लोगों के पास पहुँचे तो अधिकांश यूरोपियन सिपाहियों ने यह एतराज़ किया कि हम 'इंजील और सलीब हाथ मे लेकर' सुलतान को वफ़ादारी की क़सम खा चुके हैं। इस पर अंगरेज़ों ने यूरोपियन ईसाई पादरियों के दस्तख़त से एक फ़तवा लिखवा कर उसकी नक़लें हैदर के यूरोपियन नौकरों में बटवा दीं, जिसमें लिखा था कि—"जो क़समें 'इंजील और सलीब लेकर' भी मुसलमानों के सामने खाई जावें, ईसाई उनके पालन करने के लिए बाध्य नहीं हैं।" एक फ़्रांसीसी लेखक, जो उस समय हैदर की सेना में मौजूद था, लिखता है कि इस षड्यन्त्र को सफल करने के लिए अंगरेज़ों ने गुप्त हत्या और जालसाज़ी से भी काम लिया। अंगरेज़ी जासूसों के पास हैदर के फ़्रांसीसी सिपाहियों को फोड़ने के लिए इस समय पुदुदुचरी के फ़्रांसीसी गवरनर का एक जाली ख़त भी मौजूद था। इस पर भी हैदर के यूरोपियन मुलाज़िमों में से, जिनमें अधिकांश फ़्रांसीसी थे, बहुत कम ने हैदर के साथ विश्वासघात किया। जिन यूरोपियन पादरियों ने ऊपर लिखे फ़तवे पर दस्तख़त किए उनमें से अनेक हैदर की प्रजा थे और हैदर ने उनके साथ अनेक रिआयतें कर रक्खी थीं।

इस समय तक यानी सन् १७६८ के अन्त से पहले पहले हैदर

ने अपना वह तमाम इलाक़ा, जो थोड़े दिनों के लिए अंगरेज़ों के हाथों में चला गया था, फिर से विजय कर लिया।

किन्तु जिस समय हैदर अपनी तमाम सेना सहित मैसूर राज की पूर्वी सरहद पर था, अंगरेज़ों ने एक नई सेना पीछे की ओर से हैदरअली के पच्छिमी इलाके मंगलोर पर हमला करने के लिए भेज दी। इस सेना ने हैदरअली की ग़ैर मौजूदगी में एक बार आसानी से मंगलोर पर क़ब्ज़ा कर लिया। मंगलोर विजय की ख़ुशी में फिर एक सौ एक तोपें मद्रास के क़िले से छोड़ी गईं। हैदरअली को अब दो ओर से अंगरेज़ों का मुक़ाबला करना पड़ा। सामने की ओर जनरल स्मिथ और करनल वुड की सेनाएँ और पीछे की ओर बम्बई की सेना।

मंगलोर के पतन की ख़बर पाते ही हैदर ने अपने बेटे टीपू को तीन हज़ार सवार देकर मंगलोर की ओर भेजा। टीपू के पीछे पीछे हैदर खुद थोड़ी सी सेना लेकर मंगलोर की ओर रवाना हुआ। बाक़ी सेना उसने अपने सम्बन्धी मख़दूम के अधीन स्मिथ और वुड के मुक़ाबले के लिए पूर्वी सरहद पर छोड़ दी।

जनरल स्मिथ की चाल और उसका जवाब

जनरल स्मिथ और करनल वुड ने हैदर की ग़ैर हाज़िरी से पूरा लाभ उठाया। जनरल स्मिथ ने एक छोटा सा क़िला इस समय एक बड़ी सुन्दर चाल द्वारा मख़दूम के आदमियों से ले लिया। स्मिथ ने अपने एक हरकारे को मख़दूम के हरकारों की सी पोशाक पहनाई। उसके हाथ मख़दूम का एक जाली पत्र क़िलेदार

के पास भेजा, जिसमें लिखा था कि—"अंगरेज़ी सेना तुम्हारे क़िले पर हमला करने वाली है, इसलिए तुम्हारी मदद के लिए पाँच सौ सिपाही आज शाम को भेजे जावेंगे, क़िले का फाटक खुला रखना।" चाल काम कर गई और उसी दिन शाम को कम्पनी के वरदी बदले हुए सिपाहियों ने जाकर क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया। मख़दूम को जब यह बात मालूम हुई तो उसने बदला लेने का इरादा किया। चन्द रोज़ के अन्दर ही उसने अपने कुछ सवारों को अंगरेज़ी वर्दियाँ पहना कर क़िले के सामने भेजा। इन सवारों में से एक ने, जो इत्तफ़ाक़ से अंगरेज़ी सेना का भागा हुआ एक अंगरेज़ सिपाही था, आगे बढ़ कर क़िले के अंगरेज़ अफ़सर से चिल्लाकर कहा—"हैदर की सेना हम लोगों का पीछा कर रही है। मेरी सेना के कमाण्डर की प्रार्थना है कि आप फाटक खोल दीजिये, ताकि हम सब लोग भीतर आ जावें।" यह चाल भी चल गई और मख़दूम की सेना ने फिर से उस क़िले के ऊपर क़ब्ज़ा कर लिया।

स्मिथ और वुड दोनों की सेनाएँ मिलकर अब हैदर की ग़ैर हाज़िरी में बंगलोर विजय करने के इरादे से आगे बढ़ीं। राजधानी श्रीरंगपट्टन के बाद पूरब में बंगलोर और पच्छिम में मंगलोर ही मैसूर राज के प्रधान नगर थे।

मंगलोर में टीपू की शानदार विजय

उधर मंगलोर की प्रजा ने टीपू का बड़े उल्लास के साथ स्वागत किया। बम्बई की अंगरेज़ी सेना और टीपू की सेना में एक भयंकर लड़ाई हुई जिसमें टीपू ने पूरी विजय प्राप्त की। अंगरेज़ सेनापति,

४६ अंगरेज़ अफ़सरों, ६८० अंगरेज़ सिपाहियों और ६,००० से ऊपर कम्पनी के हिन्दोस्तानी सिपाहियों को टीपू ने इस लड़ाई में क़ैद कर लिया और उनके तमाम अस्त्र शस्त्र और सामान ज़ब्त कर लिया। मंगलोर की यह लड़ाई वास्तव में अंगरेज़ों और हैदर दोनों के लिए बड़े मार्के की लड़ाई थी। केवल तीस दिन अंगरेज़ी सेना के क़ब्ज़े में रहने के बाद मंगलोर का क़िला और नगर टीपू के हाथों में आ गया। नौजवान बेटे की इस शानदार विजय के एक दिन बाद हैदर अपनी सेना सहित मंगलोर पहुँचा। फ़तह की ख़बर सुनते ही सुलतान हैदर ने टीपू को छाती से लगा लिया और मारे ख़ुशी के उसकी आँखों में आँसू आ गए।

ब्राह्मण ईसाई

मङ्गलोर में पुर्तगाली ईसाइयों के तीन गिर्जे थे। ये यूरोपियन पादरी उस समय की प्रथा के अनुसार अपने को "ब्राह्मण ईसाई" कहा करते थे। ब्राह्मणों के से कपड़े पहनते थे, गले में जनेऊ डालते थे, निरामिष भोजन करते थे, खड़ाऊँ पहनते थे और ब्राह्मणों का सा सब आचार विचार रखते थे। इस चाल से उन्हें हिन्दू जनता को ईसाई बनाने में आसानी होती थी। ये लोग हैदर की प्रजा थे। हैदर ने इनके साथ अनेक रिआयतें कर रक्खी थीं। फिर भी अंगरेज़ों के मङ्गलोर पर हमला करते समय इन तीनों गिरजों के यूरोपियन पादरियों ने हैदर के ख़िलाफ़ उसके शत्रुओं को मदद दी। हैदर को जब इसका पता लगा तो उसने उनका माल असबाब ज़ब्त कर लिया और उन्हें

उस समय तक के लिए क़ैद कर दिया, जब तक कि हैदर और अंगरेज़ों में सुलह न हो गई।

मङ्गलोर की विजय के बाद हैदर वहाँ की हिफ़ाज़त का उचित प्रबन्ध कर स्वयं टीपू तथा सेना सहित बङ्गलोर की रक्षा के लिए पीछे लौट आया। इस बार हैदर ने अपनी सेना के तीन हिस्से किए और वह तीन रास्तों से आगे बढ़ा। जनरल स्मिथ के लिए बङ्गलोर विजय करने का इरादा स्वप्न मात्र साबित हुआ। हैदर की सेना के लौटते ही जनरल स्मिथ और करनल वुड की सेना को बुरी तरह हैदर की सेना के आगे आगे भागना पड़ा। अपने तमाम इलाक़े से अंगरेज़ी सेना को फिर एक बार बाहर निकाल देने के बाद हैदर की तीनों सेनाएँ अब अंगरेज़ों और नवाब करनाटक के इलाक़ों में बढ़ती चली गईं। हैदरअली की सेना के मुक़ाबले में कम्पनी की सेना के कहीं भी पैर न जम सके। नवाब मोहम्मदअली बेहद डर गया। बढ़ते बढ़ते हैदर की सेना मद्रास के निकट पहुंचने लगी। मद्रास का अंगरेज़ गवरनर और उसकी कौन्सिल के मेम्बर घबरा गए।

हैदरअली मद्रास के फाटक पर

मद्रास की कौन्सिल ने अब कप्तान ब्रूक को हैदर के पास सुलह के लिए भेजा। हैदर को मौक़ा मिला कि जो व्यवहार चन्द महीने पहले अंगरेज़ों ने हैदर के दूत के साथ किया था वही अब हैदर अंगरेज़ दूत के साथ करे। हैदर ने कप्तान ब्रूक को उत्तर दिया—

"मैं मद्रास के फाटक पर आ रहा हूँ और गवरनर और उसकी कौन्सिल को जो कुछ कहना होगा वहीं आकर सुनूँगा।"

अंगरेज़ों का भयभीत हो जाना

कप्तान ब्रक निराश होकर मद्रास लौट आया। हैदर ने अपना तमाम भारी सामान और माल असबाब मैसूर भेज दिया और ख़ुद सेना सहित मद्रास की ओर बढ़ा। हैदर की तमाम सैन्य यात्राएँ अत्यन्त आश्चर्यजनक होती थीं। विशाल सेनाओं सहित पूरब से पच्छिम और पच्छिम से पूरब सैकड़ों मील की यात्राएँ चन्द दिनों के अन्दर तय करना और फिर बिना आराम किए घबराई हुई अँगरेज़ी सेना पर जा टूटना उसके लिए एक मामूली बात थी। इस बार साढ़े तीन दिन के अन्दर उसने १३० मील का फ़ासला तय किया और एक दिन अचानक मद्रास के क़िले से दस मील की दूरी पर दिखाई दिया। अंगरेज़ भय से काँप उठे। हैदर की सेना और मद्रास के बीचों बीच सेएट टॉमस की पहाड़ी थी। यह वही जगह थी जिस पर टीपू एक बार क़ब्ज़ा कर चुका था। अंगरेज़ों ने अब बड़ी फुरती के साथ इस पहाड़ी की रक्षा का इन्तज़ाम किया और वहाँ पर अपनी सेना जमा की, ताकि हैदर आसानी से मद्रास तक न पहुँचने पावे। किन्तु अंगरेज़ी सेना अभी सेएट टॉमस पर जमने भी न पाई थी कि हैदर अपनी विशाल सेना सहित दूर का चक्कर देकर मद्रास क़िले के दूसरी ओर के फाटक पर आ पहुँचा। अंगरेज़ी सेना क़िले के दूसरी ओर फ़सील से दो तीन मील के फ़ासले पर थी। अंगरेज़ों के भय की उस समय कोई

सीमा न थी। हैदर यदि चाहता तो उसी दम बड़ी आसानी से मद्रास पर क़ब्ज़ा कर सकता था और कम से कम दक्खिन भारत से अंगरेज़ों के रहे सहे प्रभाव का ख़ात्मा कर सकता था। किन्तु उसने कप्तान ब्रूक के साथ वादा कर लिया था कि मद्रास के फाटक पर आकर मैं सुलह की बातचीत सुन लूँगा। पूर्वीय मर्यादा के अनुसार उसने अपने वचन का पालन किया। उसने मद्रास के अंगरेज़ गवरनर को अपने पहुँचने की सूचना दी। गवरनर ने तुरन्त डूप्रे और बौशियर दो अंगरेज़ अफ़सरों को सुलतान हैदरअली से सुलह करने के लिए भेजा। इन दोनों अंगरेज़ों में डूप्रे आइन्दा के लिए मद्रास का गवरनर नियुक्त हो चुका था और बौशियर उस समय के गवरनर का सगा भाई था।

हैदर ने बड़े आदर के साथ अंगरेज़ दूतों का स्वागत किया और उनकी प्रार्थना के अनुसार सेण्ट टॉमस की पहाड़ी पर अपना ख़ेमा लगवाया। सुलह की शर्तें लिखी जाने लगीं। हैदरअली की उस समय की स्थिति को बयान करते हुए अंगरेज़ इतिहास लेखक करनल मालेसन लिखता है :—

"वास्तव में हैदर उस समय सारी स्थिति पर हावी था। मद्रास का देशी नगर और अंगरेज़ों के मकान सब उसकी दया पर थे। उसके आने से सब के ऊपर इतना आतङ्क छा गया था कि मद्रास का क़िला भी उसके हाथों में आ जाता। उसकी स्थिति इस समय ऐसी थी कि वह जो शर्तें चाहता, अंगरेज़ों से मंज़ूर करा सकता था और वास्तव में उसने ऐसा ही किया भी।"*

* "Hyder, in fact, was master of the situation. The native town and

सीरा के सूबेदार और बादशाह तीसरे जॉर्ज में सन्धि

१५ अप्रैल सन् १७६६ को अंगरेज़ों, सुलतान हैदरअली और अरकाट के नवाब मोहम्मदअली के दरमियान दो अलग अलग सुलहनामे लिखे गए और हर सुलहनामे पर तीनों के दस्तख़त हुए।

अब तक की सन्धियाँ ईस्ट इण्डिया कम्पनी और भारतीय नरेशों के बीच हुआ करती थीं। हैदरअली ने कम्पनी के किसी तरह के राजनैतिक अस्तित्व ही को स्वीकार करने से इनकार किया। इसलिए इनमें पहला सुलहनामा इंगलिस्तान के बादशाह के नाम से, जिस तरह हैदर ने चाहा उस तरह लिखा गया। इस सन्धि में तय हुआ कि इंगलिस्तान के बादशाह तीसरे जॉर्ज और सीरा प्रान्त के सूबेदार हैदरअली ख़ाँ और इन दोनों की प्रजा के बीच सदा अमन और मित्रता क़ायम रहेगी, इत्यादि। हैदरअली का जो कुछ इलाक़ा युद्ध के शुरू में अंगरेज़ों ने ले लिया था और जिसे हैदरअली फिर से विजय कर चुका था, वह सब हैदरअली के पास रहा और अंगरेज़ों का जो कुछ इलाक़ा हाल में हैदरअली ने जीत लिया था, वह उसने अंगरेज़ों को लौटा दिया। केवल कारूड़ का प्रान्त, जो अंगरेज़ों के दोस्त अरकाट के नवाब मोहम्मदअली के राज में शामिल था, अंगरेज़ों ने उससे लेकर सदा के लिए हैदरअली की नज़र कर दिया। युद्ध के

---

the private houses of Madras were at his mercy In the panic which his arrival had caused, the fort itself might have fallen He was in a position to dictate his own terms, and, virtually, he did dictate them *The Decisive Battles of India*, By Colonel Malleson, p 230

हैदर अली

[एम० एम० डी० एल० टी० कृत फ्रेंच पुस्तक के अंगरेज़ी संस्करण "हिस्ट्री आफ़ हैदरशाह" से]

ख़र्च और जुरमाने के तौर पर एक बहुत बड़ी रक़म अंगरेज़ों ने हैदरअली को भेंट की और यह तय हुआ कि भविष्य में यदि कोई तीसरा हैदरअली पर हमला करेगा तो अंगरेज़ हैदरअली की मदद करेंगे और यदि कोई अंगरेज़ों पर हमला करेगा तो हैदरअली उनको मदद करेगा।

हैदरअली और अरकाट के नवाब में सन्धि

दूसरे सुलहनामे में, जो हैदरअली और मोहम्मदअली के दरमियान था, यह तय हुआ कि मोहम्मदअली अरकाट का नवाब बना रहे; किन्तु आइन्दा से अरकाट का नवाब मैसूर का सामन्त समझा जावे, छै लाख रुपए सालाना बतौर ख़िराज मैसूर दरबार को अदा किया करे, और पहले साल का ख़िराज पेशगी इसी समय अदा किया जावे।

दोनों सन्धियों के पालन की ज़िम्मेदारी अंगरेज़ों ने अपने ऊपर ली और इन सब बातों के अलावा हैदरअली के एक जहाज़ के बदले में, जो उन्होंने युद्ध के शुरू में धोखे से बम्बई में ले लिया था, अंगरेज़ों ने एक नया युद्ध का जहाज़ पचास तोपों सहित हैदर को भेंट करने का वादा किया।

इस युद्ध ने साबित कर दिया कि हैदर की वीरता, उसका युद्ध कौशल और उसकी उदारता तीनों ही ऊँचे दर्जे की थीं और अंगरेज़ किसी तरह भी उसके मुक़ाबले में न ठहर सकते थे।

दक्खिनी भारत में अंगरेज़ों की अब काफ़ी दुर्दशा हो चुकी

थी। एक फ्रांसोसी इतिहास लेखक लिखता है कि इस विजय के अवसर पर हैदर ने अंगरेज़ों से कहकर मद्रास के सेण्ट जॉर्ज क़िले के सदर फाटक पर एक चित्र बनवाया, जिसमें हैदर एक शामियाने के नीचे तोपों के ढेर के ऊपर बैठा हुआ है, पीछे की ओर सेण्ट जॉर्ज का क़िला है जिसकी फ़सील पर गवरनर और उसकी कौन्सिल के सब अंगरेज़ मेम्बर दोज़ानू बैठे हुए हैदर की ओर अपने हाथ बढ़ा रहे हैं। अंगरेज़ दूत डूप्रे और बौशियर दोनों हैदर के सामने ज़मीन पर दोज़ानू बैठे हैं। डूप्रे के नाक की जगह हाथी की सी सूँड बनी हुई है, हैदर उसकी सूँड को पकड़े हुए है और उसमें से अशरफ़ियाँ हैदर के सामने खनाखन ज़मीन पर गिर रही हैं। दूसरी ओर पराजित अंगरेज़ सेनापति जनरल स्मिथ सन्धि पत्र हाथ में लिए हुए अपने हाथ से अपनी तलवार के दो टुकड़े कर रहा है।

मद्रास क़िले के फाटक पर एक चित्र

इस सन्धि का यहाँ तक असर हुआ कि इंगलिस्तान में उसकी ख़बर पहुँचते ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हिस्सों की दर एकदम गिर कर ४० फ़ी सदी रह गई। युद्ध के दिनों में ही जैसे जैसे हैदर और टीपू की विजयों की ख़बरें इंगलिस्तान पहुँचती जाती थीं, कम्पनी के हिस्सों की दर गिरती जाती थी। इस पर डाइरेक्टरों ने बार बार मद्रास के अधिकारियों पर ज़ोर दिया कि हैदर के साथ सुलह कर ली जावे। किन्तु अब सुलह हो जाने पर उन्हीं डाइरेक्टरों ने मद्रास

कम्पनी के हिस्सों की दर का गिरना

के गवरनर को लिखा कि जिस तरीक़े से आपने सन्धि की है उससे—

"आपने हिन्दोस्तान में रहने वाले लोगों के लिए यह समझने की बुनियाद डाल दी है कि वे जब उनका जी चाहे बेखटके कम्पनी की हतक कर सकते हैं।"

दोनों सन्धि पत्रों पर कम्पनी की मोहरें लग चुकी थीं, किन्तु इसके बाद से ही अंगरेज़ों ने सन्धि को तोड़ने के मौक़े ढूंढने शुरू कर दिए।

थोड़े दिनों बाद मराठों ने चौथी बार मैसूर पर हमला किया। हैदर ने सन्धि की शर्तों के अनुसार अंगरेज़ों से मदद चाही। ऐन मौक़े पर मद्रास कौन्सिल ने मदद देने से इनकार कर दिया। मजबूर होकर हैदर ने कुछ धन और अपना कुछ इलाक़ा मराठों को देकर उनसे पीछा छुड़ाया। किन्तु अंगरेज़ों की नीयत का उसे पता चल गया।

मराठों का मैसूर पर हमला और अंगरेज़ों का सन्धि को तोड़ना

इसके बाद हैदर ने कुर्ग के राजा को, जो पहले मैसूर का बाजगुज़ार रह चुका था और अब बाग़ी हो गया था, युद्ध द्वारा फिर से अपने अधीन किया।

हैदर को अपना जो इलाक़ा मराठों को देना पड़ गया था वह उसको नज़रों में खटक रहा था। वह पूना दरबार की अवस्था की पूरी ख़बर रखता था। जब उसे पेशवा नारायनराव की हत्या और राघोबा और अंगरेज़ों की साज़िशों की ख़बर मिली तो उसने इस

इलाक़े को मराठों से वापस लेने के लिए अपने बेटे टीपू को सेना सहित भेजा। टीपू ने वह सारा इलाक़ा फिर मराठों से विजय कर लिया। इसके बाद सन् १७७८ में छै साल के लिए मराठों और हैदर में सन्धि हो गई।

अंगरेज़ों और हैदर के दरमियान जो सन्धि हुई थी उसका उल्लंघन हैदर पर मराठों के हमले के समय अंगरेज़ कर ही चुके थे। दूसरी सन्धि मोहम्मदअली और हैदर के दरमियान थी। उसके पालन की ज़िम्मेदारी भी अंगरेज़ों ने अपने ऊपर ली थी। किन्तु मोहम्मदअली का अंगरेज़ों के पंजे से निकल कर मैसूर का बाजगुज़ार हो जाना अंगरेज़ों के लिए बहुत बुरा था। इसलिए सन्धि के बाद उन्होंने अपने वादे को पूरा करने के बजाय नवाब मोहम्मदअली को हैदरअली के ख़िलाफ़ भड़काए रक्खा। मैसूर की अन्य सामन्त रियासतों को भी उन्होंने अब हैदरअली के ख़िलाफ़ भड़काना शुरू किया। इनमें एक छोटी सी रियासत चित्तलद्रुग की थी। अंगरेज़ों ने वहाँ के राजा को भड़काकर उससे हैदर के ख़िलाफ़ बग़ावत करवा दी। हैदर ने चित्तलद्रुग पर हमला करके राजा को फिर से अपने अधीन कर लिया। इस लड़ाई में ही हैदर ने अंगरेज़ों की बेवफ़ाई का पूरा परिचय पाकर खुले एलान कर दिया कि मैं अंगरेज़ी इलाक़े पर हमला करने वाला हूँ। उसने फिर एक बार दक्खिन के अन्दर मुग़ल दरबार के मुख्य नायब निज़ाम से मदद की प्रार्थना की। निज़ाम ने फिर मदद का वादा किया और फिर दूसरी बार ऐन मौक़े पर हैदर के साथ दग़ा की।

अब वह समय आया जब कि नाना फ़ड़नवीस ने अंगरेज़ों की चालों और उनसे देश की हानि को अच्छी तरह समझ कर सन् १७८० में अपना एक दूत गनेशराव हैदर के पास मेल करने के लिए भेजा। हैदर को भी अंगरेज़ों के चरित्र का काफ़ी अनुभव हो चुका था। हैदर और नाना फ़ड़नवीस दोनों में ख़ास समझौता हो गया। 'चौथ' की उस रक़म को, जो मैसूर दरबार से पेशवा दरबार को मिला करती थी और जिस पर मराठों और हैदर में अनेक बार झगड़े हो चुके थे, आइन्दा के लिए नाना ने बहुत कम कर दिया। हैदर का जो इलाक़ा पहले मराठों ने ले लिया था और हाल में टीपू ने मराठों से विजय किया था उसे पेशवा दरबार ने हैदर ही का इलाक़ा स्वीकार कर लिया, और हैदर ने मराठों से वादा किया कि अंगरेज़ों को हिन्दोस्तान से बाहर निकालने में मैं आप लोगों की पूरी मदद करूँगा।

हैदर और नाना फ़ड़नवीस में अंगरेज़ों के ख़िलाफ़ सन्धि

अंगरेज़ों को जब इस सन्धि का पता चला और मालूम हुआ कि हैदर अंगरेज़ी इलाक़े पर फिर से हमला करने की तैयारी कर रहा है तो उन्होंने मद्रास से एक दूसरे के बाद दो दूत दोबारा सन्धि करने के लिए हैदर के दरबार में भेजे। किन्तु हैदर अंगरेज़ों को पूरी तरह समझ चुका था, उसने स्वीकार न किया। अंगरेज़ दूत ग्रे को उसने अंगरेज़ों की दग़ाबाज़ी पर लानत मलामत की और अपने यहाँ उसके साथ वह सलूक किया जो एक राजदूत के साथ नहीं, बल्कि किसी जासूस के साथ किया जाता है।

नवाब मोहम्मदअली अंगरेज़ों के ख़ास मददगारों में से था।

हैदरअली का करनाटक विजय करना

अंगरेज़ों के बहकाने से मोहम्मदअली ने हैदर अली के साथ सन्धि के पालन करने से इनकार कर दिया। करनाटक के मामले में अंगरेज़ बराबर दख़ल देते रहते थे, जिसकी वजह से करनाटक की प्रजा अत्यन्त दुखी और असन्तुष्ट थी। हैदरअली अपनी सेना सहित जुलाई सन् १७८० में सब से पहले करनाटक की ओर बढ़ा। करनाटक के क़िलों की रक्षा के लिए जगह जगह कम्पनी की सेनाएँ नियुक्त थीं। यह सब सेनाएँ करनल कॉस्बी के अधीन थीं। हैदरअली ने पहले की तरह अपनी सेना के कई हिस्से किए और एक हिस्सा अपने अधीन, दूसरा अपने बड़े बेटे टीपू के, तीसरा टीपू के छोटे भाई करीम साहब के और बाक़ी छोटे बड़े दस्ते अन्य योग्य हिन्दू और मुसलमान सेनापतियों के अधीन करनाटक के अनेक क़िलों को विजय करने के लिए अलग अलग दिशाओं में रवाना कर दिए। करनाटक की दुखी प्रजा ने बड़े हर्ष के साथ हर जगह हैदर का स्वागत किया। करनल कॉस्बी और नवाब मोहम्मदअली की सेनाओं से जगह जगह हैदर की लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें अंगरेज़ों को हार पर हार खानी पड़ी। नवाब मोहम्मदअली और उसके अंगरेज़ साथी हैदर की बढ़ती हुई बाढ़ को न रोक सके। क़िले पर क़िला और इलाक़े पर इलाक़ा हैदर के हाथों में आता चला गया। इनमें एक मुख्य महमूद बन्दर का क़िला था जिसे अब पोर्टो नोवो कहते हैं। महमूद बन्दर उन दिनों

भारत की विदेशी तिजारत का एक ज़बरदस्त केन्द्र था। दूर दूर के व्यापारी वहाँ पर जमा होते थे और करोड़ों रुपए का माल महमूद बन्दर की मण्डियों में भरा रहता था। अंगरेज़ी सेना महमूद बन्दर की रक्षा के लिए मौजूद थी। करीम साहब ने सेना सहित महमूद बन्दर पर हमला करके उसे अंगरेज़ी सेना से विजय किया। क़िले और नगर पर क़ब्ज़ा कर लिया और वहाँ से करोड़ों का माल लाकर अपने बाप के सामने पेश किया। इसी तरह की अनेक विजय टीपू और दूसरे सेनापतियों ने कीं। यहाँ तक कि स्वयं हैदरअली की सेना बढ़ते बढ़ते करनाटक की राजधानी अरकाट के निकट जा पहुँची और नवाब मोहम्मद अली को भाग कर मद्रास में पनाह लेनी पड़ी।

हैदरअली फिर मद्रास की ओर

१० अगस्त सन् १७८० को हैदर के कुछ सवार बढ़ते बढ़ते मद्रास के निकट फिर सेण्ट टॉमस की पहाड़ी पर जा पहुँचे। हैदर की मुख्य सेना अभी तक करनाटक की राजधानी के आसपास थी, तब भी मद्रास फिर ख़तरे में था। दो बड़ी सेनाएँ हैदर को परास्त करने के लिए तैयार की गई। इनमें पहली जनरल मनरो के अधीन मद्रास से रवाना हुई और दूसरी करनल बेली के अधीन गुण्टूर से राजधानी अरकाट की ओर चली। इनके अलावा तीन नई सेनाएँ गुण्टूर, पुदुचरी और त्रिचनापल्ली में तैयार की गई।

हैदर ने सबसे पहले टीपू को करनल बेली के मुक़ाबले के लिए गुण्टूर की ओर रवाना किया। मार्ग में १० सितम्बर सन् १७८०

को पूरिमपाक में टीपू और करनल बेली की सेनाओं में लड़ाई हुई। जनरल मनरो ने अपना एक दस्ता बेली की सहायता के लिए भेजा। उधर हैदर भी रातों रात चल कर टीपू की सहायता के लिए

पूरिमपाक की लड़ाई

आ पहुँचा। मैदान खूब गरम हुआ, टीपू की सेना ने सामने और पीछे दोनों ओर से अंगरेज़ी सेना पर हमला करके और उनके बीच में घुसकर अंगरेज़ी सेना का संहार शुरू किया। यहाँ तक कि अंगरेज़ी सेना का तोपख़ाना बेकार हो गया। अन्त में उनके तोपख़ाने में आग लग गई और अंगरेज़ी सेना को बुरी तरह हार खानी पड़ी। लिखा है कि इस लड़ाई में कम्पनी के हज़ारों भारतीय सिपाहियों के अलावा सात सौ अंगरेज़ मारे गए और दो हज़ार को जिनमें स्वयं करनल बेली और सर डेविड बेयर्ड जैसे अफ़सर शामिल थे हैदर ने गिरफ़्तार कर लिया। अंगरेज़ों के लिए पूरिमपाक की हार अत्यन्त अशुभसूचक और लज्जाजनक थी। हैदर ने अपनी राजधानी श्रीरङ्गपट्टन में दरियादौलत नामक बाग़ की दीवारों पर इस लड़ाई का एक विशाल सुन्दर चित्र खिंचवाया जो अभी तक मौजूद है।

जनरल मनरो इस समय अपनी सेना सहित गञ्जी स्थान में ठहरा हुआ था। विजयी हैदर ने गुराटूर की अंगरेज़ी सेना को ख़त्म करके गञ्जी की ओर रुख़ किया। हैदर अभी गञ्जी से कुछ मील दूर ही था कि करनल बेली की पराजय का हाल सुनकर और हैदर के सवारों को अपनी ओर

अरकाट की विजय

[illegible]

इस यात्रा और पूरिमपाक के संग्राम के शेष चित्र
जिल्द के अन्त में पाकेट में हैं

[सुपरिण्टेण्डेण्ट गवर्नमेण्ट गार्डेन्स मैसूर की कृपा द्वारा, दरिया दौलत बाग़ के तत्कालीन चित्र से]

बढ़ते हुए देख कर जनरल मनरो का साहस टूट गया। उसे हैदर के मुक़ाबले को हिम्मत न हो सकी। उसने अपनी तोपें और तमाम भारी सामान गञ्जी के एक बड़े भारी तालाब में फेंक दिया और स्वयं अपनी सेना सहित पीछे हटकर मद्रास में पनाह ली। हैदर ने पहले गञ्जी में पड़ाव किया, आसपास के कुछ क़िलों को फ़तह किया और फिर उस तमाम इलाक़े के शासन और रक्षा का उचित प्रबन्ध कर पीछे लौटकर राजधानी अरकाट का मोहासरा शुरू कर दिया।

तीन महीने तक अरकाट का मोहासरा जारी रहा। इस मोहासरे में दोनों ओर काफ़ी जानें गईं। हैदर का दामाद सय्यद हाफ़िज़ अली खाँ भी अरकाट ही के मैदान में काम आया। अन्त में हैदरअली की सेना ने अरकाट के क़िले और नगर दोनों पर क़ब्ज़ा कर लिया।

हैदरअली की उदारता

विजय के सवेरे हैदरअली ने अरकाट के बाज़ारों और गलियों में एलान करवा दिया कि नगर निवासियों के जान माल पर कोई किसी तरह का हमला न करे, कोई किसी ग़रीब को किसी तरह का कष्ट न दे और मैसूर की सेना का कोई सिपाही न किसी के धन को हाथ लगावे और न किसी स्त्री की ओर आँख उठाकर देखे।* अरकाट के बचे हुए अंगरेज़ों को उसने अपनी गारद के साथ हिफ़ाज़त से मद्रास भिजवा दिया। अपने एक आदमी मीर सादिक़

* Colonel W. Miles' *History of Hyder*, p. 395

को शहर और उसके आसपास के इलाक़े का सूबेदार नियुक्त कर दिया। शहर के अधिकांश कर्मचारियों को अपने अपने ओहदों पर बहाल रक्खा और किले की मरम्मत तथा रक्षा और नगर के शासन का उचित प्रबन्ध कर दिया।

हैदर की विजयों की एक विशेषता यह थी कि वह जिन इलाकों को फ़तह करता था वहाँ के क़िलों की मरम्मत, हिफ़ाज़त और शासन का प्रबन्ध करके आगे बढ़ता था। हैदर हर जगह इस बात का ख़ास इन्तज़ाम रखता था कि उसके सिपाही प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार न करें। वह अकसर विजय के बाद ग़रीबों, साधुओं और धार्मिक संस्थाओं में धन तक़सीम किया करता था। यही व्यवहार हैदर के अन्य सेनापतियों का होता था।

हैदर अली और टीपू की अनेक विजय

जिन अनेक स्थानों और क़िलों को अरकाट की विजय से पहले और उसके बाद, हैदर की सेना ने अंगरेज़ी सेना से एक दूसरे के बाद विजय किया उन सब का बयान यहाँ कर सकना नामुमकिन है। हैदर के सेनापति मीर मुइउद्दीन ने दस दिन के मोहासरे के बाद चितोर के क़िले को फ़तह किया और फिर चन्दरगिरि के क़िले को जीत कर नवाब मोहम्मदअली के भाई अब्दुलवहाब ख़ाँ को क़ैद किया। टीपू ने एक महीने के अन्दर महीमण्डलगढ़, कैलाशगढ़, सातगढ़ इत्यादि अनेक मज़बूत क़िले फ़तह किए। टीपू हर जगह अपने बाप के समान क़िले की पराजित सेना से

हथियार रखवा कर उन्हें आज़ाद छोड़ देता था और प्रजा के जान माल और उनकी स्त्रियों के सतीत्व की रक्षा का पूरा प्रबन्ध कर देता था।* आम्बूरगढ़ का क़िला टीपू ने वहाँ के अंगरेज़ क़िलेदार और उसकी सेना से १५ दिन के मोहासरे के बाद विजय किया। इसी प्रकार हैदर के दूसरे सेनापतियों ने अन्य अनेक क़िलों और इलाकों को विजय किया।

अंगरेज़ों की घबराहट

गवरनर जनरल वारन हेस्टिंग्स करनल बेली की सेना के सर्वनाश, जनरल मनरो की भगदड़ और हैदर की अपूर्व विजयों के समाचार सुन कर घबरा गया। बंगाल में उस समय भयंकर दुष्काल पड़ा हुआ था। लिखा है कि प्लासी से उस समय तक यानी अंगरेज़ी राज के शुरू के बीस साल के अन्दर बंगाल की आबादी घटते घटते ९० लाख से ६० लाख रह गई थी।† तिस पर भी वारन हेस्टिंग्स ने इन समाचारों को सुनकर अकाल पीड़ित बंगाल के ख़ज़ाने से १५ लाख रुपए नक़द और सर आयर कूट के अधीन एक बहुत बड़ी सेना मय तोपख़ाने के बंगाल से मद्रास के लिए रवाना की। यह सेना ५ नवम्बर सन् १७८१ को मद्रास पहुँची। मद्रास में नवाब मोहम्मदअली ने सर आयर कूट के सामने अपनी तबाही का रोना रोया। मोहम्मदअली के पास अभी तक धन मौजूद था, नई सेना के ख़र्च के लिए कूट ने दो लाख पैगोदा यानी

* Ibid p 409

† *History of Hyder*, By M M D L T, p 162

क़रीब सात लाख रुपए मोहम्मदअली से और वसूल किए। तीन महीने तक सर आयर कूट मद्रास में रह कर हैदरअली से लड़ने की केवल तैयारी करता रहा। उसके बाद वह अपनी विशाल सेना सहित हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। हैदरअली उस समय मद्रास के नीचे के बन्दरगाहों और क़िलों को फ़तह कर रहा था। दो बार जनरल कूट अपनी विशाल सेना लेकर हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। दोनों बार कई कई जगह कूट और हैदरअली की सेनाओं में संग्राम हुए। किन्तु दोनों बार जनरल कूट को बेहद नुक़सान उठाकर मद्रास लौट आना पड़ा। इस बीच और अधिक सेना बंगाल से कूट की मदद के लिए भेजी गई। अन्त में तीसरी बार जनरल कूट हैदरअली के मुक़ाबले के लिए बढ़ा। इस बार आरनी की प्रसिद्ध लड़ाई में हार खाकर और लाचार होकर सितम्बर सन् १७८२ में सर आयर कूट को अपनी जान बचाकर बंगाल लौट जाना पड़ा। इस तमाम समय में हैदरअली की सेना क़िलों पर क़िले और इलाक़ों पर इलाक़े विजय करती बढ़ी चली आ रही थी और कहीं पर भी अंगरेज़ी सेना हैदरअली की उमड़ती हुई बाढ़ को न रोक सकी।

इन तमाम लड़ाइयों में दो छोटी सी, किन्तु मनोरंजक घटनाएँ बयान करने के क़ाबिल हैं।

दो मनोरञ्जक घटनाएँ

पहली घटना तरकाटपल्ली की है। तरकाटपल्ली एक छोटा सा क़िला था, जिस पर हैदरअली की सेना ने क़ब्ज़ा कर लिया था। त्रिचनापल्ली से अंगरेज़ों ने अपनी सेना का एक दस्ता इस क़िले पर

कब्ज़ा करने के लिए भेजा। अकस्मात् उसी दिन रात को तंजोर से एक दूसरा अंगरेज़ी दस्ता उसी किले पर कब्ज़ा करने के लिए रवाना हुआ। ये दोनों अंगरेज़ी दस्ते दो ओर से किले की फ़सील पर चढ़ने लगे। दोनों को एक दूसरे का पता न था। किला टीपू के कब्ज़े में था, किन्तु टीपू उस समय अपनी सेना सहित किले से कुछ दूर था। किले के अन्दर बहुत थोड़े से हिन्दोस्तानी थे। इस अचानक हमले का पता लगते ही वे लोग किले के और भीतर के हिस्से में चले गए। वे शायद टीपू के इन्तज़ार में थे। रात की अँधियारी में एक ओर के अंगरेज़ी दस्ते ने फ़सील के ऊपर चढ़ कर गोलियाँ चलाईं। दूसरी ओर के अंगरेज़ी दस्ते ने समझा कि यह गोलियाँ किले वाले चला रहे हैं। उन्होंने जवाब में आवाज़ के निशाने पर गोलियों की बौछार शुरू की। दस मिनट से ऊपर तक दोनों ओर से गोलाबारी होती रही। एकाएक जब एक ओर के किसी अंगरेज़ की आवाज़ दूसरी ओर के किसी अंगरेज़ के कानों तक पहुँची तो दोनों को मालूम हुआ कि वे आपस ही में गोलियाँ चला रहे थे। उस समय तक कम्पनी के क़रीब सात सौ सिपाही अंगरेज़ी गोलियों के शिकार हो चुके थे। अगले दिन सुबह को जब टीपू ने तरकाटपल्ली पहुँच कर इस घटना का हाल सुना तो उसे बड़ी हँसी आई।

दूसरी घटना मनियारगुडी की है। मनियारगुडी के किले की सेना एक दिन रात को रसद आदि जमा करने के लिए आस पास के इलाक़े में गई हुई थी। अंगरेज़ी सेना ने मौक़ा पाकर उसी रात

को अचानक किले पर हमला किया। केवल नायक, बीस सिपाही और कुछ स्त्रियाँ किले में रह गई थीं। अंगरेज़ी सेना के हमले की ख़बर पाकर नायक ने किले का फाटक बन्द करवा दिया, बड़े बड़े पत्थर अँधेरे में किले की फ़सील पर रखवा दिए और स्त्रियों ने बहुत सा गोबर और पानी घोलकर बड़े बड़े बरतनों में खौलाना शुरू किया। जिस समय अंगरेज़ी सिपाही दीवारों पर चढ़ने लगे, स्त्रियों ने चिल्ला कर पत्थर नीचे की ओर लुढ़का दिए और खौलता हुआ गोबर का पानी अंगरेज़ी सेना के सर पर डालना शुरू किया। भीतर के बीस सिपाहियों ने भी अपनी बन्दूकों का उचित उपयोग किया। अंगरेज़ सिपाहियों को एक बार घबरा कर नीचे उतर आना पड़ा। इतने में किले की वह सेना जो बाहर गई हुई थी, आवाज़ सुन कर क़िले की ओर लपकी। अंगरेज़ी सेना के बचे हुए आदमियों को जान बचा कर भाग जाना पड़ा।

हैदरअली की अचानक मृत्यु

एक बार साफ़ मालूम होता था कि हैदरअली दक्खिन भारत से अंगरेज़ों को निकाल कर बाहर कर देगा। नाना फ़ड़नवीस पूना में बैठा हुआ यह सब सुसमाचार सुन रहा था और इन्हीं आशाओं के आधार पर सालबाई के सन्धि पत्र पर दस्तख़त करने से इनकार कर रहा था। जिस समय गायकवाड़, सींधिया और भोंसले तीन तीन ज़बरदस्त मराठा नरेश मराठा मण्डल और अपने देश दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ामुलमुल्क भी अंगरेज़ों की चालों में फँस चुका था, उस समय इन विदेशियों के विरुद्ध

नाना फड़नवीस की समस्त आशाओं का आधार केवल वीर हैदर अली था। यदि हैदरअली एक बार मद्रास प्रान्त से अंगरेज़ों को निकाल सकता तो निस्सन्देह नाना फड़नवीस मराठा मण्डल को मज़बूत करके उत्तर में अंगरेज़ों के साथ फिर से युद्ध शुरू कर देता। उत्तरी भारत में अंगरेज़ अपने अनेक दुशमन पैदा कर चुके थे और इस हालत में नाना को सफलता प्राप्त होने की भी बहुत बड़ी सम्भावना थी। किन्तु मालूम होता है कि भारतवासियों के अनेक पापों के प्रायश्चित और सच्ची भारतीय आत्मा के विकास के लिए अभी इस देश का विदेशी शासन के अग्नि स्नान में से निकलना आवश्यक था। ठीक उस समय जब कि वीर हैदरअली इलाक़ों पर इलाक़े और गढ़ों पर गढ़ विजय करता हुआ बढ़ा चला जा रहा था, जब कि भारत के अन्दर स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के इस द्वन्द को एशिया और यूरोप की समस्त जागरूक शक्तियाँ ध्यान से देख रही थीं, जब कि हैदरअली का नाम सुनकर भारत के अंगरेज़ चौंक पड़ते थे और इंगलिस्तान में कम्पनी के हिस्सों की दर धड़ाधड़ गिर रही थी, अचानक छै दिसम्बर सन् १७८२ की रात को अरकाट के क़िले में हैदरअली की मृत्यु हो गई। हैदरअली की मृत्यु ने नाना फड़नवीस की आशाओं को चूर चूर कर दिया और लाचार होकर उसने सालबाई की सन्धि पर दस्तख़त कर दिए। अंगरेज़ों के लिए हैदरअली की मृत्यु वास्तव में एक बहुत बड़ी बरकत साबित हुई।

आरनी की विजय के बाद हैदरअली की कमर में एक फोड़ा निकला, जिसके कारण उसे अरकाट लौट आना पड़ा। यह फोड़ा

ही हैदरअली की मौत का पैग़ाम साबित हुआ। जब हैदरअली को अपने रोग के असाध्य होने का पता लगा, उसने अपने तमाम मन्त्रियों और सरदारों को बुलाकर राज्य के कार्य के विषय में अन्तिम आदेश दिए। एक सेना पाँच हज़ार सवारों की उसने मद्रास की ओर रवाना की। अपनी विशाल सेना के हर सिपाही और मुलाज़िम को एक एक महीने की तनख़ाह बतौर इनाम के दिलवाई और टीपू को, जो उस समय एक दूसरे मैदान में था, बुलवा भेजा।

हैदरअली के हिन्दू मंत्री

हैदरअली की आयु उस समय साठ साल से कुछ ऊपर थी। डर था कि हैदरअली की मृत्यु के समाचार से उसकी विजयी सेना का उत्साह न टूट जावे। हैदरअली के दोनों मुख्य मंत्री हिन्दू थे जिनके नाम पूर्निया और कृष्णराव थे। इन दोनों वफ़ादार मन्त्रियों ने हैदरअली की मृत्यु को बड़ी होशियारी के साथ उस समय तक शत्रु और अपनी सेना दोनों से छिपाए रक्खा जिस समय तक कि हैदरअली के बड़े बेटे फ़तहअली टीपू ने अरकाट में पहुँच कर अपने बाप की जगह न ले ली। टीपू के आने पर सुलतान हैदरअली का शव मैसूर की राजधानी श्रीरङ्गपट्टन भेजा गया, जहाँ बड़े समारोह के साथ उसे लाल बाग़ में दफ़न किया गया, और टीपू ने पिता की क़ब्र के ऊपर एक सुन्दर और आलीशान समाधि बनवाई।

टीपू अपने बाप के समान वीर, किन्तु अभी नातजरुबेकार था।

मैसूर के अंदर अपनी नई सत्ता को मज़बूत करने की ओर भी उसे काफ़ी ध्यान देना पड़ा। फिर भी उसने पहले बड़ी सफलता के साथ युद्ध जारी रक्खा और अंगरेज़ी सेना को शिकस्त पर शिकस्त दी। यहाँ तक कि अंगरेज़ों को चारों ओर "निर्बलता, निरुत्साह और नैराश्य"* के सिवा कुछ दिखाई न देता था। अन्त में सन् १७८३ में अंगरेज़ों ने बड़ी नम्रता के साथ टीपू से सुलह की प्रार्थना की। टीपू उनकी बातों में आ गया। ११ मार्च सन् १७८४ को मङ्गलोर में टीपू सुलतान और अंगरेज़ कम्पनी के बीच सन्धि होगई। अंगरेज़ों ने वादा किया कि हम फिर कभी मैसूर के मामलों में दख़ल न देंगे, टीपू और उसके उत्तराधिकारियों के साथ सदा मित्रता का व्यवहार रक्खेंगे और उनके शत्रुओं के विरुद्ध सदा उन्हें सहायता देने के लिए तैयार रहेंगे। इस वादे पर वीर, उदार, किन्तु नातजरुबेकार टीपू ने अंगरेज़ों से जीता हुआ तमाम इलाक़ा उन्हें लौटा दिया। टीपू ने निस्सन्देह एशियाई मर्यादा के अनुसार अपनी शाहाना आन क़ायम रक्खी और अंगरेज़ों को काफ़ी नीचा दिखाया, किन्तु जो बात हैदर और नाना चाहते थे वह पूरी न होसकी।

युद्ध का अंत

हैदरअली एक ग़रीब घर में पैदा हुआ था और एक मामूली सिपाही से बढ़ते बढ़ते केवल अपनी वीरता और योग्यता के बल एक विशाल राज का स्वामी बन गया। हैदरअली 'सुलतान हैदरअली शाह'

हैदरअली का बल

* "*Debility, dejection and despair*." Mill vol iv p 222

कहलाता था। दिल्ली दरबार के सूबेदारों में उसकी गिनती थी। मैसूर का वह 'दैव' था। और हम ऊपर लिख चुके हैं कि मैसूर राज के अंदर 'दैव' का पद ठीक वैसा ही था जैसा मराठा साम्राज्य के अंदर पेशवा का। 'दैव' की गद्दी अब हैदरअली के कुल में पैतृक हो गई थी। अपनी वीरता द्वारा उसने मैसूर राज को बहुत अधिक बढ़ा लिया था। मरते समय उस तमाम इलाक़े को छोड़कर, जो उसने हाल के युद्ध में अपने शत्रुओं से विजय किया था, उसके बाक़ी राज का क्षेत्रफल अस्सी हज़ार वर्गमील था, जिसकी सालाना बचत शासन का तमाम ख़र्च निकाल कर तीन करोड़ रुपए से ऊपर थी। उसकी कुल स्थायी सेना तीन लाख चौबीस हज़ार थी, जिनमें १६,००० सवार, १०,००० तोपख़ाने के सिपाही, १,१५,००० पैदल और १,८०,००० इस तरह की सेना थी जो दूसरे सरदारों के अधीन हर समय तैयार रहती थी और आवश्यकता पड़ने पर बुला ली जाती थी। उसके ख़ज़ाने के जवाहरात और नक़दी का अन्दाज़ा अस्सी करोड़ रुपये से ऊपर का था। उसकी पशु शालाओं में ७०० हाथी, ६,००० ऊँट, ११,००० घोड़े, ४,००,००० गाय और बैल, १,००,००० भैंस, और ६०,००० भेड़ें थीं। उसके शस्त्रागार में ६,००,००० बन्दूक, २,००,००० तलवार और २२,००० तोपें थीं।

उसकी जल सेना

हैदरअली अपने समय का अकेला भारतीय नरेश था जिसने अपने समुद्र तट की रक्षा के लिए एक जहाज़ी बेड़ा, जिसके हर जहाज़ पर तोपें लगी हुई थीं, रख रक्खा था। उसकी जलसेना अपने समय की एक ज़बरदस्त

जलसेना थी। उसके जलसेनापति अलीरज़ा ने मलद्वीप नामके क़रीब बारह हज़ार छोटे बड़े टापुओं को विजय कर उन्हें हैदरअली के राज में मिला लिया था।

उसकी शिक्षा

हैदरअली लिखना पढ़ना बिलकुल न जानता था। एक मुसलमान इतिहास लेखक लिखता है कि उसने फ़ारसी अक्षरों में अपना नाम लिखने का प्रयत्न किया। बड़े परिश्रम से वह अपने नाम का केवल पहला अक्षर 'हे' सीख पाया। किन्तु इस 'हे' को भी वह सदा उलटा और ग़लत लिखा करता था। यही उसके दस्तख़त थे। इस पर भी तमाम भारतीय और विदेशी इतिहास लेखक मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं कि उसकी बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता, नीतिज्ञता और शासन प्रबन्ध में उसकी योग्यता सभी बड़े ऊँचे दरजे की थीं, वीरता और युद्ध कौशल में वह अपने समय में अपना सानी न रखता था।

उसकी धार्मिक उदारता

धार्मिक पक्षपात या तअास्सुब का उसमें निशान तक न था। राज की ऊँची से ऊँची पदवियाँ उसने हिन्दुओं को दे रक्खी थीं। उसके बड़े से बड़े मंत्री हिन्दू थे। मैसूर के जिन बाग़ी सामन्तों को उसने परास्त किया उनकी गद्दियाँ या तो उन्हीं को वापस कर दीं और या दूसरे हिन्दू नरेशों को उनकी जगह बैठा दिया। अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ वह एक समान उदार व्यवहार रखता था। उसने अनेक हिन्दू मन्दिर बनवाए और अनेक मन्दिरों को जागीरें अता कीं। हाल में उस समय के इतिहास की खोज द्वारा

अंगरेज़ लेखक मि० गैलेटिक आई० सी० एस० ने दिखाया है कि हैदरअली ने अपनी सलतनत भर में गोरक्षा का उसी तरह सुन्दर प्रबन्ध कर रक्खा था जिस तरह बाबर और उसके उत्तराधिकारी मुग़ल सम्राटों ने। हैदरअली के राज में गोबध का कड़ा निषेध था और यदि राज भर में कभी कोई मनुष्य गोबध का अपराधी होता था तो उसके हाथ काट लिए जाते थे।

हैदरअली और जगद्गुरु शङ्कराचार्य

जगद्गुरु शङ्कराचार्य के चार मुख्य मठों में शृङ्गेरी का मठ मैसूर के राज में था। शृङ्गेरी मठ के स्वामी उस समय के जगदगुरु शङ्कराचार्य के साथ हैदरअली का ख़ास प्रेम था। दोनों में ख़ूब पत्र व्यवहार होता था। वर्त्तमान मैसूर राज के पुरातत्त्व विभाग ने कृपा कर हमारे पास कनाड़ी भाषा में जगद्गुरु शङ्कराचार्य के नाम हैदरअली के एक मूल पत्र का फ़ोटो भेजा है जिसे पढ़ने से मालूम होता है कि हैदरअली जगद्गुरु का कितना अधिक आदर करता था और किस तरह राज के गम्भीर मामलों में जगद्गुरु की सलाह लेकर काम करता था। इसी पत्र के साथ हैदरअली ने "एक हाथी, पाँच घोड़े, एक पालकी, पाँच ऊँट × × × पाँच सोने के ताफ़्ते (सूर्य चन्द्राङ्कित पताकाएँ, जो जगद्गुरु के साथ चलती हैं) × × × एक जोड़ी शाल, साढ़े दस हज़ार रुपए नक़द × × × इत्यादि" जगद्गुरु की नज़र के तौर पर और "एक ठोस सोने का फ़तीलसोज़ (शमई) शृङ्गेरी मठ की देवपूजा" के लिए जगद्गुरु की सेवा में भेजा।

हैदरअली अपने दरबार के अन्दर हिन्दू त्योहारों को बड़े समारोह के साथ मनाया करता था। विशेषकर

हिन्दू त्योहार

दशहरे के मौक़े पर उसके दरबार में दस दिन तक लगातार जश्न रहता था, रोज़ शाम को आतिशबाज़ी छुटती थी, साँडों, बारहसींगों, हाथियों और शेरों की लड़ाइयाँ होती थीं, कुश्तियां होती थीं, दावतें होती थीं; इनाम और इकराम दिए जाते थे, ग़रीबों को भोजन वस्त्र और धन बाँटा जाता था।

मज़हब के नाम पर किसी तरह के भी लड़ाई झगड़ों को वह बड़ी नफ़रत की नज़र से देखता था। एक बार

शिया सुन्नी

उसके राज में कहीं पर शिया और सुन्नियों में झगड़ा हो गया। ज़बान से बढ़ते बढ़ते मामला ख़ञ्जर और भालों तक पहुँच गया। हैदर के कानों तक ख़बर पहुँची, उसने दोनों पक्ष के लोगों को अपने सामने बुलवाया और उनसे पूछा—"यह क्या बेवकफ़ी का झगड़ा है, और तुम लोग कुत्तों की तरह एक दूसरे पर क्यों भोंकते हो?" दोनों ने अपनी अपनी बात कह सुनाई, मालूम हुआ कि झगड़ा केवल इस बात पर है कि हज़रत मोहम्मद के कुछ उत्तराधिकारियों के विषय में शियों की एक राय है और सुन्नियों की दूसरी। हैदरअली ने उनसे पूछा—"जिन व्यक्तियों के बारे में तुम्हारा झगड़ा है क्या वे ज़िन्दा हैं?" जवाब मिला, "नहीं।" इस पर हैदरअली ने उनसे कहा—"जो लोग मर चुके, उनकी बाबत अब झगड़ा करना हिमाक़त है," और दोनों को आगाह कर दिया कि—"अगर तुम लोग फिर कभी अपना और

सरकार का समय इन बेतुके और बदमाशी के झगड़ों में नष्ट करोगे तो यक़ीन रक्खो तुम्हारे सर कुचल दिए जावेंगे।"

हैदरअली का इन्साफ़ उस समय दूर दूर तक मशहूर था। उसके जीवन चरित्र का एक फ़ान्सीसी रचयिता लिखता है कि उसकी प्रजा में किसी भी निर्धन से निर्धन पुरुष या स्त्री को अधिकार था कि हैदर के सामने आकर अपनी दाद फ़रियाद पेश करे। पहरेदारों को हुकुम था कि किसी फ़रियादी को किसी समय भी हुज़ूर में आने से न रोका जावे। वह बड़े ग़ौर से सब की फ़रियाद सुनता था और सब का इन्साफ़ करता था। एक बार सन् १७६७ ईसवी में जब कि हैदरअली कोयम्बतुर में था, एक दिन शाम को वह हवा ख़ोरी के लिए जा रहा था। मार्ग में एक बुढ़िया सड़क के एक ओर आकर लेट गई और "इन्साफ़! इन्साफ़!" चिल्लाने लगी। हैदर अली ने फ़ौरन अपनी सवारी रोक दी, बुढ़िया को पास बुलाया और पूछा—"क्या मामला है?" बुढ़िया ने जवाब दिया—"जहाँ पनाह! मेरे केवल एक बेटी थी, आग़ा मोहम्मद उसे भगा ले गया।" सुलतान ने जवाब दिया—"आग़ा मोहम्मद को यहाँ से गए एक महीने से ज़्यादा हो गया, तुमने आज तक शिकायत क्यों नहीं की?" जवाब मिला—"जहाँपनाह! मैंने कई बार अर्ज़ियाँ लिखकर हैदरशा के हाथों में दीं, किन्तु मुझे कोई जवाब नहीं मिला।" हैदरशा हैदरअली का ख़ास जमादार था जो उस समय हैदरअली के आगे आगे चल रहा था। आग़ा मोहम्मद उससे पहले का ख़ास

हैदरअली का इन्साफ़

जमादार था और पच्चीस साल तक हैदरअली की ख़िदमत कर चुका था। आग़ा मोहम्मद को हैदरअली ने पेन्शन और जागीर देकर एक महीना हुआ बिदा कर दिया था। हैदरशा ने अपनी सफ़ाई में आगे बढ़कर अर्ज़ किया—"जहाँपनाह! यह बुढ़िया और उसकी बेटी दोनों बदचलन हैं।" हैदरअली फ़ौरन महल की ओर लौट पड़ा और बुढ़िया को अपने साथ ले गया। महल पहुँच कर जब लोगों ने हैदरअली से प्रार्थना की कि इस बार हैदरशा को क्षमा कर दिया जाय तो हैदरअली ने उत्तर दिया—"मैं आप लोगों की प्रार्थना स्वीकार नहीं कर सकता। किसी बादशाह और उसकी प्रजा के बीच के पत्र व्यवहार को रोकने से बढ़कर कोई गुनाह हो ही नहीं सकता। बलवानों का कर्त्तव्य है कि निर्बलों का इन्साफ़ करें। ख़ुदा ने निर्बलों की रक्षा के लिए ही बादशाह को बनाया है और जो बादशाह अपनी प्रजा के ऊपर ज़ुल्म होने देता है और ज़ुल्म करने वाले को दण्ड नहीं देता वह इस योग्य है कि उसकी प्रजा का प्रेम और विश्वास उस पर से हट जावे और प्रजा उसके ख़िलाफ़ बग़ावत करने लगे।"*

हैदरअली ने सब के सामने अपने जमादार हैदरशा के दो सौ कोड़े लगवाए। साथ ही उसने एक सवार उस बुढ़िया के साथ आग़ा मोहम्मद के रहने की जगह भेजा और हुकुम दिया कि यदि लड़की आग़ा मोहम्मद के यहाँ मिल जाय तो उसे उसकी माँ के हवाले कर दिया जाय और आग़ा मोहम्मद का सर काट कर मेरे

* *History of Hyder Shah* By M. M. D. L. T. p. 20

सामने पेश किया जाय और यदि लड़की न मिले तो आगा मोहम्मद को गिरफ़्तार करके मेरे सामने लाया जाय। लड़की आगा मोहम्मद के यहाँ मौजूद थी। उसे उसकी माँ के हवाले कर दिया गया और आगा मोहम्मद का सर काट कर हैदरअली के सामने पेश किया गया।

हैदरअली के इन्साफ़ की इसी तरह की और भी अनेक रोशन मिसालें उसकी जीवनियों में मिलती हैं। मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि चोर, उचक्के अथवा डाकू का नाम तक हैदरअली के राज में कहीं सुनने में न आता था और यदि अकस्मात् कहीं पर चोरी हो जाती थी तो उस जगह के पुलिस कर्मचारी को फ़ौरन मौत की सज़ा दी जाती थी और दूसरा आदमी उसकी जगह नियुक्त कर दिया जाता था। हैदरअली के हज़ारों जासूस सल्तनत भर में घूमते रहते थे और उसे प्रजा के सुख दुख की ख़बरें देते रहते थे। हैदरअली ख़ुद अक्सर वेश बदले कम्बल ओढ़े रात को श्रीरङ्गपट्टन और अन्य नगरों की गलियों में घूमा करता था और ग़रीबों और यात्रियों की ख़बर रखता था।

हैदरअली की प्रजा पालकता

हैदरअली की सारी प्रजा उससे अत्यन्त ख़ुश थी, उसके राज भर में चारों ओर ख़ुशहाली थी। तिजारत, उद्योग धन्धों और खेती बाड़ी को ख़ूब उत्तेजना दी जाती थी। वह ख़ुद कारीगरों और सौदागरों की ख़ूब मदद करता था। लिखा है कि अकेले कोयम्बतुर के बाज़ार में बीस हज़ार रेशम के थान हर हफ़्ते बिकने के लिए आते

थे। यदि कोई सरकारी कर्मचारी प्रजा के ऊपर किसी तरह का अत्याचार करता था तो हैदरअली सदा उसे कड़ी से कड़ी सज़ा देता था। उसके राज भर में इस बात की सख़्त आज्ञा थी कि किसानों से उनकी नियत मालगुज़ारी के अलावा एक कौड़ी भी किसी बहाने न ली जावे।

बुद्धि की प्रखरता

हैदरअली की बुद्धि की प्रखरता और उसकी याददाश्त बिलकुल अलौकिक थी। नैपोलियन के समान वह एक साथ कई कई काम किया करता था। वह जिस वक़्त कोई मामूली तमाशा देखता रहता था उसी वक़्त कुछ लोगों से प्रश्न करता रहता था, जवाब देता रहता था, अख़बार सुनता था, चिट्ठियां सुनता था, चिट्ठियाँ लिखवाता था और साथ ही अपने मन्त्रियो के साथ गम्भीर से गम्भीर प्रश्नों पर बातचीत करता रहता था और उनका फ़ैसला करता रहता था। ये सब काम एक साथ चलते रहते थे। एक साथ वह तीस तीस और चालीस चालीस मुन्शियों से काम लेता रहता था।

रोज़ सुबह को जब वह एक चौकी पर बैठकर हाथ मुंह धोया करता था, उसी समय उसके अनेक जासूस उसकी चौकी के चारों ओर खड़े हो जाते थे और पिछले चौबीस घण्टे का अपना अपना हाल सुनाते थे। ये सब जासूस एक साथ बोलते थे। हैदर मुंह धोते धोते सब की बात सुनता था, केवल आवाज़ से उन्हें पहचानता था, और जिससे ज़रूरत समझता था बीच बीच में सवाल कर लेता था। मनुष्य के चरित्र को वह केवल एक बार शक्ल देखकर

पहचान जाता था, रँगरूटों को केवल चेहरे से देखकर भरती कर लेता था। घोड़ों और जवाहरात की भी उसे ग़ज़ब की पहचान थी।

हैदरअली वीर था और वीरता की बड़ी क़द्र करता था। अपने सिपाहियों के साथ उसका व्यवहार अत्यन्त प्रेम, उदारता और बराबरी का रहता था। जिन्हें वह युद्ध में हरा देता था उनके साथ भी उसका व्यवहार सदा दया और उदारता का होता था। इतना बड़ा नरेश होने पर भी उसमें घमण्ड या अभिमान का निशान तक न था। अपने राज को वह सदा 'खुदादाद' कहा करता था। अपने दरबारों तक में वह मामूली सिपाहियों के साथ बराबरी का व्यवहार करता था। स्वयं एक मामली सिपाही का सा जीवन व्यतीत करता था। भोजन जो सामने आता खा लेता था। सफ़र में वह अक्सर भुने हुए चने, बादाम और ज्वार की सूखी रोटी या इनमें से जो सामने आ जावे खाकर रह जाता था। अपने तख़्त पर वह ज़्यादा से ज़्यादा साल में एक बार ईद के दिन चन्द घण्टे के लिए बैठता था और वह भी दूसरों की प्रार्थना पर।

वीरता और सादगी

हैदरअली का क़द मँझोला था, उसका रंग साँवला था। किन्तु उसके शरीर की बनावट सुन्दर थी। वह मज़बूत और निहायत फुर्तीला था। वह घोड़े का बहुत अच्छा सवार था। पैदल लम्बे सफ़र करने का भी उसे बेहद शौक़ था और आदत थी। सप्ताह में दो बार वह अपने सर, डाढ़ी और मूँछों के बाल मुंडवा

हैदरअली का शारीरिक बल

देता था। डाढ़ी और मूँछें वह इतनी साफ़ रखता था कि नकचुटनी से एक एक बाल निकलवा देता था। उसकी देखादेखी उसके अधिकतर दरबारी भी डाढ़ी न रखते थे और मूँछें यदि रखते थे तो इतनी कम कि जो दूर से दिखाई न देती थीं। हैदरअली को लाल कपड़ों का शौक़ था और अपने सर पर वह एक सौ हाथ लम्बी लाल पगड़ी बाँधता था।

शेर पालना

शिकार का और ख़ास कर शेर के शिकार का उसको बड़ा शौक़ था। उसके यहाँ अनेक शेर पले हुए थे जो रोज़ सुबह खुले हुए उसके सामने लाए जाते थे। हैदरअली अपने हाथ से इन शेरों को लडडू खिलाया करता था। उनके पञ्जों और जबड़ों में वह लड्डू दे देता था। लिखा है कि उसका निशाना कभी चूकता न था। अपने सामने अखाड़े में वह अक्सर शेर के साथ अपने किसी एक वीर सिपाही की कुश्ती कराया करता था। यदि सिपाही शेर को पछाड़ पाता तो उसे इनाम-ओ-इकराम दिए जाते थे और यदि शेर हावी होने लगता, तो हैदर फ़ौरन दूर से बैठा हुआ शेर की कनपटी पर गोली मार देता और इससे पहले कि शेर का पञ्जा सिपाही पर पड़ सके, शेर गोली खाकर गिर पड़ता था।

हैदरअली का कष्ट सहन

हैदरअली के शारीरिक परिश्रम और कष्ट सहन की कोई सीमा न थी। वह कई कई रातें जंगल में बारिश और सरदी के अन्दर घोड़े की पीठ पर गुज़ार देता था। घोड़ों, हाथियों, तोपों और रसायन का

उसे ख़ास शौक़ था। उसके एक प्यारे हाथी का नाम 'पवनगज' था जिसके मरने पर हैदरअली ने बड़ा दुख मनाया। घोड़े ख़रीदने का उसे इतना अधिक शौक़ था कि दूर दूर के मुल्कों से घोड़े के सौदागर उसके दरबार में पहुँचते थे और यदि किसी सौदागर का घोड़ा उसके राज के अन्दर मर जाता और सौदागर अपने घोड़े की अयाल और दुम काट कर स्थानीय कर्मचारी की सनद के साथ हैदरअली के दरबार में पेश करता तो घोड़े की आधी क़ीमत उसे ख़ज़ाने से दिलवा दी जाती थी।

हैदरअली और अंगरेज़

इन सब बातों के अलावा हैदरअली अंगरेज़ों का कट्टर शत्रु था। अंगरेज़ों के लिए उसका नाम एक 'हव्वा' था। गोकि हैदरअली की नीतिज्ञता नाना फ़ड़नवीस के टक्कर की न थी, सब से बड़ी ग़लती उसकी यह थी कि अपनी सेना के अनेक बड़े बड़े ओहदों पर उसने फ़ान्सीसियों को नियुक्त कर रक्खा था, जिसका फल उसकी मृत्यु के बाद उसके बेटे टीपू सुलतान को भोगना पड़ा, फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि अपने जीवन भर अंगरेज़ों को भारत से निकालने का हैदर ने जी तोड़ प्रयत्न किया। वह जब तक जिया, अजेय रहा और अन्त में इसी प्रयत्न में उसने अपनी जान दी। हम ऊपर लिख चुके हैं कि जिस समय गायकवाड़, सींधिया और भोंसले तीन तीन ज़बरदस्त मराठा नरेश महाराष्ट्र मण्डल और अपने देश दोनों के साथ विश्वासघात कर चुके थे, और निज़ामुल मुल्क भी अंगरेज़ों के साथ मिलकर अपने साथियों और मुल्क

दोनों को दग़ा दे चुका था, उस समय नाना फ़ड़नवीस और भारत की स्वाधीनता दोनों की आशा का एकमात्र आधार वीर हैदरअली था। इतना ही नहीं, बल्कि जिस समय नाना फ़ड़नवीस भी अपनी सन्धि के अनुसार हैदरअली की मदद करने के नाक़ाबिल हो गया और निज़ाम ने अपना वादा साफ़ तोड़ दिया, उस समय अंगरेज़ों की पूरी शक्ति के मुक़ाबले का सारा बोझ अकेले हैदरअली के कन्धों पर पड़ा। इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि हैदरअली ने आश्चर्यजनक साहस और सफलता के साथ अकेले इस बोझ को बरदाश्त किया, और यदि भवितव्यता बीच में न पड़ती, यदि ठीक उस समय जब कि भारत में अंगरेज़ों के हाथ पाँव बिलकुल फूल चुके थे, मौत भारतीय स्वाधीनता के उस अन्तिम आधार को उठा कर न ले गई होती, तो उसके बाद का भारत और अंगरेज़ जाति दोनों का इतिहास बिलकुल दूसरे ही ढंग से लिखा गया होता। हैदरअली के बाद फिर ७५ साल तक भारत के पुत्रों को अपनी स्वाधीनता के लिए उस तरह का व्यापक प्रयत्न करने का साहस न हो सका। निस्सन्देह भारत की आज़ादी के लिए प्रयत्न करने वालों में हैदरअली का पद सर्वोपरि है और आज़ादी के चाहने वालों में उसका नाम सदा के लिए ज़िन्दा रहेगा।

दसवाँ अध्याय

सर जॉन मैक्फ़रसन

नवाब मोहम्मदअली को इंगलिस्तान के बादशाह की भेंट

वारन हेस्टिंग्स के बाद कलकत्ते की कौन्सिल का प्रमुख सदस्य सर जॉन मैक्फ़रसन अस्थायी तौर पर कम्पनी के भारतीय इलाक़ों का गवरनर जनरल नियुक्त हुआ। मैक्फ़रसन के समय में कोई ख़ास लिखने योग्य घटना नहीं हुई; किन्तु उसका चरित्र ख़ासा मनोरञ्जक था।

मैक्फ़रसन सबसे पहले सन् १७६७ में किसी जहाज़ का बख़्शी (पेमास्टर) नियुक्त होकर हिन्दोस्तान आया। वह ख़ासा पढ़ा लिखा और चलता पुर्ज़ा था। इस पुस्तक के पहले अध्याय में आ चुका है कि करनाटक की गद्दी के ऊपर अंगरेज़ों, फ़्रांसीसियों और निज़ाम ने अलग अलग हक़दारों का पक्ष लेकर काफ़ी लड़ाइयाँ

लड़ीं। अन्त में अंगरेज़ों की सहायता से मोहम्मदअली करनाटक का नवाब बना। इस सहायता के बदले में मोहम्मदअली ने अंगरेज़ों को साढ़े चार लाख पैगोदा यानी क़रीब १६ लाख रुपए सालाना का इलाक़ा अता किया। शुरू में अंगरेज़ नवाब मोहम्मदअली का बड़ा आदर करते थे। यहाँ तक कि एक बार मोहम्मदअली ने एक पत्र कुछ उपहारों और भेंट सहित इंगलिस्तान के बादशाह तीसरे जॉर्ज के पास भेजा और उसके जवाब में बादशाह जॉर्ज ने अपने हाथ से लिखकर एक अत्यन्त आदर और प्रेम का पत्र और उसके साथ बतौर नज़राने के दो बढ़िया पिस्तौल और बतौर नमूने के कुछ इंगलिस्तान का बना कपड़ा मोहम्मदअली के पास भेजा।

मोहम्मदअली के साथ कम्पनी की ज़्यादतियाँ

किन्तु थोड़े ही दिनों में ठीक वही सलूक मोहम्मदअली के साथ होने लगा जो उत्तर में अवध के नवाबों के साथ हो रहा था। धन की नित्य नई माँगें उसके सामने पेश की जाती थीं और जबरन् पूरी कराई जाती थीं। मिसाल के लिए यह एक प्रथा पड़ गई थी कि मोहम्मदअली मद्रास के हर नए गवरनर की अपने यहाँ दावत करे और उसे तीस हज़ार पैगोदा नज़र करे। कम्पनी के छोटे मोटे नौकरों की माँगें भी मोहम्मदअली के ऊपर नित्य बढ़ती गईं, यहाँ तक कि जब अरकाट का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया तो कुछ अंगरेज़ व्यापारियों ने ही अपने दूसरे देशवासियों की माँगें पूरी करने के लिए मोहम्मदअली को क़र्ज़े देने शुरू किए। लाचार

होकर मोहम्मदअली अंगरेज़ों की माँगें भी पूरी करता रहा और यूरोपियन व्यापारियों का दिन पर दिन क़र्ज़दार भी होता चला गया। कम्पनी के नौकरों के इन अत्याचारों से बचने का उसे कोई उपाय न सूझता था।

ऐसी हालत में नौजवान मैक्फ़रसन गवरनर जनरल होने से बहुत दिनों पहले अरकाट पहुँचा। उसने नवाब मोहम्मदअली से मिलकर उसे यह पट्टी पढ़ाई कि यदि आप मुझे अपनी ओर से वकील बनाकर इंगलिस्तान भेज दें तो वहाँ के मन्त्रियों से कह कर मैं आपकी सब शिकायतें दूर करा दूँ और क़र्ज़े माफ़ करा दूँ। भोले नवाब ने मंज़ूर कर लिया। मैक्फ़रसन उसका वकील बनकर सन् १७६८ में इंगलिस्तान पहुँचा। इस चाल से मैक्फ़रसन ने मोहम्मद अली को ख़ूब जी भर के लूटा। यहाँ तक कि उसने कई लाख रुपए इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री तक को रिशवत देना चाहा। और जब प्रधान मन्त्री ने यह रिशवत स्वीकार न की, तो मैक्फ़रसन ने उसे ७० लाख रुपए से ऊपर क़र्ज़ (?) के तौर पर देना चाहा। किन्तु लिखा है कि प्रधान मन्त्री ने इसे भी मंज़ूर न किया।

करनाटक के नवाब की शिकायतें तो इंगलिस्तान में कौन सुनता था और कहाँ दूर हो सकती थीं, किन्तु इन तरीक़ों से मैक्फ़रसन ने कम्पनी के डाइरेक्टरों और इंगलिस्तान के मन्त्रियों पर अपना ख़ूब असर जमा लिया। वह फिर कम्पनी की नौकरी में भारत भेजा गया और तरक्क़ी करके पहले कलकत्ते की कौंसिल का मेम्बर और फिर मौक़ा मिलने पर गवरनर जनरल बना दिया गया।

इसके बाद मैक्फ़रसन का नवाब करनाटक की मुसीबतों की ओर कभी ध्यान भी न गया।

मैक्फ़रसन के कृत्य और चरित्र

मैक्फ़रसन केवल बीस महीने गवरनर जनरल रहा। इससे पहले कम्पनी अपने भारतीय इलाक़ों के लिए दिल्ली सम्राट शाहआलम को ख़िराज दिया करती थी। इस ख़िराज के चार करोड़ रुपए अब कम्पनी की ओर निकलते थे। माधोजी (महादजी) सींधिया ने सम्राट की तरफ़ से यह रक़म तलब की, किन्तु मैक्फ़रसन ने देने से इनकार कर दिया। अवध के नवाब को मैक्फ़रसन ने अपने से पहले के गवरनर जनरल के समान ख़ूब चूसा। मैक्फ़रसन के बाद उसके उत्तराधिकारी लॉर्ड कॉर्नवालिस ने ८ अगस्त सन् १७८६ को कलकत्ते से इंगलिस्तान के भारत मन्त्री हेनरी डण्डास के नाम एक गुप्त पत्र लिखा, जिसमें कॉर्नवालिस ने मैक्फ़रसन के "नाजायज़ तरीक़ों से कमाए हुए धन" उसकी "साफ़ चालबाज़ियों", उसके "निर्लज्ज झूठों", उसकी "दुरंगी चालों और कमीनी साज़िशों"* का जगह जगह ज़िक्र किया है।

भारत से लौटकर मैक्फ़रसन पार्लिमेण्ट की मेम्बरी के लिए खड़ा हुआ। चुनाव में वह जीत गया। बाद में साबित हुआ कि वह रिशवतें देकर जीता है और उसका चुनाव रद्द कर दिया गया।

* " . ill earned money . . . His flimsy cunning and shameless falsehoods . his duplicity and low intrigues . . ."—Lord Cornwallis' letter dated 8th August 1789 to the Rt Hon'ble Henry Dundas concerning Sir John Macpherson

उसके क़रीब ६० मददगारों को रिशवतें देने के जुर्म में सज़ाएँ मिलीं। स्वयं मैक्फ़रसन पर ८२ नालिशें दायर हुईं। जवाबदेही से बचने के लिए वह इंगलिस्तान छोड़कर कहीं भाग गया। अन्त में रिशवत देने ही के जुर्म में उस पर तीन हज़ार पाउण्ड जुर्माना हुआ।

भारत के अनेक गवरनर जनरलों में से एक के चरित्र का यह थोड़ा सा ख़ाका है।

ग्यारवाँ अध्याय

लॉर्ड कॉर्नवालिस

[१७८६-१७९३]

सर जॉन मैकफ़रसन केवल अस्थायी गवरनर जनरल था। उसके बाद कम्पनी के डाइरेक्टरों और इंगलिस्तान के मन्त्रियों ने मिल कर लॉर्ड कॉर्नवालिस को अपने भारतीय इलाक़ों का स्थायी गवरनर जनरल नियुक्त करके भेजा।

गवरनर जनरल के नए अधिकार

कम्पनी के सन् १७७३ के चारटर ऐक्ट के अनुसार वारन हेस्टिंग्स ब्रिटिश भारत का पहला गवरनर जनरल नियुक्त हुआ था। उसी क़ानून के अनुसार कलकत्ते में गवरनर जनरल की मदद के लिए चार और अंगरेज़ों की एक कौन्सिल होती थी, जिसका प्रधान खुद गवरनर जनरल होता था। कौन्सिल में जो बात कसरत

राय से तय हो जाती थी, गवरनर जनरल के लिए उसका मानना ज़रूरी था। यही हालत मद्रास और बम्बई के गवरनरों की भी थी। इस नियम की वजह से वारन हेस्टिंग्स की चालों में कई बार बाधाएँ पड़ीं। जिस तरह की अंगरेज़ी नीति उस समय भारत में जारी थी, उसके लिए गवरनर जनरल के हाथों में पूरे अधिकार का होना ज़रूरी था। इसलिए कॉर्नवालिस के इंगलिस्तान से चलने से पहले पार्लिमेण्ट ने एक नया क़ानून पास किया, जिसमें कलकत्ते के गवरनर जनरल और मद्रास और बम्बई के गवरनरों को यह अधिकार दे दिया कि वे जिस मामले में चाहें अपनी कौन्सिलों की राय के खिलाफ़ या कौन्सिलों से बिना पूछे काम कर सकते हैं। इसके अलावा भारत में अंगरेज़ों का इलाक़ा बढ़ता जा रहा था। इसलिए इस इलाक़े के शासन को चलाने के लिए अब इंगलिस्तान में एक नया सरकारी बोर्ड, जिसे 'बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल' कहते हैं, बना दिया गया। इससे धीरे धीरे कम्पनी के यानी डाइरेक्टरों के अधिकार कम होते गए और ब्रिटिश भारत की हुकूमत इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट और वहाँ के मन्त्रि मण्डल के हाथों में आती गई।

इस तरह नए अधिकार लेकर भारत का तीसरा अंगरेज़ गवरनर जनरल सितम्बर सन् १७८६ में भारत पहुँचा।

टीपू और अंगरेज़

कॉर्नवालिस के समय की सबसे बड़ी घटना हैदरअली के बड़े बेटे और वारिस टीपू सुलतान के साथ अंगरेज़ों का युद्ध था, जिसे दूसरा मैसूर युद्ध कहा जाता है।

टीपू का जन्म सन् १७४६ ईसवी में हुआ। लिखा है कि एक मुसलमान फ़क़ीर टीपू मस्तान औलिया के आशीर्वाद से हैदरअली के यहाँ इस पुत्र का जन्म हुआ। इसीलिए उसका नाम फ़तहअली टीपू रक्खा गया। इतिहास में वह टीपू सुलतान के नाम से मशहूर हुआ। पराक्रम और युद्ध कौशल में टीपू अपने बाप के मुक़ाबले का था। उसकी शुमार भारत के बल्कि संसार के ऊँचे से ऊँचे वीरों में की जाती है। टीपू के चरित्र का अधिक दिग्दर्शन एक अगले अध्याय में किया जायगा, यहाँ पर केवल कॉर्नवालिस और टीपू के युद्ध को बयान कर देना ज़रूरी है।

टीपू से अंगरेज़ों को डर

सन् १७८४ में टीपू और कम्पनी के बीच सन्धि हो चुकी थी, जिसमें कम्पनी ने टीपू सुलतान को मैसूर का न्याय्य अधिपति स्वीकार कर लिया था और वादा किया था कि आइन्दा हम कभी मैसूर के राज में दख़ल न देंगे और टीपू सुलतान के साथ सदा मित्रता क़ायम रक्खेंगे। तब से अब तक टीपू ने अपनी ओर से सन्धि का ठीक ठीक पालन किया था और अंगरेज़ों के साथ कभी किसी तरह की छेड़छाड़ न की थी। किन्तु टीपू और उसके पिता हैदर के हाथों जो हार पर हार और ज़िल्लत पर ज़िल्लत अंगरेज़ों को उठानी पड़ी थी वह हर अंगरेज़ के दिल में काँटे की तरह खटक रही थी। बाप के मरने के बाद क़रीब एक साल तक जिस शान और सफलता के साथ टीपू ने अंगरेज़ों के साथ युद्ध जारी रक्खा, उसकी वजह से उन दिनों टीपू का नाम सुनकर अंगरेज़ चौंक उठते

थे। पादरी डब्ल्यु० एच० हटन लिखता है कि अंगरेज़ माताएँ टीपू का नाम ले लेकर अपने शरीर बच्चों को चुप कराती थीं।*

इसके अलावा टीपू के साथ कम्पनी के युद्ध छेड़ने की एक और ज़बरदस्त वजह थी। अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' किसी समय इंगलिस्तान के अधीन थीं। किन्तु वहाँ के बाशिन्दे अधिकतर यूरोप ही के अलग अलग देशों से जाकर बसे थे। उन्होंने अपनी आज़ादी के लिए युद्ध किया। भयङ्कर रक्तपात हुआ। अन्त में इंगलिस्तान हारा और अमरीका की 'संयुक्त रियासतें' सदा के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से अलग और आज़ाद हो गईं। इंगलिस्तान की कीर्ति को इस घटना से ख़ासा धक्का पहुँचा। तुरन्त इंगलिस्तान के शासकों ने अपनी क़ौम के यश को फिर से क़ायम करने और इस कमी को पूरा करने के लिए हिन्दोस्तान में अपना राज बढ़ाने का फ़ैसला किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस को जो हिदायतें देकर भारत भेजा गया, उनमें से एक यह थी कि जितनी जल्दी हो सके भारत में अमरीका की कमी को पूरा करने का यत्न किया जाय। ये सब बातें उस समय के सरकारी पत्र व्यवहार में बिलकुल स्पष्ट हैं।

टीपू के साथ युद्ध की तैयारी

कॉर्नवालिस ने भारत पहुँचते ही टीपू के साथ युद्ध की तैयारी शुरू कर दी। टीपू एक वीर और सुयोग्य शासक था। उसने अपनी प्रजा के साथ कभी बुरा व्यवहार नहीं किया। उसके राज में चारों ओर वह उन्नति और ख़ुशहाली नज़र आती थी जो उस समय के ब्रिटिश

* *Marquess of Wellesley*, p. 32

भारतीय इलाके में कहीं देखने को भी न मिलती थी। किन्तु टीपू नातजरुबेकार था। विदेशियों से देश को कितना ख़तरा था, और उस ख़तरे को दूर करने के लिए अपने भारतीय पड़ोसियों से मेल बनाए रखने की कितनी ज़रूरत थी इन दोनों चीज़ों को वह अभी पूरी तरह न समझ पाया था। कुछ सरहदी इलाक़ों के बारे में मराठों और निज़ाम दोनों से उसके झगड़े चले आते थे, जिनमें ज़्यादती चाहे किसी की भी रही हो, इसमें सन्देह नहीं टीपू अपने पड़ोसियों के साथ उस तरह का प्रेम और मेल क़ायम न रख सका, जिस तरह का हैदर ने रख रक्खा था। निज़ाम और मराठों के साथ टीपू के इन आपसी झगड़ों से ही कम्पनी को टीपू के ख़िलाफ़ सबसे ज़्यादा मदद मिली। कॉर्नवालिस ने सबसे पहले टीपू के विरुद्ध निज़ाम के साथ एक नया समझौता किया। इस समझौते का मतलब यह था कि कम्पनी की वह सबसीडीयरी सेना जो निज़ाम के यहाँ निज़ाम के ख़र्च पर रक्खी गई थी, टीपू पर हमला करने के लिए काम में लाई जा सकेगी, और निज़ाम टीपू पर हमला करने में अंगरेज़ों को मदद देगा।*

मराठों और निज़ाम को टीपू के ख़िलाफ़ फोड़ना

इस दरमियान टीपू और मराठों में सुलह सफ़ाई की बातचीत हो रही थी, और यदि कॉर्नवालिस बीच में बाधा न डालता तो निस्सन्देह सुलह हो ही गई थी। किन्तु कॉर्नवालिस ख़ूब जानता था कि टीपू को वश में करना अकेले अंगरेज़ों और

* *Historical Sketches*, by Colonel Wilks, vol iii p 38

निज़ाम के बूते का काम नहीं है। यह ख़बर पाते ही कि टीपू और मराठों में सुलह हो रही है, कॉर्नवालिस ने फ़ौरन २३ अक्तूबर सन् १७८७ को अपने एक अफ़सर जॉर्ज फ़ॉर्स्टर को लिखा कि आप मूदाजी भोंसले के पास नागपुर पहुँच कर गुप्त रीति से वहाँ के सैन्यबल इत्यादि का पता लगावें और मूदाजी और उसके साथियों को टीपू के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों की ओर फोड़ने का यत्न करें। इसी पत्र में कॉर्नवालिस ने लिखा कि—"यदि मराठों ने टीपू के साथ सुलह कर ली है या सुलह करने का फ़ैसला कर लिया है तो यह नामुमकिन है कि हमारे समझाने बुझाने से मराठे फ़ौरन ही अपने उस फ़ैसले से टल जावें × × × इसलिए आप इसमें कोई कोशिश उठा न रखिए × × × कि टीपू को दोनों का दुश्मन दिखा कर और मराठों को उकसाकर टीपू के ख़िलाफ़ मराठों के साथ गहरा सम्बन्ध और मेल कर लिया जावे।"*

इसी मज़मून का एक पत्र कॉर्नवालिस ने १० मार्च सन् १७८८ को पूना के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट मैलेट को लिखा, जिसमें मैलेट से पेशवा दरबार को टीपू के विरुद्ध फोड़ने के लिए कहा गया। पेशवा दरबार और निज़ाम दोनों से कॉर्नवालिस ने यह वादा किया कि यदि आप लोग टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों को युद्ध में मदद देंगे तो

* In his letter to George Forster dated October 23, 1787, Lord Cornwallis wrote —"If the Marhattas have engaged or resolved to keep peace with Tipoo, it is not probable that our solicitations would induce them to depart immediately from that plan " Forster was therefore instructed to spare no pains to incite Marhattas "to form a close connexion and alliance against Tipoo as a common enemy "

जितना इलाक़ा टीपू से विजय किया जावेगा वह सब कम्पनी, निज़ाम और मराठों में बराबर बराबर बाँट दिया जावेगा। कॉर्नवालिस का दिया हुआ लोभ अपना काम कर गया। निज़ाम का चरित्र कभी भी अधिक विश्वास के योग्य न रहा था। किन्तु इस समय पेशवा दरबार का हैदर के बेटे के ख़िलाफ़ विदेशियों के हाथों में खेल जाना निस्सन्देह अत्यन्त अफ़सोसनाक था। टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों, मराठों और निज़ाम में सन्धि हो गई। इस सन्धि के बारे में उस समय के प्रसिद्ध अंगरेज़ नीतिज्ञ फ़ॉक्स ने कहा था कि वह वास्तव में—"एक न्याय्य नरेश को मिटा देने के उद्देश से डकैतों की साज़िश थी।"*

इंगलिस्तान के मन्त्रियों ने समाचार पाते ही फ़ौरन कुछ गोरी फ़ौज और पाँच लाख पाउण्ड नक़द बतौर क़र्ज़ कॉर्नवालिस की मदद के लिए इंगलिस्तान से रवाना किए।

टीपू के साथ युद्ध का बहाना

तमाम तैयारी पूरी हो गई, कॉर्नवालिस के लिए अब केवल कोई बहाना ढूंढ़ना बाक़ी था। कहते हैं कि त्रिवानकुर के राजा और टीपू में कुछ झगड़ा चला आता था। त्रिवानकुर के राजा को यह कह कर भड़काया गया कि टीपू तुम पर हमला करने का इरादा कर रहा है। उस समय के तमाम पत्रों और उल्लेखों से साबित है कि टीपू का त्रिवानकुर पर हमला करने का क़तई कोई इरादा न

* "A plundering confederacy for the purpose of extirpating a lawful prince."—Fox

था। मद्रास के गवरनर हॉलेण्ड के एक पत्र में यह भी लिखा है कि—"कम्पनी से लड़ने का टीपू का बिलकुल इरादा न था और यदि कोई बातें शिकायत की थीं भी तो वह उन्हें आपस में पत्र व्यवहार द्वारा तय करने को राज़ी था।" टीपू ने खुद अंगरेज़ों को यक़ीन दिलाया कि मेरा इरादा न हरगिज़ शान्ति भंग करने का है और न त्रिवानकुर की प्राचीन रियासत पर हमला करने का। करनल विल्क्स लिखता है कि टीपू "लड़ाई के लिए तैयार न था" किन्तु कॉर्नवालिस को अपने मालिकों की आज्ञा मिल चुकी थी। वह सन् १७८४ की सन्धि को पैरों तले रौंद कर, जिस तरह हो, टीपू को मिटाने और भारतीय ब्रिटिश राज की सीमाओं को बढ़ाने का सङ्कल्प कर चुका था। उसने मद्रास के गवरनर को उत्तर में लिखा कि—"टीपू का तैयार न होना ही कम्पनी के लिए सब से अच्छा मौक़ा है।" टीपू को बदनाम करने और अपने अन्याय को लोगों की नज़रों में जायज़ क़रार देने के लिए टीपू के अन्यायों और अत्याचारों के अनेक झूठे क़िस्से गढ़कर चारों ओर फैलाए गए, जिनमें से अनेक अभी तक भारतीय स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों में पाए जाते हैं।

त्रिवानकुर की सहायता के नाम पर युद्ध छेड़ा गया, किन्तु इसके बाद की तमाम काररवाइयों में त्रिवानकुर के राजा का कहीं नाम भी नहीं आता।

सब से पहले जून सन् १७९० में मद्रास से एक फ़ौज जनरल मीडोज़ के अधीन मैसूर पर हमला करने के लिए रवाना हुई।

इस फ़ौज के साथ बहुत सी फ़ौज करनल मेक्सवेल के अधीन बंगाल को थी। टीपू अपनी सेना सहित मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। मीडोज़ ने टीपू के कई सामन्तों को लोभ देकर अपनी तरफ़ फोड़ लिया। अनेक स्थानों पर दोनों ओर की सेनाओं में संग्राम हुए, जिनके विस्तार में पड़ने की ज़रूरत नहीं है। अन्त में टीपू की वीरता और उसके बढ़े हुए युद्ध कौशल की वजह से बजाय इसके कि अंगरेज़ी सेना मैसूर का कोई हिस्सा विजय कर सकती, टीपू की सेना ने कम्पनी की सेना को पीछे भगाते भगाते मद्रास के निकट तक पहुँचा दिया। टीपू ने फिर करनाटक के काफ़ी इलाक़े पर क़ब्ज़ा कर लिया और जनरल मीडोज़ को जगह जगह ज़बरदस्त हार खाकर, जान और माल का बेहद नुक़सान उठाकर, नाकाम मद्रास लौट आना पड़ा।

युद्ध का प्रारम्भ और टीपू की विजय

मीडोज़ की लज्जाजनक हार का हाल सुन कर कॉर्नवालिस ने सेना की बाग ख़ुद अपने हाथों में ली। १२ दिसम्बर सन् १७९० को वह एक बहुत बड़ी फ़ौज लेकर कलकत्ते से मद्रास के लिए रवाना हुआ। मुमकिन है कि कॉर्नवालिस और उसकी यह नई सेना भी टीपू को वश में करने के लिए काफ़ी न होती। किन्तु इस बीच निज़ाम और मराठों की सेनाएँ अंगरेज़ों की मदद के लिए पहुँच चुकी थीं। मालूम नहीं नाना फड़नवीस उस समय पूना में मौजूद था या नहीं और यदि था तो दरबार में उसका

तीन तीन शत्रुओं का एक साथ मुक़ाबला

कहाँ तक प्रभाव था। जो हो, पेशवा दरबार का उस समय अंगरेज़ों के हाथों में खेल कर उन्हें उस घोर अन्याय में मदद देना न केवल टीपू, बल्कि तमाम भारतीय राजशक्तियों के भविष्य के लिए अत्यन्त अशुभ सूचक था। इस सब के अलावा हैदर की अदूरदर्शिता का नतीजा भी इस समय टीपू को भोगना पड़ा। टीपू के तमाम यूरोपियन नौकर यानी उसकी सेना के यूरोपियन अफ़सर और सिपाही ऐन मौके पर शत्रु से जा मिले। कॉर्नवालिस ने गुप्त पत्र व्यवहार द्वारा इन तमाम लोगों को, जिन्हें हैदर ने नौकर रक्खा था, धन का लोभ देकर अपनी ओर कर लिया। पाँच लाख पाउण्ड नक़द कॉर्नवालिस को इस तरह के कामों के लिए विलायत से क़र्ज़ मिल चुके थे। इतिहास लेखक थॉर्नटन लिखता है:—

"टीपू सुलतान के यूरोपियन नौकर जिस तरह पहले अपनी विद्या और अपने कौशल को टीपू की रक्षा करने के लिए काम में लाते थे उसी तरह अब वे अपनी उन्हीं ताक़तों को टीपू के नाश के लिए काम में लाने को हर तरह तैयार हो गए।"*

टीपू की सेना में विश्वासघातक

मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि टीपू के कुछ अमीरों और सरदारों को भी अंगरेज़ों ने अपनी ओर फोड़ लिया था। टीपू जो इस युद्ध के लिए पहले से तैयार न था, एक ओर अंगरेज़ों,

* "Tipu's European servants were now quite as ready to exercise their skill and knowledge for his destruction as they had previously been assiduous in using them for his defence."—*History of British India*, by Thornton

मराठों और निज़ाम तीन तीन ताक़तों की सेनाओं द्वारा कई तरफ़ से घिर गया और दूसरी ओर उसकी अपनी सेना में विश्वासघातक पैदा होगए।

"शोकजनक संहार"

इस पर भी कॉर्नवालिस का काम इतना आसान न था। टीपू ने वीरता के साथ अपने तीनों शत्रुओं का मुक़ाबला किया। कई महीने युद्ध जारी रहा। उस युद्ध की अनेक लड़ाइयों को विस्तार के साथ बयान करने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु अकेला टीपू इस तरह के तीन शत्रुओं का मुक़ाबला और इन हालतों में कब तक कर सकता था? अन्त में टीपू को पीछे हटना पड़ा, यहाँ तक कि बंगलोर का नगर अंगरेज़ों के हाथों में आगया। बंगलोर विजय के बाद कॉर्नवालिस की आज्ञा से उसकी सेना ने बंगलोर निवासियों के साथ जो व्यवहार किया उसे इतिहास लेखक मिल "शोकजनक संहार" * कह कर बयान करता है। बंगलोर के नगर को जी भर के लूटा गया।

श्रीरंगपट्टन पर अंगरेज़ों की चढ़ाई

बंगलोर लेने के बाद कॉर्नवालिस ने मैसूर की राजधानी श्रीरंगपट्टन पर चढ़ाई की। जिस समय अंगरेज़ी सेना राजधानी के निकट पहुँची, टीपू ने अपने एक दूत के हाथ अनेक ऊँट फलों से लदवा कर सुलह की इच्छा के चिह्न रूप कॉर्नवालिस की सेवा में भेजे, किन्तु

* "Deplorable carnage"—Mill

कॉर्नवालिस ने उन फलों को बिना हाथ लगाए लौटा दिया। टीपू के दूत से उसने सुलह की बातचीत करने तक से इनकार कर दिया। इतिहास लेखक मिल लिखता है कि लूट के लोभ और यश की इच्छा ने इस समय अंगरेज़ी सेना को अन्धा कर रक्खा था और वह मैसूर निवासियों के साथ उस अमानुषिक व्यवहार पर कटिबद्ध थी, जिसका कोई सभ्य क़ौम अपने बुरे से बुरे शत्रु के साथ विचार तक नहीं कर सकती।*

मीडोज़ की हार

टीपू ने अपनी शक्ति भर युद्ध जारी रक्खा। साथ ही उसने फिर कॉर्नवालिस के साथ सुलह की बातचीत करने की कोशिश की। वह अपनी उस समय की अवस्था ख़ूब समझ रहा था। किन्तु कॉर्नवालिस ने इस बार टीपू के दूत को अपने सामने तक आने न दिया। आख़िरकार श्रीरंगपट्टन का मोहासरा शुरू हुआ। टीपू ने फिर अंगरेज़ों और मराठों दोनों से सुलह की बातचीत शुरू की। इस बीच जनरल मीडोज़ ने कॉर्नवालिस की इजाज़त से सोमरपीठ के प्रसिद्ध बुर्ज पर हमला किया। सोमरपीठ उस समय 'श्रीरंगपट्टन के क़िले की नाक' कहलाता था। सय्यद ग़फ़्फ़ार इस मोरचे का रक्षक था। सय्यद ग़फ़्फ़ार ने ख़ूब वीरता के साथ जनरल मीडोज़ का मुक़ाबला

* " . . . the fact is, that the English in India, at that time, had been worked up into a mixture of fury and rage against Tipoo more resembling the passion of savages against their enemy, . . . than the feelings with which a civilized nation regards the worst of its foes."— Mill, vol. v, p. 278

किया। घमासान संग्राम हुआ जिसमें मीर किरमानी के अनुसार दो हज़ार अंगरेज़ सिपाही मैदान में काम आए। पराजित अंगरेज़ सेनापति को अपने बचे हुए आदमियों सहित पीछे लौट आना पड़ा। लिखा है कि जनरल मीडोज़ को इस पराजय पर इतनी लज्जा आई कि उसने अपने ख़ेमे में जाकर आत्महत्या करना चाहा, उसने अपनी पिस्तौल का उपयोग किया। पहली गोली उसकी बग़ल को छीलते हुए निकल गई, उसने दोबारा पिस्तौल चलाना चाहा, इतने में करनल मैलकम ने जो आवाज़ सुनकर ख़ेमे में घुस आया था, मीडोज़ के हाथ से पिस्तौल छीन ली। कॉर्नवालिस को इस घटना को सूचना दी गई। उसने आकर मीडोज़ को सान्त्वना दी और इस अवसर पर टीपू के साथ सुलह की इच्छा प्रकट की।

हैदरअली की समाधि का अपमान

श्रीरंगपट्टन से पूरब की ओर लालबाग़ नाम का एक बड़ा सुन्दर बाग़ है, जिसमें हैदरअली की समाधि बनी हुई है। टीपू सुलतान ने अपने पिता की याद में इस बाग़ और समाधि के सौन्दर्य को बढ़ाने में काफ़ी धन खर्च किया था। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने इस बाग़ पर क़ब्ज़ा कर लिया। वहाँ के लम्बे 'सर्व' और अन्य सुन्दर वृक्षों को कटवा डाला और हैदरअली की समाधि का अपमान किया। टीपू को यह देखकर बड़ा दुख हुआ।

श्रीरंगपट्टन की संधि

टीपू और मराठों के बीच भी इस समय सुलह के लिए पत्र व्यवहार हो रहा था। अब तक अंगरेज़ों ने टीपू पर जो विजय प्राप्त की थी वह अधिकतर मराठों

और निज़ाम ही के बल पर की थी। कहा जाता है कि इस अवसर पर मराठों और ख़ास कर नाना फ़ड़नवीस ने कॉर्नवालिस को सुलह के लिए मजबूर किया। अंगरेज़ मराठों की इच्छा के विरोध का साहस न कर सकते थे। अन्त में २३ फ़रवरी सन् १७९२ को श्रीरंगपट्टन में दोनों दलों के बीच संधि होगई, जिसके अनुसार टीपू का ठीक आधा राज उससे लेकर कम्पनी, निज़ाम और मराठों ने आपस में बराबर बराबर बाँट लिया।

इसके अलावा असहाय टीपू ने, तीन सालाना क़िस्तों में, तीन करोड़, तीस हज़ार रुपए दण्ड स्वरूप देने का वादा किया। और इस दण्ड की अदायगी के समय तक के लिए अपने दो बेटे जिनमें शहज़ादे अब्दुल ख़ालिक़ की आयु दस साल की और शहज़ादे मुईज़ुद्दीन की आयु आठ साल की थी, बतौर बन्धकों के अंगरेज़ों के हवाले कर दिए।

टीपू की प्रतिज्ञा

इस तरह दूसरे मैसूर युद्ध का अन्त हुआ। टीपू के दिल पर इस युद्ध का इतना ज़बरदस्त असर हुआ कि मीर हुसेनअली ख़ाँ किरमानी लिखता है कि सन्धि के दिन से टीपू ने पलँग और बिस्तर पर सोना छोड़ दिया। उस दिन से मृत्यु के समय तक वह केवल चन्द टुकड़े 'खादी' के ज़मीन पर डाल कर उनके ऊपर सोया करता था। यों तो उस समय तक भारत का बना तमाम कपड़ा ही हाथ का कता और हाथ का बुना होता था, किन्तु किरमानी लिखता है कि 'खादी'

लार्ड कार्नवालिस टीपू सुलतान के दो बेटों को बतौर बन्धक ले रहा है।

(By the courtesy of the Trustees, Victoria Memorial, Calcutta.)

उस समय एक मोटी क़िस्म के कपड़े को कहते थे जो ख़ेमे बनाने के काम में आता था।

अगले साल यानी सन् १७९३ ईसवी में कॉर्नवालिस ने फ्रांसीसियों के तमाम भारतीय इलाक़ों पर हमला करके उन्हें अंगरेज़ कम्पनी के अधीन कर लिया।

कॉर्नवालिस और दिल्ली सम्राट

इसके बाद भारत के अन्य नरेशों के साथ कॉर्नवालिस के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है। दिल्ली का सम्राट अभी तक कहने के लिए समस्त भारत का अधिराज था। अंगरेज़ क़ायदे के अनुसार उसकी प्रजा थे। वारन हेस्टिंग्स के समय तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के लिए वे दिल्ली दरबार को सालाना ख़िराज भेजा करते थे। हेस्टिंग्स ने माधोराव सींधिया के साथ मिलकर दिल्ली सम्राट को मराठों के हवाले करवा दिया, और कलकत्ते से दिल्ली ख़िराज जाना रुक गया। उसके बाद सर जॉन मैक्फ़रसन केवल अस्थायी गवरनर जनरल था। इस दरमियान दिल्ली से ख़िराज की माँग बराबर आती रही। कॉर्नवालिस के समय में सम्राट की ओर से फिर माँग आई। कॉर्नवालिस ने अब सदा के लिए ख़िराज देने से इनकार कर दिया। इसलिए नहीं कि दिल्ली सम्राट ने इस बीच अंगरेज़ों का कोई अहित किया हो, बल्कि केवल इसलिए क्योंकि दिल्ली का सम्राट अब काफ़ी बलहीन हो चुका था और अंगरेज़ अपना बल काफ़ी बढ़ा चुके थे। सम्राट दरबार में इतनी हिम्मत न थी कि सेना भेजकर कलकत्ते से ख़िराज वसूल

कर सके। इस तरह बङ्गाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्त अब साफ़ साफ़ दिल्ली साम्राज्य से कटकर अंगरेज़ कम्पनी के स्वायत्त शासन में आ गए।

कॉर्नवालिस और नवाब अवध

अवध के नवाब के साथ भी कॉर्नवालिस का सलूक इसी तरह का था। कम्पनी की एक विशाल सेना जिसके सब अफ़सर अंगरेज़ थे, ज़बरदस्ती अवध के ऊपर मढ़ दी गई थी। नवाब को उसका ख़र्च देना पड़ता था। वारन हेस्टिंग्स ने नवाब से वादा किया था कि भविष्य में जब ज़रूरत न रहेगी तो यह सेना अवध से वापस बुला ली जायगी। नवाब ने अब उस वादे को पूरा करने के लिए कॉर्नवालिस से प्रार्थना की। किन्तु इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

"गोकि उस समय अवध के सामने कोई ख़ास ख़तरा न था, और जितने रुपए नवाब से कम्पनी को लेने का हक़ था उससे ज़्यादा फ़तहगढ़ की इस सेना पर नवाब का ख़र्च होता था, फिर भी कॉर्नवालिस अपने इस निश्चय पर क़ायम रहा कि सेना फ़तहगढ़ से न हटाई जावे।"*

इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य पिपासा को भविष्य में शान्त करने के वास्तविक उद्देश से पचास लाख रुपए सालाना से ऊपर का दण्ड ज़बरदस्ती कम्पनी के मित्र अवध के नवाब से वसूल किया जाता रहा।

---

* Mill, vol V p 222

कम्पनी के दूसरे मित्र निज़ाम के साथ कॉर्नवालिस का सलूक इससे बेहतर न था। इंगलिस्तान से चलते समय डाइरेक्टरों ने उसे हिदायत कर दी थी कि 'गुण्टूर का इलाक़ा' किसी तरह निज़ाम से ले लिया जाय। कॉर्नवालिस जानता था कि यदि मैसूर युद्ध से पहले निज़ाम पर यह बात ज़ाहिर हो गई तो निज़ाम के टीपू से मिल जाने का डर है। वह मौक़े की ताक में रहा। युद्ध के बाद जब उसने निज़ाम को निर्बल पाया तो अपने एक अफ़सर कप्तान केनावे को इस काम के लिए निज़ाम के दरबार में भेजा। इतिहास लेखक मिल लिखता है :—

कॉर्नवालिस और निज़ाम

"तय हो गया था कि जब तक कप्तान केनावे दरबार में पहुँच न जावे तब तक निज़ाम को यह ख़बर न होने पावे कि उससे गुण्टूर माँगे जाने की तजवीज़ की जा रही है × × × मद्रास की गवरमेण्ट ने इधर उधर के बहाने लेकर एक सेना गुण्टूर के आस पास पहुँचा दी, और इससे पहले कि कोई दूसरी शक्ति लड़ने के लिए या एतराज़ करने के लिए पहुँच सके, ख़ुद उस इलाक़े पर क़ब्ज़ा करने की तैयारी कर ली।"*

निज़ाम पहले ही कायर और कमज़ोर था। युद्ध की ज़रूरत

* "No intimation was to be given to the Nizam of the proposed demand, till after the arrival of Captain Kennaway at his Court the Government of Madras, under spacious pretences, conveyed a body of troops to the neighbourhood of the Sircar, and held themselves in readiness to seize the territory before any other power could interpose, either with arms or remonstrance"—Mill, vol v, p 225

भी न पड़ी और गुण्टूर का इलाक़ा कम्पनी के हाथों में आ गया। कहा जाता है कि किसी डाकू की माँ ने सिकन्दर के सामने विजेताओं और डाकुओं की परस्पर समानता दर्शाई थी। निस्संदेह उसे इससे बढ़कर मिसाल न मिल सकती।

अन्त में लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासनकाल की और कुछ कारग्वाइयों और उसके 'शासन सुधारों' पर नज़र डालना ज़रूरी है। सब से पहले उसके समय के कम्पनी के नौकरों की नियुक्ति का ढङ्ग। इतिहास में दर्ज है कि उस समय के इंगलिस्तान के युवराज (प्रिन्स ऑफ़ वेल्स) ने अनेक बार अपने अनेक मित्रों या आश्रितों की भारत की ख़ास ख़ास नौकरियों के लिए सिफ़ारिश की और कॉर्नवालिस बराबर युवराज की इच्छा को पूरा करता रहा। एक बार युवराज ने कॉर्नवालिस को लिखा कि आप "एलीकान नामक एक काले" को बनारस की फ़ौजदारी की चीफ़ जजी से हटा कर पैल्लेग्राइन ट्रीव्ज़ नामक एक अंगरेज़ को उसकी जगह नियुक्त कर दें। पैल्लेग्राइन ट्रीव्ज़ इंगलिस्तान के एक बदनाम महाजन का बेटा था और युवराज को उस महाजन का कुछ क़र्ज़ा अदा करना था। कॉर्नवालिस इस बार युवराज की इच्छा पूरी न कर सका। उसने युवराज को लिखा कि अली इब्राहीम ख़ाँ (जिसे युवराज ने 'काला एलीकान' लिखा था) गोकि हिन्दोस्तानी है फिर भी "भारत के सब से अधिक योग्य और सब से अधिक सम्मानित सरकारी अफ़सरों में से है।" जब कि ट्रीव्ज़ नौजवान और बिलकुल नातजरु

कम्पनी के मुलाज़िमों की नियुक्ति

बेकार है; और एक इतने ज़िम्मेवारी के ओहदे पर उसे नियुक्त करना केवल मज़ाक़ उड़वाना होगा, इत्यादि ।

कॉर्नवालिस ने भारत आकर देखा कि उस समय ऊँचे ऊँचे ओहदों पर कम्पनी के ज़्यादातर यूरोपियन नौकर अयोग्य और रिशवतख़ोर थे। कॉर्नवालिस ने इसे महसूस किया और इसके दो इलाज किए। एक यह कि उसने नियम कर दिया कि आइन्दा सिवाय छोटी से छोटी नौकरियों के कम्पनी के इलाक़े में कोई बड़ी नौकरी किसी हिन्दोस्तानी को न दी जाय। दूसरे उसने कम्पनी के यूरोपियन मुलाज़िमों की तनख़्वाहें बढ़ा दीं।

भारत की ग्राम पंचायतें

अत्यन्त प्राचीन काल से भारत की ९९ फ़ीसदी जन संख्या ग्रामों में रहती रही है। हर गाँव में सदा से एक ग्राम पञ्चायत होती थी। इतिहास लेखक टॉरेन्स के शब्दों में "भारतवासियों का सारा सामाजिक, औद्योगिक और राजनैतिक जीवन इन्हीं ग्रामों और ग्राम पञ्चायतों के आधार पर क़ायम था और इन्हीं का बना हुआ था।"* इन ग्राम पञ्चायतों के सङ्गठन और उनके कार्यों के विषय में हम उस समय के केवल एक दो अंगरेज़ इतिहास लेखकों की गवाही पेश करते हैं। टॉरेन्स लिखता है :—

"उस प्रचीन काल से लेकर, जिसकी कि कोई याद तक बाक़ी नहीं रही, हर गाँव के बड़े बूढ़ों की एक पञ्चायत गाँव पर शासन करती रही है, गाँव के

* . . . the village Community was, as it is still, the unit of social industrial and political existence . . . Torrens' *Empire in Asia*, p 100

पंचायती कामों को चलाती रही है और गाँव भर के हितों की रक्षा करती रही है। पञ्चों की तादाद पहले पाँच हुआ करती थी, अब अकसर पाँच से अधिक होती है। किन्तु पञ्चों में सदा सब बिरादरियों के चुने हुए लोग शामिल रहे हैं। जब कभी कोई झगड़ा होता है पञ्च ही प्राचीन मर्यादा के अनुसार उसका फ़ैसला करते है, और जब कभी कोई नए ढङ्ग का प्रश्न आ खड़ा होता है तो पञ्च ही नए नियम बनाकर आइन्दा के लिए मर्यादा क़ायम करते हैं।"*

सर जॉन मैलकम लिखता है :—

"भारत की म्युनिसिपल और ग्राम पंचायतों को छोटे बड़े तमाम लोगों ने मिल कर जो अधिकार दे रक्खे थे उनके बल पर ये पंचायतें अपने अपने दायरे के अन्दर पूरी तरह शान्ति और व्यवस्था क़ायम रख सकती थीं। मध्य भारत में अन्यायी शासकों ने भी कभी इन पंचायतों के स्वत्वों और उनके अधिकारों पर हमला नहीं किया, जब कि तमाम न्यायशील नरेशों की कीर्ति और सर्वप्रियता का ख़ास सबब यही होता था कि वे इन पंचायतों का पूरा ख़याल रखते थे।"†

---

* "Time out of mind, the village and its common interests and affairs have been ruled over by a council of elders, anciently five in number, now frequently more numerous but always representative in character, who, when any dispute arises declare what is the customary law, and who, when any new or unprecedented case occurs occasionally legislate,"—Ibid p 101

† The Municipal and village institutions of India were competent, from the power given them by the common assent of all ranks, to *maintain* order and peace within their respective circles. In Central India, their rights and privileges *never* were contested even by *tyrants*, while all just *princes* founded their chief reputation and claim to popularity on attention to them."
—Malcolm vol i Chap xii Ibid p 101

सर टामस मनरो, जो हिन्दोस्तान के दूसरे हिस्सों से भी अच्छी तरह परिचित था, लिखता है :—

"हिन्दोस्तान के हर गाँव में एक बाक़ायदा पंचायत (म्युनिसिपैल्टी) होती थी, जो गाँव की मालगुज़ारी और पुलिस दोनों का इन्तज़ाम करती थी और जो बहुत बड़े दरजे तक, मुजरिमों को सज़ा देने और मुक़दमों के फ़ैसला करने का भी काम करती थी ।"*

सर टॉमस मनरो ने बड़े विस्तार के साथ बयान किया है कि इन सुसङ्गठित ग्राम पञ्चायतों में कौन कौन कर्मचारी होते थे, उनके क्या क्या अधिकार और क्या क्या कर्त्तव्य होते थे, गाँव की मालगुज़ारी वसूल करने वाले (कलक्टर) और गाँव में अमन अमान क़ायम रखने वाले (मैजिस्ट्रेट) दो अलग अलग अफ़सर एक दूसरे से बिल्कुल स्वतन्त्र होते थे । ग्राम निवासियों के जान माल की रक्षा के लिए हर पञ्चायत के अधीन 'तहार्गे' (?) यानी कॉंस्टेबलों का एक दल होता था, इत्यादि ।

टॉरेन्स लिखता है कि भारत की इन ग्राम पंचायतों में सबसे विचित्र व्यवस्था जूरियों की थी । दीवानी और फ़ौजदारी हर मुक़दमे के लिए अलग अलग जूरी या अस्थाई पञ्च चुने जाते थे । इनका फ़ैसला सबके लिए मान्य होता था । इन्हें जनता चुनती थी । उच्च से उच्च चरित्र, साहस और त्याग वाले मनुष्य इन

* In all Indian villages there was a regularly constituted municipality, by which its affairs, both of revenue and police, were administered, and which exercised, to a very great extent Magisterial and Judicial authority "
—Sir Thomas Munro, Ibid, p 101

के मुखिया चुने जाते थे। मैलकम लिखता है कि ये मुखिया आम तौर पर ऐसे लोग होते थे जो हर न्यायशील नरेश की सहायता करते थे और हर अन्यायी नरेश का साहस के साथ विरोध करते थे और गाँव के जीवन की अन्याय से रक्षा करते थे। हर श्रेणी और हर बिरादरी के लोगों में से ये पञ्च चुने जाते थे। मुद्दई और मुद्दाले दोनों को इनके चुनाव पर एतराज़ करने का हक़ होता था। ये पञ्चायतें ही अत्यन्त प्राचीन समय से लेकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने के समय तक भारतीय न्याय पद्धति के रग पट्ठे थीं। भारतवासियों के चरित्र पर इनका प्रभाव बड़ा गहरा पड़ता था। मैलकम लिखता है कि—"यदि कभी किसी आपत्ति के समय कोई मनुष्य अपना घर या खेत छोड़ कर कहीं चला जाता था तो वह या उसकी औलाद जब चाहे अपने झोपड़े या अपने खेत पर फिर से आकर क़ब्ज़ा कर लेती थी, न किसी दीवार के लिए कोई झगड़ा होता था और न किसी खेत के लिए मुक़द्मेबाज़ी।"* हर किसान अपनी ज़मीन का पूरा मालिक समझा जाता था। मनरो लिखता है कि उस समय के भारतवासी "सरल, निष्पाप और ईमानदार होते थे और इतने सच्चे थे जितने संसार के किसी भी दूसरे देश के लोग हो सकते थे।"†

---

* "Every wall of a house, every field, was taken possession of by the owner or cultivator without dispute or litigation."—Malcolm vol ii, Chap. i Ibid, p 100

† "Simple, harmless, honest and having as much truth in them as any people in the world." Munro vol i, p 280 Ibid, p 100

इन हज़ारों बरसों की ग्राम पञ्चायतों पर सबसे पहला हमला उस समय हुआ जब कि बंगाल के अन्दर मीर जाफ़र और मीर क़ासिम के शासन काल में ईस्ट इंडिया कम्पनी की भयंकर तिजारती तथा कारबारी लूट और अनेक मौक़ों पर बेपरदा और खुली लूट का दौर शुरू हुआ। दूसरा बाक़ायदा हमला भारत की ग्राम पंचायतों पर सन् १७७३ में हुआ जबकि वारन हेस्टिंग्स के शासन काल में इंगलिस्तान के अन्दर 'रेगुलेशन ऐक्ट' नाम का क़ानून पास हुआ, जिसके अनुसार वारन हेस्टिंग्स के मशहूर दोस्त सर एलाइजाह इम्पे के अधीन कलकत्ते में पहली अंगरेज़ी हाईकोर्ट क़ायम हुई। उस समय से ही, टॉरेन्स लिखता है :—

ग्राम पञ्चायतों का नाश

"इससे पहले के तमाम राजकुलों के परिवर्तनों में मुसलमान या मराठे सब भारतीय नरेश जिन (म्यूनिसिपल) पंचायतों का पूरा पूरा लिहाज़ रखते थे और जिन्हें उन लोगों ने निस्सन्देह बिलकुल ज्यों का त्यों क़ायम रखा था, अब नए विदेशी शासकों ने उन प्राचीन पंचायतों का पूरी तरह निरादर किया और उनमें से अधिकांश को निर्दयता के साथ उखाड़ कर फेंक दिया। देशी पंचों की अदालत की जगह अब एक स्वेच्छाचारी विदेशी जज बैठा दिया गया।"*

* "Yet these Municipal institutions, which confessedly had been scrupulously respected in all former changes of dynasty whether Mohammadan or Maratha, were henceforth to be disregarded, and many of them to be rudely uprooted by the new system of foreign administration Instead of the native Punchayat, there was established an arbitrary Judge"—Ibid, p 102, 103

आगे चल कर टॉरेन्स लिखता है :—

"कोई भी समझदार और न्यायशील इतिहास लेखक इन कामों पर बिना आश्चर्य प्रकट किए और उन्हें निन्दनीय ठहराए उनका उल्लेख नहीं कर सकता।"*

कॉर्नवालिस ने देश भर में नई अंगरेज़ी अदालतें क़ायम करके इन भारतीय ग्राम पंचायतों के रहे सहे चिन्हों का अब सदा के लिए अन्त कर दिया। कॉर्नवालिस की इन करतूतों को 'शासन सुधारों' का नाम दिया जाता है। इतिहास लेखक मिल ने बड़ी योग्यता और विस्तार के साथ दर्शाया है कि किस प्रकार कॉर्नवालिस के इन 'शासन सुधारों' (?) ने—"भारत की प्राचीन ग्राम पंचायतों का सत्यानाश कर दिया, नई अंगरेज़ी कचहरियों की तमाम कारवाइयों को जान बूझ कर लम्बा और पेचोदा बना दिया, वकीलों को जन्म दिया और इस तरह के क़ानून बना दिए कि बिना वकील की मदद के किसी मुक़दमे का चल सकना क़रीब क़रीब नामुमकिन हो गया, ग़रीबों के लिए न्याय प्राप्त कर सकना नामुमकिन कर दिया, सरकार के लिए एक तरह के नियम और मामूली प्रजा के लिए दूसरी तरह के नियम रख कर सरकार के लिए अपनी मालगुज़ारी वसूल कर सकना सस्ता और आसान कर दिया, इंगलिस्तान के हज़ारों निकम्मे लड़कों की जीविका का

नई अंगरेज़ी अदालतें

* "No wise or just historian will note these things without expressions of wonder and condemnation"—Ibid p 103

सुन्दर प्रबन्ध कर दिया और भारतवासियों में मुक़दमेबाज़ी, जालसाज़ी, दरोग़हलफ़ी, रिशवत सितानी, फूट और बरबादी के फैलने के लिए मैदान साफ़ कर दिया।"*

इन सब सुधारों (?) और उनके नतीजों को यहाँ और अधिक विस्तार के साथ बयान करना व्यर्थ है। निस्सन्देह भारतवासियों के चरित्र पर इनका असर सब से अधिक नाशकर हुआ।

सुप्रसिद्ध अंगरेज विद्वान एस० लौब लिखता है :—

वकालत की नई प्रथा

"हमारी न्याय पद्धति कितनी ज़लील है! वकालत की जिस यूरोपीय प्रथा को हम इस देश में प्रचलित करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं, क्या उससे अधिक सदाचार से बिलकुल गिरी हुई किसी दूसरी प्रथा का अनुमान भी किया जा सकता है! × × × क्या हमारी अदालतें रिशवत देने के अड्डे नहीं हैं? और क्या मुक़दमेबाज़ी का शौक़ क़ौम के दिमाग़ पर लगनी बीमारी की तरह असर करके उसे पूरी तरह सदाचार भ्रष्ट नहीं कर रहा है? जहाँ तक हो सके वहाँ तक लोगों को अपने मुक़दमे आपस ही मे तय करने का मौक़ा क्यों न दिया जाय?"†

---

* Mill, vol v, p 355, etc

† "Look at our miserable legal system Can anything be conceived more thoroughly immoral than the system of Western Advocacy which we are doing our best to introduce into this country are not our law-courts hot-beds of corruption, and is not the love of litigation contaminating and thoroughly perverting the national mind Why not let the people settle their own disputes as far as possible?"— S Lobb, the famous English Positivist

किन्तु कॉर्नवालिस ख़ूब समझता था कि किसी भी परतन्त्र देश में पराजित क़ौम के चरित्र भ्रष्ट कर देने और उसे चरित्र भ्रष्ट रखने में ही विदेशी शासकों का सब से अधिक बल है।

लॉर्ड कॉर्नवालिस के शासन काल की सब से अधिक महत्व की घटना बंगाल का इस्तमरारी बन्दोबस्त बताई जाती है। असली बात यह थी कि जिस समय कम्पनी ने तीनों प्रान्तों की दीवानी दिल्ली सम्राट से प्राप्त की और धीरे धीरे उन प्रान्तों पर अपना शासन जमाना शुरू किया उस समय से उन्होंने हर जगह नया बन्दोबस्त करके सरकारी लगान बेहद बढ़ा दिया, जिसका ज़िक्र एक पिछले अध्याय में किया जा चुका है। एडमण्ड बर्क लिखता है कि लगान बेहद बढ़ा दिए जाने की वजह से ही सारा "देश वीरान दिखाई देने लगा।"* इस लगान बढ़ाए जाने ही का एक नतीजा बंगाल भर के अन्दर सन् १७७० का वह भयंकर दुष्काल था जिसके समान आपत्ति देश पर पहले कभी न आई थी और जिसमें लाखों गाँव उजड़ गए।

इस्तमरारी बन्दोबस्त

जिस समय कॉर्नवालिस बंगाल पहुँचा, कम्पनी का ख़ज़ाना ख़ाली पड़ा था, अच्छी से अच्छी ज़मीन बिना जोती बोई और वीरान पड़ी हुई थी और अधिकांश ज़मींदारों के ज़िम्मे कई कई साल का लगान बाक़ी चला आ रहा था जिसे चुका सकना उनकी शक्ति से बिल्कुल बाहर था। इस शोचनीय अवस्था में कम्पनी को

* "The country has turned into a desert."—Edmund Burke

दिवाले से बचाने का केवल एक ही उपाय हो सकता था। वह यह था कि नए सिरे से बन्दोबस्त करके सदा के लिए एक मुनासिब लगान तय कर दिया जाय। कॉर्नवालिस से दस साल पहले कुछ अंगरेज़ अफ़सर यह सलाह दे चुके थे और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कॉर्नवालिस को भारत भेजते समय उसे इस्तमरारी बन्दोबस्त करने की हिदायत कर दी थी।

इस इस्तमरारी बन्दोबस्त के साथ साथ कॉर्नवालिस ने यह क़ानून भी पास कर दिया कि जिन जिन ज़मींदारों के ज़िम्मे लगान बाक़ी है उनकी ज़मींदारियाँ फ़ौरन नीलाम कर दी जावें और ज्योंही आइन्दा किसी के ज़िम्मे बक़ाया निकले, त्योंही उसकी ज़मीन नीलाम कर दी जाय और ऐसे मौक़ों पर बड़ी बड़ी ज़मींदारियों के टुकड़े करके उन्हें अलग अलग नीलाम किया जाय।

एक अंगरेज़ लेखक लिखता है कि कॉर्नवालिस के इस्तमरारी बन्दोबस्त के दस साल के अन्दर बंगाल भर की तमाम ज़मींदारियों की शकलें और उनके मालिक सब बदल गए। इस प्रकार कॉर्नवालिस ने इस्तमरारी बन्दोबस्त के बहाने बंगाल के हज़ारों पुराने घरानों और तमाम बड़ी बड़ी ज़मींदारियों का ख़ात्मा कर दिया और उसकी जगह नए छोटे छोटे निर्बल और ख़ुशामदी ज़मींदार पैदा कर दिए।*

* *Memorandum on the Revenue Administration of the Lower Provinces of Bengal*, by J Macneile, p 9

देश की दशा

कॉर्नवालिस के समय में हिन्दोस्तान का केवल थोड़ा सा हिस्सा कम्पनी के अधीन था और बाक़ी बहुत बड़ा हिस्सा मराठों, टीपू, निज़ाम और नवाब अवध के शासन में था, किन्तु दोनों हिस्सों की तुलना अत्यन्त शिक्षाप्रद थी। ब्रिटिश भारत चारों ओर उजाड़, दरिद्र और वीरान नज़र आता था और देशी भारत इधर से उधर तक हरा भरा, खुशहाल और आबाद दिखाई देता था। देशी भारत के अन्दर की आपसी लड़ाइयाँ भी प्रजा की खुशहाली के लिए उतनी घातक न होती थीं जितनी ब्रिटिश भारत का लगातार कुशासन और आए दिन की जायज़ और नाजायज़ लूट। प्रजा के जान माल की उस समय के ब्रिटिश भारत में कोई भी क़द्र या हिफ़ाज़त न थी। इस कथन के समर्थन में उस समय के अनेक देशी और विदेशी लेखकों की गवाही पेश की जा सकती है। हम यहाँ पर केवल कम्पनी की एक सरकारी रिपोर्ट से एक वाक्य नक़ल करते हैं। सन् १८१२ की पाँचवीं सरकारी रिपोर्ट में लिखा है—

"राजशाही में डकैती खूब फैली हुई है। × × × फिर भी लोगों की हालत की ओर काफ़ी ध्यान नहीं दिया जाता। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वास्तव में लोगों की जान और माल की कोई हिफ़ाज़त नहीं की जाती। बंगाल के अधिकांश ज़िलों की यही हालत है।"*

* "That dacoity is very prevalent in Raj Shaye . . . . . . Yet the situation of the people is not sufficiently attended to It can not be denied, that, in point of fact, there is no protection for persons or property Such

वास्तव में कम्पनी के शासन से पहले बुरे से बुरे समय में भी देश की कभी वह हालत न हुई थी जो कम्पनी के शासन के तीस साल के अन्दर दिखाई दे गई।

सात साल भारत में शासन करने के बाद लॉर्ड कॉर्नवालिस सन् १७६३ में विलायत लौट गया। उसे दोबारा हिन्दोस्तान भेजा गया, किन्तु उसके चन्द महीने के अन्दर हिन्दोस्तान ही में उसकी मृत्यु हो गई।

भारत के अन्दर अंगरेज़ी सत्ता की जड़ों को मज़बूत करने में कॉर्नवालिस ने ख़ास हिस्सा लिया।

---

is the state of things which prevails in most of the Zillahs in Bengal" – *The Fifth Report of 1812*

बारवाँ अध्याय

सर जॉन शोर

[१७९३-१७९८]

सर जॉन शोर की नियुक्ति

सर जॉन शोर वारन हेस्टिंग्स के समय में बंगाल के अन्दर कम्पनी का एक मामूली नौकर रह चुका था। वारन हेस्टिंग्स का वह पट्ट शिष्य था और वारन हेस्टिंग्स ही के ज़रिये उसने इतनी तरक्क़ी की।

इंगलिस्तान के मन्त्रियों और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने मिलकर जिस समय सर जॉन शोर को गवरनर जनरल बनाकर भेजने का इरादा किया उस समय पार्लिमेण्ट में वारन हेस्टिंग्स के ऊपर मुक़दमा चल रहा था। एडमण्ड बर्क उस मुक़दमे में सरकारी वकील था। बर्क ने कम्पनी के डाइरेक्टरों को लिखा—

" × × × हमें पता लगा है कि जिन जुर्मों का इलज़ाम वारन हेस्टिंग्स

पर लगाया जा रहा है उनमें से कुछ में मिस्टर शोर वास्तव में हेस्टिंग्स का एक ख़ास साथी और सहायक था। × × ×

× × ×

"ऐसी हालत में आपके लिए यह सोच लेना बुद्धिमानी होगी कि एक ऐसे आदमी को, जिसका चरित्र ज़ाहिरा आप ही के काग़ज़ात से अत्यन्त निन्दनीय मालूम होता है, सब से ऊँचे और सब से अधिक अधिकार युक्त पद पर नियुक्त करने के क्या नतीजे हो सकते हैं × × ×।"*

बर्क ने इससे कहीं अधिक ज़ोरदार पत्र इंगलिस्तान के 'भारत मन्त्री' हेनरी डण्डास के पास भेजा।

किन्तु इन पत्रों का इंगलिस्तान के अधिकारियों पर कोई असर न हुआ और २८ अक्तूबर सन् १७९३ को सर जॉन शोर ने कलकत्ते पहुँच कर गवरनर जनरल का काम सँभाल लिया।

उसी साल पार्लिमेण्ट ने एक नए शाही चारटर के ज़रिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ज़िन्दगी बीस साल के लिए और बढ़ा दी। हिन्दोस्तान का बना हुआ माल और ख़ासकर यहां का बुना कपड़ा

---

* " . . . we have found Mr Shore materially concerned as a principal actor and party in certain of the offences charged upon Mr Hastings

"In that situation, it is for the prudence of the court to consider the consequences which possibly may follow from sending out in offices of the highest rank and of the highest possible power, persons whose conduct, appearing on their own Records is, at the first view, very reprehensible,

" -Letter from Edmund Burke to Francis Baring, Chairman of the Court of Directors, dated October 14, 1792

इंगलिस्तान जाना बन्द कर देने के लिए उस समय इंगलिस्तान में ज़बरदस्त आन्दोलन जारी था। किन्तु यह कहानी एक दूसरे अध्याय में दी जायगी।

मीर जाफ़र के उत्तराधिकारी अभी तक मुर्शिदाबाद की नुमायशी मसनद पर बैठने चले आते थे। चुनाँचे सर जॉन शोर के भारत पहुँचने के एक महीने पहले ३७ साल की आयु में २३ साल तक सूबेदारी की मसनद पर बैठने के बाद नवाब मुबारकुद्दौला की मृत्यु हुई। मुबारकुद्दौला के बारह लड़के और तेरह लड़कियाँ थीं, जिनमें सबसे बड़े लड़के वज़ीरुद्दौला के मसनद पर बैठने का २८ सितम्बर सन् १७९३ को कलकत्ते में कम्पनी की ओर से बाक़ायदा एलान किया गया।

वारन हेस्टिंग्स की दोहरी साज़िशें

एक पिछले अध्याय में पहले मराठा युद्ध और सन् १७८२ की सालबाई वाली सन्धि का ज़िक्र आ चुका है। माधोराव नारायन उस समय पेशवा था। नाना फ़ड़नवीस उसका प्रधान मन्त्री था और हत्यारे राघोबा को गोदावरी के तट पर कोपरगाँव भेज दिया गया था। सन् १७८४ के शुरू में कोपरगाँव ही में राघोबा की मृत्यु हुई। उसका बेटा बाजीराव जिसकी आयु ९ साल की थी, उस समय पूना में था।

माधोजी सींधिया वारन हेस्टिंग्स के हाथों की एक ख़ास कठपुतली था। माधोजी के साथ गुप्त सन्धियाँ और समझौते करके हेस्टिंग्स उसके ज़रिये एक ओर मराठों की शक्ति का नाश करना

चाहता था और दूसरी ओर दिल्ली सम्राट के रहे सहे मान और उसके अधिकार का अन्त कर देना चाहता था। इंगलिस्तान पहुँच कर वारन हेस्टिंग्स पर जो मुक़दमा चला उसमें एक इलज़ाम उस पर यह था—

"मुग़ल सम्राट के थोड़े से रहे सहे इलाक़ों को छीन लेने के लिए वारन हेस्टिंग्स मराठा राज के प्रधान सेनापति माधोजी सींधिया से मिल गया; और जब कि एक ओर उसने अपना एक दूत इस काम के लिए दिल्ली भेज दिया कि वह वहाँ पर सम्राट और उसके वज़ीरों के साथ गुप्त साज़िशें जारी रक्खे × × × दूसरी ओर इस तमाम समय में वह सम्राट और उसके वज़ीरों के ख़िलाफ़ बराबर मराठों से मिला रहा; मराठों के साथ भी उसने दग़ा की और उनसे बहाना यह लेता रहा कि मैं सम्राट से तुम्हारे अधिकारों की रक्षा कर रहा हूँ। इस तरह उसने उन सब के नाश की तदबीर की और सब का नाश कर डाला।"*

दिल्ली सम्राट के साथ दग़ा

वारन हेस्टिंग्स ही की सलाह से माधोजी सींधिया ने एक ज़बरदस्त फ़ौज रक्खी, उस फ़ौज में यूरोपियन अफ़सर रक्खे और वारन हेस्टिंग्स की ख़ास सिफ़ारिश पर एक यूरोपियन दी बौयन को उसका प्रधान सेनापति नियुक्त किया। यही फ़ौज लेकर माधोजी

---

* ' Warren Hastings did unite with the Captain-General of the Marhatta State, called Madhoji Scindhia, in designs against the few remaining territories of the Moghul Emperor, and that whilst he sent an agent to Delhi and carried on intrigues with the King and his ministers, he did all along concur with the Marhattas in their designs against the said King and his ministers, under the treacherous pretext of

ने दिल्ली के आसपास के इलाक़ों पर हमला किया और सम्राट को कुछ समय के लिए एक तरह अपना क़ैदी बना लिया। अंगरेज़ उस समय तक सम्राट की प्रजा थे और बराबर अपने इलाक़ों के लिए सम्राट को ख़िराज दिया करते थे। वारन हेस्टिंग्स ने बजाय सम्राट की सहायता करने के माधोजी को हर तरह उकसाया और बाद में अंगरेज़ों ने सम्राट की असहाय अवस्था से लाभ उठाकर ख़िराज भेजना बन्द कर दिया।

माधोजी सींधिया के नाश की तदबीरें

माधोजी के बढ़ते हुए बल को देखकर महाराष्ट्र मण्डल के दूसरे सदस्यों को ईर्षा होना स्वाभाविक था। अन्त में यह ईर्षा ही मराठों की सत्ता के नाश की सबसे बड़ी वजह हुई। कलकत्ते की कौन्सिल की कारग्वाई में दर्ज है कि एक बार कौन्सिल के कुछ सदस्यों ने यह शक ज़ाहिर किया कि माधोजी के बल का बढ़ते जाना कम्पनी के लिए ख़तरनाक है। इस पर वारन हेस्टिंग्स ने उन्हें विश्वास दिलाया कि माधोजी की नई सेना ही अन्त में उसके विनाश का सबब होगी। वारन हेस्टिंग्स को अपनी चाल पर पूरा क़ाबू था, और उसके जीवन ही में उसकी यह पेशीनगोई सच्ची साबित होगई।

माधोजी सींधिया का बल बढ़ता जा रहा था। अंगरेज़ों के लिए उसे सीमा के अन्दर रखना ज़रूरी था। माधोजी सींधिया

supporting the authority of the former against the latter and did contrive and effect the ruin of them all —One of the charges against Warren Hastings in his impeachment in England

और नाना फ़ड़नवीस दोनों का बल महाराष्ट्र मण्डल में सबसे अधिक बढ़ा हुआ था। उस मण्डल का नाश करने के लिए अंगरेज़ों का इनके बल को तोड़ना आवश्यक था। पेशवा माधोराव नारायन पूरी तरह नाना के कहने में था। पूना में माधोराव नारायन को मसनद से उतार कर उसकी जगह राघोबा के बालक पुत्र बाजी राव को पेशवा बनाने के लिए एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। माधोजी सींधिया को भी इस षड्यन्त्र में शामिल कर लिया गया। किन्तु नाना फ़ड़नवीस को इसका पता चल गया। उसने पेशवा के हुकुम से बाजीराव को गिरफ़्तार करके पूना में क़ैद कर दिया।

माधोजी के ख़िलाफ़ साज़िशें

माधोजी सींधिया उस समय दिल्ली सम्राट का ख़ास संरक्षक बना हुआ था। वारन हेस्टिंग्स ने माधोजी से वादा कर लिया था कि कम्पनी की ओर से सम्राट का सालाना ख़िराज आइन्दा आप को दिया जाया करेगा। मालूम होता है हेस्टिंग्स के समय में यह मामला यूंही टलता रहा। हेस्टिंग्स के बाद माधोजी ने गवरनर जनरल मैकफ़रसन से सम्राट के नाम पर ख़िराज तलब किया। मैकफ़रसन ने टला दिया। अन्त में कॉर्नवालिस ने ख़िराज देने से सदा के लिए साफ़ इनकार कर दिया। इस पर दिल्ली सम्राट ने स्वयं माधोजी को पत्र लिखा कि तुम कलकत्ते पहुँच कर कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करो। सम्राट ने एक दूसरा पत्र नाना फ़ड़नवीस को लिखा और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने में पेशवा दरबार की मदद चाही। माधोजी का उस समय फ़र्ज़ था कि

कलकत्ते पर चढ़ाई करके जिस तरह हो कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करता। किन्तु माधोजी अपनी कमज़ोरियों को ख़ूब जानता था। अंगरेज़ माधोजी के बल को तोड़ने की पहले ही से कोशिशें कर रहे थे। इतिहास लेखक ग्रॅाएट डफ़ लिखता है :—

"मिस्टर मैकफ़रसन ने यह सोचकर कि सींधिया की महत्वाकांक्षा बड़ी ख़तरनाक हो चली है, दूसरे मराठा नरेशों में सींधिया के ख़िलाफ़ जो ईर्षा और प्रतिस्पर्धा उत्पन्न हो गई थी, उसे और अधिक भड़काकर सींधिया की तरक़्क़ी को रोकने के लिए उसके मुक़ाबले में दूसरी ताक़तें खड़ी कर देने की कोशिश की।"*

मॉस्टिन के बाद से अब तक कोई अंगरेज़ एलची पेशवा के दरबार में न भेजा गया था। अब चार्ल्स मैलेट कम्पनी का एलची नियुक्त होकर पूना पहुँचा। चार्ल्स मैलेट का ख़ास काम था माधोजी सींधिया के ख़िलाफ़ दूसरे मराठा नरेशों को भड़काना और नाना के विरुद्ध गुप्त साज़िशें करना। माधोजी के चित्त में भी अंगरेज़ों की ओर से काफ़ी शङ्काएँ थीं। स्वयं कॉर्नवालिस का व्यवहार उसकी ओर ख़ासा रूखा रहा। मूदाजी भोंसले के साथ अंगरेज़ों ने अब इस तरह का सलूक शुरू किया, जिससे माधोजी सींधिया को सन्देह होगया कि अंगरेज़ मेरे ख़िलाफ़ मूदाजी को

* "Mr Macpherson conceived that the ambitious nature of Scindhia's policy was very dangerous and endeavoured to raise some counterpoise to his progress by exciting the jealousy and rivalry already entertained towards him among the other Marhatta chiefs." – Grant Duff's *History of the Marhattas*, p 463

तैयार कर रहे हैं। माधोजी इस कठिन समस्या के विषय में नाना फ़ड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया। इस दरमियान चार्ल्स मैलेट ने पूना में रह कर माधोजी के विरुद्ध काफ़ी सामान पैदा कर दिया था।

अहल्याबाई होलकर के आदर्श चरित्र और आदर्श शासन का ज़िक्र एक पिछले अध्याय में आ चुका है। अहल्याबाई के तीस वर्ष के शासन में उसकी प्रजा संसार में सब से सुखी और सब से खुशहाल गिनी जाती थी। विदेशियों के साथ अधिक मेल जोल रखने के अहल्याबाई सदा खिलाफ़ रही। अपने देशवासियों के खिलाफ़ विदेशियों के साथ 'गुप्त सन्धियाँ' करना उसके लिए नामुमकिन था। किन्तु अहल्याबाई की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी तुकाजी होलकर में न वह योग्यता रह गई थी और न वह चरित्र। अंगरेज़ों ने तुकाजी को माधोजी सींधिया के खिलाफ़ भड़काना शुरू किया, और ठीक उस समय जब कि माधोजी नाना फ़ड़नवीस से सलाह करने के लिए पूना आया, तुकाजी होलकर ने माधोजी के राज पर हमला कर दिया।

मराठा मंडल की अव्यवस्था

ग्राण्ट डफ़ के इतिहास से मालूम होता है कि होलकर और सींधिया में उस समय कोई खास झगड़ा न था, बल्कि माधोजी सींधिया तुकाजी होलकर के साथ प्रेम से रहने के लिए उत्सुक था। तुकाजी होलकर का माधोजी सींधिया के राज पर हमला करना सारे मराठा इतिहास में एक मराठा नरेश के दूसरे मराठा नरेश

पर हमला करने की पहली मिसाल थी। महाराष्ट्र मण्डल का अब क़रीब क़रीब ख़ात्मा हो चुका था। गायकवाड़ और भौंसले पहले ही मण्डल से टूट चुके थे। सींधिया और होलकर की यह दशा हो रही थी। इन चारों की इस शोचनीय हालत में अकेला पेशवा दरबार मण्डल की उस इमारत को, जिसकी बुनियादें हिल चुकी थीं, कब तक सँभाल सकता था।

सींधिया की सेना जिसका प्रधान सेनापति दी बौयन था, अनेक लड़ाइयाँ देख चुकी थी। उसने होलकर की सेना को हरा दिया। किन्तु होलकर ने पीछे लौटते हुए सींधिया के राज को ख़ूब रौंदा और सींधिया के मुख्य नगर उज्जैन को अच्छी तरह लूटा। इस समय से ही सींधिया और होलकर के कुलों में परस्पर वैमनस्य पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहा। इसके बाद होलकर ने भी अंगरेज़ों की सलाह से अपनी सेना में यूरोपियन अफ़सर नियुक्त करना शुरू कर दिया। वह दोबारा सींधिया राज पर हमला करने का इरादा कर रहा था।

एक ओर तुकाजी होलकर की शत्रुता और दूसरी ओर उसकी अपनी सेना में दी बौयन और अनेक दूसरे यूरोपियनों का ऊँचे पदों पर होना, इन दोनों बातों ने माधोजी सींधिया को इस समय ख़ासा जकड़ रक्खा था। वह ख़ूब समझ चुका था कि ये यूरोपियन मुलाज़िम अंगरेज़ों के विरुद्ध मेरा साथ कभी न देंगे। इसके बहुत दिन पहले नाना फ़ड़नवीस ने एक बार माधोजी से कहा था—

"अंगरेज़ों को इस साम्राज्य में पैर रखने की जगह नहीं मिलनी

चाहिए, यदि उन्हें पैर रखने की जगह मिल गई तो सारा देश ख़तरे में पड़ जावेगा।"

माधोजी को अब नाना के ये शब्द बार बार याद आते थे। वह अपने पिछले कृत्यों पर पछता रहा था और कम्पनी से शाही ख़िराज वसूल करने के सम्बन्ध में सम्राट के पत्रों पर और इस सारी स्थिति पर नाना से सलाह करने के लिए पूना आया हुआ था। दिल्ली के सम्राट, माधोजी सींधिया और पेशवा, तीनों में इस प्रकार मेल हो जाना और माधोजी का तीनों की ओर से सेना लेकर शाही ख़िराज वसूल करने के लिए कलकत्ते पर चढ़ाई करना उस समय कम्पनी के लिए अत्यन्त आपत्तिजनक हो सकता था।

माधोजी सींधिया की हत्या

जब कि माधोजी सींधिया पूना में पेशवा और नाना फ़ड़नवीस के साथ सलाहें कर ही रहा था, फ़रवरी सन् १७९४ को पूना के निकट वनौरी नामक स्थान पर अचानक माधोजी सींधिया की मृत्यु होगई।

इतिहास लेखक ग्राण्ट डफ़ इस मृत्यु का सबब यह लिखता है कि माधोजी को अचानक "ज़ोर का बुख़ार" आगया। किन्तु माधोजी के जीवन चरित्र का अंगरेज़ रचयिता कीन कुछ और भेद खोलता है। वह 'तारीख़े मुज़फ़्फ़री' के आधार पर लिखता है—

"मृत्यु से पहली शाम को एक हथियारबन्द गिरोह ने माधोजी को रास्ते में घेर कर मारा।"* कीन लिखता है—"नाना ने इस

* "Madhoji had been way laid the evening before by an armed gang" Keene's *Madhoji Scindhia*

गिरोह को इस कार्य के लिए नियुक्त किया था।" और कौन की राय है—"निस्सन्देह माधोजी की मौत चाहने के लिए नाना के पास काफ़ी वजह थी।"

इसमें सन्देह नहीं माधोजी सींधिया को मरवा डाला गया। किन्तु नाना पर उसका दोष मढ़ना साफ़ झूठ और अन्याय है। न नाना के पास उस समय "माधोजी की मौत चाहने के लिए कोई वजह थी" और न नाना का चरित्र इस ढङ्ग का था। इसके खिलाफ़ अंगरेज़ों के पास "माधोजी की मौत चाहने के लिए निस्सन्देह काफ़ी वजह थी।" और मैलेट और मॉस्टिन दोनों की राशि भी एक थी। ग्रॉण्ट डफ़ साफ़ लिखता है :—

"सींधिया की शक्ति और उसकी महत्वाकाँक्षा, उसका पूना जाना और सबसे बढ़ कर देश वासियों में आम तौर पर उसकी इज़्ज़त, इन सब बातों से अंगरेज़ माधोजी पर शक करने लगे थे; इसलिए अंगरेज़ों के काग़ज़ों में हमें इस बात के बार बार सुबूत मिलते हैं कि वे माधोजी की हरकतों को बड़े ग़ौर और जलन के साथ देख रहे थे।"*

ग्रॉण्ट डफ़ से ही यह भी पता चलता है कि माधोजी के पूना पहुँचने के बाद ही दिल्ली के एक हिन्दोस्तानी अख़बार में एक लेख निकला था कि दिल्ली के सम्राट ने पेशवा और माधोजी दोनों के नाम

माधोजी की हत्या से अंगरेज़ों को लाभ

* " . . . his power and ambition, his march to Poona, and above all, the general opinion of the country, led the English to suspect him, and we accordingly find in their records various proofs of watchful jealousy, . . ."
—Grant Duff

अपने बङ्गाल के ख़िराज के सम्बन्ध में पत्र लिखे हैं और उनसे मदद चाही है। माधोजी सींधिया की हत्या से कम्पनी के रास्ते का एक ज़बरदस्त काँटा दूर हो गया।

उस समय के सरकारी पत्र व्यवहार में दोनों बातें बिलकुल साफ़ हैं। एक यह कि अंगरेज़ों ने होलकर को सींधिया पर हमला करने के लिए उकसाया और दूसरे यह कि अंगरेज़ माधोजी सींधिया के विरुद्ध साज़िशें कर रहे थे। जिस समय माधोजी अपने राज से पूना की ओर रवाना हुआ, उसी समय गवरनर जनरल ने सींधिया दरबार के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट को वहाँ से वापस बुला लिया।

माधोजी की मृत्यु के समय कॉर्नवालिस इंगलिस्तान में था और सर जॉन शोर भारत में गवरनर जनरल था। कॉर्नवालिस को जब माधोजी की मृत्यु का समाचार मिला, उसने ७ सितम्बर सन् १७६४ को प्रसन्न होकर सर जॉन शोर को लिखा—"सींधिया की मृत्यु से आपकी गवरमेण्ट की क़रीब क़रीब हर राजनैतिक कठिनाई दूर हो जावेगी।"*

इससे अधिक सुबूत इस बात का और क्या हो सकता है कि माधोजी की मृत्यु वास्तव में कौन चाहता था और उसकी हत्या करने वालों को किसने नियुक्त किया था।

* "The death of Scindhia, . . . will nearly remove every political difficulty of your Government,"—Cornwallis' letter to Sir John Shore, September 7, 1794.

पेशवा माधोराव नारायन की मृत्यु

कम्पनी के रास्ते का दूसरा ज़बरदस्त काँटा नाना फ़ड़नवीस अभी मौजूद था। माधोजी सींधिया की हत्या के बाद महाराष्ट्र के अन्दर नाना और उसकी नीति की क़द्र और अधिक बढ़ गई। चार्ल्स मैलेट ने पूना से एक पत्र में लिखा कि—"जब तक पूना दरबार में नाना का ज़ोर है, तब तक मराठा राज के अन्दर मज़बूती से अपने पैर जमा सकने की हमें (अंगरेज़ों को) सपने में भी आशा नहीं करनी चाहिए।"*

नाना फ़ड़नवीस के ख़िलाफ़ अंगरेज़ों ने कई बार साज़िशें कीं, किन्तु सफलता न मिल सकी। पेशवा माधोराव नारायन पूरी तरह नाना के कहने में था। बिना उसे मसनद से हटाए कम्पनी को अपनी इच्छा पूरी करने के लिए अनुकूल अवसर न मिल सकता था। २७ अक्तूबर सन् १७९५ को कम्पनी के सौभाग्य से पेशवा माधोराव दूसरा (माधोराव नारायन) अपने महल के छज्जे से गिर कर मर गया। इस पेशवा की मृत्यु के सम्बन्ध में ग्रॉण्ट डफ़ लिखता है कि—"२५ अक्तूबर को सवेरे पेशवा जान बूझकर अपने महल के एक छज्जे से कूद पड़ा, उसके दो अंगों की हड्डियाँ टूट गईं और एक फ़व्वारे की नली से, जिसके ऊपर वह आकर पड़ा, वह बहुत ज़ख़्मी हो गया। इसके बाद वह केवल दो दिन जिया।"†

* "As long as Nana remained Supreme at the Poona Court they (the British) should never dream of obtaining a firm footing in the Marhatta Kingdom."—Charles Malet

† Grant Duff's *History of the Marhattas*, p. 521

पेशवा माधोराव नारायन

[श्री वासुदेव राव सूबेदार, सागर, की कृपा द्वारा]

कोई कोई अंगरेज़ यह भी लिखते हैं कि नाना फ़ड़नवीस से कुछ अनबन होने की वजह से पेशवा ने इस तरह आत्महत्या कर ली।

किन्तु उस समय को तमाम परिस्थिति को देखने से यह मालूम होता है कि नाना और पेशवा के परस्पर वैमनस्य और आत्महत्या की यह कहानी केवल नाना के ख़िलाफ़ लोगों के कान भरने के लिए गढ़ी गई थी। मुमकिन है कि पेशवा का छज्जे से गिर पड़ना अकस्मात् हुआ हो, किन्तु इससे कहीं ज़्यादा मुमकिन यह है कि पेशवा के किसी दुशमन या नमकहराम सेवक ने उसे मौक़ा पाकर ढकेल दिया। मॉस्टिन के समय में राघोबा को पेशवा की मसनद पर बैठाने के लिए पेशवा नारायनराव की हत्या की जा चुकी थी; कौन आश्चर्य है यदि मैलेट के समय में राघोबा के पुत्र बाजीराव को मसनद पर बैठाने के लिए नारायनराव के पुत्र पेशवा माधोराव दूसरे की हत्या कराई गई हो और मैलेट तथा बाजीराव के किसी गुप्तचर ने मौक़ा पाकर उसे छज्जे से ढकेल दिया हो! माधोराव की पैदाइश के समय से अंगरेज़ बराबर उसके ख़िलाफ़ थे और उसकी अकाल मृत्यु से उन्हें बेहद ख़ुशी हुई।

अन्तिम पेशवा बाजीराव

पेशवा माधोराव नारायन की आयु मृत्यु के समय केवल २१ साल की थी। उसके कोई लड़का न था, किन्तु हिन्दू रिवाज के अनुसार उसकी विधवा को गोद लेने का अधिकार था। अंगरेज़ों ने इस समय राघोबा के पुत्र बाजीराव को पेशवा बनाने का यत्न किया। तुकाजी होलकर अंगरेज़ों के कहने में था। पूना पहुँच कर उसने

बाजीराव का पक्ष लिया । ग्रॉएट डफ़ लिखता है कि इस अवसर पर नाना ने तुकाजी को पूरी तरह समझाया कि—"बाजीराव की माँ ने शुरू से उसके दिल में तमाम पुराने अनुभवी मराठा नीतिज्ञों के ख़िलाफ़ द्वेष भर दिया है, बाजीराव के ख़ान्दान का अंगरेज़ों के साथ जो सम्बन्ध है वह मराठा साम्राज्य के लिए ख़तरनाक है। इस समय मराठा साम्राज्य के अन्दर ख़ासा ऐक्य है, चारों ओर प्रजा ख़ुशहाल है, और यदि इसी नीति का सावधानी के साथ पालन होता रहा तो भविष्य में बहुत अधिक लाभ की आशा की जा सकती है, इत्यादि।" ग्रॉएट डफ़ लिखता है कि इस तरह समझाने से तुकाजी होलकर और दूसरे सरदार भी नाना के साथ सहमत हो गए। नाना की तजवीज़ थी कि पेशवा माधोराव नारायन की विधवा यशोदाबाई एक पुत्र गोद ले, जिसे सब लोग मिलकर तय करें और वह पुत्र ही पेशवा की मसनद पर बैठे। निस्सन्देह यह तजवीज़ हिन्दोस्तान के रिवाज के अनुकूल और मराठा मण्डल के लिए अत्यन्त हितकर थी। किन्तु दुर्भाग्यवश नाना को सफलता न मिल सकी।

नवम्बर सन् १७६५ में रेज़िडेण्ट मैलेट ने नाना से दरयाफ़्त किया कि मसनद का उत्तराधिकारी कौन होगा। नाना ने उत्तर दिया कि जब तक राष्ट्र के बड़े बड़े लोग मिलकर फ़ैसला न करें, तब तक विधवा यशोदाबाई मसनद की मालिक समझी जावेगी और फ़ैसला हो जाने पर आपको सूचना दी जावेगी। अपने वादे के अनुसार जनवरी सन् १७६६ में नाना ने मैलेट को सूचना दी कि यह फ़ैसला

हो गया है कि यशोदाबाई एक लड़के को गोद ले, केवल लड़के का पसन्द किया जाना बाक़ी है। मैलेट को इस पर एतराज़ करने का कोई हक़ न था। परन्तु नाना का मैलेट को समय से पहले अपनी तजवीज़ बता देना ही एक भयंकर भूल साबित हुई।

बाजीराव उस समय क़ैद में था। मैलेट को सूचना मिलते ही बाजीराव को ख़बर हो गई। मैलेट, बाजीराव और उसके अन्य साथियों की साज़िशों का नतीजा यह हुआ कि नाना की तजवीज़ पूरी होने से पहले ही बाजीराव क़ैद से निकल आया और नाना की इच्छा के खिलाफ़ बाजीराव के पक्ष वालों ने उसके पेशवा होने का एलान कर दिया। बाजीराव मसनद पर बैठ गया, और बैठते ही उसने महाराष्ट्र मण्डल के सच्चे हितचिन्तक नाना फ़ड़नवीस के साथ वह शत्रुता निकाली, जिसके सबब से नाना को पहले जान बचा कर भागना पड़ा और फिर कई साल क़ैद में काटने पड़े।

बाजीराव कायर और निर्बल साबित हुआ। नाना फ़ड़नवीस की पेशीनगोई उसके विषय में बिलकुल सच्ची निकली। बाजीराव आख़िरी पेशवा था और उसके मसनद पर बैठने के साथ ही साथ मराठा साम्राज्य के गौरव का अन्त हो गया। बाजीराव की अयोग्यता से अंगरेज़ों ने जिस तरह लाभ उठाकर भारत से पेशवा सत्ता का सदा के लिए अन्त कर दिया, उसका बयान एक दूसरे अध्याय में दिया जायगा।

निज़ाम के साथ भी सर जॉन शोर का व्यवहार न्याय या

ईमानदारी का न था। इसका पहला परिचय निज़ाम और मराठों की लड़ाई के समय मिला। निज़ाम और मराठों का 'चौथ' के बारे में कुछ झगड़ा था। दिल्ली सम्राट की आज्ञानुसार निज़ाम मराठों को सालाना 'चौथ' दिया करता था। मराठे कहते थे कि निज़ाम की ओर हमारी रक़म निकलती है। निज़ाम उन दिनों अंगरेज़ों और उनकी सबसीडीयरी सेना के बल भूला हुआ था। निज़ाम दरबार यह कहता था कि उलटा पेशवा दरबार के पास हमारे दो करोड़ साठ लाख रुपए ज़्यादा चले गए हैं। पेशवा माधोराव नारायन का एक दूत गोविन्दराव काले हिसाब साफ़ करने के लिए निज़ाम के दरबार में पहुँचा। निज़ाम ने मराठा दूत के साथ बड़े निरादर का बर्त्ताव किया। मराठों और निज़ाम में युद्ध अनिवार्य हो गया। माधोजी सींधिया की गद्दी पर इस समय उसका पौत्र दौलतराव सींधिया बैठा हुआ था। दौलतराव वीर और समझदार था। उसने मराठा सेना सहित निज़ाम पर चढ़ाई की। टीपू भी उस समय निज़ाम के ख़िलाफ़ था। निज़ाम के एक मात्र साथी सर जॉन शोर ने ऐन मौक़े पर निज़ाम को मदद देने से इनकार कर दिया। यहाँ तक कि कम्पनी की जो सबसीडीयरी सेना निज़ाम के इलाक़े में निज़ाम के ख़र्च पर और निज़ाम की मदद के लिए कह कर रक्खी गई थी उसने भी इस समय निज़ाम की मदद करने से इनकार कर दिया। नतीजा यह हुआ कि १५ मार्च सन् १७९५ को निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई में मराठों से हार खाई और मराठों की सब शर्तें

सर जॉन शोर और निज़ाम

स्वीकार कर लीं। इसके सात महीने बाद पेशवा माधोराव नारायन की मृत्यु हुई।

मजबूर होकर निज़ाम ने कुर्दला की लड़ाई के बाद सर जॉन शोर को लिखा कि कम्पनी की सेना मेरे यहाँ से हटा ली जाय। साथ ही उसने एक फ़्रान्सीसी अफ़सर मो० रेमों (Raymond) को अपने यहाँ दूसरी सेना तैयार करने के लिए नौकर रक्खा और अपनी हिफ़ाज़त के लिए रेमों के अधीन कुछ सेना अपने सरहदी इलाक़ों में नियुक्त कर दी।

सर जॉन शोर ने तुरन्त निज़ाम की इन कारग्वाइयों पर एतराज़ किया और हैदराबाद के रेज़िडेण्ट की मारफ़त निज़ाम को धमकी दी कि यदि आपने अपने सरहदी इलाक़ों से नई फ़ौज न हटा ली तो कम्पनी उसके मुक़ाबले के लिए अपनी सेना रवाना करेगी। किन्तु निज़ाम ने इन धमकियों की कुछ परवा न की। अंगरेज़ों को डर हो गया कि कहीं निज़ाम मराठों या टीपू के साथ मिलकर अंगरेज़ों के विरुद्ध खड़ा न हो जावे।

हैदराबाद के अंगरेज़ रेज़िडेण्ट ने तुरन्त निज़ाम के एक पुत्र अालीजाह को भड़काया। अालीजाह ने अपने पिता के ख़िलाफ़ बग़ावत खड़ी कर दी। बेटे को वश में करने के लिए निज़ाम को सरहदी इलाक़े से अपनी फ़ौज वापस बुलानी पड़ी। अालीजाह क़ैद कर लिया गया और बग़ावत शान्त हो गई। किन्तु निज़ाम इस छोटी सी घटना से इतना डर गया कि उसने कम्पनी की फ़ौज को फिर अपने यहाँ रखना स्वीकार कर लिया और उसकी

अपनी सेना के विषय में जो जो शर्तें अंगरेज़ों ने पेश कीं, सब मान लीं।

सर जॉन शोर ने अब रेमौं को निज़ाम की सेना से निकलवा दिया और दो अंगरेज़ अफ़सर उस सेना को तालीम देने के लिए हैदराबाद भेजे। रेमौं होशियार और वफ़ादार था, ये दोनों अंगरेज़ अयोग्य निकले, फिर भी निज़ाम को सर जॉन शोर की इच्छा पूरी करनी पड़ी। इसके बाद ज़िन्दगी भर निज़ाम अंगरेज़ों का विनीत और आज्ञाकारी सेवक बना रहा और कम्पनी को अपने राज के क़ायम करने में निजाम के कुल से हमेशा खूब मदद मिलती रही।

नवाब करनाटक के नाम ज़बरदस्ती के क़र्ज़े

दक्खिन की एक दूसरी मुसलिम रियासत, जिससे सर जॉन शोर को वास्ता पड़ा, करनाटक की रियासत थी। करनाटक ही के नवाब को अरकाट का नवाब भी कहते थे। एक पिछले अध्याय में आ चुका है कि करनाटक के नवाब मोहम्मदअली से अंगरेज़ों को कितना फ़ायदा पहुँचता था, उससे किस प्रकार तरह तरह से धन वसूल किया जाता था और किस प्रकार कम्पनी के नौकरों की माँगों को पूरा करने के लिए वह कुछ अंगरेज़ व्यापारियों ही के क़र्ज़ों में बेतरह दबा हुआ था।

अरकाट के नवाब के क़र्ज़ों का हाल इङ्गलिस्तान के मन्त्रियों और वहाँ की पार्लिमेण्ट के कानों तक भी पहुँच चुका था। इन क़र्ज़ों में कितने ही कर्ज़े साफ़ ज़बरदस्ती और बेईमानी के थे और सूद दर सूद, बट्टे इत्यादि के हिसाब से बराबर बढ़ते चले जाते

थे। अनेक बार पार्लिमेण्ट में इन क़र्ज़ों के विषय में पूछ ताछ की गई। किन्तु इंगलिस्तान के मन्त्री बराबर टालमटोल और तरह तरह की चालाकियों से काम लेते रहे। मिसाल के लिए नवाब को क़र्ज़ देने वालों में एक अंगरेज़ पाल बेन्फ़ील्ड भी था। किन्तु क़र्ज़ख़्वाहों की जो सूचियाँ समय समय पर पार्लिमेण्ट के सामने पेश की जाती थीं उनमें बेन्फ़ील्ड का नाम कभी उड़ा दिया जाता था और कभी फिर जोड़ दिया जाता था। बात यह थी कि बेन्फ़ील्ड और उसके अनेक साथियों ने पार्लिमेण्ट के चुनाव के समय मन्त्रिमण्डल का पक्ष लेने वाले सदस्यों को चुनवा कर भेजने में ख़ूब धन ख़र्च किया था और मन्त्रियों के मुंह बन्द कर दिए थे।* पार्लिमेण्ट के अन्दर भी क़ुदरती तौर पर उस समय के मन्त्रियों ही का प्रभाव था।

इसी सम्बन्ध में इतिहास लेखक विलियम हाविट लिखता है—

"जिस ढङ्ग से यातनाएँ दे देकर भारतीय नरेशों की रियासतें उनसे ज़बरदस्ती छीनी गई हैं वह यह है कि चालबाज़ लोगों ने पहले तो बड़ी होशयारी के साथ उन नरेशों को अपना क़र्ज़दार बनाया और फिर उन्हें अपनी अत्यन्त बेजा माँगों के सामने तुरन्त सर झुकाने के लिए विवश कर दिया।"†

१३ अक्तूबर सन् १७९५ को ७८ साल की आयु में नवाब

---

* Thornton in his *History of British India*, 2nd Edition 1859, pp 181, 182

† "What then is this system of torture by which the possessions of the Indian Princes have been wrung from them? It is this—the skilful application of the process by which cunning men create debtors, and then force

मोहम्मदअली की मृत्यु हुई। उसका बेटा नवाब उमदतुल उमरा करनाटक की मसनद पर बैठा और बाप के झूठे और अनसुने कर्ज़े उसे उत्तराधिकार में मिले।

लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय में कम्पनी और मोहम्मदअली के दरमियान एक सन्धि हो चुकी थी, जिससे करनाटक की सेना का सारा प्रबन्ध अंगरेज़ों के हाथों में आ गया था और करनाटक के कुछ ज़िले इन कर्ज़ों के बदले में नवाब से रहन रखा लिए गए थे। उमदतुल उमरा के मसनद पर बैठते ही मद्रास के गवरनर ने उस पर ज़ोर दिया कि आप रहन रक्खे हुए ज़िले और कुछ और क़िले सदा के लिए कम्पनी को दे दें। २८ अक्तूबर सन् १७९५ को सर जॉन शोर ने मद्रास के गवरनर को लिखा—"आप नए नवाब को इस बात पर राज़ी कीजिये कि वह अपनी तमाम रियासत कम्पनी के सुपुर्द कर दे।" नवाब उमदतुल उमरा ने मद्रास के गवरनर की कोई बात मंज़ूर न की और कम से कम उस समय इस चाल से करनाटक का कोई हिस्सा कम्पनी की अमलदारी में न आ सका। किन्तु करनाटक की ओर अंगरेज़ों की नीयत बिल्कुल ज़ाहिर हो गई।

सन् १७९४ में रुहेलखण्ड के नवाब फ़ैज़ुल्ला ख़ाँ की मृत्यु हुई। उसका छोटा बेटा गुलाम मोहम्मद अपने बड़े भाई आली ख़ाँ को मार कर बाप की गद्दी पर बैठा।

रुहेलखण्ड

---

them at once to submit to their most exorbitant demands' - William Howitt as quoted in the introduction to Thornton's *History of British India*

समाचार पाते ही सर जॉन शोर ने इरादा किया कि—"फ़ैज़ुल्ला खाँ के खानदान से रियासत बिल्कुल छीन ली जावे।" * सर रॉबर्ट एबरक्रौम्बी अवध की सेना सहित आगे बढ़ा। बिटोवरा में लड़ाई हुई। मिल लिखता है कि पहले रुहेलों का पल्ला कुछ भारी रहा, किन्तु बाद में अंगरेज़ों की जीत हुई। अन्त में फ़ैज़ुल्ला खाँ के खानदान से रियासत छीन ली गई। उसका तमाम ख़ज़ाना अवध के नवाब वज़ीर को दे दिया गया और रियासत ज़ब्त कर ली गई। १० लाख रुपए सालाना की जागीर रुहेलखण्ड के एक पिछले नवाब मोहम्मद अली के बेटे अहमदअली को दे दी गई। रुहेलखण्ड के राज में अगरेज़ों की पैदा की हुई यह दूसरी बग़ावत थी।

सर जॉन शोर और अवध

अब केवल अवध के साथ सर जॉन शोर के व्यवहार को बयान करना बाक़ी है। सर जॉन शोर ने अपने एक पत्र में साफ़ लिखा है कि—"अवध के साथ हमारी जो सन्धियाँ हुई हैं उनकी हमें ख़ाक परवा नहीं करनी चाहिए।" लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सन् १७८८ में अवध के नवाब के साथ यह सन्धि की थी कि कम्पनी की सबसीडीयरी सेना का ख़र्च जो नवाब को देना पड़ता था, पचास लाख सालाना से कभी बढ़ाया न जायगा। सर जॉन शोर ने आकर बेखटके और बेवजह इस सन्धि को तोड़ डाला, गोकि लिखा है कि नवाब हर साल ठीक समय पर रक़म अदा कर देता था और अवध की प्रजा की हालत फिर कुछ सुधरती जा रही थी।

* Mill, vol vi, pp 33, 34,

सर जॉन शोर ने नवाब पर ज़ोर दिया कि आप साढ़े पाँच लाख सालाना के ख़र्च पर एक पलटन अंगरेज़ सवारों की और एक हिन्दोस्तानी सवारों की अपने यहाँ और रक्खें। इस सेना का असली मतलब यह था कि कम्पनी को उत्तरीय भारत में अपना साम्राज्य बढ़ाने और स्वयं अवध को धीरे धीरे अपने अधीन करने के लिए दूसरे के ख़र्च पर एक ज़बरदस्त सेना सदा तैयार मिल सके।

नवाब आसफुद्दौला ने इस बार हिम्मत करके इनकार कर दिया और गवरनर जनरल को लॉर्ड कॉर्नवालिस के वादे की याद दिलाई। सर जॉन शोर ने ज़बरदस्ती आसफुद्दौला के वज़ीर महाराजा झाऊँलाल को पकड़ कर अपने यहाँ क़ैद कर लिया। आसफुद्दौला ने इस अत्याचार पर बहुतेरे एतराज़ किए, किन्तु कम्पनी के अफ़सरों ने एक न सुनी। इसके बाद मार्च सन् १७६७ में सर जॉन शोर स्वयं लखनऊ पहुँचा और जिस तरह हो सका उसने आसफुद्दौला को कम्पनी की माँग पूरी करने पर मजबूर किया। साढ़े पाँच लाख सालाना की नई फ़ौज आसफुद्दौला के सर मढ़ दी गई। असहाय आसफुद्दौला को इस व्यवहार का इतना सदमा हुआ कि वह उसी समय से बीमार पड़ गया, उसने दवा खाने तक से इनकार कर दिया और चन्द महीने के अन्दर मर गया। आसफुद्दौला की मृत्यु ने अंगरेज़ों को एक और सुन्दर अवसर प्रदान कर दिया।

आसफुद्दौला का बेटा वज़ीरअली अवध की मसनद पर बैठा। सर जॉन शोर ने बाज़ाब्ता उसे नवाब स्वीकार कर लिया।

थोड़े ही दिनों के बाद सर जॉन शोर को पता चला (?) कि आसफ़ुद्दौला का एक भाई सआदतअली, जो उस समय बनारस में रहता था, उसके बेटे वज़ीरअली की निस्बत अवध की गद्दी का ज़्यादा हक़दार है। मेजर बर्ड, जो कुछ दिनों बाद लखनऊ में असिस्टेंट रेज़िडेण्ट था, लिखता है—

अवध की मसनद का नीलाम

"सर जॉन शोर यह देख कर कि पिछले वज़ीर के एक भाई के साथ ज़्यादा अच्छा सौदा किया जा सकता है, बनारस पहुँचा। वहाँ पहुँच कर उसने सआदतअली के सामने यह तजवीज़ पेश की कि कम्पनी की मदद से आप वज़ीरअली को गद्दी से उतार दीजिये, इस साफ़ शर्त पर कि आप साढ़े पचपन लाख सालाना की रक़म को खूब बढ़ा दें और उसके अलावा कम्पनी की सहायता के बदले में हमें और धन व सम्पत्ति दें। इस साफ़ और निर्लज्ज शर्त पर नवाबी का इच्छुक ख़ुशी से राज़ी हो गया। लखनऊ पहुँच कर × × × वज़ीरअली को उतार दिया गया और २१ जनवरी सन् १७९८ को उसकी जगह सआदतअली के नवाब बनाए जाने का एलान कर दिया गया।"*

---

* Seeing that a better bargain could be made with a brother of the deceased Wazir, Sir John Shore repaired to Benares, and proposed to the latter, who was named Saadat Ali, to dethrone Wazir Ali, offering the support of the Company on the intelligible condition that the subsidy should be largely increased, and that their support should be paid for otherwise in money and kind. To this stipulation bold and bare-faced the aspirant to the Princedom 'cheerfully consented,' and, after a preliminary process at Lucknow, termed in the 'Parliamentary Return of Treaties' 'a full investigation,' and purporting to be an enquiry into the spuriousness of Wazir

लखनऊ पहुँच कर बाज़ाब्ता तहक़ीक़ात (?) करके वजह यह बताई गई कि वज़ीरअली की पैदाइश नाजायज़ है (!)।

२१ फ़रवरी सन् १७६८ को १७ शर्तों की एक सन्धि सआदत अली और सर जॉन शोर के बीच लिखी गई। मुख्य शर्तें ये थीं :—

"× × × सआदतअली कम्पनी की बक़ाया अदा करे, इलाहाबाद का क़िला कम्पनी को दे दे और उसकी मरम्मत के लिए आठ लाख रुपए दे, फ़तहगढ़ के क़िले की मरम्मत के लिए तीन लाख रुपए दे, फ़ौजों के इधर से उधर आने जाने का ख़र्च दे—कितने लाख, यह बाद में तय किया जावेगा सआदतअली को नवाब वज़ीर बनाने में कम्पनी का जो ख़र्च हुआ है उसके लिए वह कम्पनी को बारह लाख रुपए दे, पदच्युत वज़ीरअली को डेढ़ लाख रुपए की पेन्शन दे, × × × और सबसीडीयरी सेना के ख़र्च के लिए ५६ लाख सालाना की रक़म को बढ़ा कर ७६ लाख कर दिया जावे।"*

मेजर बर्ड लिखता है कि इस तरह "कुल मिला कर दस लाख पाउण्ड (१ करोड़ रुपए से ऊपर) और इलाहाबाद का क़िला एक साल के अन्दर कम्पनी को मिल गया।"*

एक शर्त यह भी थी कि सिवाय कम्पनी के आदमियों के और कोई यूरोपियन आइन्दा अवध के राज में रहने न पावे।

इस समस्त सन्धि में शुरू से आख़ीर तक केवल 'रुपयों' और

Ali's birth, that prince was deposed and Saadat Ali was proclaimed, in his stead, at Lucknow, on the 21st January, 1798 —*Dacoitee in Excelsis, or the Spoliation of Oudh, by the East India Company*, —by Major Bird, Assistant Resident at Lucknow

* *Dacoitee in Excelsis*, pp 35-38

'लाखों' ही का ज़िक्र है । सर हेनरी लॉरेन्स ने जनवरी सन् १८४५ की "कलकत्ता रिव्यु" में इस सन्धि के विषय में लिखा है :—

"शायद सर जॉन शोर की सन्धि के अंगरेज़ पाठकों को सब से अधिक यह बात खटकेगी कि अवध के शासन प्रबन्ध का इसमें कहीं ज़रा भी ज़िक्र नहीं है । मालूम होता है कि अवध की प्रजा सब से बढ़कर बोली बोलने वाले के हाथ नीलाम कर दी गई × × × उसके भतीजे के मुक़ाबले में सआदतअली को अधिक निचोड़ा जा सकता था । × × × सर जॉन शोर ने अवध की मसनद को अंगरेज़ गवरनर के हाथों की केवल एक बिक्री की चीज़ बना दिया । × × × हमें मजबूर होकर अवध के सम्बन्ध के इस तमाम पत्र व्यवहार को सर्वथा निन्दनीय मानना पड़ता है ।"†

भारत के ख़र्च पर अन्य देशों की विजय

सन् १७९५ में सर जॉन शोर ने डच लोगों के तमाम भारतीय इलाक़े उनसे लेकर अंगरेज़ कम्पनी के अधीन कर लिए । धीरे धीरे लङ्का, मलाका, बन्दा, ऐम्बौयना आदिक अन्य एशियाई प्रदेशों से भी डच लोग निकाल दिए गए । मारीशस का फ़्रांसीसी इलाक़ा और मनिल्ला के उपजाऊ स्पेनिश इलाक़े अधिकतर भारत ही के धन से ब्रिटिश साम्राज्य में शामिल किए गए ।

† 'What will perhaps most strike the English reader of Sir John Shore's treaty is the entire omission o the slightest provision for the good Government of Oudh The people seemed as it were sold to the highest bidder Saadat Ali was a more promising sponge to squeeze, than his nephew He (Sir John Shore) made the *Musnud* of Oudh a mere transferable property in the hands of the British Governor,

इंगलिस्तान की इन सेवाओं के बदले में सर जॉन शोर को अक्तूबर सन् १७९७ में 'लॉर्ड टेनमाउथ' की उपाधि मिली। मार्च सन् १७९८ में वह इंगलिस्तान लौट गया। अपने समय में वह 'पक्का ईसाई' मशहूर था, और राजनीति में वारन हेस्टिंग्स उसका आदर्श था। निस्सन्देह इंगलिस्तान के लिए उसकी सेवाएँ क्लाइव और वारन हेस्टिंग्स की सेवाओं के मुक़ाबले की थीं।

. We are obliged entirely to condemn the whole tenor of Oudh negotiations"—Sir Henry Lawrence in the *Calcutta Review* for January, 1845

तेरवाँ अध्याय

अंगरेज़ों की साम्राज्य पिपासा

मार्किस वेल्सली

सर जॉन शोर के बाद मार्किस वेलसली ब्रिटिश भारत का गवरनर जनरल नियुक्त हुआ। मार्किस वेल्सली का शासनकाल इतने अधिक महत्व का था और उसके समय में इस देश के अन्दर इतने गहरे उलटफेर हुए कि उस समय की राजनैतिक घटनाओं को बयान करने से पहले वेल्सली के चरित्र, उस समय के यूरोप की राजनैतिक अवस्था, अंगरेज़ क़ौम की आकांक्षाओं और वेल्सली के शासन के उद्देश को संक्षेप में दिखा देना आवश्यक है। वेलसली का नाम पहले लॉर्ड मार्निङ्गटन था। उसका जन्म सन् १७६० ई० में आयरलैण्ड में हुआ। सन् १७९३ ईसवी में वह इंगलिस्तान के उस 'बोर्ड आफ़ कण्ट्रोल' का एक मेम्बर नियुक्त हुआ जो कम्पनी के भारतीय शासन की देख

रेख के लिए पार्लिमेण्ट की ओर से बनाया गया था। इससे पहले के एक गवरनर जनरल लॉर्ड कॉर्नवालिस और इंगलिस्तान के प्रधान मन्त्री पिट से वेल्सली की गहरी मित्रता थी। इन दोनों की मदद से सन् १७९३ से १७९८ तक वेल्सली इंगलिस्तान में बैठा हुआ भारतीय इतिहास और भारत की उस समय की राजनैतिक हालत का ग़ौर से अध्ययन करता रहा। वेल्सली को भारत भेजने से पहले प्रधान मन्त्री पिट ने उसे एक सप्ताह अपने पास रख कर हिन्दोस्तान के अन्दर एक विशाल ब्रिटिश साम्राज्य क़ायम करने की सम्भावना और उसके उपायों पर उसके साथ ख़ूब बातचीत की। इस तरह शिक्षा पाकर वेल्सली ७ नवम्बर सन् १७९७ को अपने देश से रवाना हुआ और मार्ग में दो महीने अफ़रीका की आशा अन्तरीप में ठहर कर मई सन् १७९८ में कलकत्ते पहुँचा।

यूरोप में क़ौमी आज़ादी की लहर

अठारवीं सदी के अन्त में पच्छिम के देशों में क़ौमी आज़ादी की एक ज़बरदस्त लहर चल रही थी। 'स्वतन्त्रता' 'समता' और 'मनुष्य मात्र के बन्धुत्व' की आवाज़ें चारों ओर गूंज रही थीं। ४ जुलाई सन् १७७६ को अमरीका ने अपने आपको इङ्गलिस्तान की दासता से स्वतन्त्र कर देश में प्रजातन्त्र राज (रिपब्लिक) की स्थापना की। ७ वर्ष के भयङ्कर रक्तपात के बाद ३० नवम्बर सन् १७८२ को इंगलिस्तान ने लाचार होकर अमरीका की 'स्वाधीनता' को स्वीकार किया। सन् १७८९ में फ़ान्स की जगद् प्रसिद्ध राजक्रान्ति का

प्रारम्भ हुआ। सन् १७९२ में फ्रांस ने अपने स्वेच्छाचारी और अन्यायी राजा सोलहवें लूई को गद्दी से उतार कर अपने यहाँ प्रजातन्त्र राज (रिपब्लिक) क़ायम किया। २१ जनवरी सन् १७९३ को सोलहवें लूई को फाँसी पर चढ़ा दिया गया। फ्रांस ही से "स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व" (Liberty. Equality and Fraternity) इन तीन शब्दों की पुकार उठी और चन्द साल के अन्दर ही ये शब्द सारे यूरोप में इस सिरे से उस सिरे तक गूंजने लगे। फ्रांस की इस महान क्रान्ति के विषय में इतालिया के आदर्श देशभक्त महात्मा जौज़फ़ मैज़िनी ने लिखा है—

मैज़िनी के विचार

"ढाई करोड़ मनुष्य केवल किसी शब्द, किसी थोथे वाक्य या छाया के पीछे इस तरह एक दिल होकर खड़े नहीं हो सकते और न आधे यूरोप को अपनी आवाज़ से जगा सकते है। फ्रांस की राज्य क्रान्ति ख़तम हो गई यानी उसका ऊपरी जोश ख़रोश जाता रहा, उसका बाहरी रूप नष्ट हो गया, जिस तरह कि हर चीज़ का बाहरी रूप अपना काम पूरा करके नष्ट हो जाता है, किन्तु उस क्रान्ति का उसूल, उसके भीतर का सिद्धान्त जीवित है। वह सिद्धान्त अपने उस समय के समस्त अस्थायी आच्छादनों यानी बाहरी रूपों से अलग होकर अब सदा के लिए हमारे मानसिक आकाश मे ध्रुव तारे की तरह चमक रहा है; उसकी शुमार मानव जाति की विजयों में की जाती है।

"हर महान सिद्धान्त अमर है। फ्रांस की राजक्रान्ति ने मनुष्य मात्र के अधिकार, स्वतन्त्रता और समता के भावों को फिर से मनुष्य की आत्मा के अन्दर प्रज्वलित कर दिया, अब यह ज्वाला कभी किसी के बुझाए नहीं बुझ

सकती। उस क्रान्ति ने फ्रांस निवासियों के अन्दर इस बात की चेतावनी जगा दी कि आइन्दा कभी कोई हमारी क़ौमी ज़िन्दगी को खण्डित नहीं कर सकता; और सब क़ौमों के लोगों में यह ज्ञान पैदा कर दिया कि जनता के एक मत हो जाने पर क़ौम की शक्ति कितनी ज़बरदस्त होती है, उनमें यह दृढ़ विश्वास पैदा कर दिया कि विजय अन्त में जनता ही की होगी और कोई शक्ति उसे इस विजय से वञ्चित नहीं रख सकती। राजनैतिक क्षेत्र में इस क्रान्ति ने मानव उन्नति के एक युग को पूरा करके और उसका सार लेकर हमें दूसरे युग की सीमा तक पहुँचा दिया।

"ये ऐसे नतीजे हैं जो कभी नष्ट न होंगे; कोई सरकारी उल्लेख कोई राजनैतिक सिद्धान्त या किसी स्वेच्छाचारी सरकार के अनन्य अधिकार इन नतीजों को नहीं मिटा सकते।"*

फ्रांसीसी क़ौम प्रायः शुरू से उच्च आदर्शों की उपासक रही है।

---

* "Five and twenty millions of men do not rise up as one man, nor rouse one half of Europe at their call, for a mere word, an empty formula, a shadow The Revolution, that is to say the tumult and fury of the Revolution perished the form perished, as all forms perish when their task is accomplished, but the idea of the Revolution survived That idea freed from every temporary envelope or disguise, now reigns for ever, a fixed star in the intellectual firmament it is numbered among the conquests of Humanity

" Every great idea is immortal , the French Revolution rekindled the sense of *Right*, of liberty and of equality in the human soul, never henceforth to be extinguished , it awakened France to the consciousness of the inviolability of her national life , awakened in every people a perception of the powers of collective will, and a conviction of ultimate victory, of which none can deprive them It summed up and concluded in the political sphere one epoch of Humanity, and led us to the confines of the next

किन्तु अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों के चरित्र में आरम्भ से ही बहुत बड़ा अन्तर दिखाई देता रहा है। जब कि फ्रांसीसी समस्त संसार को स्वतंत्रता, समता और बन्धुत्व का उपदेश दे रहे थे, ठीक उस समय उनके पड़ोसी अंगरेज़ इन सिद्धान्तों के प्रचार को रोकने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे। वजह यह थी कि इंगलिस्तान के शासकों को साम्राज्य का और वहाँ के पूंजीपतियों को दूसरे देशों से धन बटोरने का काफ़ी चसका पड़ चुका था। इंगलिस्तान के साम्राज्य पिपासी शासकों और धन लोलुप पूंजी पतियों को इस बात का डर था कि यदि इस तरह के विचार संसार में फैल गए तो हमारी अपनी इष्ट सिद्धि में बहुत बड़ी बाधा पड़ेगी। जिस अंगरेज़ विद्वान एडमण्ड बर्क ने इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के सामने इस योग्यता के साथ वारन हेस्टिंग्स के पाप कृत्यों को खोला था, उसी बर्क को अब वहाँ के शासकों ने १५०० पाउण्ड सालाना की पेन्शन देकर उससे फ्रांस की राजक्रान्ति के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त पुस्तक लिखवा दी, ताकि फ्रांस की आज़ादी का रोग इंगलिस्तान में फैलने न पाए।

अंगरेज़ों और फ्रांसीसियों के चरित्र में अन्तर

इंगलिस्तान का प्रधान मन्त्री पिट हद दर्जे का साम्राज्य लोलुप था। फ्रांस और फ्रांसीसी विचारों का वह कट्टर शत्रु था। उसी की इच्छानुसार भारत का प्रत्येक अंगरेज़ अफ़सर यहाँ के देशी

"These are results which will not pass away they defy every protocol, constitutional theory, or *veto* of despotic power"—Joseph Mazzini

दरबारों में फ्रांसीसियों, उनके देश और उनके विचारों को बदनाम करने की हर तरह कोशिश करता रहता था। वेल्सली को भी फ्रांसीसी क़ौम और फ्रांसीसी विचारों से हद दर्जे का द्वेष था। इसकी एक वजह यह भी बताई जाती है कि इंगलिस्तान में वेल्सली ने एक फ्रान्सीसी स्त्री अपने घर में रख रक्खी थी, जिससे वेल्सली के कई बच्चे हुए। बच्चे होने के बाद वेल्सली ने उसके साथ बाज़ाब्ता विवाह किया, किन्तु बाद में दोनों में कुछ अनबन हो गई और उस स्त्री ने वेल्सली के साथ भारत आने से इनकार कर दिया। जो हो, वेल्सली फ्रांसीसियों से इतना डरता था कि भारत आते ही उसने ४ मई सन् १७६६ को यहाँ के जंगी लाट सर आलफ्रेड क्लार्क को एक "प्राइवेट और गुप्त" पत्र द्वारा यह साफ़ साफ़ आदेश दिया कि—कलकत्ता, चट्टग्राम, चन्दरनगर, चुंचड़ा इत्यादि से और बाक़ी तमाम ब्रिटिश भारतीय इलाक़ों से एक एक फ्रांसीसी को और फ्रांसीसियों से सम्बन्ध रखने वाले समस्त अन्य यूरोप निवासियों तक को चुन चुनकर ज़बरदस्ती यूरोप भेज दिया जाय। मार्किस वेल्सली प्रजा के अधिकारों का इतना पक्का विरोधी था और उसके राजनैतिक विचार इतने अनुदार थे कि स्वयं अपने देश इंगलिस्तान के अन्दर वह मामूली पार्लिमेण्ट के सुधारों तक के ख़िलाफ़ था।

पिट के समय तक आयरलैंड की एक अलग पार्लिमेण्ट थी। पिट ने इस उद्देश से कि आयरलैंड को इंगलिस्तान के राज्य में मिला

लिया जाय और इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मातहत कर दिया जाय, जान बूझ कर आयरलैंड में सशस्त्र विद्रोह खड़ा कर दिया। प्रसिद्ध अंगरेज़ विद्वान डब्ल्यु० टी० स्टैड ने उस समय के ऐतिहासिक लेखों में साबित किया है कि आयरलैंड का सन् १७६८ का विद्रोह ब्रिटिश सरकार का उकसाया हुआ था और आयरलैंड की स्वाधीनता छीनने के उद्देश से किया गया था। स्टैड यह भी लिखता है कि जिन उपायों से इंगलिस्तान के शासकों ने आयरलैंड की स्वाधीनता छीन कर उसे इंगलिस्तान की पार्लिमेण्ट के मातहत किया, उनमें एक उपाय आयरलैंड की स्त्रियों के साथ "बेरोक टोक बलात्कार" ("Free-rape") भी था। ये उपाय थे जिनके ज़रिये 'ब्रिटेन' का नाम 'ग्रेट ब्रिटेन' रक्खा गया।

आयरलैण्ड की स्वाधीनता का अपहरण

मार्किस वेलसली ने २ अक्तूबर सन् १८०० ई० को कलकत्ते से अपने एक मित्र के नाम पत्र लिखा जिसके नीचे लिखे वाक्य से उसके और कम्पनी के दोनों के भारतीय शासन के उद्देश का साफ़ पता चलता है। इस पत्र में वेलसली ने लिखा :—

भारत में मार्किस वेलसली का उद्देश

"× × × मैं बादशाहतों के ढेर लगा दूँगा और फ़तह पर फ़तह तथा मालगुज़ारी पर मालगुज़ारी लाद दूँगा। मैं इतनी शान, इतना धन और इतनी सत्ता इकट्ठी कर दूँगा कि एक बार मेरे महत्त्वाकांक्षी और धनलोलुप मालिक भी 'त्राहि त्राहि' चिल्लाने लगेंगे। × × ×"*

* I will heap Kingdoms upon Kingdoms, victory upon victory,

भारत आने से पहले दो महीने आशा अन्तरीप में रह कर वेलसली ने भारत की अनेक देशी रियासतों की स्वाधीनता को नाश करने की तरकीबें सोचीं। इस काम में उसे दो अंगरेज़ अफ़सरों से बहुत बड़ी मदद मिली। एक सर डेविड बेयर्ड और दूसरा मेजर कर्कपैट्रिक। सर डेविड बेयर्ड टीपू सुलतान के यहाँ क़ैद रह चुका था। डेविड बेयर्ड का बयान है कि टीपू प्रायः अपने मनोरंजन के लिए बेयर्ड को बन्दर की तरह कपड़े पहनवा कर एक ऊँचा बाँस गड़वा कर उसे उस बाँस पर चढ़वाया उतरवाया करता था और बन्दर की तरह नचवाया करता था। हम भी इस बयान को केवल मनोरंजन के तौर पर दे रहे हैं। नहीं तो टीपू की इस तरह की हरकतों का सबूत सिवा अंगरेज़ क़ैदियों के बयानों के और कहीं नहीं मिलता, और इन बयानों पर बहुत अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता। मेजर कर्कपैट्रिक वारन हेस्टिंग्स और कॉर्नवालिस के समय का ख़ुर्राट नीतिज्ञ था। माधोजी सींधिया के यहाँ नैपाल में और हैदराबाद में, तीन जगह वह कम्पनी के दूत का काम कर चुका था। माधोजी सींधिया को नाना फ़ड़नवीस से लड़ाकर मराठों की सत्ता को नाश करने में, नैपाल के मार्गों और सैन्यबल इत्यादि का गुप्त पता लगाने में और हैदराबाद की सेना

---

revenue upon revenue, I will accumulate glory and wealth and power, until the ambition and avarice even of my masters shall cry mercy "—Marquess of Wellesley's letter to lady Anne Barnard, dated October 2nd, 1800

से फ्रांसीसियों को निकलवाकर उनकी जगह अंगरेज़ भरती कराने में मेजर कर्कपैट्रिक का ख़ास हाथ था।

इन दोनों अंगरेज़ों से वेलसली को देशी रियासतों की स्थिति का ठीक ठीक पता चल गया और अपनी तजवीज़ों को पक्का करने में बहुत बड़ी मदद मिली। आशा अन्तरीप से वेलसली ने प्रधान मन्त्री पिट और भारत मन्त्री डण्डास के नाम जो पत्र इंगलिस्तान भेजे, उनसे साफ़ ज़ाहिर हो जाता है कि इंगलिस्तान के शासकों ने वेलसली को क्या क्या हिदायतें दी थीं और भारत पहुँच कर उसकी क्या तजवीज़ें थीं।

सबसीडीयरी एलाएन्स

एक ख़ास तजवीज़ इस समय यह की गई कि भारतीय नरेशों के पास उस समय तक जहाँ जहाँ अपनी स्वतन्त्र सेनाएँ मौजूद थीं, उन सेनाओं को एक एक कर किसी प्रकार बरख़ास्त करा दिया जावे; उन नरेशों और उनकी रियासतों की रक्षा का भार कम्पनी अपने ऊपर ले ले; और पुरानी रियासती सेनाओं की जगह कम्पनी की सेनाएं, अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन, रियासतों के ख़र्च पर उन रियासतों में क़ायम कर दी जावें। इस नई तजवीज़ का नाम 'सबसीडीयरी एलाएन्स' रक्खा गया। 'सबसीडी' का अर्थ 'आर्थिक सहायता' और 'एलाएन्स' का अर्थ 'मित्रता' है। मतलब यह था कि हर देशी नरेश कम्पनी को निश्चित 'आर्थिक सहायता' देकर कम्पनी को 'सैनिक मित्रता' लाभ कर सके। निस्सन्देह देशी नरेशों को उनकी रियासतों के अन्दर उन्हीं के ख़र्च पर क़ैद करके

रखने का इससे सुन्दर उपाय न सोचा जा सकता था। इस 'सबसीडीयरी एलाएन्स' के विषय में एक यूरोपियन विद्वान लिखता है:—

"सबसीडीयरी एलाएन्स × × × सिवाय एक धोखे के और कुछ न थी। उसका उद्देश इङ्गलिस्तान की जनता की आँखों में धूल डालना था × × ×।

"× × × ये देश ज़ाहिरा विजय नहीं किए जाते थे, वहाँ के नरेशों को छत्र, चँवर आदिक राजत्व के समस्त चिन्हों सहित तख़्त पर रहने दिया जाता था, किन्तु असली ताक़त उनके हाथों से लेकर एक पोलिटिकल एजण्ट के हाथों में दे दी जाती थी × × ×।"*

इस तजवीज़ का उद्देश 'इंगलिस्तान की जनता की आँखों में धूल डालना' रहा हो या न रहा हो, इसमें सन्देह नहीं कि उस समय के असंख्य भोले एशिया निवासियों की आँखों में धूल डालने के लिए यह काफ़ी साबित हुई।

जिन छलों द्वारा वेल्सली ने भारत में अपने सबसीडीयरी एलाएन्स का जाल बिछाया, जिस प्रकार उसने भारत के मुसलमानों और मराठों को वश में किया, निज़ाम और पेशवा को फाँस कर उन्हें कम्पनी का क़ैदी बनाया, करनाटक के नवाब, तञ्जोर के राजा, अवध के नवाब वज़ीर और सूरत और फ़र्रुख़ाबाद के नवाबों के इलाक़े छीने और टीपू, सींधिया, होलकर और भोंसले को बरबाद

* "The Subsidiary system . . . was nothing more than a delusion . . . it was for the purpose of throwing dust into the eyes of the British public. . . .

" . . . these countries were not ostensibly conquered, the sovereign was allowed to remain on his throne, with all the trappings of royalty, but substantial power was transferred from him to the person of a political agent."—*Asiatic Quarterly Review* for January 1887

किया, इन सब बातों का विस्तृत बयान अलग अलग अध्यायों में किया जावेगा।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले केवल एक बात हम और बता देना चाहते हैं। वह यह कि मार्किस वेल्सली के शुद्ध राजनैतिक उद्देश के अलावा उसका एक उद्देश भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना भी था।

ईसाई धर्म प्रचार

वेल्सली ने भारत आते ही ईसाई धर्म के अनुसार अंगरेज़ी इलाक़े के अन्दर रविवार की छुट्टी का मनाया जाना जारी किया। उस दिन समाचार पत्रों का छपना तक क़ानूनन् बन्द कर दिया। कलकत्ते के फ़ोर्ट विलियम में उसने एक कॉलेज की स्थापना की। इस कॉलेज का एक उद्देश विदेशी सरकार के लिए सरकारी नौकर तैयार करना था। वेल्सली के जीवन चरित्र का रचयिता आर० आर० पीयर्स साफ़ लिखता है कि यह कॉलेज भारतवासियों में ईसाई धर्म को फैलाने का भी एक मुख्य साधन था। इस कॉलेज के ज़रिये भारत की सात भिन्न भिन्न भाषाओं में इञ्जील का अनुवाद करा कर उसका भारतवासियों में प्रचार कराया गया। मार्किस वेल्सली न अपने व्यक्तिगत जीवन में चरित्रवान था और न सार्वजनिक जीवन में अपने से पहले के किसी गवरनर जनरल से अधिक ईमानदार था, फिर भी उसकी इस ईसाई धर्मनिष्ठा के लिए अंगरेज़ इतिहास लेखक प्रायः उसकी प्रशंसा करते हैं। सच यह है कि उसका ईसाई धर्म प्रचार भी राजनैतिक इष्ट सिद्धि का एक साधन मात्र था।

चौदवाँ अध्याय

वेल्सली और निज़ाम

आशा अन्तरीप से वेल्सली ने इंगलिस्तान के मन्त्री डण्डास के नाम दो ख़ास पत्र लिखे, एक २३ फ़रवरी सन् १७६८ को और दूसरा २८ फ़रवरी को। इनमें से पहले पत्र में वेल्सली ने लिखा :—

इंगलिस्तान के मन्त्री के नाम वेल्सली के पत्र

"× × × हमें सबसे बड़ा लाभ इस समय इस बात में है कि देशी नरेश एक दूसरे के साथ अपनी दोस्ती या दुश्मनी का फ़ैसला तक नहीं कर सकते।"*

इस वाक्य में तीन ख़ास देशी शक्तियों की ओर इशारा था,

* "Bear in mind the state of the native powers in India at this moment, and recollect that the greatest advantage which we now possess is the present deranged condition of those interests."—Marquess Wellesley to Mr Dundas 23rd February, 1798

निज़ाम, मराठे और टीपू सुलतान। इनमें निज़ाम को आज तक कभी भी अंगरेज़ों से लड़ने का साहस न हुआ था। मराठों के विषय में वेल्सली ने अपने २८ फ़रवरी के पत्र में डण्डास को लिखा कि:—

"पेशवा का बल और प्रभाव इतनी तेज़ी के साथ घटता जा रहा है कि मराठों पर हमला करने की न अभी ज़रूरत है और न ऐसा करना उचित है।" टीपू के विषय में वेल्सली के २३ फ़रवरी के पत्र से स्पष्ट है कि वह अफ़रीका ही में टीपू पर हमला करने का सङ्कल्प कर चुका था। इस पत्र में वेल्सली ने यह भी लिखा कि—"टीपू के विरुद्ध लड़ने के लिए हमें दूसरे भारतीय नरेशों की मदद की ज़रूरत होगी, किन्तु निज़ाम की सेना पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि वह ऐसे मौके पर टीपू के विरुद्ध हमारा साथ देगी।" बात यह थी कि निज़ाम के पास कम्पनी की सेना के अलावा अभी तक एक अपनी स्वतन्त्र सेना भी मौजूद थी। फ्रांसीसी सेनापति मौ० रेमाँ को सर जॉन शोर ने ज़बरदस्ती निज़ाम की इस सेना से निकलवा दिया था, फिर भी अनेक योग्य फ्रांसीसी अफ़सर अभी तक उस सेना में मौजूद थे। अंगरेज़ इतिहास लेखक स्वीकार करते हैं कि इस पुरानी सेना और उसके फ्रांसीसी अफ़सरों ने सदा बड़ी वफ़ादारी के साथ निज़ाम और उसके दरबार की सेवा की। केवल छै वर्ष पहले यही सेना टीपू के विरुद्ध अंगरेज़ों का भी साथ दे चुकी थी। किन्तु इस सेना की बाग अंगरेज़ों के हाथों में न थी, इसलिए सब से पहला काम वेल्सली के लिए यह था कि निज़ाम

की इस सेना को तोड़ कर उसकी जगह कम्पनी की एक नई सबसीडीयरी सेना निज़ाम के राज में क़ायम कर दे। दूसरे शब्दों में वेल्सली ने सब से पहले निज़ाम को 'सबसीडीयरी सन्धि' के जाल में फँसाने की तजवीज़ की।

निज़ाम को सबसीडीयरी संधि के जाल में फांसने की तजवीज़

निज़ाम की हालत पहले ही काफ़ी गिरी हुई थी। कुर्दला की पराजय ने उसे और भी कमज़ोर कर दिया था। मालूम होता है, कुर्दला में अंगरेज़ों के निज़ाम को मदद न देने और उसकी सबसीडीयरी सेना तक को उससे दूर रखने का असली मतलब यह था कि अंगरेज़ निज़ाम को जहाँ तक हो सके, कमज़ोर कर देना चाहते थे। वेल्सली ने डण्डास को लिखा :—

"मैं अभी लिख चुका हूँ कि × × × कुर्दला की सन्धि से और जिस ढङ्ग से उस सन्धि का पालन कराया गया है, उससे निज़ाम की हालत कितनी गिर गई है और कितनी कमज़ोर हो गई है। × × ×

"इस समय मालूम होता है कि हैदराबाद का दरबार हमारे साथ अधिक गहरा सम्बन्ध क़ायम करने के लिए बड़ी बड़ी क़ुर्बानियाँ करने को तैयार है। और यदि किसी दूसरे सबब से इस सम्बन्ध को अनुचित न समझा जावे; तो बजाय इसके कि हम अपनी ओर से पत्र व्यवहार शुरू करें और निज़ाम से कहें कि तुम अपनी सेना के किसी हिस्से को बरख़ास्त कर दो, यदि निज़ाम हमसे प्रार्थना करे और हम उस पर बतौर एक अहसान के उसके साथ इस तरह के सम्बन्ध को मंजर करें तो शायद हमें बहुत अधिक लाभ हो सकता है।"

इस 'अधिक गहरे सम्बन्ध' से वेल्सली का मतलब सबसीडीयरी सन्धि से है।

हैदराबाद के दरबार में दो अंगरेज़ दूत

निज़ाम को 'सबसीडीयरी सन्धि' के जाल में फाँसने के लिए हैदराबाद के दरबार में एक गुप्त षड्यन्त्र रचा गया। निज़ाम के कुछ दरबारियों को, जिनमें निज़ाम का वज़ीर अज़ीमुलउमरा भी था, रिशवतें देकर अपनी ओर फोड़ा गया, और निज़ाम से यह सारा मामला अन्त समय तक छिपाकर रक्खा गया। इस षड्यन्त्र में वेल्सली के दो मुख्य मददगार थे, एक मेजर कर्कपैट्रिक का छोटा भाई कप्तान कर्कपैट्रिक, जो अपने बड़े भाई की जगह हैदराबाद में रेज़िडेण्ट था, और दूसरा कप्तान कर्कपैट्रिक का असिस्टैण्ट कप्तान मैलकम।

कप्तान कर्कपैट्रिक बहुत ही चलता पुर्ज़ा था। उसने अपना रहन सहन, पहनाव सब हिन्दोस्तानी ढङ्ग का कर रक्खा था। हैदराबाद में उसका नाम 'हशमतजङ्ग' पड़ा हुआ था। एक मुसलमान दरबारी की लड़की के साथ उसने बाज़ाब्ता निकाह कर लिया था। हैदराबाद ही में अनेक बार उस पर रिशवतसितानी, बदचलनी और हत्या तक के जुर्म लगाए गए। हिन्दोस्तानी दरबारियों के साथ साज़िशें करने में वह सिद्धहस्त था और इस अवसर पर वेल्सली को उसने बड़ा काम दिया।

दूसरा कप्तान मैलकम स्कॉटलैण्ड के निहायत ग़रीब माँ बाप का लड़का था। १२ साल की आयु में भारत भेजे जाने के लिए

वह कम्पनी के डाइरेक्टरों के सामने पेश हुआ। परीक्षा के तौर पर एक डाइरेक्टर ने उससे पूछा—"क्यों छोटे आदमी, यदि हैदरअली तुम्हें मिल जावे तो तुम क्या करोगे?" लड़के ने फ़ौरन उत्तर दिया—"क्या करूँगा? मैं फ़ौरन अपनी तलवार खींचकर उसका सर काट डालूंगा।" डाइरेक्टर ने कहा—"बहुत ठीक" और फिर आज्ञा दी—"इसे पास किया गया।"

इस प्रकार पास होकर और सेना में भरती होकर अप्रैल सन् १७८३ में १३ साल की आयु में मैलकम मद्रास पहुँचा। टीपू के साथ अंगरेज़ों की पहली लड़ाई में वह शामिल था। धीरे धीरे उसने फ़ारसी भाषा और देशी रियासतों की हालत का ख़ूब अध्ययन किया। मार्किस वेलसली मद्रास में मैलकम से मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। २० सितम्बर सन् १७९८ को उसने कप्तान मैलकम को सेना से निकाल कर हैदराबाद के दरबार में कर्कपैट्रिक का असिस्टैण्ट नियुक्त कर दिया। मैलकम कर्कपैट्रिक और वेल्सली दोनों के लिए अत्यन्त उपयोगी साबित हुआ।

अज़ीमुलउमरा के साथ गुप्त साज़िश

तजवीज़ यह थी कि अज़ीमुलउमरा बिना निज़ाम को ख़बर किए रियासत की सेना को चुपचाप टुकड़े टुकड़े करके बरख़ास्त कर दे और पेशतर इसके कि निज़ाम को ख़बर हो, कम्पनी की नई सबसीडीयरी सेना हैदराबाद पहुँच कर उसकी जगह ले ले। ८ जुलाई सन् १७९८ को वेलसली ने कलकत्ते से कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम एक पत्र लिखा जिसके ऊपर "गुप्त" लिखा हुआ था। केवल

छै साल पहले निज़ाम और अंगरेज़ों के बीच मित्रता की सन्धि हो चुकी थी। उस सन्धि को मिट्टी में मिलाकर अब गवरनर जनरल ने रेज़िडेण्ट को आज्ञा दी कि जिस तरह हो सके किसी गुप्त ढंग से निज़ाम की रियासती सेना को, जिसमें फ्रांसीसी अफ़सर हैं, बरख़ास्त करवा कर उसकी जगह कम्पनी की नई सबसीडीयरी सेना एक बार क़ायम कर दो। इस पत्र में कप्तान कर्कपैट्रिक को आदेश दिया गया कि यह सारा काम चुपचाप ऊपर ही ऊपर वज़ीर अज़ीमुलउमरा की मार्फ़त पूरा करा लिया जावे और निज़ाम को इसका बिल्कुल पता न चलने पावे। वेल्सली ने लिखा—

"× × × अज़ीमुलउमरा पर ख़ूब ज़ोर देना कि इसकी पूरी पूरी अहतियात रखना ज़रूरी है कि × × × तजवीज़ें खुलने न पावें; उसे यह सुझा देना कि सेना को छोटे छोटे टुकड़ों में करके एक एक टुकड़े को अलग अलग बरख़ास्त करना अधिक उचित होगा, ताकि अन्त में आसानी से सारी सेना को ख़तम किया जा सके और सेना के अफ़सर या सिपाही वहाँ से जाकर टीपू या सींधिया के यहाँ नौकरी न कर लें।

"जब अज़ीमुलउमरा निज़ाम के नाम पर इन सब बातों को करने के लिए राज़ी हो जावे तब तुम मद्रास से कम्पनी की सेना बुलवा भेजना।"*

---

* " you will urge to Azimul Omra in the strongest terms, the necessity of his taking every precaution to prevent the propositions from transpiring and you will suggest to him the propriety of dispersing the corps in small parties for the purpose of facilitating its final reduction, and of preventing the officers and privates from passing into the service of Tipoo or of Scindhia

"Should Azimul Omra consent, in the name of the Nizam, to the

जिस प्रकार हैदराबाद के पहले निज़ामुलमुल्क ने अपने स्वामी दिल्ली सम्राट के साथ विश्वासघात करके मुग़ल साम्राज्य के अधःपतन में सहायता दी थी, उसी प्रकार अब अज़ीमुलउमरा ने अपने स्वामी निज़ाम के साथ विश्वासघात करके हैदराबाद की स्वाधीनता का ख़ात्मा कराया।

हिन्दोस्तानी नरेशों के मन्त्रियों को रिशवतें देकर अपनी ओर करने की कोशिश करना अंगरेज़ अफ़सरों के लिए उन दिनों एक आम बात थी। मार्किस वेल्सली के सगे भाई आर्थर वेल्सली ने, जो बाद में ड्यूक ऑफ़ वैलिंगटन के नाम से प्रसिद्ध हुआ, २४ अगस्त सन् १८०३ को मेजर शा के नाम एक पत्र में लिखा था—"करनल क्लोज़ के नाम मेरे पत्रों से आपने देखा होगा कि हर बात की ठीक ठीक ख़बर रखने के लिए मैंने इस बात पर ज़ोर दिया है कि करनल क्लोज़ पेशवा के मन्त्री को धन दें।"

वेल्सली की अधिक व्यापक तजवीज़

कप्तान कर्कपैट्रिक को पत्र लिखने के एक सप्ताह बाद १५ जुलाई सन् १७९८ को वेल्सली ने मद्रास के गवरनर को लिखा कि आप हैदराबाद के लिए सेना तैयार रखिए। इस पत्र में वेल्सली ने लिखा—"मैं चाहता हूँ निज़ाम में कुछ योग्यता और बल फिर से आजावे।" निस्सन्देह वेल्सली अपने चिर मित्र निज़ाम से

---

proposed conditions, you will then require the march of the troops from Fort St George" Governor-General's letter to Captain Kirk Patrick dated 8th July, 1798

छिपा कर और उसके साथ दग़ा करके उसका बल बढ़ाना चाहता था। सीधे शब्दों में इस वाक्य का मतलब था "निज़ाम की हुकूमत का अन्त हो जावे।" और आगे चल कर वेल्सली लिखता है—

"मैं एक कहीं अधिक बड़ी तजवीज़ तमाम रियासतों के साथ इसी तरह की सन्धियाँ करने की कर रहा हूँ, और इस समय की तजवीज़ केवल उस बड़ी तजवीज़ का एक हिस्सा है। × × × मेरा ख़याल है कि जो फ़ौज हैदराबाद भेजनी है, उसे जमा करने के लिए सब से अच्छी जगह गुण्टूर होगी × × × इस बात को गुप्त रखने की अत्यन्त कड़ी से कड़ी अहतियात की जावे। × × × जो जगह आप तय करें उसकी सूचना हैदराबाद के क़ायम मुक़ाम रेज़िडेण्ट को दे देना आवश्यक होगा, ताकि वह कमाण्डिङ्ग अफ़सर के साथ पत्र व्यवहार कर सके। × × × अपनी तमाम कारखाई आप पूना और हैदराबाद के रेज़िडेण्टों को लिखते रहें, किन्तु केवल उनकी अपनी सूचना के लिए, उन्हें लिख भेजें कि वे अपने यहाँ के दरबारों को इसकी ख़बर न होने दें।"*

जनरल हैरिस के नाम १६ अगस्त के पत्र में वेल्सली ने लिखा—

"× × × मेरे १६ जुलाई के पत्र से आपको पता चल गया होगा कि

* 'My object is to restore the Nizam to some degree of efficiency and power. The measure forms part of a much more extensive plan for the establishment of our alliances, the best position for assembling the troops destined for Hyderabad, would be in the Guntur Circar the most strict attention to secrecy in the whole of this proceeding you will communicate the whole proceeding to the Residents at Poona and Hyderabad for *their* information *only* and not to be imparted to their respective Courts.' -Marquess of Wellesley to General Harris, 15th July, 1798

यह तजवीज़ भारत में अंगरेज़ी राज का अस्तित्व क़ायम रखने के लिए कितनी ज़रूरी है।"

इस पत्र में भी तजवीज़ को गुप्त रखने पर फिर ख़ूब ज़ोर दिया गया।

मार्किस वेल्सली के एक पत्र से मालूम होता है कि इतने पर भी अज़ीमुलउमरा अन्त तक कुछ झिझकता रहा।

अज़ीमुलउमरा की घबराहट

सम्भव है उसकी आत्मा भीतर से उसे दिक़ करती हो, या सम्भव है कोई और सबब रहा हो। जो हो, उसने निज़ाम की सेना को बरख़ास्त करने में देर की। अंगरेज़ों के लिए इस तरह के मामले में देर ख़तरनाक हो सकती थी। इसलिए मैलकम और कर्कपैट्रिक ने दूसरी ओर से भी अपना इन्तज़ाम कर लिया था। उन्होंने निज़ाम की सेना के अन्दर भी अपने षड्यन्त्र का जाल पूर रक्खा था। कम्पनी की सेना बिना निज़ाम की सेना के बरख़ास्त होने का इन्तज़ार किए मद्रास से हैदराबाद के लिए चल पड़ी। कप्तान मैलकम की जीवनी का रचयिता सर जॉन के लिखता है कि—"हमारे सौभाग्य से ऐन मौक़े पर निज़ाम की पलटनें अपने अफ़सरों के विरुद्ध बलवा कर बैठीं। क्योंकि उनकी तनख़ाहें चढ़ गई थीं। उन्होंने अपने फ़्रांसीसी सेनापति को क़ैद कर लिया।"* इत्यादि। जॉन के यह नहीं बतलाता कि किन तरीक़ों से रेज़िडेण्ट और उसके असिस्टेण्ट ने निज़ाम की फ़ौजों को "ऐन मौक़े पर" बलवा करने के लिए तैयार

* Kaye's *Life of Malcolm*

किया । इसी मौके पर कम्पनी की पलटनों ने भी अचानक हैदराबाद को आ घेरा । वज़ीर अज़ीमुलउमरा से कहा गया कि आप फ़ौरन निज़ाम की पलटनों को बरखास्त करके कम्पनी की पलटनों को उनकी जगह दे दें । लिखा है कि कम्पनी की सेना को इतनी जल्दी हैदराबाद में देख कर अज़ीमुलउमरा चकित रह गया और एक बार उसने रियासत की सेना को बरखास्त करने से इनकार कर दिया । जिस सेना और उसके अफ़सरों ने सदा इतनी वफ़ादारी के साथ राज की सेवा की थी उसे बेकसूर बरखास्त कर देना अज़ीमुलउमरा के लिए भी इतना आसान न था । असहाय निज़ाम को चन्द घण्टे पहले तक इस तमाम काररवाई का गुमान भी न था । किन्तु न निज़ाम में इतनी हिम्मत थी और न उसके आदमियों में इतनी वफ़ादारी । अन्त में चारों ओर से कम्पनी की पलटनों से घिर कर, स्वयं अपने दरबार को विश्वासघातकों से छलनी छलनी देख कर और अपनी ही सेना को अपने ख़िलाफ़ विद्रोही देखकर निज़ाम को अंगरेज़ रेज़िडेण्ट की इच्छा पूरी करनी पड़ी ।

कम्पनी और निज़ाम में सब्सीडीयरी सन्धि

१ सितम्बर सन् १७६८ को निज़ाम ने कम्पनी के साथ उस नए सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए जिससे हैदराबाद दरबार की स्वाधीनता का सदा के लिए ख़ात्मा हो गया । इस सन्धि पत्र का पहला ही वाक्य सरासर झूठ है । उसमें लिखा है—

"चूंकि नवाब निज़ामुलमुल्क आसफ़जाह बहादुर ने मौजूदा दोस्ती के महत्त्व को देखते हुए यह इच्छा प्रकट की है कि माननीय कम्पनी की जो

सेना इस समय निज़ाम की नौकरी में है उसकी संख्या बढ़ा दी जावे, इत्यादि इसलिए × × ×।"

निज़ाम का इस तरह की कभी कोई इच्छा प्रकट करना तो दूर रहा, उसे इस तमाम साज़िश का पहले से गुमान तक न था। केवल दग़ा और लाचारी ने उसे सन्धि पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया।

इस सबसीडीयरी सन्धि के अनुसार छै हज़ार हिन्दोस्तानी सिपाहियों की एक नई सेना मय तोपख़ाने के अंगरेज़ अफ़सरों के अधीन निज़ाम के ख़र्च पर निज़ाम के राज के अन्दर सदा के लिए क़ायम कर दी गई और यह तय हुआ कि आइन्दा बिना कम्पनी की इजाज़त के निज़ाम किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकर न रक्खे। इस प्रकार निज़ाम पहला भारतीय नरेश था जिसे मार्किस वेल्सली ने 'सबसीडीयरी एलाएन्स' के जाल में फाँस कर उसे उसके अपने राज के अन्दर एक तरह का क़ैदी बना दिया, और जिसे अपने ख़ज़ाने से उस सेना का ख़र्च बरदाश्त करना पड़ा जिस सेना ने उसे क़ैद करके रक्खा।

इंगलिस्तान के मन्त्रिमण्डल ने हैदराबाद की इस सन्धि पर विशेष पत्र द्वारा हार्दिक सन्तोष प्रकट किया, और कम्पनी के डाइरेक्टरों ने इनाम के तौर पर वेल्सली को बीस साल तक के लिए ५,००० पाउण्ड सालाना की पेनशन प्रदान की। यह पेनशन सन्धि की तारीख़ १ सितम्बर सन् १७६८ से शुरू की गई।

वेल्सली और उसके साथियों को कम्पनी की ओर से इनाम

कर्कपैट्रिक और मैलकम को भी उनकी सेवाओं के लिए इनाम और तरक्कियाँ दी गईं ।

इसके बाद निज़ाम की हालत इतनी असहाय हो गई कि अज़ीमुलउमरा की मृत्यु के बाद निज़ाम की इच्छा के विरुद्ध अंगरेज़ों ने अपने एक आदमी मीर आलम को उसकी जगह निज़ाम का प्रधान मन्त्री नियुक्त करवा दिया ।

इस समस्त दग़ा के लिए एक बहाना यह लिया गया कि अंगरेज़ों को उस समय फ्रांसीसियों से और टीपू सुलतान से हमले का डर था, और इसलिए उन तमाम शक्तियों को पंगुल कर देना अंगरेज़ों के लिए आवश्यक था जिनके फ्रांसीसियों या टीपू से मिल जाने की सम्भावना हो। किन्तु एक तो उस समय की समस्त स्थिति को देखने से मालूम होता है कि ये दोनों डर बिलकुल झूठे थे, दूसरे यदि इस तरह की कोई आशंकाएँ रही भी हों तो भी गम्भीर सन्धियों को तोड़ कर और गुप्त षड्यन्त्र रच कर दूसरे राज्यों की स्वाधीनता को हरने का यह कोई न्याय्य बहाना नहीं हो सकता । इस सब का असली कारण था अंगरेज़ों की वह साम्राज्य पिपासा जिसका पिछले अध्याय में ज़िक्र किया जा चुका है ।

हैदराबाद और पूना में अन्तर

ठीक जिस तरह के प्रयत्न हैदराबाद में किए जा रहे थे, उसी तरह के प्रयत्न उसी समय पूना दरबार में भी चल रहे थे। ८ जुलाई को वेल्सली ने कप्तान कर्कपैट्रिक के नाम पत्र लिखा, और ठीक उसी दिन उसी विषय का एक पत्र पूना के रेज़िडेण्ट को लिखा। किन्तु

पूना में वेल्सली को सफलता न हो सकी। गो कि नाना फ़ड़नवीस उस समय क़ैद में था फिर भी पूना दरबार अभी तक हैदराबाद दरबार की तरह राजनीति शून्य या चरित्र शून्य न हो पाया था। पूना दरबार में अभी तक ऐसे जागरूक और दूरदर्शी नीतिज्ञ मौजूद थे जो अंगरेज़ों की चालों में इतनी आसानी से न आ सकते थे।